पुष्टिविधानम्

व्याकरणम्

प्रकाशक :
श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, कंसारा बजार, मांडवी,
जि. कच्छ, गुजरात, ३७० ४६५.
☎ Off. Ho. 02834-231463, 224306.
Email: gosharad@sancharnet.in
http://www.pushtimarg.net/

लेखक : धर्मेन्द्रसिंह झाला

संशोधक : गोस्वामी पङ्कजकुमार
गोस्वामी भूषणकुमार

सम्पादक : गोस्वामी शरद्

प्रथम संस्करण : वि.सं. २०६० प्रति : १०००

ग्रन्थप्रकाशन सहाय : रु. १०० : ०० (ऐच्छिक)

Copyright : @2003
Shri Vallabhacharya Trust, Kansara Bazar,
Mandavi - Kutch, Gujarat, 370 465, India.

मुद्रक : श्रीवल्लभ बुक मेन्युफेक्चरिंग् कं., ५५/४६,
सिटिमील कम्पाउंड्, कांकरीया रोड़, अमदावाद, गुजरात.

प्राप्तिस्थान

पोस्टद्वारा तथा प्रत्यक्ष

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, कंसारा बजार, मांडवी - कच्छ, गुजरात, ३७० ४६५.
फोन : ०२८३४ - २३१४६३, २२४३०६

(इन स्थानोंसे स्वयं जाकर प्राप्त करें, पोस्टद्वारा नहीं भेजे जायेंगे)

राजकोट :

श्रीप्रवीणभाई डढाणीया, 'पुष्टि', व्रजवल्लीके सामने, जलाराम २, युनिवर्सिटि रोड, राजकोट ३६० ००५. फोन : ०२८१ - २५८४४११

जुनागढ :

- पुष्टिसाहित्य विक्रय केन्द्र, मोटी हवेली, पञ्च हाटडी, जुनागढ.
- श्रीहर्षदभाई चांगेला, डी. कान्तिलाल एन्ड कं., हार्डवेर मर्चन्ट, चित्ताखाना चोक, जुनागढ, फोन : घर - (०२८५)२६६०२९७

अमदावाद :

श्रीजनकभाई शाह, ३५, निकुञ्जविहार, लाड सोसाईटी, वस्त्रापुर, अमदावाद ३८० ०५४. फोन : ०७९ - ६८५५७२९

वडोदरा :

श्रीशान्तिभाई तलाटी, सी - २०१, आदिनाथ सोसाईटी, ब्राईट स्कूलनी गलीमां, वी.आई.पी. रोड, वडोदरा.

हालोल :

श्रीभानुबेन गोर, २५, आदर्श सोसाईटी, हालोल, जि - पंचमहाल, ३८९ ३५०.
फोन : ०२६७६ - २२१३७२, २२१७४३.

सुरत :

श्रीनिलेश महेता, ६, भाग्यनिधि रो हाउसिस्, सहज सुपरस्टोर पाछळ, रान्देर, सुरत. फोन : ०२६१ - ३१२३९०७.

गोधरा :

श्रीभावीन शाह, ५९, प्रभाकुंज सोसाईटी, कोलेज रोड, गोधरा, जि.-पंचमहाल, गुजरात. फोन : ०२६७२ - २४७४७२.

मुम्बई :

कालबादेवी :

श्रीअंशु गोपालभाई शाह, १५ 'पुरुषोत्तमनिवास', दादीशेठ अगियारी लेन, कालबादेवी, मुम्बई, फोन : ०२२ - २२०८९९२२

विलेपार्ले :

श्रीरसिकभाई शाह, ४, 'मथुराभुवन', श. भगतसिंह रोड, बजाज रोड, विलेपार्ले (पश्चिम) मुम्बई, ४०० ०५६, फोन : ०२२ - २६७१००३७.

बोरीवली :

श्रीधर्मेन्द्रसिंह झाला, ८ बी, 'कृपाधाम', कार्टर् रोड नं.-२, बोरीवली ईस्ट, मुम्बई, ४०० ०६६. फोन : ०२२ - २८०६८६२५

कान्दीवली :

श्रीमधुभाई शाह, 'शिवकृपा' पहेलामाळे, रामगलीना नाकाउपर, म्युनिसिपल् गार्डन्नी सामे, कान्दीवली, वेस्ट, मुम्बई, ४०० ०६७, फोन : ०२२ - २८०७००४३

गोकुल :

पुष्टिसाहित्य विक्रय केन्द्र, नन्दचौक, गोकुल, जि. मथुरा, उत्तरप्रदेश.

श्रीवल्लभाचार्य ट्रस्ट, मांडवी - कच्छके कार्य

- **सेमिनार :**

  आयोजित :

  १. शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा

  २. कार्यकारणभावविचार

  ३. अन्यख्यातिवादीया विद्वत्सङ्गोष्ठी

  ४. प्रत्यक्षप्रमाण सङ्गोष्ठी

  ५. वार्तापरिचर्चा

  ६. अधिकारपरिचर्चा

  ७. पुष्टिभक्तिमार्गीय साधनाप्रणाली

  आयोज्य :

  अनुमानप्रमाण

  पुष्टिभक्तिमार्गीय सेवासाधना

- **आचार्यवंशजोंकेलिये अध्ययनसत्र**

- **ग्रन्थप्रकाशन :**

  प्रकाशित

  १. प्रवेशिका (अंग्रेजी)

  २. प्रमेयरत्नसंग्रह

  ३. शब्दखण्डीया विद्वत्परिचर्चा

  ४. तत्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत शास्त्रार्थप्रकरणम् (व्रजभाषाटीका)

  ५. तत्वार्थदीपनिबन्धान्तर्गत सर्वनिर्णयप्रकरणम् (व्रजभाषाटीका)

  ६. वार्तापरिचर्चा

  ७. पुष्टिविधानम्

८. प्रवेशिका

९. अधिकारपरिचर्चा

१०. अन्यख्यातिवादीया विद्वसङ्गोष्ठी

११. श्रीभागवत महापुराण (गुर्जरभाषानुवाद)

प्रकाश्य :

१. कार्यकारणभावमीमांसा

२. पुष्टिभक्तिमार्गीय साधनाप्रणाली

३. प्रत्यक्षप्रमाण सङ्गोष्ठी

४. प्रवचन : गोस्वामी श्रीश्याम मनोहरजी, किशनगढ - पार्ला

५. तत्त्वार्थदीपनिबन्ध शास्त्रार्थप्र. (गुज.वि., वै. वाणीमां प्रकाशित)

६. प्रभुचरणविरचित पद्यसाहित्यकी अप्रकाशित संस्कृत टीकाएं.

७. द्रव्यशुद्धि, व्रज-गुर्जरभाषानुवाद सहित

८. विद्वन्मण्डन, गुर्जरभाषानुवाद

९. सर्वनिर्णयनिबन्ध, गुर्जरभाषानुवाद

१०. भगवद्गीता, व्याकरण-गुजराती टीका-यावदुपलब्ध प्रकीर्ण लेख सहित

११. ८४ वैष्णववार्ता, गुर्जरभाषानुवाद

- गोशाला

- संकृत माध्यमसे अध्ययन करते विद्यार्थीओंकेलिये छात्रालय
  संचालन : श्रीवल्लभाचार्य व्रजसंस्कृति विकास ट्रस्ट समिति, गोकुल

- छात्रवृत्ति

- हस्तप्रतसंग्रह - संरक्षण

- पुस्तकालय

- पाठशाला

- पुष्टिमार्गीय वेबसाईट : http://www.pushtimarg.net/

- Catalogus Catalogorum of the manuscripts of Śuddhādvaita - Puṣṭibhakti - Sampradāya.

- Encyclopedic CD ROM comprising of entire original Sanskrit writings of Acharyas along with Vraj, Hindi, Gujarati & English literature written on the base of such writings.

- **एन्सायक्लोपीडीया ओफ् इन्डियन् फिलोसोफि** (एडिटर् इन् जनरल्: डॉ. कार्ल् पोटर्, युनिवर्सिटि ओफ् वोशिङ्गटन्, यु. एस्. ए.) अन्तर्गत 'शुद्धाद्वैतब्रह्मवाद' विषयक खण्डके लेखन - सङ्कलन - सम्पादन - प्रकाशनमें सहयोग.

प्रकाशकीय

भारतीय जीवनदर्शनके अनुसार किसी भी जीवके देहको धारण करनेकी घटना पूर्वापर सम्बन्ध रहित कोई आकस्मिक घटना नहीं होती है. देह धारण करनेवाला हर जीव अपने साथ एक लंबे अतीतको लिये हुवे होता है. जैसे उसका कुछ अतीत होता है उसी प्रकारसे जिस योनि-वर्ण-कुल आदिमें वह जन्म लेता है वह उसका वर्तमान कहलाता है. यह वर्तमान एवं सञ्चित अतीत ही पुनः उसके भविष्यके निर्माता सिद्ध होते हैं. यह एक ऐसी परम्परा है जो कि मोक्षप्राप्ति अथवा प्रलय पर्यन्त चलती ही रहती है. इस रहस्यका भगवानने गीतामें अनेकत्र निरूपण किया है :

"देहिनोऽस्मिन् यथा देहे कौमारं यौवनं जरा,
तदा देहान्तरप्राप्तिः ... ...";
"वासंसि जीर्णानि ... ... नवानि देही";
"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुवं जन्म मृतस्य च";
"बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन";
"प्राप्य पुण्यकृतांल्लोकान् उषित्वा शश्वतीः समाः,
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते,
अथवा योगिनामेव कुले भवति धीमताम्,
... तत्र तं बुद्धिसंयोगं लभते पौर्वदेहिकम्,
यतते च ततो भूयः संसिद्धौ कुरुनन्दन,
पूर्वाभ्यासेन तेनैव ह्रियते ह्यवशोऽपि सः"

जिस परम्परामें व्यक्तिका जन्म होता है उस परम्परासे प्राप्त

होते कर्तव्योंके निर्वाहका तथा उस परम्पराको आगे बढ़ानेका भी उत्तरदायित्व व्यक्तिको जन्मसे ही प्राप्त होता है. अतएव यजुर्मन्त्रमें कहा गया है : "**जायमानो वै ब्राह्मणस्त्रिभिर्ऋणवा जायते ब्रह्मचर्येण ऋषिभ्यो, यज्ञेन देवेभ्य:, प्रजया पितृभ्य ...**". अर्थात्, जायमान प्रत्येक ब्राह्मण ऋषि, देव और पितृ इन तीन ऋणोंको अपने साथ लेकर जन्म लेता है. शास्त्राध्ययनद्वारा ऋषि ऋणसे, यज्ञानुष्ठानद्वारा देव ऋणसे और प्रजोत्पत्तिद्वारा पितृ ऋणसे वह मुक्त होता है.

उपयुक्त मन्त्रमें निरूपित त्रिविध ऋण त्रिविध परम्पराकी ओर हमारा ध्यानाकर्षण करते हैं : १. ऋषिपरम्परा २. देवपरम्परा और ३. वंशपरम्परा. इन तीनों परम्पराओंका सम्यक्प्रकारेण निर्वाह और अभिवृद्धि किये बिना मनुष्यकी ऊर्ध्वगतिके द्वार खुल नहीं सकते हैं यह निर्विवाद तथ्य है.

१. ऋषिपरम्परा :

प्रथम परम्पराके निर्वाहार्थ कहा गया है : "**ब्राह्मणेन निष्कारण: षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च**" बिना किसी हेतु-प्रयोजनका विचार किये द्विजको षडङ्ग सहित वेदादिका केवल अध्ययन ही नहीं करना है अपितु उनको समझना भी है. इसी तरह "**अष्टवर्षं ब्राह्मणम् उपनयीत तम् अध्यापयीत**" द्विज-ब्राह्मणका यह कर्तव्य बनता है कि उसने अपनी परम्परागत जिस वेदकी शाखाका अध्ययन किया है उस विद्याका उसके जीवनके साथ ही लोप न हो जाय तदर्थ उसको किसी बालकको उपनयन संस्कारसे दीक्षित करके पढाये.

शास्त्रका अध्ययन और अध्यापन करके ब्राह्मण अपने पूर्वज उन ऋषि-मुनिओंके ऋणकी अदायगी कर सकता है कि जिन्होंने

अनादिकालसे चली आती विद्याकी परम्पराको सुरक्षित रूपसे उस तक पहूंचाया था.

२. देवपरम्परा :

जिस प्रकार देह सम्बन्धसे लौकिक माता-पिताके प्रति पुत्रके कुछ कर्तव्य होते हैं उसी तरह आत्माके सम्बन्धसे जगत्पिता परमात्माके प्रति भी जीवात्माके कर्तव्य होते ही हैं. यथाधिकार देवयजनद्वारा मनुष्यकेलिये उस कर्तव्यका निर्वाह करना भी आवश्यक होता है. देहके बदलने पर लौकिक माता-पिता तो बदल जाते हैं किन्तु आत्माके अपरिवर्तनशील होनेसे तथा आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध सनातन होनेसे किसी भी देहमें तथा किसी भी देश-कालमें परमात्मभजन जीवात्माकेलिये अवश्यकर्तव्य होता ही है.

इतनी उच्च ब्रह्मवादानुसारिणी पुष्टिभक्तिमार्गीय भावभूमिकापर इस बातको न सोच कर गौणकल्पतया

"नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मण:,
शरीरयात्राऽपि च ते न प्रसिद्ध्येद् अकर्मण:,
यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धन:,
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्ग: समाचर:,
देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व:,
परस्परं भावयन्त: श्रेय: परमवाप्स्यथ,
इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता:,
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव स:,
अन्नाद् भवन्ति भूतानि पर्जन्याद् अन्नसम्भव:,
यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञ: कर्मसमुद्भव:,
एवं प्रवर्तितं चक्रं नानुवर्तयतीह य:,

अघायुरिन्द्रियारामो मोघं पार्थ स जीवति''

भगवद्गीतोक्त केवल शरीरयात्राके निर्वाहमात्रकी दृष्टिसे सोचा जाय तब भी कर्मचक्रके प्रवर्तनार्थ मनुष्यकेलिये देवयजन आवश्यक माना गया है. विश्वकी प्रायः सभी धर्मपरम्परा किसी न किसी रूपमें इसका स्वीकार करती ही है.

३. वंशपरम्परा :

इसी तरह **''प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः''** सदृश वेदाज्ञासे और

''कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः,
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नम् अधर्मोऽभिभवत्युत,
... ...,
पतन्ति पितरौ ह्येषां लुप्तपिण्डोदकक्रियाः,
... ...,
उत्सन्नकुलधर्माणां मनुष्याणां जनार्दन,
नरकेऽनियतं वासो भवतीत्यनुशुश्रुम''

गीतोक्त प्रकारसे पितरोंकी तृप्तिकेलिये तथा कुलपरम्पराका लोप न हो तदर्थ भी वंशपरम्पराका रक्षण करना धर्मदृष्टिसे मनुष्यका अवश्यकर्तव्य बनता है. रागतः प्राप्त होनेके कारण इसके विषयमें शास्त्राज्ञासे निरपेक्ष भी लोगोंकी प्रवृत्ति देखी जाती है अतः एतद्विषयमें विशेष कथनीय नहीं रहता है.

उपर्युक्त त्रिविध परम्पराओंमेंसे प्रकृतप्रसङ्गोपयोगी शास्त्राध्ययनाध्यापनकी प्रथम आर्षपरम्पराका विचार धर्मरक्षार्थ मुख्यतया कर्तव्य बनता है.

''तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ''
''वेदोऽखिलो धर्ममूलम् ... ...''
''धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति:''
''श्रुति: स्मृति: ... धर्ममूलमिदं स्मृतम्''
''पुराण-न्याय-मीमांसा-धर्मशास्त्राङ्गमिश्रिता:,
वेदा: स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश''

—इत्यादि वचनोंसे हमारी धर्मपरम्परामें वेदादि शास्त्रोंकी महत्ता स्वत: सिद्ध है. **''धर्मेण हीना: पशुभि: समाना:''** उक्तिमें धर्मको ही मनुष्यताकी पहचान माना गया है. पूर्वोक्त वचनोमें धर्मशास्त्रोंको 'धर्ममूल' और 'धर्मस्थान' कहा है उसका कारण भी यही है कि धर्म मनुष्यजीवनका आधार है. यहां स्मर्तव्य है कि धर्मका आधार - मूल शास्त्र होता है. अतएव, मूलसे विच्छिन्न होने पर जैसे हरा-भरा वटवृक्ष भी जीवित नहीं रह पाता है तथा नींवके कमजोर हो जाने पर मजबूत दिखलाई देता भवन भी जैसे क्षणमें ढह सकता है उसी तरह धर्ममूल शास्त्रसे जब धर्मानुगामी विच्छिन्न हो जाता है तब उसके जीवनमेंसे धर्म भी अपना स्थान छोड़ देता है. प्रसिद्ध उक्ति **''धर्मो रक्षति रक्षित:''** के पीछे भी यही रहस्य है कि धर्मकी रक्षा नहीं करने पर धर्म भी हमारी रक्षा नहीं कर पाता है. अतएव अपने अस्तित्वकी रक्षकेलिये प्रत्येक धर्मानुचारीका यह परम और चरम कर्तव्य बनता है कि वह धर्मकी रक्षा करे.

धर्मकी रक्षा दो स्तरोंमें होती है. धर्मरक्षाका प्रथम स्तर है : धर्म-शास्त्रको समझना तथा द्वितीय स्तर है : धर्माज्ञानुसार आचरण करना.

''ज्ञात्वा पाने महान् रस:'' और ''ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं

कर्म कर्तुमिहार्हसि'' कहनेवाला हमारा धर्मदर्शन बिना जाने-समझे किसी कार्यमें मनुष्यकी सम्यक् प्रवृत्ति हो सकती है इस बातको स्वीकार नहीं पाता है. अतएव महर्षि मनु कहते हैं कि बिना पढ़े-समझे मोक्षको प्राप्त करनेकी इच्छा करनेवाला दु:साहसी नारकी अधोगतिको प्राप्त करता है **''अनधीत्य द्विजो वेदान् ... मोक्षमिच्छन् व्रजत्यध:''**. यही कारण है कि हमारी चतुराश्रम व्यवस्थामें द्विजोंकेलिये प्रथम क्रममें ब्रह्म(=वेद)चर्याश्रमको रखा गया था. अपने जीवनके बहुमूल्य एक चौथाई भागका विनियोग ब्रह्मचारिको इस आश्रममें रहकर वर्तमान और भावी आश्रमजीवन के धर्मार्थ-काम-मोक्ष-भक्ति सम्बन्धि सभी पक्षोंको गुरुमुखसे शास्त्राध्ययनद्वारा जानने-समझनेमें करना होता था.

शास्त्राध्ययनको भी पुन: ब्रह्मचर्य आश्रम पर्यन्त सीमित रहनेवाला कोई कर्म मान लेनेकी भूल नहीं करनी चाहिये. ब्रह्मचर्याश्रममें तो वह एकमेव स्वधर्मके रूपमें अनुष्ठेय होता था, अन्य सभी कर्तव्य तब परधर्म होते थे. शास्त्राभ्यासका अनुष्ठान गृहस्थाश्रममें स्वाध्याययज्ञके रूपमें करनेकी आज्ञा है. अधीत वेदको भूल जाना बहुत बड़ा अपराध है!!! इसी तरह अन्य आश्रमोंमें भी वह तप, ध्यान आदिके रूपमें अनुष्ठेय होता ही था. शास्त्रनिष्ठाकी यही वह परम्परा थी कि जिसने अनादिकालसे चली आती हमारी धर्मपरम्पराकी रक्षा की थी.

ध्यातव्य है कि सेंकड़ों वर्षो पर्यन्त हमारे देवमन्दिर, तीर्थ, मठ, आश्रम आदि धर्मस्थानोंका आततायीओंद्वारा विध्वंस होता रहा फिर भी हमारी धर्मनिष्ठा अखण्डित रही. सेंकडो वर्षो पर्यन्त तलवारके जोरसे हमारे धर्मराज्य, धर्मोपदेशक, धर्मानुयायिओं को स्वधर्मका आचरण करनेसे रोका गया, प्रताडित किया गया फिर

भी हमारी धर्मनिष्ठा अचल रही. इसी तरह सेंकडो वर्षों पर्यन्त असंख्य भारतीयोंको अभारतीय धर्मपरम्परामें बलात् दीक्षित कर दिया गया तथापि हमारी सुदृढ धर्मनिष्ठा खण्डित नहीं हुई. सदियोंसे विधर्मिओंके आक्रमणोंका प्रतिकार करती आती भारतीय धर्मनिष्ठा तब खण्डित हो गई कि जब भारतीय धर्मानुगामि जनोंका मूलभूत धर्मशास्त्रोंके अध्ययनाध्यापनका सम्पर्क टूट गया.

आज हम विश्वके किसी भी जीवित धर्मकी ओर देखें तो इस तथ्यको समझते देर नहीं लगेगी कि वह जीवित इसलिये है क्योंकि उस धर्मके अनुगामिओंने अपने धर्मके मूलभूत शास्त्रको छोड़ा नहीं है.

इस्लाम धर्म क्यों जीवित है?
क्योंकि मुसलमानने कुरानको नहीं छोड़ा है.
ईसाई धर्म क्यों जीवित है?
क्योंकि ईसाईयोंने बाईबल्को नहीं छोड़ा है.
सिख्ख सम्प्रदाय क्यों जीवित है?
क्योंकि सिख्खोंने गुरुवाणीका पाठ नहीं छोड़ा है.
हमारा सनातन धर्म क्यों मर गया?
क्योंकि सनातनियोंने वेदादि शास्त्रोंको छोड़ दिया.

तैत्तिरीयोपनिषत्के "**आचार्यः पूर्वरूपः. अन्तेवास्युत्तररूपः. विद्या सन्धिः. प्रवचनं सन्धानम्**" वचनानुसार शास्त्रीय विद्याके दो अनिवार्य अङ्ग : १. आचार्य और २. अन्तेवासी-शिष्य होते हैं. विद्या इन दोनोंको जोड़नेवाली सन्धि-कड़ी होती है. इन दोनोंमेंसे किसी एकके भी न रहनेपर विद्याकी उक्त परम्पराका अन्त हो जाता है यह निश्चित बात है. विधर्मिओंके शासनमें विद्याके आदान-प्रदानकी

परम्पराको ग्रहण लग गया. गुरुकुल, पाठशाला, आश्रम सब खण्डहर बन गये. ग्रन्थागार नष्ट हुवे. जब पढ़ने-पढ़ानेवाले ही न रह जायें तब हमारी धर्मविद्या किसके सहार अपनेको जीवित रख सकती थी! शास्त्रीय परम्परामें उस समय एक ऐसा शून्यावकाश आया कि स्वल्प कालमें ही हमारा समूचा इतिहास बदल गया.

इस बीच भक्त्यादि सम्प्रदायके अनेक आचार्योंने दैवी प्रेरणाको पाकर धर्महीन समाजको समय-समय पर सन्मार्गकी दिशा बतलाकर असङ्ख्य जीवोंकेलिये आत्मकल्याणका मार्ग प्रशस्त किया. सम्प्रदायप्रवर्तक आचार्योंकी इस परम्परामें अन्तिम सम्प्रदायाचार्य कहे जा सकनेवाले महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंने अपने समयकी दुरवस्थाका वर्णन पर्याप्त विस्तारसे श्रीकृष्णाश्रयस्तोत्र, शिक्षापद्यानि, सर्वनिर्णयनिबन्धान्तर्गत साधनप्रकरण आदि स्थानोमें किया ही है. आत्मोद्धारके शास्त्रीय किसी भी उपायोंकी तुलनामें न्यूनतम योग्यताकी अपेक्षा रखनेवाले भक्तिमार्गकी भी उद्धारकता आपको कलिकालमें दुःसाध्य लगती है. "**कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुःसाध्या इति मे मतिः**". विकट कालको देखते हुवे, उपर्युक्त कारणवश, जैसी दुर्गति वैदिक-वर्णाश्रम-सनातनधर्मकी शास्त्रीय परम्पराकी हुई वैसी दुर्गति भगवदाज्ञासे स्वयंके द्वारा प्रवर्तित पुष्टिभक्तिसम्प्रदायकी भी हो न जाय उसकी चिन्ता महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंको भी हुई थी. इस सम्बन्धमें "चौरासी वैष्णवन्की वार्ता"में आचार्यजीके शिष्य श्रीदामोदरदासजीकी वार्ताका यह प्रसङ्ग मननीय है :

> श्रीआचार्यजीने श्रीठाकुरजीकी पास तीन बेर यह मांग्यो जो मेरे आगे दामोदरदासकी देह न छूटे. ताको हेतु यह है जो श्रीआचार्यजी महाप्रभु आप सन्यास ग्रहण करिवेको विचार मनमें करे. ता समे श्रीगोपीनाथजी

तथा श्रीगुसांईजी दोऊ भाई बालक हते.

तातें मारगकी वार्ता श्रीआचार्यजी महाप्रभु दामोदरदासकों समझाईके थापी. दामोदरदाससों कछु गोप्य न राख्यो. और श्रीआचार्यजी श्रीभागवत अहर्निस देखते, कथा कहते और दामोदरदास सुनते. और मारगको सब सिद्धान्त, भगवल्लीला-रहस्य श्रीआचार्यजीने दामोदरदासके हृदय विषे स्थाप्यो.

दोमोदरदासके हृदय विषे मारग स्थापि कितेक दिन पाछे श्रीआचार्यजी आप सन्यास ग्रहण किये. तब कितेक दिन पाछे श्रीगुसांईजीने श्रीअक्काजीसों पूछी जो श्रीआचार्यजीने मारग प्रकट कियो है सो उत्सवके कहा प्रकार है? हम तो कछु जानत नाहीं. तब अक्काजीने कह्यो जो मार्ग तथा उत्सवको प्रकार सब दामोदरदाससों कह्यो है सो उनसों तुम पूछो. तुमसों दामोदरदास सब कहेंगे. तब श्रीगुसांईजी दामोदरदासके घर पधारे. तब दामोदरदासने बहुत सन्मान करि भक्तिभावसों घरमें पधराये. ता पाछें श्रीगुसांईजीने उत्सवके प्रकार पूछे सो सब दामोदरदासने कहे.

भगवदाज्ञाको पाकर भगवद्रूपसेवार्थ प्रकटित दैवी सृष्टिको निजफलकी प्राप्ति करानेके पावन उद्देश्यसे जिस पुष्टिभक्तिसम्प्रदायका प्रवर्तन आचार्यचरणोंने किया था उस परम्पराके स्वयंकी अनुपस्थितिमें विलुप्त होनेके कारण यदि शेष भावी दैवी सृष्टि निजफलकी प्राप्तिसे वञ्चित रह जाती है तो प्रभुप्रदत्त उत्तरदायित्वका निर्वाह आप कर न सके ऐसा माना जायेगा. ऐसा न हो और स्वप्रवर्तित

परम्परा अक्षुण्णरूपसे आगे बढ़ती रहे तदर्थ आपने उस परम्पराको अनेकों ग्रन्थोंमें, दामोदरदास सदृश शिष्योंमें और निज वंशमें सुस्थापित किया. कल्पना मात्रसे आश्चर्य होता है और हमारी अयोग्यता तथा दुर्भाग्य पर शोक भी कि जिस पुष्टिभक्तिसम्प्रदायकी परम्पराका आज हम विलोपन करने बैठे हैं उसी परम्पराको दीर्घजीवी बनानेके उद्देश्यसे महाप्रभुने पुन: स्वधाम पधारनेकी दो-दो भगवदाज्ञाओंका पालन नहीं किया था (दृष्टव्य अन्त:करणप्रबोध). इतनी सावधानी रखेने पीछे हेतु यही रहा होगा कि कभी उपर्युक्त तीनमेंसे किसी भी पक्षमें क्षति हो तो अन्य पक्षके द्वारा उस क्षतिकी पूर्ति की जा सके. अर्थात् शिष्यवर्गमें कभी शिथिलता आ जाय तो आचार्यवंश उसे जागृत करे; कभी आचार्यवंशमें शिथिलता आ जाय तो शिष्यवर्ग उनको जागृत करे और दैव दुर्विपाकसे कभी दोनों ही शिथिल हो जायें तो नि:साधन दैवी जीवका सहार बननेकेलिये आचर्यचरणोंके ग्रन्थ तो रहें ही.

किन्तु, साक्षात् भगवदाज्ञासे प्रवर्तित सम्प्रदाय होने पर भी, अपार ग्रन्थराशि विद्यमान होने पर भी, असङ्ख्य शिष्यवर्ग होने पर भी और समृद्ध आचार्यवंशके विद्यमान् होने पर भी सम्प्रदायकी स्थिति आज अत्यधिक शोचनीय बन गई है.

जैसा कि पूर्वमें हम देख चुके हैं, धर्मपरम्पराका सच्चा आधार उसके शास्त्र ही होते हैं जो कि गुरुके द्वारा अध्ययनाध्यापनकी परम्परासे शिष्यमें स्थापित होते हैं. श्रीगोपीनाथप्रभुचरण अतएव 'साधनदीपिका' ग्रन्थमें लिखते हैं :

> **''माहात्म्यज्ञापनायैव श्रवणं गुण-कर्मणाम्,**
> **शास्त्राणाम् उपयोगोऽत्र तत्राकांक्षा गुरोर्भवेत्''**

सच पूछा जाय तो भारतीय धर्मपरम्परामें गुरुका कार्य शास्त्राध्यापन द्वारा शिष्यको ज्ञान प्रदान करनेसे अधिक कभी माना ही नहीं गया था. "**अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया, चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः**" प्रसिद्ध मङ्गलाचरणका श्लोक भी ज्ञानप्रदाता गुरुको ही प्रणामयोग्य स्वीकारता है.

आज स्थिति किन्तु सर्वथा उलटी हो चुकी है. आधुनिक गुरु सम्प्रदायके गुरुकी हैसियतमें परम्परासे प्राप्त होते दीक्षादान, गुरुभेंट, चरणस्पर्श आदि सभी अधिकार और सुविधाओं का तो भोग आग्रहपूर्वक करता है और करते रहना भी चाहता है. इसी तरह पूर्वाचार्यों, सम्प्रदाय और शिष्यगण के प्रति अपनी कृतघ्नताका प्रदर्शन करते हुवे उसकेलिये परधर्मवत् होनेसे अकर्तव्यरूप और स्वकर्तव्यका समुचित निर्वाह न करनेकी स्थितिमें तो सर्वथा अकर्तव्यरूप ज्योतिष, आरोग्य, मानवसेवा, आधुनिकशिक्षा, राजनीति, पर्यावरणरक्षा, पशुरक्षा, भोजनालय, स्वधर्मरूप भक्तिसाधनाका व्यावसायिक प्रदर्शन आदि सभी कार्योंको तो सोत्साह करता है, यदि शपथपूर्वक नहीं ही करता है तो स्वकर्तव्यका पालन : स्वीय शास्त्रोंका अध्ययन और शिष्योंको उनका अध्यापन. आधुनिक शिष्योंकी स्थिति भी कोई अच्छी नही है. किन्तु, शिष्य तो होता ही अनुगामी है अतः उसको अधिक दोष दिया नहीं जा सकता है. पुरोगामी होनेसे दोषका भार गुरुपर ही आता है.

सम्प्रदायकी स्थिति इतनी शोचनीय है कि यदि किसी व्यक्तिको षोडशग्रन्थके अतिरिक्त निबन्ध-भाष्यादि आचार्यचरणके ग्रन्थोंका अध्ययन करनेकी इच्छा हो तो उसका अध्यापन कर पानेका सामर्थ्य रखनेवाले आचार्योंकी गणनाकेलिये एक हाथकी उंगलियां भी बहुत अधिक

लगती हैं. पुन: आचार्यचरणोंकी उपर्युक्त चिन्ताका अनायास स्मरण हो आता है.

दैवीजीवोद्धारार्थ सम्प्रदाय=परम्पराकी रक्षा एवं अभिवृद्धि होती रहे तदर्थ मार्गप्रवर्तक आचार्यत्रयी महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण, श्रीगोपीनाथप्रभुचरण एवं श्रीविट्ठलनाथप्रभुचरण एवं तदनुवर्ति श्रीगोकुलनाथप्रभुचरण, श्रीरघुनाथप्रभुचरण, श्रीकल्याणरायजी, श्रीहरिराय-चरण, श्रीपुरुषोत्तमचरण, श्रीगोपेश्वरजी, श्रीवल्लभजी, श्रीलालूभट्टजी, श्रीजयगोपलभट्टजी, श्रीगट्टुलालाजी आदि ऋषिस्थानी स्वमार्गीय पूर्वपुरुषोंद्वारा प्राप्त हुई साम्प्रदायिक शास्त्रकी सुसमृद्ध धरोहरको धारण करके उसका अध्यापन भावी पीढीको किये बिना वर्तमान आचार्यगण उन पूर्वपुरुषोंके ऋणसे कथमपि मुक्त नहीं हो सकते हैं यह हम सभीको स्वीकारना होगा. समानन्यायसे पुष्टिभक्तिसम्प्रदायकी परम्परामें दीक्षित शिष्यगण भी सम्प्रदायके पूर्वाचार्योंके प्रति ऋणानुबद्ध माने ही जायेंगे. आज इस परम्पराकी रक्षा आचार्यवंश और / अथवा शिष्यगण करनेमें यदि विफल रहता है तो वह भावी आचार्यवंश और शिष्यगण को मार्गायित करके भी भटकता छोड़ देनेके अक्षम्य पापके भागी होंगे. साथ-ही-साथ इस परम्परामें दीक्षित जो आचार्य एवं शिष्य वर्ग पुष्टिभक्तिसम्प्रदायको आत्मकल्याककारी जानकर भी अपनेही लिये कल्याणकारी साम्प्रदायिक शास्त्रग्रन्थोंका अध्ययन नहीं करते हैं तो उनको नितान्त मूर्ख आत्मघातिके अतिरिक्त ओर क्या कहेंगे?

उपर्युक्त समग्र निरूपणका तथ्य और कथ्य केवल यही है कि पुष्टिभक्तिसम्प्रदायमें आत्मकल्याणकारिताका भान रखनेवाले सम्प्रदायमें दीक्षित प्रत्येक आचार्यवंशज एवं शिष्य का यह कर्तव्य बनता है कि वह अन्य सर्व कार्योको अप्रस्तुत / निरर्थक / परधर्म

मानकर, उनको छोड़कर महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरणोंकी "**शास्त्रम् अवगत्य मनोवाग्देहै: कृष्ण: सेव्य:**" इस अनुल्लङ्घ्य आचार्याज्ञाका अनुपालन करनेमें तत्काल तत्पर बने. यह एक ऐसा कार्य है कि जिससे सम्प्रदायरक्षा, आत्मकल्याण, पूर्वाचार्योके ऋणका अपाकरण और भावीपीढीके उत्तराधिकारकी सुरक्षा आदि सभी कार्य युगपत् सिद्ध हो जायेंगे.

प्रस्तुत ग्रन्थके विषयमें :

७-८ वर्ष पूर्व सम्प्रदायहितेच्छु कुछ एक सुज्ञ आचार्य एवं अनुयायी गणोंके बीच सम्प्रदायकी उपर्युक्त गम्भीर परिस्थितिको लक्ष्य बनाकर सुदीर्घ चर्चा हुई थी. चर्चाका निष्कर्ष यही रहा की शास्त्रके अध्ययनाध्यापनके न रहने पर सम्प्रदायका लोप होना अवश्यम्भावी है अत: येन-केन-प्रकारेण साम्प्रदायिक शास्त्रके अध्ययनाध्यापनकी परम्पराकी रक्षा की जाय. समस्या यहां पुन: यह खड़ी हुई कि सम्प्रदायके आधारभूत प्राय: सभी शास्त्र संस्कृत भाषामें है. सभी का यदि भाषान्तरमें अनुवाद कर भी दिया जाय तब भी जिस भाषामें जो शास्त्र हो उस शास्त्रका उसी भाषामें अध्ययन करनेसे जैसा तत्त्वबोध होता है वैसा तत्त्वबोध भाषान्तरसे किये गये अध्ययनसे कभी भी नहीं हो सकता है यह निर्विवाद बात है. वैसे भी यदि देखा जाय तो सम्प्रदायके सुबोधिनी, भाष्य, निबन्ध आदि प्रौढ ग्रन्थोंसे लेकर षोडशग्रन्थादि प्रकरणग्रन्थों पर्यन्त प्राय: सभी ग्रन्थोंका अनेक भाषओंमें अनुवाद हमारे पास उपलब्ध है ही. जिनके पास शास्त्रीय पद्धतिसे ग्रन्थोंका अध्ययन करनेकेलिये समय-सामर्थ्य नहीं है वे अनुवादके माध्यमसे तो अपनी जिज्ञासाको शान्त कर ही सकते हैं. जिन लोगोंको किन्तु अपने ज्ञानको अनुवादाश्रित मात्र नहीं रख छोड़कर शास्त्रीय पद्धतिसे साम्प्रदायिक ग्रन्थोंका अध्ययन करनेकी इच्छा हो उनकेलिये

ग्रन्थोंके अध्ययनके साथ-साथ सर्वशास्त्रोपकारक संस्कृत भाषाका भी ज्ञान आनुषङ्गिकतया हो जाय ऐसा कोई साहित्य हमारे पास होना ही चाहिये इस उद्देश्यसे 'पुष्टिविधानम्'का व्याकरण-परिचय सहित प्रकाशन करनेका सङ्कल्प किया गया.

महत् समय, श्रम और सावधानी से साध्य समग्र 'पुष्टिविधानम्'का 'व्याकरण' करनेका प्राथमिक कार्य श्रीधर्मेन्द्रसिंह झाला और उनके सहयोगि बनकर श्रीरसिकभाई शाहने बड़ी कुशलतासे पूर्ण किया. उसके प्रामाणिक संशोधनका शेष कार्य व्याकरणाचार्य गोस्वामी चि. श्रीपङ्कजकुमारजी एवं उनके अनुज गोस्वामी चि. श्रीभूषणकुमारजी (माण्डवी-गोकुल) ने सहर्ष कर दिया. एतदर्थ इन चारोंको जितने धन्यवाद दिये जायें वो कम हैं.

जिनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से सम्प्रदायको इस प्रकारका अमूल्य ग्रन्थ इदं प्रथमतया प्राप्त हुवा है और जिनका सतत मार्गदर्शन इस कार्यको पूर्ण करनेमें प्राप्त होता रहा है उन आदरणीय गोस्वामी श्रीश्यामदादा (किशनगढ-पार्ला) के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करते हैं.

इस ग्रन्थके माध्यमसे पाठक स्वयं भी संस्कृतभाषाका अध्ययन कर सके तदर्थ गोस्वामी चि. श्रीपङ्कजकुमारजीने बहूपयोगि विस्तृत भूमिका भी लिखदी. इस ग्रन्थके पाठकोंसे मेरा साग्रह अनुरोध है कि ग्रन्थका अवलोकन करनेसे पूर्व वे ग्रन्थकी भूमिकाको अत्यन्त सावधानीसे दो-तीन बार अवश्य पढें. संक्षेप करनेमें दुरूहता तो आती ही है. अत: जिज्ञासु अध्येताओंको इस ग्रन्थके साथ संस्कृत शब्दकोष, रूपचन्द्रिका, सरल विवेचन सहित लघुसिद्धान्तकौमुदी आदि ग्रन्थोंको भी अपने पास रखना चाहिये.

प्रस्तुत ग्रन्थमें अधोनिर्दिष्ट नवविध प्रकारसे श्लोकोंका व्याकरण किया गया है. शब्दोंके उपर *सुपरस्क्रिप्ट* में दिये गये साङ्केतिक शब्दोंको अच्छी तरहसे समझकर याद कर लेना चाहिये :

१. श्लोक : मूलमात्र
२. सन्धिविच्छेद : सन्धिके प्रकार और उनके उदाहरण.
३. समासविग्रह : समासके प्रकार और उनके उदाहरण.
४. शब्दपरिचय : नाम (ना), आख्यात (आ), उपसर्ग (उ) तथा निपात (नि). उनके प्रकार और उदाहरण.
५. वृत्तिपरिचय : कृदन्त (कृद्), तद्धित् (तद्धि), सनादि, एकशेष, समास (स). उनके प्रकार और उदाहरण.
७. शब्दरूपपरिचय : अजन्त / हलन्त (अ/हल), पुंलिंग (पुं), स्त्रीलिंग (स्त्री), नपुंसकलिंग (नपुं), विभक्ति (प्र, द्वि आदि), वचन (ए-द्वि-बहु). उनके प्रकार और उदाहरण.
८. धातुरूपपरिचय : गण, काल, पुरुष, वचन. उनके प्रकार और उदाहरण.
९. अन्वय :

श्लोकमें एकाधिक बार आते एकसे शब्दोंका परिचय शब्दपरिचय तथा शब्दरूपपरिचय एक ही बार दिया गया है. कहीं पुनरावर्तित शब्दको लिखमात्र दिया है. यथा "मुहर्मुहुः" (मङ्गलाचरण १).

सन्धिविच्छेदमें लम्बे पदोंको स्थानाभाववश कहीं-कहीं पूरा नहीं लिखा गया है. यथा 'श्रीमन्मन्मथमोहनम्' को सन्धिविच्छेदमें इस प्रकार लिखा गया है : "श्रीमत् + मन्मथ = श्रीमन्मन्मथ" (मङ्गलाचरण ६), इसी तरह 'गोविन्दरायाभिधम्' को "राय + अभिधम् = रायाभिधम्" (तत्रैव ७) लिखा गया है.

कुछ अपवादोंको छोड़कर प्रत्येक पदका समासविग्रह '- ' ऐसे चिह्नोपन्यास पूर्वक पृथक्-पृथक् *पेरेग्राफ़*में किया गया है. जिन पदोंका समासविग्रह अत्यन्त विस्तृत है वहां पंक्तिओंको विभाजित कर दिया गया है. एसी स्थितिमें उल्लिखित चिह्न नहीं दिया गया है.

अन्तमें, भक्त्याचारोपदेशार्थ नानावाक्यनिरूपक वाक्पति महाप्रभु श्रीवल्लभाचार्यचरण अपनी पुष्टिसृष्टिको स्वकीय शास्त्रके अध्ययन-अध्यापनकेलिये ऐसी अभिरुचि और सामर्थ्य प्रदान करे कि तदुक्त दुर्बोध सर्व सुबोध बन जाये.

श्रीरामजयन्ती — गोस्वामी शरद्
वि.सं. २०६० — मांडवी-कच्छ

॥ श्रीहरि: ॥

१. सन्धिपरिचय

क. स्वर(अच्)सन्धि

१. इको यणचि (यण्)

इ-ई के स्थान पर य्, उ-ऊ के स्थान पर व्, ऋ-ॠ के स्थान पर र् तथा लृ के स्थान पर ल् हो जाता है, यदि बादमें कोई स्वर हो तो. परन्तु वह स्वर सवर्ण (अर्थात् सदृश) यथा इ+इ / उ+उ) नहीं हो.

उदा : हि + अज्ञाः = ह्यज्ञाः (पु.प्र.म.२५)
तु + आवेशात् = त्वावेशात् (प.पद्य.३)

२. एचोयवायावः (अय्, अव्, आय, आव् आदेश)

ए के स्थान पर अय्, ओ के स्थान पर अव्, ऐ के स्थान पर आय् तथा औ के स्थान पर आव् हो जाता है, यदि बादमें कोई स्वर हो तो. परन्तु पदान्त ए/ओ के बाद अ होगा तो वहां यह नियम नहीं लगेगा.

उदा : भूतसर्गौ + इत्युक्तेः = भूतसर्गावित्युक्तेः (पु.प्र.म.३)

३. आद्गुणः (गुण)

(क) अ अथवा आ के बाद इ अथवा ई हो तो दोनोंका ए होगा.

(ख) अ अथवा आ के बाद उ अथवा ऊ हो तो दोनोंके स्थान पर ओ होगा.

(ग) अ अथवा आ के बाद ऋ अथवा ॠ हो तो दोनोंके स्थान पर अर् होगा.

(घ) अ अथवा आ के बाद लृ होगा तो दोनोंके स्थान पर अल् हो जायगा.

उदा : महा + उदारचरित्रवान् = महोदारचरित्रवान् (सर्वो.११)
अष्ट + उत्तरशतम् = अष्टोत्तरशतम् (सर्वो.४)

४. **वृद्धिरेचि (वृद्धि)**

(क) अ अथवा आ के बाद ए/ऐ हो तो दोनोंके स्थान पर ऐ हो जाता है.

(ख) अ अथवा आ के बाद ओ अथवा औ हो तो दोनोंके स्थान पर 'औ' हो जाता है.

उदा : तस्य + एव = तस्यैव (वल्ल.१)
अघ + ओघ = अघौघ (स्फुर.७).

५. एङःपदान्तादति-पूर्वरूप (पू.रू.)

पद (सुबन्त - तिङन्त) के अन्तमें ए अथवा ओ के बाद अ हो तो उसको पूर्वरूप (अर्थात् ए/ओ जैसा रूप) हो जाता है. (अ हटा है उसके सूचनार्थ 'ऽ' (अवग्रह चिह्न) लगा दिया जाता है).

उदा : सर्वो + अपि = सर्वोऽपि (वल्लभा.श्लो.१)
अहङ्कारे + अथवा = अहङ्कारेऽथवा (पु.प्र.म.श्लो.१८)

६. अकः सवर्णे दीर्घः (दीर्घ)

अ इ उ ऋ के बाद कोई सवर्ण (सदृश) अक्षर हो तो दोनोंके स्थान पर उसी वर्णका दीर्घ अक्षर हो जाता है.

(क) अ / आ + अ / आ = आ
(ख) इ / ई + इ / ई = ई
(ग) उ / ऊ + उ / उ = ऊ
(घ) ऋ + ऋ = ॠ

उदा : उपासना + आदि = उपासनादि (सर्वो.श्लो.२४)
मार्ग + अति = मार्गाति (सर्वो.श्लो.२४)

ख. हल् सन्धि (व्यञ्जन सन्धि)

७. स्तोः श्चुना श्चुः (श्चु)

स / तवर्ग (त थ द ध न) से पहले या बादमें श् अथवा चवर्ग (च छ ज झ ञ) कोई भी हो तो स् के स्थान पर श् और तवर्गके स्थान पर चवर्ग होगा. (श् के बाद तवर्ग को टवर्ग नही होगा)

इस सन्धिका स्वरूप इस प्रकार होगा-
स / तु (त,थ,द,ध,न) + श / चु(च,छ,ज,झ,ञ)
अथवा
श / चु + स / तु = श / चु(च,छ,ज,झ,ञ).

उदा : दक्षस् + च = दक्षश्च (सर्वो.११)
उद् + झित = उज्झित = उज्झित (सर्वो.२१)

८. ष्टुना ष्टुः (ष्टु)

स या तवर्ग से पहले अथवा बादमें ष् या टवर्ग (ट,ठ,ड,ढ,ण) कोई भी हो तो स् के स्थान पर ष् और तवर्गके स्थान पर टवर्ग (ट,ठ,ड,ढ,ण) हो जायगा. (तवर्ग के बाद ष हो तो तवर्ग को टवर्ग नहीं होगा)

इस सन्धिका स्वरूप इस प्रकार होगा

स / तवर्ग + ष / टवर्ग अथवा ष / टवर्ग + स / तवर्ग = ष / टवर्ग

उदा : विद् + ठल = विट्ठल

(नि.१५ से द् को त् चर्त्व होनेके बाद वित् +ठल्- इस स्थितिमें ष्टुत्व होकर 'विट्ठल'रूप बन जायगा).

९. झलां जशोऽन्ते (जश्त्व)

झल् वर्ण (वर्गोंके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्ण तथा श् स् ष् ह्) यदि पद (तिङन्त या सुबन्त) के अन्तमें हो तो उनके स्थान पर जश् वर्ण (ज् ब् ग् ड् द्) स्थानसाम्यसे हो जायेगें.

स्थानी (झल् प्रत्यहारबोध्य वर्ण)	साम्य (उच्चारण स्थान)	आदेश (जश् प्रत्यहारबोध्य वर्ण)
च् छ् ज् झ् श्	तालु	ज्
प् फ् ब् भ्	ओष्ठ	ब्
क् ख् ग् घ्	कण्ठ	ग्
ट् ठ् ड् ढ् ष्	मूर्धा	ड्
त् थ् द् ध् स्	दन्त	द्

उदा : चेत् + अन्त्यौ = चेदन्त्यौ (पु.प्र.म. ७).

प्रमाणभेदात् + भिन्नः = प्रमाणभेदाद्भिन्नः (पु.प्र.म. ७)

१०. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा (अनुना)

पदके अन्तमें यर् (ह् के अतिरिक्त सभी व्यञ्जन) के बाद अनुनासिक (वर्गोंके पञ्चम अक्षर - ञ् म् ङ् ण् न्) हों तो यर्के स्थान पर अपने वर्गका पञ्चम अक्षर हो जायगा.

उदा : तत् + निमन्त्रण = तन्निमन्त्रण (नाम. १२)
शश्वत् + महामखकरः = शश्वन्महामखकरः (नाम. १६)

११. तोर्लि (परसवर्ण)

तवर्गके बाद ल् हो तो तवर्गके स्थान पर भी ल् हो जाता है. अर्थात् (क) त् / द् + ल् = ल्ल. (ख) न् + ल = ल्लँ.

उदा : तत् + लीला = तल्लीला (सर्वो.२८)

१२. उदः स्थास्तम्भोः पूर्वस्य

उद् के बाद स्था या स्तम्भ् धातु हों तो उसे पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् स्था और स्तम्भ् के स् को स्थान पर थ् हो जायेगा. (बादमें थ् का नियम.१३ से लोप हो जायगा).

उदा : नियम.१३ में देखें.

१३. झरो झरि सवर्णे

व्यञ्जनके बाद झर् (वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ वर्ण और श ष स) का विकल्पसे लोप होता है यदि बादमें सवर्ण (वैसा ही) झर् हो तो.

उदा : 'देशकालोत्था'में उत्थःशब्द - उद् + स्थः इस स्थितिमें द्

को नि.१५ से त्, स्थ के स् को नि.१२ से थ्, पूर्व थ् का नियम.१३ से लोप होकर 'उत्थः' रूप बनेगा इसी प्रकार उत्थापनं (सा.दी.१२०) में भी यही प्रक्रिया समझनी चाहिये. प्रस्तुत ग्रन्थमें अत्यल्प उदाहरण होनेके कारण इस सन्धिको नहीं दिखाया गया है. जहां भी उद् पूर्वक स्था या स्तम्भ दिखाई पड़े वहां प्रस्तुत सन्धि है यह स्वयं समझ लेना चाहिये.

१४. झयो होऽन्यतरस्याम्

झय् (वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ वर्णके पश्चात् 'ह' हो तो उसे विकल्पसे पूर्वसवर्ण होता है अर्थात् पूर्व अक्षरके वर्गका चतुर्थ अक्षर हो जाता है.

उदा : तद् + हि = तद्धि (सि.मु.३).

१५. खरि च

झलों (वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ और श स ष ह) के स्थानपर चर् (उसी वर्गका प्रथम अक्षर) हो जाते हैं यदि बादमें खर् (वर्गके प्रथम द्वितीयवर्ण तथा स श ष) हों.

उदा : नि.१० में.

१६. शश्छोऽटि (छः)

पदान्त झय् (वर्गके प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा चतुर्थवर्ग) के बाद 'श्' हो तो उसके स्थानपर 'छ्' हो जाता है, यदि उस 'श्' के बाद अट् (स्वर तथा ह् य् व् र्) हों. 'श्' को 'छ्' होने पर पूर्ववर्ती द् के स्थान पर नियम.७ से 'ज्'; और 'ज्' के स्थान पर नियम.१५ से 'च्' हो जाता है. पूर्ववर्ती यदि

'त्' हो तो नियम.७ से उसके स्थानपर 'च्' हो जाता है. यह नियम विकल्पसे होता है.

उदा : तस्माद् + श्रीकृष्णमार्गस्थः = तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थः (सि.मु.१५)
तस्माद् + श्रीवल्लभाख्यः = तस्माच्छ्रीवल्लभाख्यः. (वल्ल.३).
(तस्माद् + श्री..इस स्थितिमें नियम.१६ से श् के स्थानपर छ, तत्पश्चात् नि.७ से द् के स्थान पर ज्, तत्पश्चात् नि.१५ से ज् के स्थानपर त् होने पर 'तस्मात्छ्रीवल्लभाख्यः' रूप सिद्ध होगा.

१७. नश्छव्यप्रशान् (नश्छ)

पदके अन्तिम 'न्' के स्थान पर 'रु'(:,स) होता है, यदि छव् (छ,ठ,थ,च,ट,त) बादमें हो और छव् के बाद अम् (स्वर, ह,य,व,र,ल तथा वर्गके पञ्चम वर्ण) हों तो. परन्तु 'प्रशान्' शब्दमें यह नियम नही लगेगा. न् के स्थान पर रु होने पर उससे पूर्वके अक्षरमें अनुस्वार या चन्द्रबिन्दु लग जायेंगे.

इस नियमका रूप होगा -
न् + छव् = (अनुस्वार)स + छव् या (चन्द्रबिन्दु)स् + छव्.

उदा - रघूणान् + तथा = रघूणांस्तथा (मंगला).
प्रभून् + च = प्रभूंश्च (मंगला).
(रघूणाम् + तथा (मंगला) इस स्थितिमें मोऽनुस्वार से अनुस्वार, तत्पश्चात् नि.२८ से परसवर्ण, तत्पश्चात् न् के स्थान पर नि.१७ से रु, तत्पश्चात् स के पूर्व अनुनासिक या अनुस्वार होकर रघूणां+तथा या रघूणां रु तथा होने पर नि.१९ से रु के स्थान पर विसर्ग, तत्पश्चात् नि.२० से विसर्गोका सत्व होकर रघूणांस्तथा या रघूणाँस्तथा ये दो रूप बनेंगे.)

१८. ससजुषो रुः (रेफ)

पदके अन्तिम स् के स्थान पर रु (र्) होता है. सजुष् शब्दके 'ष्' के स्थान पर भी 'रु' होता है.

(टि. - इस रु को साधारणतया नियम.१९ से विसर्ग होकर :(विसर्ग) ही शेष रहता है. जैसे - राम + स् = रामः, कृष्ण + स् = कृष्णः है. इस 'रु' को ही नियम.२२,२३ तथा २४ से उ अथवा य् होता है. जहां उ अथवा य् नहीं होगा वहां 'र्' शेष रहता है अतः अ - आ के अतिरिक्त अन्य स्वरोंके बाद 'स्' या विसर्ग का 'र्' शेष रहता है यदि बादमें कोई स्वर या व्यंजन (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम) हों. इस सन्धिको प्रस्तुत ग्रन्थमें 'रेफ' लिखकर दिखाया गया है.

उदा : गुणैः + अन्यः = गुणैरन्यः (स्फुर.४)
प्रेम्णोपदेशैः + अपि = प्रेम्णोपदेशैरपि (स्फुर.५)
कृपासिन्धुः + भक्तवश्यः = कृपासिन्धुर्भक्तवश्यः (नाम.३)
रतिः + मुररिपौ = रतिर्मुररिपौ (यमु.७)

१९. खरवसानयोर्विसर्जनीयः

र् के स्थान पर विसर्ग होता है यदि बादमें खर् (वर्ग के प्रथम द्वितीय वर्ग तथा श,ष,स) हो या कुछ भी न हो.

उदा.नि.११ में.

२०. विसर्जनीयस्य सः (स)

विसर्गके बाद खर् हो तो विसर्ग को स् हो जाता है. (श् या चवर्ग बादमें हो तो नियम.१ से श्चुत्व भी हो जायगा).

उदा : सत्यप्रतिज्ञः + त्रिगुणातीतः = सत्यप्रतिज्ञस्त्रिगुणातीतः(सर्वो.३१)
यमादयः + तु = यमादयस्तु (बाल.९)
दक्षः + च = दक्षश्च (सर्वो.३१) (यहां श्चुत्व भी है).

२१. नमस्पुरसोर्गत्योः (स)

गतिसंज्ञक नमस् और पुरस् के विसर्गको 'स्' होता है यदि बादमें कवर्ग या पवर्ग हो (क्रियाके पहले यदि नमस् - पुरस् होगें तो वे गतिसंज्ञक कहलायेंगे.)

उदा : नमः + कृत्य = नमस्कृत्य (ज.भे.१)

२२. अतो रोरप्लुतादप्लुते (उ)

ह्रस्व अ के बाद रु (स् के र् या :) के स्थान पर 'ऽ' हो जाता है यदि बादमें ह्रस्व 'अ' हो. (इस 'उ' को पूर्ववर्ती अ के साथ सन्धिनियम.३ से गुण करके 'ओ' हो जाता है और बादके 'अ'को सन्धिनियम.५ से पूर्वरूप सन्धि होती है.

इस सन्धिका स्वरूप इस प्रकार होगा
अः + अ = ओऽ.

उदा : निगूढहृदयः + अनन्य = निगूढहृदयोऽनन्य (सर्वो.२३)

*(वास्तवमें इस सूत्र द्वारा नियम.१८ द्वारा हुए रु (र्) के ही स्थान पर 'उ'होता है परन्तु मात्र सरलतासे समझनेकी दृष्टिसे ही यहां :(विसर्ग) के स्थान पर 'उ' होता है एसा कहा गया है. इसी हेतुसे इस ग्रन्थमें भी इस सन्धिका विग्रहप्रदर्शन विसर्ग दिखाकर किया गया है).

२३. हशि च (उ)

ह्रस्व 'अ'के बाद रु (स् के र् या :) के स्थान पर 'उ' हो जाता है यदि बादमें हश् (वर्ग के तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, ह तथा य,व,र,ल हो. (यहां भी विसर्गोको सरलतासे समझनेकी दृष्टिसे ही रखा गया है अन्यथा सूत्रसे होता 'उ' केवल रु (र्) के स्थान पर ही होता है.) यहां सूत्र द्वारा 'उ' करनेके अनन्तर सन्धि नियम.३ से अ + उ = ओ गुण होकर 'ओ' होगा.

उदा - सुखसेव्यः + दुराराध्यः = सुखसेव्यो दुराराध्यः (सर्वो.१५)

२४. भो भगो अघो पूर्वस्य योऽशि

भोः, भगोः, अघोः शब्द और अ / आ के बाद रु (स् का र् अथवा :) (यहां पर भी विसर्गका उल्लेख मात्र सरलतासे समझनेकी दृष्टिसे ही है अन्यत्र भी ग्रन्थमें यही पद्धति रखी गयी है) के स्थान पर 'य्' होता है यदि बादमें अश् (स्वर, ह,य,व,र,ल तथा वर्गकि तृतीय, चतुर्थ तथा पञ्चम वर्ण हों).

उदा : निखिलबुधजनाः + गोकुलेशं = निखिलबुधजना गोकुलेशं (वल्ल.८) (यहां नियम.२४ से विसर्गों (रु) को य् होने पर नि.२५से उनका लोप होनेमें यह उदाहरण सिद्ध होता है).

२५. हलि सर्वेषाम्

भोः, भगोः, अघोः और अ / आ के बाद 'य्' का अवश्य लोप हो जाता है यदि बादमें व्यञ्जन हों.

उदा. नि.२६ में देखें

२६. लोपः शाकल्यस्य

अ / आ पहले हो तो पदान्त य् और व् का लोप विकल्पसे होता है. (नि.२५ से हुए य् के बाद व्यञ्जन होगा तो नियम.२५ से य् का लोप अवश्य हो जाएगा परन्तु य् के बाद कोई स्वर आदि होगा तो नियम.२६ से य् का लोप ऐच्छिक होगा. य् का लोप होने पर कोई दीर्घ, गुण, वृद्धि आदि सन्धि नहीं होगी.

उदा - नियामकः + इति = नियामक इति (सि.मु.१८) नियामकः =नियामक रु + इति इस परिस्थितिमें नि.२४ से विसर्गों (रु) को य् तथा नि.२६ से य् का लोप होने पर यह रूप सिद्ध होगा.

*पदसंस्कारपक्ष तथा वाक्यसंस्कारपक्ष दोनोंमें सन्धि होती है. पदसंस्कारपक्षमें सन्धिका अर्थ है कि पद विभिन्न व्याकरणके नियमोंके द्वारा सुसंस्कृत होकर जब सिद्ध होता है तब दो पदोंके बीच सन्धिका होना. वाक्यसंस्कारपक्षमें जब सन्धि होती है तब दोनों पद असंस्कृत अवस्थामें ही रहतें हैं, तब सन्धिविधायक सूत्रके प्राप्त होने पर सन्धि हो जाती है.

नियामक + इति यहां नियामक अकारान्त शब्दमें प्रातिपतिकादि सञ्ज्ञा तथा सुप्रत्यय होनेके अनन्तर जब नियामक सु + इति यह स्थिति होती है तब नि.१८ से सु के स्थान पर रु होता है तब नियामक रु + इति इस स्थितिमें नि.२४ से रु का य् होगा तथा नि.२६ से उसका लोप होकर 'नियामक इति' यह प्रयोग सिद्ध होगा.

२७. एतत्तदोः सुलोपोऽकोरनञ्समासे हलि

सः और एषः के विसर्ग या स् का लोप होता है यदि

बादमें कोई व्यञ्जन हो. (सकः, एषकः आदि ककार सहित प्रयोगोंमें तथा असः, अनेषः आदि नञ् समासके प्रयोगोंमें यह नियम नहीं लगेगा.

उदा - सः + तदेकमनाः = स तदेकमनाः (सर्वो. ३४)

२८. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः (प.स.)

अनुस्वारको परसवर्ण होता है यय् (तीनों सकार तथा ह को छोडकर सारे व्यञ्जन) यदि बादमें हो तो. (यह नियम अपदान्तमें नित्य तथा पदान्तमें विकल्पसे होता है).

उदा : सम् + क्षेपतः = सङ्क्षेपतः (सर्वनिर्णय.११).
सम् + गीतः = सङ्गीतः (सा.दी.१२१)

२९. छे च

ह्रस्व अक्षरके अनन्तर 'छ'वर्णके रहने पर तुक् आगम होता है. तुक् को केवल त् शेष रहता है.

उदा : इह + छन्दः = इहच्छन्दः (नाम.२). (यहां तुक् होने पर इह त् छन्दः इस स्थितिमें नि.३ से ज्, तत्पश्चात् नि.९ से च् होकर रूप सिद्ध होता है.

३०. मोनुस्वार सन्धि :

मकारान्त पदके 'म्' के स्थानपर अनुस्वार हो जाता है यदि बादमें व्यञ्जन हो.

उदा : सौन्दर्यम् + निजहृद्गतम् = सौन्दर्यं निजहृद्गतम् (मंगला.९).

विस्तारभयसे मोनुस्वार सन्धि नहीं दर्शायी गयी है, इस नियमको समझकर अन्यत्र भी इस सन्धिको पहचान लेना चाहिये.

२. समास विवरण

समास विग्रह परिचय

संक्षेप या संक्षिप्तीकरण को 'समास' कहते हें. यह शब्द व्याकरणमें पारिभाषिक अर्थ रखता है. अतः प्रत्येक संक्षेपको समास नहीं कहते अपितु जब दो या दो से अधिक पद मिलकर एक पद हो जाते हैं तब उसे समास कहते हैं. समास हो जाने पर उन समस्त पदोंकी अपनी-अपनी विभक्तियां प्रायः लुप्त हो जाती हैं (उनका अर्थ परन्तु रहता ही है). पुनः नये सिरेसे समासको एक शब्द या प्रातिपदिक मानकर नई विभक्ति आती है तब वह समूचा नया पद बन जाता है.

यथा कृष्णस्य सेवा = कृष्णसेवा (सि.मु.१) यहां 'कृष्णस्य' तथा 'सेवा' ये दो पद मिलकर 'कृष्णसेवा' यह एक पद बन गया है.

समास मुख्यतया पांच प्रकार के होतें हैं :

१. तत्पुरुष
२. बहुव्रीहिः
३. द्वन्द्वसमास
४. अव्ययीभावसमास
५. केवलसमास

१. तत्पुरुष समास (तत्पु.)

इस समासमें प्रायः उत्तरपद प्रधान होता है. प्रथमान्तसे लेकर सप्तम्यन्त पर्यन्त जिस - जिस विभक्त्यन्त पदका उत्तरपदके साथ समासका विधान किया जाता है वह तत्पुरुष समास उसी विभक्तिके नामसे व्यवहृत होता है जैसे

द्वितीयातत्पुरुषो यथा

दुखं अतीतः इति दुःखातीतः,
कृष्णं श्रितः इति कृष्णश्रितः,
अन्तरं गतः इति अन्तरगतः (मङ्गला.सौन्दर्यपद्य)

तृतीयातत्पुरुषो यथा

विद्यया निपुणः इति विद्यानिपुणः,
वाचा कलहः इति वाक्कलहः,
विलासेन गमनम् इति विलासगमनं (यमु.२),
सर्वलक्षणैः सम्पन्नः इति सर्वलक्षणसम्पन्नः (सर्वो.२७).

चतुर्थीतत्पुरुषो यथा

गवे सुखम् इति गोसुखं,
यूपाय दारु इति यूपदारु (अर्थ-यज्ञस्तम्भकेलिये काष्ठ),
गवे हितम् इति गोहितं,
विरहानुभवैकार्थाय सर्वत्यागः इति विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागः (सर्वो.१८).

पञ्चमीतत्पुरुषो यथा

व्याघ्रात् भीतः इति व्याघ्रभीतः,
वृक्षात् पतितः इति वृक्षपतितः,

कृष्णात् बहिर्मुखाः इति कृष्णबहिर्मुखाः (पं.श्लो.४).

षष्ठीतत्पुरुषो यथा

मुरस्य अरि इति मुरारि (यमु.१),
भागवतस्य गूढार्थः इति भागवतगूढार्थः (सर्वो.),
श्रीमद्वृन्दावनस्य इन्दुः इति श्रीमद्वृन्दावनेन्दुः (वल्ल.१),
व्रजस्य अधिपः इति व्रजाधिपः (चतु.१).

सप्तमीतत्पुरुषो यथा

ईश्वरे अधीनम् इति इश्वराधीनम्,
आचार्येषु रत्नम् इति आचार्यरत्नं (नाम.२३),
मुकुन्दे रतिः इति मुकुन्दरतिः (यमु.२).

कर्मधारय समास (कर्म.)

तत्पुरुषका ही एक भेद कर्मधारय होता है. जब तत्पुरुष समासमें दोनों पद एक ही अधिकरण (वाच्य) को कहते हैं तो वहां कर्मधारय समास होता है यथा

सहजश्चासौ सुन्दरश्च = सहजसुन्दरः (सर्वो)

(कर्मधारय के भेद)

१. विशेषणपूर्वपद-कर्मधारयः

जिस कर्मधारयमें पूर्वपद विशेषण तथा उत्तरपद विशेष्य होता है वह विशेषणपूर्वपद कर्मधारय होता है. यथा

नीलानि च तानि उत्पलानि च नीलोत्पलानि
रम्या च सा लता रम्यलता
सहजश्चासौ सुन्दरश्च सहजसुन्दरः (सर्वो.३२)

(टि - कर्मधारय समासमें सामानाधिकरण्यको प्रकट करनेकेलिये लौकिक विग्रह प्रायः दो प्रकारसे किया जाता है-

१. समस्यमान पदोंके ही द्वारा

नीलम् उत्पलम् = नीलोत्पलम्

सर्वाणि वस्तूनि = सर्ववस्तूनि

२. चकारसे युक्त अदस्, तद्, यद् आदि शब्द लगाकर

नीलञ्च तद् उत्पलम् = नीलोत्पलम्

नीलञ्च यद् उत्पलम् = नीलोत्पलम्

नीलञ्च अदः उत्पलम् = नीलोत्पलम्

(अध्येताओंको सरलतासे कर्म. समासका परिचय करानेकेलिये प्रस्तुत ग्रन्थमें द्वितीय प्रकारसे ही कर्मधारय समास दर्शाया गया है).

२. विशेष्यपूर्वपद-कर्मधारयः

जिस कर्मधारयमें पूर्वपद विशेष्य और उत्तरपद विशेषण होता है उस कर्मधारयको विशेष्यपूर्वपदकर्मधारय कहते हैं. यथा

व्यंसकाश्च ते मयूराश्च इति मयूरव्यंसकाः (अर्थ-धूर्त मोर)

खसूचिश्चासौ वैयाकरणश्च इति वैयाकरणखसूचिः

३. विशेषणोभयपद-कर्मधारयः

दो समानाधिकरण विशेषणोंके समासको 'विशेषणोभयपद-कर्मधारय' कहते हैं. यथा

स्नाताश्च अनुलिप्ताश्च स्नातानुलिप्ताः,

भोज्यं च तत् उष्णं च भोज्योष्णम्,

निश्चितं च तत् प्रचितं च निश्चप्रचम् (अर्थ-निश्चित)

कृष्णश्च श्वेतश्च = कृष्णश्वेत (अश्वः)

४. **उपमानोत्तरपद-कर्मधारयः**

जिसमें उपमित (जिसको उपमा दी गई है वह) पूर्वपद हो और उपमान उत्तरपद वह उपमानोत्तरपद-कर्मधारय समास कहलाता है. यथा

पुरुषो व्याघ्र इव पुरुषव्याघ्रः,
कपयः कुञ्जरा इव कपिकुञ्जराः

कर्मधारयके इस प्रकारके विग्रह दो प्रकारसे किये जा सकते हैं.

१.पादम् अम्बुजम् इव इति पादाम्बुजम् (मङ्गला)
२.पादम् एव अम्बुजम् इति पादाम्बुजम्

प्रथम विग्रहवाले समासको उपमित समास कहा जाता है क्योंकि इसमें पादको अम्बुजकी उपमा दी जा रही है.

द्वितीय विग्रहवाले समासको रूपकोत्तरपद कर्मधारय कहा जाता है क्योंकि इसमें पादको अम्बुजरूप ही कहा जा रहा है.

५. **उपमानपूर्वपदकर्मधारयः**

समासके दोनों पदोंमें जब पूर्वपद उपमान (जिससे उपमा दी जाय) वाचक हो ओर उत्तरपद उपमेय (जिसको उपमा दी जाय) तब उपमानपूर्वपद कर्मधारय समास कहलाता है. यथा

कौमुदीव विशदा कौमुदीविशदा (अर्थ-चांदनी के समान व्यापक)
रतिरिव सुन्दरी रतिसुन्दरी
लतेव तन्वी लतातन्वी (अर्थ-लताके समान पतली)

द्राक्षेव मधुरा द्राक्षामधुरा,
घन इव श्यामः = घनश्यामः

द्विगुसमास (द्विगु.)

कर्मधारयका ही भेद द्विगु है. कर्मधारय समासमें जब प्रथम शब्द सङ्ख्यावाची हो और दूसरा सञ्ज्ञावाची तो उस समासको द्विगु समास कहते हैं.

द्विगु समास तभी होता है जब या तो उसके अनन्तर कोई तद्धित प्रत्यय लगता हो यथा

षष् + मातृ = षण्मातृ + अ(तद्धित प्रत्यय) = षाण्मातुरः (षण्णां मातृणाम् अपत्यं पुमान्).

अथवा उसको किसी अन्य शब्दके साथ समासमें आना हो यथा

पञ्चगावः धनं यस्य स पञ्चगवधनः (द्विगुगर्भबहुव्रीहि)

द्विगुसमास किसी समाहार (समूह) का द्योतक हो इस अवस्थामें वह नित्यनपुंसकलिङ्ग एकवचनमें रहेगा यथा

पञ्चानाम् अमृतानां समाहारः पञ्चामृतम् (सा.दी.८९)
चतुर्णां युगानां समाहारः = चतुर्युगम्
पञ्चानां गवां समाहारः = पञ्चगवम्

यदि अकारान्त पदोंके साथ समाहार द्विगु समास होगा तो वह समस्त पद ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो जाता है. यथा

त्रयाणां लोकानां समाहारः = त्रिलोकी (सर्वो.३२)
त्रयाणां वेदानां समाहारः = वेदत्रयी (सा.दी.४)

परन्तु यह नियम 'पात्रादिगण'में पठित पात्र, युग्, युवन् आदि पदोंमें नही लगेगा. यथा

त्रयाणां भुवनानां समाहारः = त्रिभुवनम्

चतुर्णां युगानां समाहारः = चतुर्युगम्

यदि समाहार द्विगु समासका उत्तरपद आकारान्त है तो समस्त पद विकल्पसे स्त्रीलिङ्ग होता है. यथा

पञ्चानां खट्वानां समाहारः = पञ्चखट्वी या पञ्चखट्वा (पांचपलंग).

नञ्-समास (न.तत्पु.)

यह समास भी तत्पुरुषका ही भेद है. जब तत्पुरुषमें प्रथम शब्द नञ् (न) हो और दूसरा कोई सञ्ज्ञा या विशेषण शब्द, तो उसे नञ्-समास कहा जाता है. यथा

(क) न विश्वासः = अविश्वासः (विवेक.१५)

न ज्ञानं इति अज्ञानं (मंग.३)

न भवः इति अभवः

(ख) न अन्यः = अनन्यः (पञ्च.श्लो.५)

निषेधार्थक यह नञ् (न) यदि व्यञ्जनके पूर्व हो (यथा उदाहरण क में) तो 'अ' में बदल जाता है ओर यदि स्वरके पूर्व हो (उदाहरण.२ में) तो अन् में.

निषेधार्थक नञ् (न) के ६ अर्थ सम्भव हैं :

तत्सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता।

अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञ्यर्थाः षट्प्रकीर्तिताः॥

१. सादृश्य - यथा गधे जैसे घोडेको 'अनश्व' कहा जा सकता है.
२. अभाव - यथा आदरके अभावको 'अनादर' कहा जाता है.
३. अन्यता - यथा मनुष्यसे भिन्न किसी भी प्राणीको 'अमनुष्य' कहा जाता है.
४. अल्पता - यथा पतली कमरवाली किसी सुन्दर युवतीको कविजन 'अनुदरा सुन्दरी' कह देते हैं.
५. अप्राशस्त्य - यथा दुश्चरित्र होनेके कारण अप्रशंसनीय ब्राह्मणको 'अब्राह्मण' कहा जाता है.
६. विरोधिता - यथा सुर अर्थात् देवके विरोधी होनेके कारण दैत्योंको 'असुर' कहा जाता है.

नित्यसमास (नि.स)

नित्यसमासका लौकिक विग्रह या तो किया ही नहीं जाता है अथवा जब किया भी जाता है तो दोनों समस्यमान पदोंके द्वारा नहीं अपितु एक पद समस्यमान ले लेते हैं और दूसरा पद दूसरे समस्यमानका समानार्थक. नित्यसमासकी इस परिभाषाके अन्तर्गत अव्ययीभावसमास, प्रादिसमास, गतिसमास, मध्यमपदलोपीसमास-मयूरव्यंसकादि तत्पुरुष आदि आते हैं.

प्रादिसमास

यह तत्पुरुष समासका भेद है. जब तत्पुरुषमें प्रथम शब्द प्र आदि उपसर्गोंमेंसे कोई हो तब उसे प्रादितत्पुरुष कहते हैं. यथा

प्रकृष्टेन उक्ताः इति प्रोक्ताः (जल.५)
अतिशयितः मोहनः इति अतिमोहनः (सर्वो.२७)
प्रतिगतः अक्षम् इति प्रत्यक्षं सा प्रत्यक्षा (सिमु.८)

गतिसमास

१. कुछ कृत्-प्रत्यान्त शब्दोंके साथ गतिसञ्ज्ञक कुछ विशेष शब्दों यथा उरी, उररी आदि ऊर्यादिगणमें पठितोंका समास जब होता है तब उस समासको गतिसमास कहते हैं. यथा

साक्षात् कृत्वा साक्षात्कृत्य (=साक्षात् करके)

ऊरी कृत्वा ऊरीकृत्य,(=स्वीकार करके)

उररी कृत्वा = उररीकृत्य(=स्वीकार करके)

२. च्वि प्रत्ययान्त, डाच् प्रत्ययान्त तथा पुरः अस्तम्, अन्तर्धानके अर्थमें तिरः, भूषणवाची 'अलम्' आदि शब्दोंकी भी गतिसञ्ज्ञा होती है. तदनन्तर कुछ कृत्प्रत्यान्तोंके साथ समास होने पर वह गतिसमास कहलाता है. यथा

तिरः भूत्वा तिरोभूय,

अलं कृत्वा अलंकृत्य आदि (सा.प्र.).

(टि. चूकिं गतिसमास नित्य समास है अतः इसका विग्रह अस्वपदविग्रह ही है).

उपपद (तत्पुरुष) समास (उप.स)

जब तत्पुरुषका पहला शब्द कोई ऐसी सञ्ज्ञा या कोई ऐसा अव्यय हो जिसके न रहनेसे उस समासके द्वितीय शब्दका वह रूप नहीं रह सकता है तब उसे उपपदसमास कहते हैं. चूंकि उपपद सञ्ज्ञक शब्दोंके पूर्वमें होने पर ही प्रस्तुत समास होता है अतः यह समास उपपदसमास कहलाता है. इस समासका द्वितीय पद कृदन्त होगा यथा

सर्ववादिनिरासं करोति इति सर्ववादिनिरासकृत् (सर्वो.९)

मखं करोति इति मखकृत् (गोवर्धनादिमखकृत्) (नाम.११)

मध्यमपदलोपी (तत्पुरुष) समास (म.प.लो)

जिस समासमें मध्य स्थित पद लुप्त हो जाता है उसे मध्यमपदलोपी समास कहते हैं. इसमें प्रायः ३ पद होते हैं. पहले पूर्वके दो पदोंका समास करके एक पद बना लिया जाता है. पुनः इस एक पदका एक अन्य समानाधिकरणपदके साथ कर्मधारय समास किया जाता है. इस कर्मधारय समासमें पूर्व समस्त हुए पदके अन्तर्गत उत्तरपद लुप्त हो जाता है. यथा

श्री सहितः पुरुषोत्तमः = श्रीपुरुषोत्तमः (म.प.लो)
सन्ध्या सहितः जपः = सन्ध्याजपः (सा.दी.१९)
चित्राख्या मूर्तिः = चित्रमूर्तिः (सा.दी.८६)

मयूरव्यंसकादि समास

कुछ तत्पुरुष समास ऐसे हैं जिनमें नियमोका प्रत्यक्ष उल्लंघन है. पाणिनि ने उनको 'मयूरव्यंसकादि' नाम देकर पृथक् कर दिया है. यथा

अन्या प्रमा = प्रमान्तरम् (सा.दी.३)
अन्यो राजा = राजान्तरम्
व्यंसकः मयूरः = मयूरव्यंसकः आदि

अलुक्समास (अलुक्)

समास होने पर भी जहां पूर्वपदकी विभक्तिका लोप नहीं होता है वहां अलुक् समास होता है. पूर्वपदकी विभक्तिका लोप कहां होता है और कहां नही होता है उसे व्याकरणके नियमों तथा शिष्ट प्रयोगोंसे ही जाना जा सकता है. यथा

हृदि स्पृशति इति हृदिस्पृक्
वाचः युक्तिः इति वाचोयुक्तिः
तृतीयातत्पुरुषमें - सहसाकृतम्, हस्तिनापुरम्

चतुर्थीतत्पुरुषमें - आत्मनेपदम्, परस्मैपदम्
पञ्चमीतत्पुरुषमें - समीपादागतः, दूरादागतः
षष्ठीतत्पुरुषमें - वाचोयुक्तिः, वाचस्पति
सप्तमीतत्पुरुषमें - युधिष्ठिरः, अन्तेवासी

प्रस्तुत समासमें विग्रह वाक्य तथा समास एक जैसा ही होता है.

२. **बहुव्रीहि समास (बहु.)**

जिस समासमें अन्यपदका अर्थ प्रधान होता है, समासगत पदोंका नहीं वह बहुव्रीहि समास कहलाता है. यथा

पीतम् अम्बरं यस्य स पीताम्बरः (कृष्णः)

यहां पीत और अम्बर दोनों ही पदबोध्य अर्थ मुख्य न होकर अन्यपदार्थ 'कृष्ण' ही मुख्य है. अतः बहुव्रीहिसमासगत शब्द अन्यपदार्थ (विशेष्य) के विशेषण ही होते है.

(बहुव्रीहि के प्रकार)

१. **द्विपदबहुव्रीहिः**

प्राप्तः अग्निः यं सः प्राप्ताग्निः
ऊढो रथः यैस्ते ऊढरथाः
दत्तः पशुः यस्मै सः दत्तपशुः
उद्धृता शराः यस्मात् सः उद्धृतशरः
महत् बलं यस्य सः महाबलः
वीराः पुरुषाः यासु ता वीरपुरुषाः

२. बहुपदबहुव्रीहिः

नीलमुज्ज्वलं च वपुः यस्य सः नीलोज्ज्वलवपुः

श्रीमत् पीतं अम्बरं यस्य सः श्रीमत्पीताम्बरः
दिव्यः सुन्दरः विग्रहः यस्या साः दिव्यसुन्दरविग्रहा

३. **संख्योभयपदबहुव्रीहिः**
द्वौ वा त्रयो वा द्वित्राः
पञ्च वा षड् वा पञ्चषाः
त्रयो वा चत्वारो वा त्रिचतुराः

४. **संख्योत्तरपदबहुव्रीहिः**
दशानां समीपे ये सन्ति ते उपदशाः
एकादशानां समीपे ये सन्ति ते उपैकादशाः

५. **सहपूर्वपदबहुव्रीहिः**
कलाभिः सह वर्तते इति सकलाः
सन्तानैः सह वर्तते सहसंतानाः
पुत्रेण सह वर्तते इति सहपुत्रः

६. **दिगन्तराललक्षणबहुव्रीहिः**
उत्तरस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोः यद् अन्तरालं सा उत्तरपूर्वा
दक्षिणस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोः यद् अतरालं सा दक्षिणपूर्वा

७. **व्यतिहारलक्षणबहुव्रीहिः**
बाहुभिः बाहुभिश्च गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं बाहूबाहवि
मुष्टिभिः मुष्टिभिश्च प्रहत्य इदं युद्धं प्रवृत्तं मुष्टीमुष्टि
केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं केशाकेशि

उपर्युक्त सभी उदाहरण समानाधिकरण बहुव्रीहिके हैं. बहुव्रीहि

समासमें जहां समासविग्रहमें प्रयुक्त पदोंकी विभक्तियां समान हो उसे समानाधिकरण बहुव्रीहि कहा जाता है.

व्यधिकरण बहुव्रीहि

व्यधिकरण बहुव्रीहिके समासगत पदोंमें विभक्तियां भिन्न होती हैं. यथा

मृगमदः तिलके यस्य सः मृगमदतिलकः (मङ्गला.)
चक्र पाणौ यस्य स चक्रपाणिः
चन्द्रः शेखरे यस्य स चन्द्रशेखरः

इस समास के कुछ नियम स्मरणीय हैं :

१. तृतीयान्त पदके साथ 'सह' या 'सहित' शब्दका समास होने पर विकल्पसे 'सह'के स्थान पर 'स' आदेश हो जाता है. यथा

धवेन सहिता वा धवेन सह = सधवा (वा सहधवा) (सा.दी.७८)

२. समानाधिकरण बहुव्रीहिमें यदि प्रथम शब्द पुल्लिङ्गसे स्त्रीलिङ्गमें बना हुआ हो (यथा सुन्दर से सुन्दरी, रूपवत् से रूपवती आदि) और ऊकारान्त न हो ऐसा होने पर यदि उत्तरपद स्त्रीलिङ्ग हो तो पूर्व स्त्रीलिङ्ग पद समास होने पर पुल्लिङ्गमें परिवर्तित हो जायेगा. यथा

सुन्दरी भार्या यस्य स सुन्दरभार्यः

यहां 'सुन्दरी' शब्द पुल्लिङ्ग सुन्दर शब्दसे बना हुआ है और भार्याका विशेषण है जो कि स्त्रीलिङ्ग है. अतः समास होने पर वह पुल्लिङ्ग 'सुन्दर' हो जायेगा.

३. यदि समासके अन्तमें इन्नन्त (जिसके अन्तमें 'इन' हो) शब्द

आये और यदि पूरा समास स्त्रीलिङ्ग बनाना हो तो नित्य कप् (क) प्रत्यय जोड़ दिया जाता है. जैसे

बहवः दण्डिनः यस्यां सा बहुदण्डिका (नगरी)

परन्तु यदि इसे पुल्लिङ्ग (ग्राम) का विशेषण बनाना हो तो कप् ऐच्छिक होगा. यथा

बहवः दण्डिनः यस्मिन् स बहुदण्डिकः वा बहुदण्डी (ग्रामः)

४. यदि उरस्, पयस् आदि गणपाठ पठित शब्द अन्तमें आयें तो अनिवार्य रूपसे कप् प्रत्यय होगा.

व्यूढं उरः यस्य स व्यूढोरस्कः (चौडी छातीवाला)

प्रियं पयः यस्य स प्रियपयस्कः (जिसे दूध प्रिय हो)

५. नञ् (न) के अनन्तर कोइ सञ्ज्ञा-शब्द हो तो मध्यवर्ती अस्त्यर्थक लुप्त हो जाता है, विकल्पसे. यथा

अविद्यमान पुत्र यस्यः स = अपुत्रः अथवा अविद्यमानपुत्रः

नास्ति पुत्रः यस्य सः —इस प्रकार भी इसका विग्रह किया जा सकता है.

६. बहुव्रीहि समासके किसी नियमका विषय होकर जो विकृत न हुआ हो ऐसे समासके अन्तिम शब्दमें कप्-प्रत्यय ऐच्छिक होता है. यथा

उदात्त मनः यस्य स उदात्तमनस्कः अथवा उदात्तमनाः

महत् यशः यस्य स महायशस्कः वा महायशाः

७. बहुव्रीही समासका अन्तिम पद यदि ऋकारान्त हो या ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग हो तो उसमें कप् प्रत्यय अनिवार्य रूपसे जुडता

है. यथा

ईश्वरः कर्ता यस्य तत् ईश्वरकर्तृकम् (जगत्)
सुन्दरी पत्नी यस्य स सुन्दरपत्नीकः (जनः)
रूपवती वधू यस्य स रूपवत्वधूकः (जनः)

८. यदि अन्तिम शब्द आकारान्त हो तो कप् होनेके अनन्तर आकारान्तको अकार भी किया जा सकता है. यह नियम भी ऐच्छिक है.

बह्व्यो मालाः यस्य स बहुमालाकः / बहुमालकः / बहुमालः इस प्रकार तीन रूप इसके हो सकतें है.

मुख्य-मुख्य नियम यहां बताये गये है.

(टि-प्रस्तुत ग्रन्थमें विस्तार तथा काठिन्यके भयसे बहुव्रीहि तथा उसके द्वितीयादि सप्तम्यन्त भेदोंको भी मात्र 'बहु' इसी सङ्केत-चिन्हसे दर्शाया गया है, अधिकांश बहुव्रीहि, क्योंकि, षष्ठी विभक्तिमें उपलब्ध होता है, अतः यह भी एक हेतु है बहुव्रीहिके सभी भेदोंको पृथक् न लिखनेका).

३. द्वन्द्वसमास (द्वन्द्व.)

जहां दो या अधिक शब्दोंका इस प्रकार समास हो कि उसमें च (=और) का अर्थ छिपा हो उसे द्वन्द्व समास कहते हैं. यह समास उभयपदार्थ प्रधान है. अर्थात् इस समासमें दोनों पदोंका अर्थ मुख्य होतो है. यथा

रामश्च कृष्णश्च = रामकृष्णौ

यह समास तीन प्रकारका होता है

क. इतरेतर द्वन्द्व

ख. समाहार द्वन्द्व

ग. एकशेष द्वन्द्व

क. इतरेतरद्वन्द्व

जिस द्वन्द्वमें पदोंमे द्वित्व या बहुत्व होने पर द्विवचन तथा बहुवचन होते हों और चकारका अर्थ भी प्रकट होता हो वह इतरेतरद्वन्द्व कहलाता है. यथा

रामश्च कृष्णश्च रामकृष्णौ,

पत्रं च पुष्पं च फलानि च पत्रपुष्पफलानि

धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च धर्मार्थकाममोक्षाः

द्वन्द्व समासमें परपदके लिङ्गानुसार ही रूप चलेंगे. जैसे

कुक्कुटश्च मयूरी च कुक्कुटमयूर्यो और

मयूरी च कुक्कुटश्च मयूरीकुक्कुटौ

ख. समाहारद्वन्द्व

समूहका नाम समाहार है. जहां दो या अधिक पदोंके समाहारका बोध हो. समाहार अर्थवाले समूहके अवयव अनुद्भूत हों अर्थात् पृथक्-पृथक् प्रतीत नहीं होते बल्कि उनका एक समुच्चयात्मक रूप होता है. समुच्चयके एक होनेसे इस समासमें सदा एकवचन तथा नपुसंकलिङ्गका प्रयोग होता है. यथा

हस्तौ च पादौ च = हस्तपादम्

आहारश्च निद्रा च भयं च = आहारनिद्राभयम्

प्रत्येक शब्दका समाहार द्वन्द्व नही हो सकता है. शास्त्रद्वारा बताये गये शब्द ही समाहारद्वन्द्वके विषय बनते हैं.

समाहार के भेद :

श्रवणं च किर्तनञ्च तयो समाहारः श्रवणकीर्तनम् (भ.व.१)
शीतं च उष्णं च तयोः समाहारः शीतोष्णं
सुखं च दुःखं च तयोः समाहारः सुखदुःखं
ढक्का च मृदङ्गश्च पटहश्च तेषां समाहारः ढक्कामृदङ्गपटहम्
अश्वश्च हस्ति च रथश्च तेषां समाहारः अश्वहस्तिरथम्
पाणिश्च ग्रीवा च तेषां समाहारः पाणिपादग्रीवम्.

ग. एकशेषद्वन्द्व

समासगत दोनों पदोंमें यदि [क] समानाकारता हो या [ख] विरूपता (असमानाकारता) होने पर भी यदि समानार्थकता हो तो वहां एकशेषद्वन्द्व होता है. [ग] कुछ शास्त्रीय नियमोंके कारणसे भी कुछ विशेष पदोंमें एकशेष द्वन्द्व होता है. यथा

क.

ब्राह्मणी च ब्राह्मणश्च ब्राह्मणौ
अजश्च अजाश्च अजौ

टि - यदि समासमें पुल्लिङ्ग तथा स्त्रीलिङ्ग दोनों शब्द हों तो समास होने पर पुल्लिङ्ग शब्द ही शेष रहता है.

ख.

वक्रदण्डश्च कुटिलदण्डश्च = वक्रदण्डौ या कुटिलदण्डौ
घटश्च कलशश्च = घटौ या कलशौ

ग.

माता च पिता च = पितरौ
श्वश्रू च श्वसुरश्च = श्वसुरौ

द्वन्द्व समासके निम्न नियम भी ध्यान रखने योग्य हैं.

१. समासमें यदि इकारान्त शब्द हो तो वह प्रथम रखा जाता है. यथा, हरिश्च हरश्च हरिहरौ.
यदि कई इकारान्त हो तो एक इकारान्त पूर्वमें रखकर अन्योंको इच्छानुसार रखा जा सकता है. यथा, हरिश्च रामश्च गिरिश्च = हरिरामगिरयः

२. स्वरसे आरम्भ होते शब्दोंको तथा अकारान्त शब्दोंको पहले रखना चाहिये

इन्द्रश्च अग्निश्च = इन्द्राग्नी
ईश्वरश्च प्रकृतिश्च = ईश्वरप्रकृती

३. वर्णों तथा भ्राताओं के नाम श्रेष्ठता तथा ज्येष्ठता के अनुसार रखे जाने चाहिये. उदा.

ब्राह्मणश्च क्षत्रियश्च ब्राह्मणक्षत्रियौ
रामश्च भरतश्च लक्ष्मणश्च रामभरणलक्ष्मणाः.

४. जिस् शब्दमें कम अक्षर हों उनको पहले रखना चाहिये. यथा,

रामश्च केशवश्च = रामकेशवौ
कृष्णश्च वल्लभश्च = कृष्णवल्लभौ

५. अधिक आदरणीयका पूर्वनिपात होता है. यथा,

वासुदेवश्च अजुर्नश्च = वासुदेवार्जुनो
माता च पिता च = पितरौ

६. लघु अच् वाले शब्द पूर्वमें आयेंगे. यथा,

पुत्रश्च पौत्रश्च = पुत्रपौत्रौ

७. समास मात्रमें छोटी संख्या पूर्वमें ही आयेगी. यथा,

द्वौ च दश च = द्वादश

द्वौ वा त्रयो वा = द्वित्राः

मुख्य नियमोंका उल्लेख यहां कर दिया गया है.

४. अव्ययीभावसमास (अव्य.)

अव्ययीभाव एक अर्थानुसारी सञ्ज्ञा है. इस समासमें प्रायः पूर्वपद अव्यय होता है और उत्तरपद अनव्यय. परन्तु समास होने पर समस्तपद अव्यय बन जाता है. अव्ययीभावमें प्रायः पूर्वपदकी प्राधान्यता रहती है. उदा.,

अधिभु (वल्ल.६) यहां 'अधि' यह पूर्वपद है जोकि अधिकरणका द्योतक है.

अव्ययीभावसमासके प्रकार :

क. अव्ययपूर्वपदाव्ययीभावः

अहनि अहनि प्रति = प्रत्यहम् (सा.दी.२९)

लब्धम् अनतिक्रम्य = यथालब्धम् (सा.दी.८७)

योग्यम् अनतिक्रम्य = यथायोग्यम् (सा.दी.१२३)

शक्तिम् अनतिक्रम्य यथाशक्तिः

वाडवेषु इति अधिवाडवं

भद्राणां समृद्धिः संभद्रं

पापानां अभावः निष्पापं

लोचनयोः समीपे उपलोचनम्

ख. नामपूर्वपदाव्ययीभावः

सूपस्य लेशः सूपप्रति

शाकस्य लेशः शाकप्रति.

५. केवलसमास

जिस समासकी शास्त्रमें कोई विशेष सञ्ज्ञा नहीं की गई हो तो उसे केवलसमास कहा जाता है. इसी समासका प्राचीन नाम सुप्सुपा समास है. यह नाम इसलिये रखा गया है कि इसमें एक सुबन्त दूसरे सुबन्तके साथ किसी विशेषनामके बिना समासको प्राप्त होता है. यथा,

न एकधा = नैकधा (सि.मु.४)

(यहां नञ् का प्रयोग नहीं है अपितु नञर्थक 'न' अव्ययका प्रयोग हुआ है अतएव नञ् समास नहीं है).

॥ इति समास प्रकरणम् ॥

३. शब्दपरिचय (श.प.)

श्रीयास्काचार्यकी दृष्टिसे शब्द चार प्रकारसे विभक्त किये जा सकते हैं नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात.

१. नाम (ना.)

पाणिनीय व्याकरणमें नामशब्दोंकी **प्रातिपदिक** सञ्ज्ञा की गई है. प्रत्येक अर्थवान् शब्द प्रातिपदिक या नाम कहलाता है, परन्तु वह शब्द धातु प्रत्यय या प्रत्ययान्त नहीं होना चाहिये. जैसे 'कृष्ण'शब्दसे वसुदेवसुतरूप अर्थका ज्ञान होता है अतः 'कृष्ण'शब्द

अर्थवान् है तथा इसे प्रातिपदिक या नाम कहा जायेगा. नामकी इस परिभाषामें कृदन्त, तद्धित तथा समस्त (समास किये हुए) पद आ जायेंगे.

"**सर्वे शब्दाः धातुजा**". अर्थात् सभी शब्द धातुसे बनते हैं. इस नियमके अनुसार नामशब्दकी उत्पत्ति भी किसी-न-किसी धातुसे ही होती है.

२. आख्यात (आ.)

'आख्यात'का अर्थ है : **तिङन्त** शब्द. तिप् से लेकर महिङ् तक के १८ प्रत्यय जिनके अन्तमें लगते हो उन शब्दोंको तिङन्त कहते हैं. ये प्रत्यय मात्र धातु (क्रिया) के अन्तमें ही लगते हैं. अतः समस्त क्रियाएं जो तिङन्त हैं वे आख्यात कहलायेंगी.

३. उपसर्ग (उ.)

प्रादिगण पठित **२२ प्रादि शब्द** (= प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निस्, निर्, दुस्, दुर्, वि, आङ्, नि, अधि, अपि, अति, तु, उद्, अति, प्रति, परि, उप) जब क्रिया (धातु) से जुड़ते हैं तब वे 'उपसर्ग' कहलाते हैं. ये उपसर्ग नाम तथा आख्यात शब्दोंके आगे जुड़े होते हैं.

उपसर्गोके अर्थ इस प्रकार होते हैं.

१. **प्र** = प्रकृष्ट, असीमित
२. परा = पृथक्
३. अप = हटाना, हानि पहूंचाना, अलग होना
४. सम् = संयुक्त होना, पूर्णता होना, साथ आदि

५. अनु = पीछे, साथ आदि
६. अव = दूर, नीचे, अपमान आदि
७-८. निस्, निर् = निकलना, दूर हटना, विना आदि
९-१०. दुस्, दुर् = बुरा, कठिनाई, दुष्कर, कर्म आदि
११. वि = विशेष, विरुद्ध, विपरीत, पृथक् आदि
१२. आङ् = चारों तरफ, स्वल्प, तक आदि
१३. नि = हट जाना, विपरीत, भीतर आदि
१४. अधि = अधिक, ऊपर, बैठकर आदि
१५. अति = बहुत, बढकर, अतिक्रमण करना
१६. अपि = भी, समीप, ऊपर
१७. सु = श्रेष्ठ, पूर्णतया, बहुत, अधिक
१७. उद् = ऊपर आना, निकलना आदि
१८. अभि = समीप, तरफ (ओर), श्रेष्ठ आदि
२०. प्रति = विपरीत, बदलेमें, ओर आदि
२१. परि = चारों ओर, समीप
२२. उप = समीप, पार्श्व, स्तुति, तुलना आदि.

४. निपात (नि.)

चादि गण पठित शब्द- प्रादि २२ शब्द (ये सभी अद्रव्य होने चाहिये). जिनशब्दोंसे संख्या जुड़ती है तथा सर्वनामका प्रयोग जिनके साथ हो सकता है उन शव्दोंको 'द्रव्यशब्द' कहते हैं. उणादि गणपठित शब्द (ऊरी, उररी, प्रादुस्, आविस् आदि) तथा कुछ अन्य शब्द (यथा भूषणार्थक अलं, अन्तर्धान अर्थमें तिरस् आदि) पाणिनि व्याकरणमें निपात कहे जाते हैं. प्रस्तुत ग्रन्थमें क्योंकि श्रीयास्काचार्यकी दृष्टिसे शव्दके चार विभाग किये गये हैं अतः पाणिनीकी दृष्टिमें अव्ययशव्दोंको भी यहां निपात लिखा गया है. सुबुद्ध पाठकगण भ्रममें न पडें.

कुछ अव्यय तथा निपातों के अर्थ :

१. अन्तर = में, अन्दर, भीतर, मध्य आदि
२. प्रातर् = प्रातःकाल.
३. पुनर् = दुबारा, फिर
४. उच्चैस् = ऊँचे से, ऊँचे पर
५. नीच्चेस् = नीचे, नीचेकी ओर आदि
६. शनैः = धीरे से
७. ऋते = बिना
८. युगपत् = एकसाथ, एक ही समय में
९. आरात् = दूर तथा समीप
१०. पृथक् = अलग, भिन्न, बिना
११. ह्यस् = बीता कल
१२. श्वस् = आनेवाला कल
१३. दिवा = दिन
१४. सायम् = सायंकाल
१५. चिरम् = देरतक
१६. मनाक् = थोडासा, जरा
१७. ईषत् = थोडा, स्वल्प, कुछ
१८. तूष्णीम् = चुप
१९. बहिस् = बाहर, बाहरसे
२०. अधस् = नीचे
२१. स्वयम् = अपने आप
२२. वृथा = व्यर्थ, बेकार
२३. नक्तम् = रात्रिमें
२४. नञ् तथा न = नहीं, प्रतिषेध
२५. अद्धा = वस्तुतः, यथार्थत.
२६. सामि = आधा

२७. तिरस् = टेढा या तिरछा, छिपना, अनादर
२८. अन्तरेण = बिना
२९. शम् = सुख, शान्ति, कल्याण
३०. सहसा = बिना विचारे, अचानक
३१. विना = बिना
३२. नाना = बिना, अनेक प्रकारके
३३. अलम् = पर्याप्तिमें, भूषितकरना, समर्थ होना, निषेधकरना
३४. अन्यत् = अन्य, पुनः, इसके अतिरिक्त
३५. क्षमा = क्षमा
३६. मृषा = वृथा
३७. मिथ्या = झूठ, असत्य
३८. मुहुस् = पुनः पुनः
३९. अभीक्ष्णम् = बारबार, निरन्तर
४०. नमस् = नमस्कार
४१. धिक् = धिक्कार
४२. अथ = आरम्भ, अनन्तर, विकल्प, समुच्चय, यदि, मङ्गल आदि
४३. आम् = जीहां के अर्थमें
४४. मा = मत अर्थमें
४५. अञ्जसा = शीघ्र
४६. भूयस् = पुनः, बारबार
४७. साक्षात् = प्रत्यक्ष
४८. प्रादुस् = प्रकट, उत्पन्न
४९. आविस् = प्रकट
५०. अवश्यम् = जरुर
५१. सम्प्रति = अब
५२. कु = कुत्सित, बुरा
५३. सु = अच्छा, अच्छीतरह

निपातरूप अव्यय

१. च = समुच्चय (और के अर्थमें), अन्वाचय, इतरेतर योग, समाहार, यदि, अवधारण आदि अर्थमें.

२. एव = अवधारण (निश्चय), अपि (भी), प्राचुर्यार्थ, आदि

३. वा = विकल्प, अथवा, या आदि.

४. एवम् = इसप्रकार, ऐसे

५. नूनम् = निश्चय, सचमुच

६. शश्वत् = नित्य, हमेंशा, निरन्तर

७. चेत् = अगर आदि

८. यावत् = अवधि, पर्यन्त, जबतक आदि

९. तावत् = तब तक

१०. तथाहि = क्योंकि, कारण कि, इसीलिये

११. खलु = निश्चय ही, प्रश्नमें, तथा निषेध आदिमें

१२. किल = एतिह्य कहने में, निश्चय, तथा सम्भावना आदि में

१३. स्म = भूतकाल में, शब्दसौन्दर्य बढानेके लिये प्रायः 'मा' के साथ, पादपूर्ति केलिये

१४. उत् = अथवा, अप्यर्थ में, पादपूर्ति के लिए

१५. किम् = क्यों, क्या

१६. प्रभृति = तब से लेकर आज तक आदि

१७. तु = किन्तु, अवधारण (ही), हेतु तथा पादपूर्ति आदि में

१८. ननु = निश्चय, शङ्कारम्भ, प्रार्थना आदि

१९. हि = निश्चय, हेतु, पादपूर्ति आदि

२०. इव = सादृश्य, स्वल्प, वाक्यालङ्कार आदि

२१. इति = समाप्ति, हेतु, प्रकार, वक्ष्यमाण निर्देशमें, पूर्वोक्त कथनके निर्देशमें आदि

२२. वै = अवधारण (ही)

२३. किञ्च = और भी, इसके अतिरिक्त, पुनः

२४. यदि = अगर

४. वृत्तिपरिचय (वृ.प.)

[१]कृत्-[२]तद्धित-[३]सनाद्यन्तधातुभ्यश्चै[४]कशेषतः ।
[५]समासादपि विद्वद्भिः कथिताः पञ्च वृत्तयः ॥

"**परार्थाभिधानं वृत्तिरित्यभिधीयते**" यह प्राचीन वैयाकरणों द्वारा किया गया वृत्तिका लक्षण है. समास आदिमें जब पद (या शब्द) अपने - अपने अर्थको पूर्णतः या अंशतः छोडकर एक विशिष्ट अर्थको कहने लगते हैं तब उसे 'वृत्ति' कहा जाता है. वृत्तिमें शब्दोंका अर्थ मिश्रित होकर एकाकार अर्थका रूप धारण कर लेता है. जैसे कि '**व्रजाधिपः**'(ष.तत्पु) इस समास वृत्तिके अर्थमें न तो व्रज रहा और न अधिप बल्कि 'व्रज का अधिप' यह एकाकार एकार्थीभावरूप अर्थ हो गया है. यही कारण है कि केवल 'व्रज'के साथ 'सुन्दरस्य' आदि विशेषण नहीं जुड़ सकते हैं, "सुन्दरस्य व्रजाधिपः" नहीं कहा जा सकता. यही पर अर्थका अभिधान — अन्य अर्थका कथन है.

१. कृदन्तवृत्ति (कृद्.)

इस वृत्तिके अन्तमें कृत्-प्रत्यय लगते हैं अतः इसे 'कृदन्तवृत्ति' कहा जाता है. जैसे, **भक्तिः**, **कर्तव्यः**, **निरुद्धः** (क्रमशः भ.व., सन्या.नि., निरो.ल.) आदि. यहां प्रकृति + प्रत्यय अथवा उपसर्ग + प्रकृति + प्रत्यय मिलकर परस्पर सम्बद्ध एकार्थीभावरूप विशिष्ट अर्थको प्रकट करते हैं. यथा, भज् + क्तिन् = भक्तिः. भज् धातुका अर्थ सेवा है तथा क्तिन् प्रत्यय भावमें हुआ है. दोनों जब कृदन्तवृत्तिमें एकीभूत होते हैं तो एक नया ही अर्थ प्रकट करते हैं. पृथक् - पृथक् स्थित अपने-अपने अर्थोंको नहीं.

प्रस्तुत पुस्तकमें कृदन्तवृत्तिके अन्तर्गत कुछ परिगणित प्रत्ययोंको ही कृदन्तवृत्तिमें लिखा गया है जोकि सरलतासे शब्दको देखकर ही पहचानमें आ सकते हैं. 'क्तिन्' 'तव्यत्' आदि प्रत्यय शब्द देखकर पहचाने जा सकते हैं तथा अधिकांश प्रयोग इन्ही कृदन्तप्रत्ययोंके उपलब्ध होते हैं इस हेतुसे निम्न परिगणित प्रत्ययोंको ही पुस्तकमें दर्शाया गया है तथा वृत्तिमें कृद् लिखा गया है.

परिगणित कृत् प्रत्यय और उनके उदाहरण

१. तुमुन् -
- (क) उपाहर्तुम् (वल्लभ.४)
- (ख) त्यक्तुम् (सा.प्र.४४-४५)

२. क्त -
- (क) कृताः (सा.प्र.४१)
- (ख) प्रोक्तः (सं.नि.१)

३. क्तिन् -
- (क) भक्तिः (भ.व.१)
- (ख) रतिः (भ.व.११)

४. अन् - ल्युट्, ल्यु आदिके स्थानपर होनेवाला
अन् -
- (क) कीर्तनम् (नि.ल.५)
- (ख) दर्शनम्
- (ग) स्पर्शनम् (नि.ल.१७)

५. अक् - वुञ्, वुन् आदिके स्थान पर होने वाला
अक् -
- (क) बाधकम् (सेवाफल-२)
- (ख) मोचकः (प.श्लो.१)

६. शतृ -

(क) भजन् (सा.प्र.४८)

(ख) शिक्षन् (सा.दी.६०)

७. शानच् -

(क) क्रियमाणम् (सा.प्र.२)

(ख) उदासीने (प.श्लो.३)

८. तृच्, तृन् आदि - वक्ता (सा.प्र.११)

९. क्त्वा तथा ल्यप् -

(क) नत्वा (सि.मु.१),
कृत्वा (सा.प्र.१९)

(ख) वीक्ष्य (सा.प्र.१८),
नमस्कृत्य (ज.भे.१)

१०. अनीयर् - पठनीयम् (सा.प्र.३७)

११. तव्यत् तथा तव्य -

कर्तव्यम् (च.श्लो.२),
श्रोतव्यः,
कीर्तितव्यः,
स्मर्तव्यः (सा.दी.६)

१२. यत्, ण्यत् आदि - सेव्यः (शि.प.४)

१३. क्तवतु - सृष्टवान् (पु.प.म.९)

१४. उ -

जिज्ञासुः (सा.प्र.१८),
धियासूनां (सा.दी.११)

२. तद्धितवृत्तिः (तद्धि.)

शब्दके अन्तमें जहां तद्धित प्रत्यय हुए हो वहां तद्धितवृत्ति होती है. कृत्-प्रत्यय हमेंशा धातुको ही होते हैं तथा तद्धितवृत्ति

प्रत्यय प्रातिपदिक-शब्दोंको. यही इसकी पहचान करनेका सरल उपाय है. यथा

मनोरपत्यानि पुमांसः मानुषाः
दशरथस्य अपत्यं पुमान् दाशरथिः
स्वीयानाम् (मङ्ग्ला.१)
पाण्डित्यं (स्फुर.४)
पतितोदक वत् पतितोदकवत् (जल.२०)

यहां शब्द 'पतितोदक'को वत् (समानार्थक) प्रत्यय हुआ है. प्रकृति + तद्धितप्रत्यय मिलकर एकार्थी भावरूप विशिष्ट अर्थको प्रकट करते हैं.

३. सनाद्यन्तधातुवृत्तिः (सना.)

सन्, क्यच्, काम्यच्, क्यङ्, क्यष्, आचार अर्थवाला क्विप्, णिच्, यङ्, यक्, आय, ईयङ्, तथा णिङ् ये १२ प्रत्यय जिसके अन्तमें आते हो उनकी व्याकरणमें 'धातु'सञ्ज्ञा हो जाती है. इस प्रकार धातुका अर्थ और प्रत्ययका अर्थ मिलकर एकार्थीभावरूप विशिष्ट अर्थको प्रकट करते हैं. अतः इस सनादि प्रत्ययोंको भी पञ्चवृत्तियोंमें गीना गया है. यथा

पुत्रमात्मन इच्छतु पुत्रीयतु.

निरूप्यते (भ.व.१) निपूर्वक रूप धातु (निरूपणार्थ) से कर्म अर्थमें यक् प्रत्यय हुआ है. दोनों प्रकृति-प्रत्यय निरूप + यक् मिलकर एकार्थीभावरूप विशिष्ट अर्थको प्रकट करते है.

(यद्यपि जिज्ञासुः, यियासूनां (सा.दी.१०-११) आदि शब्दोमें सनादि वृत्ति है परन्तु अन्तमें कृदन्त 'उ'प्रत्यय हुआ होनेसे इन

शब्दोंको कृदन्तवृत्तिमें लिखा गया है. जैसे समासवृत्तिमें कृदन्त-तद्धित पदोंका परस्पर समास होने पर उसे समासवृत्तिक ही कहा जायेगा कृदन्त या तद्धित वृत्तिक नहीं. अध्येताओंकेलिये, परन्तु, उपसर्गके साथ होते समासोंमें कहीं-कहीं पूर्वकृदन्तवृत्ति दिखानेकेलिए कृद्+स ऐसे दिया गया है.

४. एकशेषवृत्तिः (एक.)

जब दो या दो से अधिक पदों (या शब्दों) में एक शेष रह जाता है तो वह अवशिष्ट सबका बोधक होता है. यथा

विदिता च विदितश्च विदितौ

सा च स च तौ

माता च पिता च पितरौ. यहां 'पितरौ' शब्द ही अवशिष्ट रह जाता है. इस प्रकार प्रस्तुत शब्दमें माता-पितारूप दोनों अर्थोंका **एकार्थी भावसे बोध होता है.**

५.समासवृत्तिः (स)

जैसे 'व्रजाधिपः' (पूर्वमें निर्दिष्ट प्रकारसे समझ लेना चाहिये) इसमें दो या दोसे अधिक पद या शब्द मिलकर परस्पर सम्बद्ध एकार्थीभावरूप विशिष्ट अर्थको बताते हैं.

५. शब्दरूपपरिचय (श.रू.प.)

प्रथमासे सप्तमी पर्यन्त सात विभक्तियां होती हैं. सुप् प्रत्ययोंकी 'विभक्ति' सञ्ज्ञा होती है. अब हिन्दी आदि भाषाओंमें से-को-द्वारा-ने आदि अव्ययोंका शब्दसे पृथक् प्रयोग किया जाता है परन्तु संस्कृतमें ये सब शब्दके साथ ही प्रयुक्त होते हैं, पृथक् नहीं. यथा - "नमस्कृत्य

हरिं वक्ष्ये'' (बाल.१) यहां हरिं = हरि को, इस प्रकार 'को' का अर्थ 'अम्' विभक्तिके द्वारा निकल रहा है जो कि 'हरि'शब्दसे जुड़ी हुई है. सभी विभक्तियोंके अर्थ आदिका निरूपण 'कारकविचार'में किया गया है. प्रत्येक विभक्तिमें ३ वचन होते हैं. वस्तु या व्यक्तिके एक (१) होने पर एकवचन-(ए), दो (२) होने पर द्विवचन-(द्वि) तथा तीन (३) या अधिक होने पर बहुवचन-(ब) का प्रयोग किया जाता है. सभी सुबन्त शब्द तीन लिङ्गोंमें विभक्त होते हैं. पुलिङ्ग (पुं), स्त्रीलिङ्ग (स्त्री) तथा नपुंसकलिङ्ग (नपुं). लिङ्गमें नियामक संस्कृतके नियम ही होते हैं, अतः लिङ्गका ज्ञान संस्कृत अध्ययनके अन्तर ही सही ढंगसे हो पाता है. 'देवता'शब्द संस्कृतमें स्त्रीलिङ्ग माना गया है और स्त्रीवाची 'दारा'शब्द पुलिङ्ग. इसी प्रकार मित्रवाची 'मित्र'शब्द संस्कृतमें नपुंसकलिङ्ग है. अतः लिङ्गज्ञान संस्कृतभाषाके अध्ययनके अनन्तर ही सही प्रकारसे हो सकता है.

कारकपरिचय

कर्ता कर्म च करणं सम्प्रदानं तथैव च।।
अपादानाधिकरणम् इत्याहु कारकाणि षट्।। १ ।।
निर्देशे प्रथमा प्रोक्ता सैव चामन्त्रणेष्वपि।।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्ता तृतीयाऽनुक्तकर्तरि। २ ।।
करणे हेतावपि ज्ञानवाप्येऽङ्गविकृतौ तथा।।
तादर्थ्ये सम्प्रदाने च चतुर्थी स्याच्च सर्वदा।। ३ ।।
हेत्वापादानयोः पञ्चमी, षष्ठी कर्तृ-करणयोः ।।
अधिकरण-निमित्तत्वे सप्तमी विषयेऽपि च।। ४ ।।

''क्रियां करोति निर्वर्तयति इति कारकम्''. जो क्रियाको

सिद्ध करे — निष्पादित करे उसे 'कारक' कहते हैं. इसीलिये कारकका लक्षण ''क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्'' इस प्रकार वैयाकरण करते हैं. [१]कर्ता, [२]कर्म, [३]करण, [४]सम्प्रदान, [५]अपादान और [६]अधिकरण ये ६ 'कारक' कहलाते हैं. इनसे किसी-न-किसी रूपमें क्रियाकी निष्पत्ति होती है. षष्ठी विभक्ति सम्बन्धका बोध कराती है. अतः इस विभक्तिको कारक नहीं माना जाता है क्योंकि वह क्रियाकी निष्पत्तिमें साक्षात् उपयोगी नहीं है. जैसे ''कृष्णस्य पिता गच्छति'' वाक्यमें कृष्णका गमनक्रियाकी सिद्धिमें कोई साक्षात् योगदान नहीं है.

कारकोंके भेद और उदाहरण

१. कर्ता (स्वतन्त्रः कर्ता. कर्तरि प्रथमा निर्देशे आमन्त्रणेषु अपि)

क्रियामें स्वतन्त्रता पूर्वक व्यवहारयोग्य विषय 'कर्ता' कहलाता है और कर्तामें प्रथमा विभक्ति होती है. उदा -

''**कृष्णः** गच्छति''

यहां कृष्ण द्वारा गमनक्रियाकी निष्पत्ति हो रही है अतः कृष्ण कतृकारक है. यहां यह ध्यातव्य है कि मुख्य कारक कर्ता ही होता है क्योंकि क्रिया उसके ही अधीन हुआ करती है. अन्य कारक क्रियासाधक कर्ता के अधीन रहकर ही क्रियाकी सिद्धि करते हैं अतः वे भी कारक कहलाते हैं. निर्देश और आमन्त्रण के उदा.

प्रथमाके ग्रन्थान्तर्गत उदाहरण :

यमुने सदा नमः अस्तु. (यमु.६),

यथा **भक्तिः** प्रवृद्धा स्यात् तथा उपायो निरूप्यते. (भ.व.१).

विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथा **आश्रयः** (रक्षणीयः). (वि.धै.१)

२. **कर्म (कर्तुः ईप्सिततमं कर्म. कर्मणि द्वितीया) -**

कर्ता क्रिया द्वारा जिसे विशेषरूपसे प्राप्त करना चाहता है उस कारककी 'कर्म' सञ्ज्ञा होती है. कर्मकी विवक्षामें द्वितीया विभक्ति होती है. उदाहरणतया,

''बालकः **फलं** भक्षति''.

यहां कर्ता-बालक भक्षणक्रियाके द्वारा फलको प्राप्त करनेकी विशेष इच्छा रखता है. अतः 'फल'की 'कर्म' सञ्ज्ञा होकर उसमें द्वितीया विभक्ति होती है. द्वितीयाके ग्रन्थान्तर्गत उदाहरण :

अहं **यमुनाम्** मुदा नमामि. (यमु.१)

हरिं नत्वा **स्वसिद्धान्तविनिश्चयम्** प्रवक्ष्यामि. (सि.मु.१)

३. करण (साधकतमं करणं, कर्तृ-करणयोः तृतीया तथा हेतौ ज्ञानवाप्ये अङ्गविकृतौ अपि) -

क्रियाकी सिद्धिमें अतिशय उपकारक कारक 'करण' कहलाता है. कर्ता और करण में तृतीया विभक्ति होती है. उदाहरणतया,

असिना छिनत्ति

यहां छेदनक्रियामें तलवार निमित्त बन रही है वह करण कारक है. कर्ताकेलिए उदाहरण -

रामेण वाली हतः.

अङ्गविकृतिकेलिए उदाहरण -

अक्ष्णा काणः.

हेतुमें (कारण बोधक शब्दोमें) भी तृतीया होती है. उदाहरणतया -

सः **अध्ययनेन** वसति

विद्यया यशः भवति

तृतीयाके ग्रन्थान्तर्गत उदाहरण :

अतस्तु **ब्रह्मवादेन** कृष्णे बुद्धिः विधीयताम् (सि.मु.१२).
अव्यावृत्तः **पूजया श्रवणादिभिः कृष्णं भजेत् (भ.व.२).**
हरिणा ये विनिर्मुक्ताः ते भवसागरे मग्ना (भवन्ति) (नि.ल.११).

४. सम्प्रदानम् (दानस्य कर्मणा यम् अभिप्रैति स सम्प्रदानम्. सम्प्रदाने चतुर्थी तादर्थ्ये अपि) -

कर्ता देनेकी क्रियाका कर्म जिसे देना चाहता हो उसे 'सम्प्रदान' कारक है. सम्प्रदानमें चतुर्थी विभक्ति होती है. उदाहरणतया,

राजा **विप्राय** गां ददाति.

यहां दानक्रियाकी निष्पत्तिमें विप्र निमित्त है वह सम्प्रदान कारक है.

तादर्थ्य चतुर्थीका उदाहरण

बालः दुग्धाय क्रन्दति.
त्वं **धनाय** प्रयतसे.

चतुर्थीकि ग्रन्थान्तर्गत उदा -

श्रीगुरवे नमः (मङ्गला.३).

५. अपादानम् (ध्रुवमपाये अपादानम्, अपादाने पञ्चमी तथा हेतौ अपि) -

दो के बीच होती विश्लेषकी क्रियामें जो ध्रुव (स्थिर) हो उसकी 'अपादान' सञ्ज्ञा होती है. अपादानमें पञ्चमी विभक्ति होती है. उदाहरणतया,

वृक्षात् पर्णं पतति.

यहां पतन क्रियामें वृक्षसे पर्ण अलग होता है अतः स्थिर वृक्ष अपादान कारक है. हेतुनिर्देशकेलिये भी पञ्चमी होती है. उदाहरणतया,

जाड्यात् बद्धः.

पञ्चमिके ग्रन्थान्तर्गत उदाहरण -

कृष्णात् परं वस्तुतः दोषवर्जितम् दैवं नास्ति (अ.प्र.१).

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिः हि भवति (सि.र.२).

तस्मात् सर्वात्मना नित्यं "श्रीकृष्णशरणं मम" वदद्भिरेव सततं स्थेयम् (नव.९).

६. अधिकरणम् (आधारो अधिकरणम्, सप्तमी अधिकरणे निमित्तत्वे विषये अपि च) -

क्रियाका आधार 'अधिकरण' कहलाता है और अधिकरणमें सप्तमी होती है. उदाहरणतया,

भूमौ शेते.

यहां शयनक्रियाकी सिद्धिमें भूमि आधार है वह अधिकरण कारक है.

आधार तीन प्रकारके होते हैं

१. औपश्लेषिक : जिसके साथ आधेयका भौतिक संश्लेष हो. उदाहरणतया,

आसने उपविशति.

२. वैषयिक : जिसके साथ आधेयका व्याप्य-व्यापक संश्लेष हो.

उदाहरणतया.

ज्ञाने इच्छास्ति. तथा

३. **अभिव्यापक :** जिसके साथ आधेयका व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध हो. उदाहरणतया,

तिलेषु तैलम्.

निमित्तमें भी सप्तमी होती है. उदाहरणतया,

चर्मणी द्वीपिनम् हन्ति.

किसी कार्यके हो जाने पर जब दूसरे कार्यका होना प्रतीत होता है तब जो कार्य हो चुका है उसमें भी सप्तमी होती है. उदा -

सूर्ये उदिते कमलं प्रकाशते.

सप्तमीके ग्रन्थान्तर्गत उदा -

आत्मनि ब्रह्मरूपे तु छिद्रा **व्योम्नि** इव चेतना (सि.मु.१२).

ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी **पूजोत्सवादिषु** तिष्ठेत्.

मर्यादास्थः तु **गंगायां** श्रीभागवततत्परः (सन्) तिष्ठेत्. (सि.मु.१७).

हरिः तु **लोके** तथा **वेदे** स्वास्थ्यं न करिष्यति.(न.र.६).

७. षष्ठी (कारकप्रातिपादिकार्थव्यतिरिक्तो यः सम्बन्धः स शेषः उच्यते. शेषे षष्ठी.) -

कारक और प्रातिपदिकार्थ से अतिरिक्त जो स्वस्वामिभावादि सम्बन्ध उसे 'शेष' कहते हैं. शेषमें षष्ठी विभक्ति होती है. उदाहरणतया ''धनस्य दानम्''.

सप्तमीके ग्रन्थान्तर्गत उदा -

सेवकस्य तु अयं धर्मः (अस्ति) स्वामी **स्वस्य** (धर्मः) करिष्यति (अ.प्र.५).

संसारावेशदुष्टानाम् इन्द्रियाणां हिताय सर्ववस्तूनि **भूम्नः ईशस्य कृष्णस्य** वै योजयेत् (नि.ल.१२).

एक सामान्य परन्तु उपयोगी सूची, जिससे साधारण व्यक्ति भी इन कारकोंको कब तथा कैसे प्रयोग किया जाय यह समझ सकता है वह, दी जा रही है.

हिन्दी वाक्योंमें प्रयुक्त इन चिह्नोंको देखकर वहां कौनसा कारक है तथा उसके अनुसार कौनसी विभक्ति लगेगी यह सामान्यतया समझा जा सकता है.

क्रम	विभक्ति	कारक	चिन्ह
१	प्रथमा	कर्ता	ने
२	द्वितीया	कर्म	को
३	तृतीया	करण	ने,से,द्वारा
४	चतुर्थी	सम्प्रदान	केलिये
५	पञ्चमी	अपादान	से
६	षष्ठी	सम्बन्ध	का,के,की
७	सप्तमी	अधिकरण	में,पर
८	सम्बोधन	सम्बोधन	हे,अये,भो

प्रकृतिप्रत्ययविभाग

वैयाकरणोंके मतमें वाक्य एक है, अवयव रहित है. वाक्यमें अवयवोंकी कल्पना पद, वर्ण आदि रूपमें बादमें की

गई है. जैसे एक चित्रको देखते समय प्रथम वह अपने अखण्ड रूपमें हमारे सामने आता है उसके बाद ही हमारी दृष्टिमें उसके रङ्ग, रेखाएं आदि आते हैं और उस चित्रके भिन्न - भिन्न भागोंमें हमारी दृष्टि केन्द्रित होती है, उसी तरह वाक्य यद्यपि निरवयव है निराकाङ्क्ष है तथापि सरलतया समझनेकी दृष्टिसे उसमें पदोंकी कल्पना की जाती है उसी तरह पदोंको सरलतासे समझनेकेलिये उनमें प्रकृति तथा प्रत्यय की कल्पना की जाती है. यह प्रकृति-प्रत्यय विभाग भी वैयाकरणोंके मतमें काल्पनिक ही है. इस प्रकार वाक्यका वास्तविक विभाग नहीं होता किन्तु यथा सम्भव शीघ्रबोध करानेकेलिये विभागका आश्रय लिया जाता है.

पद सदा ही प्रकृति और प्रत्यय से युक्त होता है. 'प्रकृति'का अर्थ है शब्दका मूल स्वरूप. प्रत्यय भी अपना एक अलग अर्थ रखता है (कभी कभी प्रत्यय स्वार्थमें भी होता है. 'स्वार्थ'का अर्थ है प्रकृतिका ही अर्थ. तब प्रकृति + प्रत्यय मिलकर भी केवल प्रकृत्यर्थका ही बोध कराते हैं). यथा **'भक्ति'**पदकी प्रकृति है— **'भज्'** सेवायाम् धातु (क्रिया); तथा इसमें **'क्तिन्'**प्रत्यय भाव अर्थका बोधन कराता है. प्रकृति-प्रत्यय दोनोंको मिलाकर अर्थ होता है : भावपूर्वक सेवा करना.

पदकी सिद्धिकेलिये व्याकरणमें आदेश, आगम आदिकी कल्पन भी की गई है. अतएव उन पारिभाषिक शब्दोंका बोध आगेके अध्ययनमें नितान्त उपकारक सिद्ध होगा.

आदेश - वह होता है जो किसी पद या वर्ण को हटाकर स्वयं उसके स्थान पर बैठ जाय. जैसे 'गोवर्धन**स्थित्युत्**साहः'में **स्थिति + उत्साहः** इन दोनों पदोंमें **यण्** सन्धि हुई है जो कि

'स्थिति' (स्थित् + इ)के **'इ'** को हटाकर **'य'** के रूपमें हमारे सामने लाती है. अतः **'आदेश'** शत्रुवत् कहा जाता है.

आगम - मित्रवत् होता है. वह किसी भी वर्ण-पदको हटाता नहीं है, बिना हटाये ही उसके साथ स्थिति कर लेता है. यथा - **षट् + सन्तः** (छः सज्जन) यहां ''ङःसि धुड्'' पाणिनीय सूत्र द्वारा **धुड् आगम** होता है जो **'षट् ध् सन्तः'** इस प्रकार किसीके भी स्थान पर न होकर मित्रवत् स्थिति कर लेता है (तत्पश्चात् जश्त्वादि होकर **'षट्त्सन्तः'** प्रयोग बनता है).

६. धातुरूपपरिचय (धा.रू.प)

क्रियाके मूलरूपको 'धातु'शब्दसे कहा जाता है. जैसे **'भक्ति'** शब्द **'भज् सेवायाम्'** धातुसे बना है. वैसे तो शब्द मात्र धातुसे ही उत्पन्न हुए हैं परन्तु यहां 'धा.रू.प.' में मात्र **तिङन्त** (तिङ् प्रत्यय जिनमें लगे हों वैसे) धातुरूपोंका ही परिचय देना इष्ट है.

संस्कृतभाषा में ९-लकार होते हैं. (वर्तनाम, भूत आदि सर्व काल आदिमें हुए लट्, लिट् आदि प्रत्ययोंको 'लकार' कहा जाता है. क्योंकि इन सभी ९ प्रत्ययोंमें 'ल' अवश्य आता है). इनके नाम तथा अर्थ इस प्रकार हैं—

१. **लट्** - वर्तमान काल
२. **लिट्** - परोक्ष भूत
३. **लुट्** - अनद्यतन भविष्य

४. लृट् - भविष्य काल
५. लोट् - आज्ञा आदि
६. लङ् - अनद्यतन भूत
७. लिङ् - इसके दो भेद है
    अ. आशीर्लिङ् - आशीर्वाद
    ब. विधिलिङ् - विधि आदि
८. लुङ् - सामान्य भूत
९. लृङ् - हेतुहेतुमद् भूत या भविष्य

इन सभी 'लकारों'में तीन पुरुष होते हैं जिन्हें क्रमशः
[१]प्रथम
[२]मध्यम तथा
[३]उत्तम
पुरुष कहा जाता है. इसी प्रकार प्रत्येक पुरुषमें तीन वचन होते हैं -
[१]एकवचन,
[२]द्विवचन तथा
[३]बहुवचन. जैसे -
'गम्' धातु (=जाना) वर्तमाने लट् लकार (परस्मैपदी) तालिका :

पुरुष	एकवचन	द्विवचन	बहुवचन
प्रथम.पु	(स) गच्छति	(तौ) गच्छतः	(ते)गच्छन्ति
मध्यम.पु	(त्वं) गच्छसि	(युवां) गच्छथः	(यूयं) गच्छथ
उत्तम.पु	(अहं) गच्छामि	(आवां) गच्छावः	(वयं) गच्छामः

धातुऐं तीन प्रकारकी होती हैं -
१.परस्मैपदी

२.आत्मनेपदी

३.उभयपदी (परस्मैपदी तथा आत्मनेपदी).

इन प्रकारोंमें रूप भी पृथक्-पृथक् होते हैं. 'गम्' धातु परस्मैपदी है. उसका उदाहरण उपर दिया गया है. 'एध्' धातु (वृद्धि) आत्मनेपदी है. उसका वर्तमाने लट्लकारमें उदाहरण निम्न प्रकार से है.

प्र.पु (स) एधते - (तौ) एधेते - (ते) एधन्ते
म.पु (त्वं) एधसे - (युवां) एधेथे - (यूयं) एधध्वे
उ.पु (अहं) एधे - (आवां) एधावहे - (वयं) एधामहे

इनमें पुरुष, वचन आदि पूर्ववत् समझ लेने चाहिये. उभयपदी धातुओंमें उपर्युक्त दोनों प्रकारके रूप एकही धातुमें चलते हैं. यथा 'कृ' धातु (=करना अर्थमें) प्रथम पुरुष वर्तमाने लट् का उदाहरण निम्न है.

परस्मैपदी - करोति - कुरुतः - कुर्वन्ति
आत्मनेपदी - कुरुते - कुर्वाते - कुर्वते

इसी प्रकार सभी लकारों मे ९-९ रूप बनेगें. सभी धातुएं १० गणोंमें बटी हुई हैं. सभी गणोंमें पृथक्-पृथक् प्रत्यय होनेके कारण रूपोंमें थोडा-बहुत अन्तर हो जाता है. ये विशेष प्रत्यय लट्, लोट्, लङ् तथा विधिलिङ् में ही होते हैं. अतः रूपोंमें अन्तर प्रायः इन्ही लकारोंमें होता है.

गणोंके नाम तथा वर्तमाने लट्लकारमें प्रथमपुरुषका उदाहरण निम्न है.

१.भ्वादिगण	गच्छति	गच्छतः	गच्छन्ति (गम=जाना)
२.अदादिगण	अत्ति	अत्तः	अदन्ति (अद्=खाना)
३.जुहोत्यादिगण	ददाति	दत्तः	ददति (दा=देना)
४.दिवादिगण	दीव्यति	दीव्यतः	दीव्यन्ति (दिवु=क्रिडादि)
५.स्वादिगण	सुनोति	सुनुतः	सुन्वन्ति (सुञ्=स्नानादि)
६.तुदादिगण	लिखति	लिखतः	लिखन्ति (लिख्=लिखना)
७.रुधादिगण	छिनत्ति	छिन्तः	छिन्दन्ति (छिद्=काटना)
८.तनादिगण	करोति	कुरुतः	कुर्वन्ति (कृञ्=करना)
९.क्रयादिगण	जानीते	जानाते	जानते (ज्ञा=ज्ञान)
१०.चुरादिगण	कथयति	कथयतः	कथयन्ति (कथ=कहना)

विशेष जिज्ञासुओंको इसका विस्तार संस्कृत व्याकरण ग्रन्थोमें देखना चाहिये. यहां अत्यन्त संक्षेपमें विषय निदर्शन किया गया है.

(कुछ अवधेय बातें)

१. प्रस्तुत ग्रन्थमें उपसर्ग 'आङ्'को 'आ' ही लिखा गया है.

२. गतिसमास, प्रादिसमास, उपसर्ग समास आदिकी प्रक्रिया काठिन्य तथा विस्तारभय से नहीं बताई गयी है परन्तु वृत्तिपरिचयमें उनका समासतया उल्लेखमात्र कर दिया गया है. इसी प्रकार 'श्रीपुरुषोत्तमे' (नव.५) आदि स्थलोमें 'श्री'के साथ भी समासका उल्लेख नहीं किया गया है क्योंकि सर्वत्र समास मध्यमपदलोपी ही होगा-श्री सहितः पुरुषोत्तमः = श्रीपुरुषोत्तमः, श्री सहितः वल्लभः = श्रीवल्लभः आदि. अतः केवल वृ.प.में उल्लेख कर दिया गया है.

३. यद्यपि प्रस्तुत ग्रन्थमें अन्वय आदिको सन्धिविग्रह करके दर्शाया गया है तथा 'एव' इत्यादिको पृथक् नहीं किया गया है. किन्तु

कर्मधारय समासमें विग्रहगत 'एव' पृथक् ही रखा गया है, विग्रहके स्वरूपको समझनेकी दृष्टिसे. यथा

मर्यादा एव मार्गः = मर्यादामार्गः (पु.प्र.म)

४. इसी प्रकार 'च'कारका सन्धिविग्रह अन्यत्र दर्शाया गया है परन्तु द्वन्द्व तथा कर्मधारय समासमें ऐसा नहीं किया गया है. उच्चारण विचित्र हो जानेसे सन्धियुक्त ही रखा गया है यथा - भुक्तिश्च मुक्तिश्च इति भुक्तिमुक्ती (द्वन्द्व.-सि.मु.६) तथा सहजश्चासौ सुन्दरश्च इति सहजसुन्दरः (कर्म.-सर्वो.३२).

५. विस्तारभयसे ही सं.वि. में 'मोनुस्वार सन्धि' नहीं दर्शायी गयी है. उसका नियम सन्धिनियम ३० के अन्तर्गत दर्शाया गया है.

६. श्रीसर्वोत्तमस्तोत्र तथा श्रीनामरत्नाख्यस्तोत्र में शब्दपरिचय नहीं दिया गया है. प्रायः सभी शब्दोंके 'नाम' होने से. जहां-जहां निपात या उपसर्ग हैं वहां लिख दिया गया है.

७. 'प्रौढा' (अन्तः.८) में वृद्धि सन्धि 'प्र + ऊढा' इस स्थिति में ''प्राइहोढोढ्येषैष्येषु'' वार्तिक द्वारा हुई है.

८. 'संस्कारतः' (सा.प्र.६) शब्दमें सन्धि निम्न प्रकारसे हुई है. 'सम् + कार' इस स्थितिमें ''सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे'' इस सूत्रद्वारा सुट् आगम होगा. तत्पश्चात् 'सम् स् कारः' बनने पर 'समः सुटि' सूत्रसे 'म्' को 'रु' होगा. 'स रु स् कारः' बनने पर अनुनासिक या अनुस्वार कोई भी एक विकल्पसे करने पर- 'सं रु स् कारः' (या सँ रु स् कार) बनेगा. तत्पश्चात् नि.१९

से रु को विसर्ग ओर विसर्गोको ''संपुंकानां सो वक्तव्यः'' वार्तिकद्वारा विसर्ग होने पर 'संस्कारः' या 'सँस्कारः' रूप सिद्ध हो जाएगा.

९. 'प्राणैः' (सा.प्र.४७) में सन्धि विच्छेद प्र + आणैः इस प्रकार दर्शाया गया है. यद्यपि यहां सन्धि विच्छेद नहीं किया जा सकता. परन्तु मात्र समझनेकी दृष्टिसे सन्धिविच्छेद दर्शादिया है.

१०. युष्मद् तथा अस्मद् शब्दोंमें लिङ्गभेद न होनेसे इन शब्दोंमें लिङ्ग नहीं लिखा गया है. तीनों लिङ्गोमें इन शब्दोंके एक समान रूप चलते हैं.

गोस्वामी पङ्कज
(माण्डवी - गोकुल)

पुष्टिविधानानुक्रमणिका

क्रम	ग्रन्थ	पृष्ठ
१	मङ्गलाचरणम्	१
२	श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रम्	१९
३	श्रीवल्लभाष्टकम्	६०
४	श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रम्	८०
५	नामरत्नाख्यस्तोत्रम्	९५
६	श्रीयमुनाष्टकम्	१३०
७	बालबोध:	१४९
८	सिद्धान्तमुक्तावली	१६६
९	पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेद:	१८७
१०	सिद्धान्तरहस्यम्	२०९
११	नवरत्नम्	२१८
१२	अन्त:करणप्रबोध:	२२८
१३	विवेकधैर्याश्रय:	२३८
१४	कृष्णाश्रयस्तोत्रम्	२५३
१५	चतु:श्लोकी	२६६
१६	भक्तिवर्धिनी	२७१
१७	जलभेद:	२८४
१८	पञ्चपद्यानि	३१०
१९	सन्न्यासनिर्णय:	३१७
२०	निरोधलक्षणम्	३३७

२१	सेवाफलम्	३५३
२२	पञ्चश्लोकी	३६१
२३	साधनप्रकरणम्	३६७
२४	शिक्षापद्यानि	४११
२५	साधनदीपिका	४१७
२६	चतुःश्लोकी	५१८

॥ मङ्गलाचरणम् ॥

(१)

(आचार्यचरणवन्दनम्)

चिन्ता-सन्तान-हन्तारो   यत्पादाम्बुज-रेणवः ॥
स्वीयानां तान् निजाचार्यान् प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥१॥

सन्धिविच्छेद :

सम् + तान = सन्तान [प.स.]

हन्तारः + यत् = हन्तारो यत् [उ.गुण.]

पाद + अम्बुज = पादाम्बुज [दीर्घ.]

निज + आचार्यान् = निजाचार्यान् [दीर्घ.]

मुहुः + मुहुः = मुहुर्मुहुः [रेफ.]

समासविग्रह :

- चिन्तायाः सन्तानः इति चिन्तासन्तानः [प.तत्पु.]
  चिन्तासन्तानानां हन्ता इति चिन्तासन्तानहन्ता [प.तत्पु.]
  ते चिन्तासन्तानहन्तारः
- पादौ एव अम्बुजे इति पादाम्बुजे [कर्म]
  पादाम्बुजयोः रेणवः इति पादाम्बुजरेणवः [प.तत्पु.]
  यस्य पादाम्बुजरेणवः इति यत्पादाम्बुजरेणवः [प.तत्पु.]
- निजश्चासौ आचार्यश्च इति निजाचार्यः [कर्म.] तान् निजाचार्यान्

शब्दपरिचय :

चिन्ता-सम् [उ.] तान-हन्तारः [ना.]

यत्पादाम्बुज-रेणवः [ना.]

स्वीया नाम् [ना.] तान् [ना.]

निज-आ [उ.] चार्यान् [ना.]

प्र [उ.] णमामि [आ.]

मुहुः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

चिन्तासन्तानहन्तारः [म.] स्वीयानाम् [तद्धि.]

यत्पादाम्बुजरेणवः [म.] निजाचार्यान् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

चिन्ता-सन्तान-हन्तारः - अ.ऋ.पुं.प्र.ब. तान् - ह.द.पुं.द्वि.ब.

यत्पादाम्बुजरेणवः - अ.उ.पुं.प्र.ब. निजाचार्यान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.

स्वीयानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

धातुरूपपरिचय : प्रणमामि - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : यत्पादाम्बुजरेणवः स्वीयानां चिन्तासन्तानहन्तारः (सन्ति) तान् निजाचार्यान् मुहुः मुहुः प्रणमामि॥१॥

(प्रभुचरणवन्दनम्)

यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत्॥
तमहं सर्वदा वन्दे श्रीमद्-वल्लभ-नन्दनम्॥२॥

सन्धिविच्छेद :

अनुग्रहतः+ जन्तुः = अनुग्रहतो जन्तुः [उ.गुण.] अतिगः + भवेत् = अतिगो भवेत् [उ.गुण.]

दुःख + अतिगः = दुःखातिगः [दीर्घ.] श्रीमत् + वल्लभ = श्रीमद्वल्लभ [जश्त्व.]

समासविग्रह :

- यस्य अनुग्रहः इति यदनुग्रहः [ष.तत्पु.] तस्मात् यदनुग्रहतः [पं.तसि.]
- सर्वाणि च तानि दुःखानि च इति सर्वदुःखानि [कर्म.]
  अतिक्रम्य गच्छति इति अतिगः [उप.स.]
  सर्वदुःखाणाम् अतिगः इति सर्वदुःखातिगः [ष.तत्पु.]

- श्रीमान् च असौ वल्लभः इति श्रीमद्वल्लभः [कर्म]
तस्य नन्दनः इति श्रीमदवल्लभनन्दनः [ष तत्पु] तं श्रीमद्वल्लभनन्दनम्

शब्दपरिचय :

यद्-अनु [उ] ग्रहतः [नि]	भवेत् [आ.]	सर्वदा [नि]
जन्तुः [ना.]	तम् [ना.]	वन्दे [आ.]
सर्वदुःख-अति [उ] गः [ना.]	अहम् [ना.]	श्रीमद्-वल्लभ-नन्दनम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

यदनुग्रहतः [तद्धि.]	सर्वदा [तद्धि.]
सर्वदुःखातिगः [स.]	श्रीमद्वल्लभनन्दनम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

जन्तुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.	अहम् - ह.द.प्र.ए.
सर्वदुःखातिगः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	श्रीमद्-वल्लभ-नन्दनम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
तम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.	

धातुरूपपरिचय : भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. **वन्दे** - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : यदनुग्रहतो जन्तुः सर्वदुःखातिगो भवेत् तं श्रीमद्वल्लभनन्दनम् अहं सर्वदा वन्दे ॥२॥

(गुरुवन्दनम्)

अज्ञान-तिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जन-शलाकया ॥
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे **नमः** ॥३॥

सन्धिविच्छेद :

तिमिर + अन्धस्य = तिमिरान्धस्य [दीर्घ] ज्ञान + अञ्जन = ज्ञानाञ्जन [दीर्घ.]

चक्षुः + उन् = चक्षुरुन् [रेफ]   उत् + मीलितम् = उन्मीलितम् [अनुना.]

समासविग्रह :

- न ज्ञानम् इति अज्ञानम् [न.तत्पु.] अज्ञानम् एव तिमिरम् इति अज्ञानतिमिरम् [कर्म]
  अज्ञानतिमिरेण अन्धः इति अज्ञानतिमिरान्धः [तृ.तत्पु.]
  तस्य अज्ञानतिमिरान्धस्य
- अञ्जनस्य शलाका इति अञ्जनशलाका [ष.तत्पु.]
  ज्ञानम् एव अञ्जनशलाका इति ज्ञानाञ्जनशलाका [कर्म]
  तया ज्ञानाञ्जनशलाकया

शब्दपरिचय :

अज्ञानतिमिरान्धस्य [ना.]   चक्षुः [ना.]   येन [ना.] तस्मै [ना.]
ज्ञानाञ्जनशलाकया [ना.]   उत् [उ.] मीलितम् [ना.]   श्रीगुरवे [ना.] नमः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

(अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया, उन्मीलितम्, श्रीगुरवे) [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अज्ञानतिमिरान्धस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.   उन्मीलितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
ज्ञानाञ्जनशलाकया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.   येन - ह.द.पुं.तृ.ए.   तस्मै - ह.द.पुं.च.ए.
चक्षुः - ह.स.नपुं.प्र.ए.   श्रीगुरवे - अ.उ.पुं.च.ए.

अन्वय : अज्ञानतिमिरान्धस्य चक्षुः येन ज्ञानाञ्जनशलाकया उन्मीलितं तस्मै श्रीगुरवे नमः (अस्तु) ॥३॥

(भगवद्वन्दनम्)

नमामि हृदये शेषे लीला-क्षीराब्धि-शायिनम् ॥

लक्ष्मी-सहस्र-लीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिम् ॥४॥
चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च त्रिभिस्तथा ॥
षड्भिर्विराजते योऽसौ पञ्चधा हृदये मम ॥५॥

सन्धिविच्छेद :

क्षीर + अब्धि = क्षीराब्धि [दीर्घ] षड्भिः + विराजते = षड्भिर्विराजते [रेफ.]
चतुर्भिः + च = चतुर्भिश्च [स.श्चु.] यः + असौ = योऽसौ [उ.पू.रू.]
त्रिभिः + तथा = त्रिभिस्त था [स.]

समासविग्रह :

- लीला क्षीरम् इव इति लीलाक्षीरम् [कर्म] वा
  लीलैव क्षीरम् इति लीलाक्षीरम् [कर्म]
- लीलाक्षीरस्य अब्धिः इति लीलाक्षीराब्धिः [ष.तत्पु.]
- तस्मिन् शेते इति लीलाक्षीराब्धिशायी [उप.स.] तं लीलाक्षीराब्धिशायिनम्
- लक्ष्मीणां सहस्रम् इति लक्ष्मीसहस्रम् [ष.तत्पु.]
  लक्ष्मीसहस्रं च लीलाश्च लक्ष्मीसहस्रलीलाः [द्वन्द्व.]
  ताभिः लक्ष्मी-सहस्र-लीलाभिः
- कलायाः निधिः इति कलानिधिः [ष.तत्पु.] तं कलानिधिम्.

शब्दपरिचय :

नमामि [आ.]	कला-नि [उ.]धिम् [ना.]	वि [उ.]राजते [आ.]
हृदये [ना.] शेषे [ना.]	चतुर्भिः [ना.]	यः [ना.] असौ [ना.]
लीलाक्षीराब्धिशायिनम् [ना.]	च [नि.] त्रिभिः [ना.]	पञ्चधा [नि.]
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः [ना.]	तथा [नि.]	हृदये [ना.]
सेव्यमानम् [ना.]	षड्भिः [ना]	मम [ना.]

वृत्तिपरिचय :

लीलाक्षीराब्धिशायिनम् [स.] लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः [स] सेव्यमानम् [कृद.]

कलानिधिम्[स.]   तथा[तद्धि]   पञ्चधा[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

हृदये - अ.अ.नपुं.स.ए.
शेषे - अ.अ.नपुं.स.ए.
लीलाक्षीराब्धिशायिनम् - ह.न.पुं.द्वि.ए.
लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः - अ.आ.स्त्री.तृ.ब.
सेव्यमानम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
कलानिधिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.
चतुर्भिः - ह.र.पुं.तृ.ब.
चतुर्भिः
त्रिभिः - अ.इ.पुं.तृ.ब.
षड्भिः - ह.ष.पुं.तृ.ब.
यः - ह.द.पुं.प्र.ए.
असौ - ह.स.पुं.प्र.ए.
हृदये - अ.अ.नपुं.स.ए.
मम - ह.द.ष.ए.

धातुरूपपरिचय : नमामि - भ्वा.लट्.उ.ए.   राजते - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : हृदये शेषे लीलाक्षीराब्धिशायिनं लक्ष्मीसहस्रलीलाभिः सेव्यमानं कलानिधिं (अहं) नमामि. यः असौ चतुर्भिः च चतुर्भिः च चतुर्भि च त्रिभिः तथा षृडभिः (इति) पञ्चधा मम हृदये विराजते (तं नमामि) ।।४-५।।

(श्रीमहाप्रभु[१-८.] श्रीप्रभुचरण[९-१०.] प्रादुर्भावितस्वरूपादीनां ध्यानम्)

श्रीगोवर्धन-नाथ[१]-पाद-युगलं   हैयङ्गवीन-प्रियं[२]
नित्यं श्रीमथुराधिपं[३.] सुखकरं श्रीविठ्ठलेशं[४] मुदा।।
श्रीमद्द्वारवतीश-गोकुलपती[५-६] श्रीगोकुलेन्दुं[७] विभुं
श्रीमन्मन्मथमोहनं[८] नटवरं[९] श्रीबालकृष्णं[१०] भजेत्।।६।।

सन्धिविच्छेद :

श्रीमथुरा + अधिपम् = श्रीमथुराधिपम्[दीर्घ]
श्रीविठ्ठल + ईशम् = श्रीविठ्ठलेशम्[गुण]
द्वारवती + ईशः = द्वारवतीशः[दीर्घ.]
गोकुल + इन्दुम् = गोकुलेन्दुम्[गुण.]
श्रीमत् + मन्मथ= श्रीमन्मन्मथ[अनु.]

समासविग्रह :

- पादस्य युगलम् इति पादयुगलम् [ष.तत्पु.] श्रीगोवर्धननाथस्य पादयुगलम् इति श्रीगोवर्धननाथपादयुगलम् [ष.तत्पु.]
- हैयङ्गवीनं प्रियं यस्य सः हैयङ्गवीनप्रियः [बहु.] तम्
- सुखं करोति इति सुखकरः [उप.स.] तम्
- श्रीमान् चासौ द्वारवतीशश्च इति श्रीमद्द्वारवतीशः [कर्म]
- श्रीमद्द्वारवतीशश्च गोकुलपतिश्च इति श्रीमद्द्वारवतीश-गोकुलपती [द्वन्द्व.]
- (मत्=बुद्धिः) मतो मथः इति मन्मथः [ष.तत्पु.]
  मन्मथस्य मोहनः इति मन्मथमोहनः [ष.तत्पु.]
  श्रीमान् च असौ मन्मथमोहनश्च इति श्रीमन्मन्मथमोहनः [कर्म] तं श्रीमन्मन्मथमोहनम्

शब्दपरिचय :

श्रीगोवर्धननाथपादयुगलम् [ना.] सुखकरम् [ना.] वि [उ.]भुम् [ना.]
हैयङ्गवीनप्रियम् [ना.] श्रीविठ्ठलेशम् [ना.] मुदा [नि.] श्रीमन्मन्मथमोहनम् [ना.]
नित्यम् [नि.] श्रीमद्द्वारवतीशगोकुलपती [ना.] नटवरम् [ना.] भजेत् [आ.]
श्रीमथुराअधि [उ.]पम् [ना.] श्रीगोकुलेन्दुम् [ना.] श्रीबालकृष्णम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

(श्रीगोवर्धननाथपादयुगलम्, हैयङ्गवीनप्रियम्, श्रीमथुराधिपम्, सुखकरम्, श्रीविठ्ठलेशम्, मदद्वारवतीश-गोकुलपती, श्रीगोकुलेन्दुम्, विभुम्, श्रीमन्मन्मथमोहनम्, नटवरम्, श्रीबालकृष्णम्) [स.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीगोवर्धन-नाथ-पाद-युगलम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
(हैयङ्गवीनप्रियम्, श्रीमथुराधिपम्, सुखकरं, श्रीविठ्ठलेशम्, श्रीमन्मन्मथमो-हनम, नटवरम्, श्रीबालकृष्णम्) - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

श्रीमद्द्वारवतीश-गोकुलपती - अ.इ.पुं.द्वि.द्वि.
श्रीगोकुलेन्दुम्, विभुम् - अ.उ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : श्रीगोवर्धननाथपादयुगलं हैयङ्गवीनप्रियं श्रीमथुराधिपं सुखकरं श्रीविट्ठलेशं श्रीमद्द्वारवतीश-गोकुलपती श्रीगोकुलेन्दुं विभुं श्रीमन्मन्मथमोहनं नटवरं श्रीबालकृष्णं मुदा नित्यं भजेत्॥६॥

(श्रीवल्लभादि-स्वीयप्रभ्वन्तानां पंचदशानां ध्यानम्)

श्रीमद्वल्लभ-विट्ठलौ गिरिधरं गोविन्दरायाभिधं
श्रीमद्बालककृष्ण-गोकुलपती नाथं रघूणांस्तथा॥
एवं श्रीयदुनायकं किल घनश्यामं च तद्वंशजान्
कालिन्दीं स्वगुरुं गिरिं गुरुविभुं स्वीयप्रभूंश्च स्मरेत्॥७॥

सन्धिविच्छेद :

श्रीमत् + वल्लभ = श्रीमद्वल्लभ[जश्त्व.]   रघूणाम् + तथा = रघूणांस्तथा[प.स.अनु.]
राय + अभिधम् = रायाभिधम्[दीर्घ.]   स्वीयप्रभून् + च = स्वीयप्रभूंश्च[प.स.अनु.]

समासविग्रह :

- वल्लभश्च विट्ठलश्च इति वल्लभविट्ठलौ[द्वन्द्व.]
  श्रीमन्तौ च अमू वल्लभविट्ठलौ च इति श्रीमद्वल्लभविट्ठलौ[कर्म]
- गोविन्दरायः इति अभिधा यस्य सः गोविन्दरायाभिधः[बहु.]
  तं गोविन्दरायाभिधम्
- बालककृष्णश्च गोकुलपतिश्च इति बालककृष्णगोकुलपती[द्वन्द्व]
  श्रीमन्तौ च अमू बालककृष्णगोकुलपती इति श्रीमद्बालक-कृष्णगोकुलपती[कर्म.]

- यदूनां नायकः इति यदुनायकः [प.तत्पु] तम्
- तेषां वंशः इति तद्वंशः [प.तत्पु] तद्वंशे जाताः इति तद्वंशजाः [उप.स.] तान् तद्वंशजान्
- स्वस्य गुरुः इति स्वगुरुः [प.तत्पु] तं स्वगुरुम्
- गुरोः विभुः इति गुरुविभुः [प.तत्पु.] तं गुरुविभुम्
- स्वीयश्च असौ प्रभुश्च इति स्वीयप्रभुः [कर्म] तान्

शब्दपरिचय :

श्रीमद्वल्लभ-विट्ठलौ [ना.]	गिरिधरम् [ना.]	
गोविन्दराय-अभि [उ.] धम् [ना.]	श्रीमद्बालककृष्ण-गोकुलपती [ना.]	
नाथम् [ना.]	किल [नि.]	स्वगुरुम् [ना.]
रघूणाम् [ना.]	घनश्यामम् [ना.]	गिरिम् [ना.] गुरु-वि [उ.] भुम् [ना.]
तथा [नि.] एवम् [नि.]	च [नि.] तद्वंशजान् [ना.]	स्वीय-प्र [उ.] भून् [ना.]
श्रीयदुनायकम् [ना.]	कालिन्दीम् [ना.]	स्मरेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

(श्रीमद्वल्लभ-विट्ठलौ, गिरिधरम्, गोविन्दरायाभिधम्, श्रीमद्बालककृष्ण-गोकुलपती, श्रीयदुनायकम्, घनश्यामम्, तद्वंशजान्, स्वगुरुम्, गुरुविभुम्, स्वीयप्रभून्) [स.] तथा [तद्धि.] कालिन्दीम् [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

(गिरिधरम्, गोविन्दरायाभिधम्, नाथम्, श्रीयदुनायकम्, घनश्यामम्) - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

(स्वगुरुम्, गिरिम्, गुरुविभुम्, स्वीयप्रभून्) - अ.उ.पुं.द्वि.ब.

श्रीमद्वल्लभविट्ठलौ - अ.अ.पुं.द्वि.द्वि.

रघूणाम् - अ.उ.पुं.ष.ब.   श्रीमद्बालककृष्णगोकुलपती - अ.इ.पुं.द्वि.द्वि.

तद्वंशजान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.   कालिन्दीम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : स्मरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : श्रीमद्वल्लभविट्ठलौ गिरिधरं गोविन्दरायाभिधं श्रीमद्बालक-कृष्ण-गोकुलपती तथा रघूणां नाथं एवं श्रीयदुनायकं घनश्यामं तद्वंशजान् च कालिन्दीं, स्वगुरुं, (गोवर्धन)गिरिं, गुरुविभुं, स्वीयप्रभून् च किल स्मरेत् ॥७॥

(प्रमेयरूपभगवद्ध्यानम्)

बर्हापीडं नटवरवपुः कर्णयोः कर्णिकारं
बिभ्रद् वासः कनककपिशं वैजयन्तीं च मालाम्।
रन्ध्रान् वेणोरधरसुधया पूरयन् गोपवृन्दैः
वृन्दारण्यं स्वपदरमणं प्राविशद् गीतकीर्तिः ॥८॥

सन्धिविच्छेद :

बर्ह + आपीडम् = बर्हापीडम् [दीर्घ.]

बिभ्रत् + वासः = बिभ्रद्वासः [जश्त्व.]

वेणोः + अधर = वेणोरधर [रेफ.]

वृन्दा + अरण्यम् = वृन्दारण्यम् [दीर्घ.]

प्र + आ + अविशद् = प्राविशद् [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- बर्ह आपीडं यस्य सः बर्हापीडः [बहु.] तम्
- नट वत् वर वच्च वपुः यस्य सः नटवरवपुः [बहु.]
- कनक इव कपिशं इति कनककपिशम् [कर्म.]
- अधरस्य सुधा इति अधरसुधा [ष.तत्पु.] तया अधरसुधया
- गोपानां वृन्दः इति गोपवृन्दः [ष.तत्पु.] तैः गोपवृन्दैः
- वृन्दायाः अरण्यम् इति वृन्दारण्यम् [ष.तत्पु.] तम्
- स्वस्य पदः इति स्वपदः [ष.तत्पु.] स्वपदानां रमणं यत्र तत् स्वपदरमणम् [बहु.]
- गीता कीर्तिः यस्य सः गीतकीर्तिः [बहु.]

शब्दपरिचय :

बर्ह-आ[उ.]पीडम्[ना.]	कनककपिशम्[ना]	पूरयन्[ना.]
नटवरवपुः[ना.]	वैजयन्तीम्[ना.]	गोपवृन्दैः[ना]
कर्णयोः[ना.]	च[नि.] मालाम्[ना.]	वृन्दारण्यम्[ना.]
कर्णिकारम्[ना.]	रन्ध्रान्[ना.]	स्वपदरमणम्[ना.]
बिभ्रद्[ना.]	वेणोः[ना.]	प्र[उ.]आ[उ.]अविशद्[आ.]
वासः[ना.]	अधरसुधया[ना.]	गीतकीर्तिः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

बर्हापीडम्[स.]	कनककपिशम्[स.]	वृन्दारण्यम्[स.]
नटवरवपुः[स.]	अधरसुधया[स.]	स्वपदरमणम्[स.]
बिभ्रत्[कृद्.]	पूरयन्[कृद्.] गोपवृन्दैः[स.]	गीतकीर्तिः[स.]

शब्दरूपपरिचय :

बर्हापीडम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

नटवरवपुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.	**रन्ध्रान्** - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
कर्णयोः - अ.अ.पुं.स.द्वि.	**वेणोः** - अ.उ.पुं.ष.ए.
कर्णिकारम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	**अधरसुधया** - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
बिभ्रत् - ह.त्.पुं.प्र.ए.	**पूरयन्** - ह.त.पुं.प्र.ए.
वासः - ह.स.नपुं.द्वि.ए.	गोपवृन्दैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
कनककपिशम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	वृन्दारण्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
वैजयन्तीम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.	स्वपदरमणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
मालाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	गीतकीर्तिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : प्राविशद् - तुद.लङ्.प्र.ए.

अन्वय : बर्हापीडं (बिभ्रद्) कर्णयोः कर्णिकारं (बिभ्रद्) कनककपिशं

वासः (बिभ्रद्) वैजयन्तीं मालां च बिभ्रद् अधरसुधया वेणोः रन्ध्रान् पूरयन् नटवरवपुः गोपवृन्दैः गीतकीर्तिः स्वपदरमणं वृन्दारण्यं प्राविशद्॥८॥

(श्रीमदाचार्यचरणस्वरूपध्यानम्)

सौन्दर्यं निजहृद्गतं प्रकटितं स्त्री-गूढ-भावात्मकं
पुंरूपं च पुनस्तदन्तरगतं प्रावीविशद् स्वप्रिये॥
संश्लिष्टावुभयोः बभौ रसमयः कृष्णो हि यत्साक्षिकं
रूपं तत् त्रितयात्मकं परमभिध्येयं सदा वल्लभम्॥९॥

सन्धिविच्छेद :

भाव + आत्मक = भावात्मक दीर्घ.   संश्लिष्टौ + उभयोः = संश्लिष्टावुभयोः आव्.
पुनः + तद् = पुनस्तद् स.   उभयोः + बभौ = उभयोर्बभौ रेफ.
प्र + आवीविशद् = प्रावीविशद् दीर्घ.   कृष्णः + हि = कृष्णो हि उत्व.गुण.
प्रा + अवीविशद् = प्रावीविशद् दीर्घ.   त्रितय + आत्मकम् = त्रितयात्मकम् दीर्घ.

समासविग्रह :

- निजं च तद् हृद् च इति निजहृद् कर्म निजहृत् गतम् इति निजहृद्गतम् द्वि.तत्पु.
- गूढश्च असौ भावश्च गूढभावः कर्म
  स्त्रीणां गूढभावः इति स्त्रीगूढभावः ष.तत्पु.
  स्त्रीगूढभावः आत्मा यस्य तत् स्त्रीगूढभावात्मकम् बहु.
- अन्तरं गतं इति अन्तरगतम् द्वि.तत्पु. तस्य अन्तरगतं इति तदन्तरगतम् ष.तत्पु.
- पुंसः रूपं इति पुंरुपम् ष.तत्पु.
- स्वस्य प्रिय इति स्वप्रियः ष.तत्पु. तस्मिन्
- त्रितयं आत्मा यस्य तत् त्रितयात्मकम् बहु.

शब्दपरिचय :

सौन्दर्यम् ना.   निजहृद्गतम् ना.   प्र उ कटितम् ना

स्त्री-गूढ-भावात्मकम्[ना.]	प्र[उ.] आ[उ.] अवीविशद[आ.]	उभयोः[ना.] वभौ[आ.]
पुंरूपम्[ना.] च[नि.] पुनः[नि.]	स्वप्रिये[ना.]	रसमयः[ना.]
तद्-अन्तरगतम्[ना.]	सं[उ.] श्लिष्टौ[ना.]	कृष्णः[ना.]

हि[नि.] यत्[ना.]	तत्[ना.]	अभि[उ.] ध्येयम्[ना.]
साक्षिकम्[ना.]	त्रितयात्मकम्[ना.]	सदा[नि.]
रूपम्[ना.]	परम्[ना.]	वल्लभम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

सौन्दर्यम्[तद्धि.]

निजहृद्गतम्[स.]	तदन्तरगतम्[स.]	रसमयः[तद्धि.]
प्रकटितम्[कृद्+स.]	प्रावीविशत्[सना.]	साक्षिकम्[तद्धि.]
स्त्रीगूढभावात्मकम्[स.]	स्वप्रिये[स.]	त्रितयात्मकम्[स.]
पुंरूपम्[स.]	संश्लिष्टौ[कृद्+स.]	अभिध्येयम्[स.]

शब्दरूपपरिचय :

सौन्दर्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
निजहृद्गतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
प्रकटितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
स्त्रीगूढभावात्मकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
पुंरूपम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तदन्तरगतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
स्वप्रिये - अ.अ.पुं.स.ए.
संश्लिष्टौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.
उभयोः - अ.अ.पुं.ष.द्वि.

कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
रसमयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
साक्षिकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
(रूपम्, त्रितयात्मकम्) -
अ.अ.नपुं.प्र.ए.
अभिध्येयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
परम् - अ.अ.नपु.प्र.ए.
वल्लभम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : प्राविविशद् - तुदा.लङ्.प्र.ए. बभौ - अदादि.लिट्.प्र.ए.

अन्वय : निज(कृष्ण)हृद्गतं स्त्रीगूढभावात्मकं प्रकटितं सौन्दर्यं पुनः तद्(स्वामिनी)अन्तरगतं पुंरूपं (प्रकटितं सौन्दर्यं) च स्वप्रिये प्रावीविशद् (इति) उभयोः संश्लिष्टौ (सन्तौ पुनः) रसमयः कृष्णः बभौ हि (तस्मात् कारणात्) यद् साक्षिकं (आसीत्) तत् त्रितयात्मकं वल्लभं रूपं सदा परम् अभिध्येयं (भवतु) ।।९।।

(श्रीगोपीनाथप्रभुचरणध्यानम्)

श्रीवल्लभ-प्रतिनिधिं तेजोराशिं दयार्णवम्।।
गुणातीतं गुणनिधिं श्रीगोपीनाथमाश्रये।।१०।।

सन्धिविच्छेद :

तेजः + राशिम् = तेजोराशिम् [उ.गुण.] **गुण + अतीतम् = गुणातीतम्** [दीर्घ.]
दया + अर्णवम् = दयार्णवम् [दीर्घ.] **अति + इतम् = अतीतम्** [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- श्रीवल्लभस्य प्रतिनिधिः इति श्रीवल्लभप्रतिनिधिः [ष.तत्पु.] तं श्रीवल्लभप्रतिनिधिम्
- तेजसः राशिः इति तेजोराशिः [ष.तत्पु.] तम्
- दयायाः अर्णवः इति दयार्णवः [ष.तत्पु.] तम्
- गुणान् अतीतः इति गुणातीतः [द्वि.तत्पु.] तं गुणातीतम्
- गुणानां निधिः इति गुणनिधिः [ष.तत्पु.] तं गुणनिधिम्

शव्दपरिचय :

श्रीवल्लभ-प्रति [उ.] नि [उ] धिम् [ना.]
तेजोराशिम् [ना.] गुण-नि [उ] धिम् [ना.]
दयार्णवम् [ना.] श्रीगोपीनाथम् [ना]
गुण-अति [उ.] -इतम् [ना.] आ [उ.] श्रये [आ]

वृत्तिपरिचय :

श्रीवल्लभप्रतिनिधिम् [स.] दयार्णवम् [स.] गुणनिधिम् [स.]
तेजोराशिम् [स.] गुणातीतम् [स.] श्रीगोपीनाथम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीवल्लभ-प्रतिनिधिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए. गुणातीतम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
तेजोराशिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए. गुणनिधिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.
दयार्णवम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए. श्रीगोपीनाथम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : आश्रये - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : तेजोराशिं दयार्णवं गुणातीतं गुणनिधिं श्रीवल्लभप्रतिनिधिं श्रीगोपीनाथम् (अहं) आश्रये

(श्रीविठ्ठलनाथप्रभुचरणध्यानम्)

सायं कुञ्जालयस्थासनमुपविलसत्स्वर्णपात्रं सुधौतं
राजद्यज्ञोपवीतं परितनुवसनं गौरमम्भोजवक्त्रम्।।
प्राणानायम्य नासा-पुट-निहित-करं कर्ण-राजद्-विमुक्तं
वन्देऽर्धोन्मीलिताक्षं मृगमदतिलकं विठ्ठलेशं सुकेशम्।।११।।

।। इति मङ्गलाचरणं सम्पूर्णम्।।

सन्धिविच्छेद :

कुञ्ज + आलयस्थ + आसनम्= कुञ्जालयस्थासनम् [दीर्घ.]
राजत् + यज्ञोपवीतम् = राजद् यज्ञोपवीत [जश्त्व.]
यज्ञ + उपवीतम् = यज्ञोपवीतम् [गुण]
प्र + आनान् = प्राणान् [दीर्घ.]

राजत् + विमुक्तम् = राजद् विमुक्तम् [व्यञ्जन]
उत् + मीलितम् = उन्मीलितम् [अनु]
अर्ध + उन्मीलित = अर्धोन्मीलित [गुण]
अर्धोन्मीलित + अक्षम् = अर्धोन्मीलिताक्षम् [दीर्घ.]
वन्दे + अर्धोन्मीलिताक्षम् = वन्देऽर्धोन्मीलिताक्षम् [पू.रू.]
विठ्ठल + ईशम् = विठ्ठलेशम् [गुण]

समासविग्रह :

- कुञ्जस्य आलयः इति कुञ्जालयः [ष.तत्पु.] तत्र स्थितः कुञ्जालयस्थः [उप.स.]
  कुञ्जालयस्थम् आसनं यस्य स कुञ्जालयस्थासनः [बहु] तम्
- स्वर्णस्य पात्राणि इति स्वर्णपात्राणि [ष.तत्पु.]
  उपविलसन्ति स्वर्णपात्राणि यस्य स उपविलसतस्वर्णपात्रः [बहु.] तम्
- शोभनं धौतं यस्य स सुधौतः [बहु.] तम्
- यज्ञाय उपवीतम् इति यज्ञोपवीतं [च.तत्पु.]
  राजत् यज्ञोपवीतं यस्य सः राजद्यज्ञोपवीतः [बहु.] तम्
- तनुं परि इति परितनु [अव्य.] परितनु वसनं यस्य स परितनुवसनः [बहु.]
  तं परितनुवसनम् .
- अम्भसि जायते इति अम्भोजः [उप.स.]
  अम्भोज इव वक्त्रं यस्य सः अम्भोजवक्त्रः [बहु] तम्
- नासाया पुटम् इति नासापुटम् [ष.तत्पु.]
  नासा-पुटे निहितः करः यस्य सः नासा-पुट-निहित-करः [बहु.]
  तम् नासा-पुट-निहित-करम्
- कर्णयो राजन्त्यः विमुक्ताः यस्य सः कर्ण-राजद्-विमुक्तः [बहु.] तम्
  कर्णराजद्विमुक्तम्
- अर्धं च तद् उन्मीलितम् च अर्धोन्मीलितम् [कर्म]
  अर्धोन्मीलिते अक्षिणी यस्य सः अर्धोन्मीलिताक्षः [बहु] तम्
  अर्धोन्मीलिताक्षम्

- मृगस्य मदः इति मृगमदः [ष.तत्पु.]
  मृगमदस्य तिलकं यस्य सः मृगमदतिलकः [बहु.] तम्
- शोभनाः केशाः यस्य सः सुकेशः [बहु.] तं सुकेशम्

शब्दपरिचय :

सायम्[नि.]
कुञ्ज-आ[उ.]लयस्थासनम्[ना.]
उप[उ.]वि[उ.]लसत्-स्वर्णपात्रम्[ना.]
सु[उ.]धौतम्[ना.]
राजद्-यज्ञ-उप[उ.]वीतम्[ना.]
परि[उ.]तनुवसनम्[ना.]
गौरम्[ना.]
अम्भोजवक्त्रम्[ना.]
प्र[उ.]-आणान्[ना.]

आ[उ.]यम्य[स.आ.]
नासा-पुट-नि[उ.]हित-करम्[ना.]
कर्ण-राजद्-वि[उ.]मुक्तम्[ना.]
वन्दे[आ.]
अर्ध-उन्[उ.]-मीलिताक्षम्[ना.]
मृगमदतिलकम्[ना.]
विठ्ठलेशम्[ना.]
सु[उ.]केशम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

कुञ्जालयस्थासनम्[स.]
उपविलसत्-स्वर्णपात्रम्[स.]
सुधौतम्[स.]
राजद्-यज्ञोपवीतम्[स.]
परितनुवसनम्[स.]
गौरम्[तद्धि.]
अम्भोजवक्त्रम्[स.]

आयम्य[कृद.]
नासा-पुट-निहित-करम्[स.]
कर्ण-राजद्-विमुक्तम्[स.]
अर्धोन्मीलिताक्षम्[स.]
मृगमदतिलकम्[स.]
विठ्ठलेशम्[स.]
सुकेशम्[स.]

शब्दरूपपरिचय :

(कुञ्जालयस्थासनम्, उपविलसत्-स्वर्णपात्रम्, सुधौतम्, राजद्-यज्ञोपवीतम्, परितनुवसनम्, गौरम्, अम्भोजवक्त्रम्, नासा-पुट-निहित-

करम्, कर्ण-राजद्-विमुक्तम्, अर्धोन्मीलिताक्षम्, मृगमदतिलकम्, विट्ठलेशम्, सुकेशम्) - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
प्राणान् - अ.अ.पुं.द्वि.व.

धातुरूपपरिचय : वन्दे - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : सायं कुञ्जालयस्थासनम् उपविलसत्स्वर्णपात्रं सुधौतं राजद्यज्ञोपवीतं परितनुवसनं गौरम् अम्भोजवक्त्रं प्राणानायम्य नासापुटनिहतकरं कर्णराजद्विमुक्तम् अर्धोन्मीलिताक्षं मृगमदतिलकं सुकेशं विट्ठलेशं (अहं) वन्दे॥११॥

।। श्रीसर्वोत्तमस्तोत्रम् ।।

(२)

(मङ्गलोपक्रमः)

प्राकृतधर्मानाश्रयम् अप्राकृत-निखिल-धर्मरूपमिति ।।
निगमप्रतिपाद्यं यत् तत् शुद्धं साकृति स्तौमि ।।१।।

सन्धिविच्छेद :

धर्म + अनाश्रयम् = धर्मानाश्रयम् [दीर्घ.]   स + आकृति = साकृति [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- प्राकृतश्च असौ धर्मश्च प्राकृतधर्मः [कर्म] न आश्रयः इति अनाश्रयः [न.तत्पु.]
  प्राकृतधर्माणाम् अनाश्रयः इति प्राकृतधर्मानाश्रयः [ष.तत्पु.] तत्
- न प्राकृतः इति अप्राकृतः [न.तत्पु.]
- निखिलाः ये धर्माः ते निखिलधर्माः [कर्म]
  अप्राकृताश्च ते निखिलधर्माश्च अप्राकृतनिखिलधर्माः [कर्म]
  ते रूपं यस्य तत् अप्राकृतनिखिलधर्मरूपम् [बहु.]
- निगमेन प्रतिपाद्यम् इति निगमप्रतिपाद्यम् [तृ.तत्पु.] तत् निगमप्रतिपाद्यम्
- आकृत्या सहितम् इति साकृति [बहु.]

शब्दपरिचय :

प्राकृतधर्म-अन् [उ.] -आ [उ.] श्रयम् [ना.]   यत् [ना.] तत् [ना.]
अप्राकृत-नि [उ.] खिल-धर्मरूपम् [ना.]   शुद्धम् [ना.]
इति [नि.] नि [उ.] गम-प्रति [उ.] पाद्यम् [ना.]   साकृति [ना.] स्तौमि [आ.]

वृत्तिपरिचय :

प्राकृतधर्मानाश्रयम्   निगमप्रतिपाद्यम्
अप्राकृतनिखिलधर्मरूपम्   शुद्धं   साकृति

शव्दरूपपरिचय :

(प्राकृतधर्मानाश्रयम्, प्राकृतनिखिलधर्मरूपम्, निगमप्रतिपाद्यम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.   शुद्धम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.   साकृति - अ.इ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : स्तौमि - अदा.लट्.उ.ए.

अन्वय : यत् प्राकृतधर्मानाश्रयम् अप्राकृतनिखिलधर्मरूपम् इति निगमप्रतिपाद्यं (अस्ति) तत् शुद्धं साकृति स्तौमि ॥१॥

(स्तोत्रप्राकट्यप्रयोजननिरूपणम्)

कलिकाल-तमश्छन्न-दृष्टित्वाद् विदुषामपि ॥
सम्प्रत्यविषयस्तस्य माहात्म्यं समभूद् भुवि ॥२॥
दयया निजमाहात्म्यं करिष्यन् प्रकटं हरिः ॥
वाण्या यदा तदा स्वास्यं प्रादुर्भूतं चकार हि ॥३॥
तदुक्तमपि दुर्बोधं सुबोधं स्याद् यथा तथा ॥
तन्नामाष्टोत्तरशतं प्रवक्ष्याम्यखिलाघहृत् ॥४॥

सन्धिविच्छेद :

तमः + छन्न = तमश्छन्न [स.श्चु]   दृष्टित्वात् + विदुषां = दृष्टित्वाद् विदुषां [जश्त्व.]
सम्प्रति + अविषयः = सम्प्रत्यविषयः [यण]
अविषयः + तस्य = अविषयस्तस्य [ग.]
समभूत् + भुवि = समभूद् भुवि [जश्त्व]

स्व + आस्यम् = स्वास्यम्[दीर्घ] अष्ट + उत्तर = अष्टोत्तर[गुण]
तत् + नाम = तन्नाम[अनुना.] वक्ष्यामि + अखिल = वक्ष्याम्यखिल[यण्]
तन्नाम + अष्टोत्तर = तन्नामाष्टोत्तर[दीर्घ] अखिल + अघ = अखिलाघ[दीर्घ]

समासविग्रह :

- कलेः कालः इति कलिकालः[ष.तत्पु.] कलिकालः जनितं यत् तमः तत् कलिकालतमः[म.प.लो.] कलिकालतमसा छन्नाः दृष्टिः येषां ते कलिकालतमश्छन्नदृष्टयः[बहु.] तेषां भावः कलिकालतमश्छन्नदृष्टित्वं तस्मात् कलिकाल-तमश्छन्न-दृष्टित्वात्
- न विषय इति अविषयः[न.तत्पु.]
- निजं च तत् माहात्म्यं च निजमाहात्म्यम्[कर्म] तत्
- स्वस्य आस्यम् इति स्वास्यम्[ष.तत्पु.] तत् स्वास्यम्
- तेन उक्तम् इति तदुक्तम्[तृ.तत्पु.]
- तस्य नाम इति तन्नाम[ष.तत्पु.] तन्नाम्नाम् अष्टोत्तरशतम् इतिं तन्नामाष्टोत्तरशतम्[ष.तत्पु.] तत्
- न खिलम् इति अखिलम्[न तत्पु.]
  अखिलानि च तानि अघानि च अखिलाघानि[कर्म]
  अखिलाघानि हरति इति अखिलाघहृत्[उप.स.]

शब्दपरिचय :

कलिकालतमश्छन्न-	माहात्म्यम्[ना]	हरिः[ना.]
दृष्टित्वाद्[ना.]	सम्[उ.]अभूद्[आ.]	वाण्या[ना.]
विदुषाम्[ना.]	भुवि[ना.]	यदा[नि.]
अपि[नि.]	दयया[ना.]	तदा[नि.]
सम्[उ] -प्रति[नि.]	निजमहात्म्यम्[ना]	स्वास्यम्[ना.]
अ-वि[उ]षयः[ना.]	करिष्यन्[ध.आ.]	प्रादुस्[उ]-भूतम्[ना.]
तस्य[ना.]	प्र[उ]कटम्[ना]	चकार[आ.] हि[नि.]

तदुक्तम्[ना.]	सु[उ] बोधम्[ना.]	तन्नामाष्टोत्तरशतम्[ना.]
अपि[नि.]	स्याद्[आ.]	प्र[उ.] वक्ष्यामि[आ.]
दुर्[उ] बोधम्[ना]	यथा[नि.] तथा[नि.]	अखिलाघहृत्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

कलिकालतमश्छन्न-दृष्टित्वाद्[तद्धि.]	करिष्यन्[कृद्.]	तदुक्तम्[स.]
अविषयः[स.]	प्रकटम्[स.]	दुर्बोधम्[स.] सुबोधम्[स.]
माहात्म्यम्[तद्धि.]	यदा[तद्धि.] तदा[तद्धि.]	यथा[तद्धि.] तथा[तद्धि.]
निजमाहात्म्यम्[स.]	स्वास्थ्यम्[स.]	तन्नामाष्टोत्तरशतम्[स.]
	प्रादुर्भूतम्[स.]	अखिलाघहृत्[स.]

शब्दरूपपरिचय :

कलिकाल-तमश्छन्न-दृष्टित्वाद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.

(माहात्म्यम्, प्रकटम्, प्रादुर्भूतम्, तदुक्तम्, दुर्बोधम्, सुबोधम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

विदुषाम् - ह.स.पुं.ष.ब.	करिष्यन् - ह.त.पुं.प्र.ए.
अविषयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.	वाण्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
भुवि - अ.उ.स्त्री.स.ए.	स्वास्थ्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
दयया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	तन्नामाष्टोत्तरशतम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
निजमाहात्म्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	अखिलाघहृत् - ह.त.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

समभूद् - भ्वा.लुङ्.प्र.ए.	स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.
चकार - तना.लिट्.प्र.ए.	प्रवक्ष्यामि - अदा.लृट्.उ.ए.

अन्वय : सम्प्रति यदा तस्य माहात्म्यं भुवि कलिकाल-तमश्छन्न-दृष्टित्वाद् विदुषामपि अविषयः समभूद् तदा निजमाहात्म्यं वाण्या

प्रकटं करिष्यन् हरिः हि स्वास्यं प्रादुर्भूतं चकार (२-३). दुर्बोधमपि तदुक्तं यथा सुबोधं स्यात् तथा अखिलाघहृत् तन्नामाष्टोत्तरशतं प्रवक्ष्यामि ॥४॥

(स्तोत्रर्षि-छन्दो-देव-बीज-विनियोग-सिद्धि-निरूपणम्)

ऋषिरग्निकुमारस्तु नाम्नां छन्दो जगत्यसौ ॥
श्रीकृष्णास्यं देवता च बीजं कारुणिकः प्रभुः ॥५॥
विनियोगो भक्तियोग-प्रतिबन्ध-विनाशने ॥
कृष्णाधरामृतास्वाद-सिद्धिरत्र न संशयः ॥६॥

सन्धिविच्छेद :

ऋषिः + अग्नि = ऋषिरग्नि [रेफ.]
कुमारः + तु = कुमारस्तु [स.]
छन्दः + जगति = छन्दो जगति [उ.गुण.]
जगति + असौ = जगत्यसौ [यण.]
श्रीकृष्ण + आस्यं = श्रीकृष्णास्यं [दीर्घ.]
विनियोगः + भक्तियोगो =
विनियोगो भक्तियोगो [उ.गुण.]
कृष्ण + अधर + अमृत + आस्वाद=
कृष्णाधरामृतास्वाद [दीर्घ.]
सिद्धिः + अत्र = सिद्धिरत्र [रेफ.]

समासविग्रह :

- अग्नेः कुमारः इति अग्निकुमारः [ष.तत्पु.]
- श्रीकृष्णस्य आस्यम् इति श्रीकृष्णास्यम् [ष.तत्पु.]
- भक्त्या योगः इति भक्तियोगः [तृ.तत्पु.]
  भक्तियोगे प्रतिबन्धः इति भक्तियोगप्रतिबन्धः [स.तत्पु.]
  तेषां विनाशनम् इति भक्तियोग-प्रतिबन्ध-विनाशनम् [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् भक्तियोग-प्रतिबन्ध-विनाशने
- कृष्णस्य अधरम् इति कृष्णाधरम् [ष.तत्पु]
  कृष्णाधरस्य अमृतम् इति कृष्णाधरामृतम् [ष.तत्पु.]
  तस्य आस्वादः इति कृष्णाधरामृतास्वादः [ष.तत्पु]

स एव सिद्धिः इति कृष्णाधरामृतास्वाद-सिद्धिः[कर्म]

शव्दपरिचय :

ऋषिः[ना.]	असौ[ना.]	प्र[उ.] भुः[ना.]
अग्निकुमारः[ना.]	श्रीकृष्णास्यम्[ना.]	वि[उ.] नि[उ.] योगः[ना.]
तु[नि.] नाम्नाम्[ना.]	देवता[ना.]	भक्तियोग-प्रति[उ.] बन्ध-वि[उ.] नाशने[ना.]
छन्दः[ना.]	च[नि.] बीजम्[ना.]	कृष्णाधरामृत-आ[उ.] स्वाद-सिद्धिः[ना.]
जगति[ना.]	कारुणिकः[ना.]	अत्र[नि.] न[नि.] सं[उ.] शयः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

अग्निकुमारः[स.]	कारुणिकः[तद्धि.]		कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिः[स.]
श्रीकृष्णास्यम्[स.]	प्रभुः[स.]	विनियोगः[स.]	अत्र[तद्धि.]
देवता[तद्धि.]	भक्तियोगप्रतिबन्धविनाशने[स.]		संशयः[स.]

शब्दरूपपरिचय :

ऋषिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	देवता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
अग्निकुमारः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	बीजम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
नाम्नाम् - ह.न.नपुं.ष.ब.	कारुणिकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
छन्दः - ह.स.नपुं.प्र.ए.	प्रभुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
जगति - ह.त्.नपुं.स.ए.	भक्तियोगप्रतिबन्धविनाशने - अ.अ.नपुं.स.ए.
असौ - ह.स.पुं.प्र.ए.	कृष्णाधरामृतास्वादसिद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
श्रीकृष्णास्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	विनियोगः, संशयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय :

(अस्य स्तोत्रस्य) ऋषिः तु असौ अग्निकुमारः, नाम्नां छन्दः (च) जगति (प्रसिद्धम्) असौ (अनुष्टुब्), देवता श्रीकृष्णास्यं, बीजं च कारुणिक प्रभुः (अस्ति) ॥५॥ भक्तियोग-प्रतिबन्ध-विनाशने (अस्य

स्तोत्रस्य) विनियोगः (तेन) कृष्णाधरामृतास्वाद-सिद्धिः (भवेत्) अत्र संशयः न (अस्ति) ॥६॥

(श्रीमदाचार्यचरणानाम् अष्टोत्तरशतनामानि)

आनन्दः [१]

शब्दपरिचय : आ [उ] नन्दः
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

परमानन्दः [२]

सन्धिविच्छेद : परम + आनन्दः [दीर्घ]
समासविग्रह : परमश्च असौ आनन्दश्च परमानन्दः [कर्म]
शब्दपरिचय : परम-आ [उ] नन्दः
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

श्रीकृष्णास्यम् [३]

सन्धिविच्छेद : श्रीकृष्ण + आस्यम् = श्रीकृष्णास्यम् [दीर्घ]
समासविग्रह : श्रीकृष्णस्य आस्यम् इति श्रीकृष्णास्यम् [ष.तत्पु.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.नपुं.प्र.ए.

कृपानिधिः [४]

समासविग्रह : कृपायाः निधिः इति कृपानिधिः [ष.तत्पु.]
शब्दपरिचय : कृपा-नि [उ] धि [ना.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

दैवोद्धारप्रयत्नात्मा [५.]

सन्धिविच्छेद : दैव + उद्धार = दैवोद्धार [गुण]   उत् + हार = उद्धार [पू.स]

प्रयत्न + आत्मा = प्रयत्नात्मा [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- दैवानाम् उद्धार इति दैवोद्धार [प.तत्पु.]
- दैवोद्धारे प्रयत्नः इति दैवोद्धारप्रयत्नः [स.तत्पु.] तस्मिन् आत्मा (अन्तःकरणम्) यस्य सः दैवोद्धारप्रयत्नात्मा [बहु.]

शब्दपरिचय : दैव-उत् [उ.]हार-प्र [उ.]यत्नात्मा.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : ह.न.पुं.प्र.ए.

स्मृतिमात्रार्तिनाशनः [६.]

सन्धिविच्छेद : मात्र + आर्ति = मात्रार्ति [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- आर्तेः नाशनः इति आर्तिनाशनः [प.तत्पु.]
- स्मृति मात्रेण आर्तिनाशनः इति स्मृतिमात्रार्तिनाशनः [तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणः [७.]

सन्धिविच्छेद : गूढ + अर्थ = गूढार्थ [दीर्घ.]   पर + अयन = परायण [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- गूढश्च असौ अर्थश्च इति गूढार्थः [कर्म]
- श्रीभागवतस्य गूढार्थः इति श्रीभागवतगूढार्थः [प.तत्पु.]
- तस्य प्रकाशनम् इति श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनम् [प.तत्पु.]
- तस्मिन् परायणः इति श्रीभागवतगूढार्थप्रकाशनपरायणः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : श्रीभागवतगूढार्थ-प्र [उ.] काशनपरायणः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

साकारब्रह्मवादैकस्थापकः [८.]

सन्धिविच्छेद : स + आकार = साकार [दीर्घ.] ब्रह्मवाद + एक = ब्रह्मवादैक [वृद्धि]

समासविग्रह :

- आकारेण सहितम् इति साकारम् [बहु.]
- साकारं च असौ ब्रह्म च इति साकारब्रह्म [कर्म]
- तस्य वादः इति साकारब्रह्मवादः [ष.तत्पु.]
- तस्य एव एक (मुख्यत्वेन) स्थापकः यः साकार-ब्रह्म-वादैक-स्थापकः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

वेदपारगः [९.]

समासविग्रह :

- पारं गच्छति इति पारगः [उप.स.] - वेदस्य पारगः इति वेदपारगः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

मायावादनिराकर्ता [१०.]

समासविग्रह :

- मायायाः वादः इति मायावादः [ष.तत्पु.]
- मायावादस्य निराकर्ता इति मायावादनिराकर्ता [ष.तत्पु.].

शब्दपरिचय : मायावाद-निर् [उ]-आ [उ] कर्ता.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

सर्ववादिनिरासकृत् [११]

समासविग्रह :

- सर्वे च ये वादिनः इति सर्ववादिनः [कर्म]
- निरासं करोति इति निरासकृत् [उप.स.]
- सर्ववादिनां निरासकृत् सर्ववादिनिरासकृत् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : सर्ववादि-निर्[उ.]आसकृत्

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : ह.त.पुं.प्र.ए.

भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डः [१२]

सन्धिविच्छेद : मार्ग + अब्ज = मार्गाब्ज [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म]
- भक्तिमार्गः एव अब्जम् इति भक्तिमार्गाब्जम् [कर्म]
- भक्तिमार्गाब्जस्य मार्तण्डः इति भक्तिमार्गाब्जमार्तण्डः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षमः [१३]

सन्धिविच्छेद : स्त्रीशूद्र + आदि = स्त्रीशूद्रादि [दीर्घ.]

उद् + हृति = उद्धृति [पू.स.] शूद्रादि + उद्धृति = शूद्राद्युद्धृति [यण.]

समासविग्रह :

- स्त्रियश्च शूद्राश्च स्त्रीशूद्राः [द्वन्द्व.]
- स्त्रीशूद्राः आदि येषां ते स्त्रीशूद्रादयः [बहु.]
- स्त्रीशूद्रादीनां उद्धृतिः इति स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिः [ष.तत्पु.]
- तस्यां क्षमः इति स्त्रीशूद्राद्युद्धृतिक्षमः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : स्त्रीशूद्रादि-उद्[उ.]हृतिक्षमः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

अङ्गीकृत्यैव गोपीशवल्लभीकृतमानवः [१४.]

सन्धिविच्छेद : अङ्गीकृत्य + एव = अङ्गीकृत्यैव [वृद्धि.] गोपी + ईश = गोपीश [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- (अवल्लभं वल्लभं कृतम् इति वल्लभीकृतम् -च्वि प्रत्यय)
- गोपीनाम् ईशः गोपीशः [ष.तत्पु.]
- गोपीशस्य वल्लभीकृतम् इति गोपीशवल्लभीकृतम् [ष.तत्पु.]
- गोपीशवल्लभीकृतः मानवो येन सः गोपीश-वल्लभी-कृत-मानवः [बहु.]

शब्दपरिचय : अङ्गीकृत्य [नि.] **एव** [नि.]

वृत्तिपरिचय : अङ्गीकृत्य [कृद.] **गोपीशवल्लभीकृतमानवः** [स.]

शब्दरूपपरिचय : गोपीशवल्लभीकृतमानवः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अङ्गीकृतौ समर्यादः [१५.]

समासविग्रह : मर्यादया सहितः इति समर्यादः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समर्यादः [स.]

शब्दरूपपरिचय : अङ्गीकृतौ : अ.इ.स्त्री.स.ए. समर्यादः : अ.अ.पुं.प्र.ए.

महाकारुणिकः [१६.]

समासविग्रह : महान् चासौ कारुणिकश्च इति महाकारुणिकः [कर्म]

वृत्तिपरिचय : महाकारुणिकः [स.]

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

विभुः [१७.]

शब्दपरिचय : वि [उ] भुः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.उ.पुं.प्र.ए.

अदेयदानदक्षः [१८.]

सन्धिविच्छेद : दक्षः + च = दक्षश्च [श्चु]

समासविग्रह :

- न देयम् इति अदेयम् [न.तत्पु] अदेयस्य दानम् इति अदेयदानम् [ष.तत्पु.]
- अदेयदाने दक्षः इति अदेयदानदक्षः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : च [नि.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

महोदारचरित्रचरित्रवान् [१९.]

सन्धिविच्छेद : महा + उदार = महोदार [गुण] उदा + अर = उदार [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- महत् च असौ उदारं इति महोदारम् [कर्म.]
- महोदारं च तत् चरित्रं इति महोदारचरित्रम् [कर्म] तद्वान् महोदारचरित्रवान्.

शब्दपरिचय : महा-उत् [उ.]-आ [उ.]अर

वृत्तिपरिचय : तद्धि

शब्दरूपपरिचय : ह.त.पुं.प्र.ए.

प्राकृतानुकृतिव्याजमोहितासुरमानुषः [२०.]

सन्धिविच्छेद : प्राकृत + अनु = प्राकृतानु [दीर्घ.]

वि. + आज = व्याज [यण.] मोहित + असुर = मोहितासुर [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- असुराः ये मानुषाः ते असुरमानुषाः [कर्म]
- प्राकृतानाम् अनुकृतिः इति प्राकृतानुकृतिः [ष.तत्पु.]
  सा एव व्याजः इति प्राकृतानुकृतिव्याजः [कर्म]
- प्राकृतानुकृतिव्याजेन मोहिता असुरमानुषाः येन सः प्राकृतानुकृतिव्याज-मोहितासुरमानुषः [बहु.]

शब्दपरिचय : प्राकृत-अनु [उ] कृति-वि [उ]आज
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

वैश्वानरः [२१.]

वृत्तिपरिचय : तद्धि
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

वल्लभाख्यः [२२.]

सन्धिविच्छेद : वल्लभ + आख्यः = वल्लभाख्यः [दीर्घ.]
समासविग्रह : 'वल्लभ'इति आख्याः यस्य सः वल्लभाख्यः [बहु.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सद्रूपः [२३.]

समासविग्रह : सत् रूपं यस्य सः सद्रूपः [बहु.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

हितकृतसताम् [२४.]

समासविग्रह : हितं करोति इति हितकृत् [उप.स.]
शब्दपरिचय : हितकृत् [ना.] सताम् [ना.]
वृत्तिपरिचय : हितकृत् [स.] सताम् [कृद.].
शब्दरूपपरिचय : हितकृत् - ह.त.पुं.प्र.ए सताम् - ह.त.पुं.ष.ब

जनशिक्षाकृते कृष्णभक्तिकृत् [२५.]

समासविग्रह : जनानां शिक्षा इति जनशिक्षा [प.तत्पु.]

- तस्याः कृते इति जनशिक्षाकृते [प.तत्पु]
- कृष्णस्य भक्तिः इति कृष्णभक्तिः [प.तत्पु]
  कृष्णभक्तिं करोति इति कृष्णभक्तिकृत् [उप.स.]

शब्दपरिचय : जनशिक्षाकृते [नि.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : ह.तृ.पुं.प्र.ए.

निखिलेष्टदः [२६.]

सन्धिविच्छेद : निखिल + इष्ट = निखिलेष्ट [गुण]

समासविग्रह :

- निखिलं यद् इष्टं इति निखिलेष्टम् [कर्म]
- निखिलेष्टं ददाति इति निखिलेष्टदः [उप.स.]

शब्दपरिचय : नि [उ.] खिलेष्टदः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सर्वलक्षणसम्पन्नः [२७.]

समासविग्रह :

- सर्वाणि च तानि लक्षणानि इति सर्वलक्षणानि [कर्म]
  तैः सम्पन्नः इति सर्वलक्षणसम्पन्नः [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय : सम् [उ.]-पन्नः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

श्रीकृष्णज्ञानदः [२८.]

समासविग्रह :

- श्रीकृष्णस्य ज्ञानम् इति श्रीकृष्णज्ञानम् [प.तत्पु.]

- तद् ददाति इति श्रीकृष्णज्ञानदः [उप.स.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

गुरुः [२९.]

शब्दरूपपरिचय : अ.उ.पुं.प्र.ए.

स्वानन्दतुन्दिलः [३०.]

सन्धिविच्छेद : स्व + आनन्द = स्वानन्द [दीर्घ.]
समासविग्रह :
- स्वस्य आनन्दः इति स्वानन्दः [ष.तत्पु.]
- तेन तुन्दिलः इति स्वानन्दतुन्दिलः [तृ.तत्पु.]
शब्दपरिचय : स्व-आ [उ.]नन्द
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

पद्मदलायतविलोचनः [३१.]

सन्धिविच्छेद : पद्मदल + आयत = पद्मदलायत [दीर्घ.]
समासविग्रह : पद्मस्य दलम् इति पद्मदलम् [ष.तत्पु.]
- पद्मदलम् इव आयतम् इति पद्मदलायतम् [कर्म.]
- पद्मदलायते विलोचने यस्य सः पद्मदलायतविलोचने [बहु.]
शब्दपरिचय : पद्मदल-आ [उ.]यत-वि [उ.]लोचनः
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

कृपादृगवृष्टिसंहृष्टदासदासिप्रियः [३२.]

समासविग्रह : कृपायुक्ता दृशः इति कृपादृशः [म.प.लो.]

- तासां वृष्टयः इति कृपादृग्वृष्टयः [ष.तत्पु.]
  ताभिः संहृष्टाः इति कृपादृग्वृष्टिसंहृष्टा. [तृ.तत्पु.]
- दासाश्च दास्यश्च इति दासदास्यः [द्वन्द्व]
  कृपादृग्वृष्टिसंहृष्टा या दासदास्यः ताः कृपादृग्वृष्टिसंहृष्टदासदास्यः [कर्म]
  तेषां प्रियः इति कृपा-दृग्-वृष्टि-संहृष्ट-दास-दासी-प्रियः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : सं [उ.] हृष्ट

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

पतिः [३३.]

शब्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

रोषदृक्पातसम्प्लुष्टभक्तद्विट् [३४.]

समासविग्रह :

- रोष सहिता या दृक् सा रोषदृक् [म.प.ल.]
  तस्याः पातः इति रोषदृक्पातः [ष.तत्पु.]
- भक्तानां द्विट् इति भक्तद्विट् [ष.तत्पु.]
  रोषदृक्पातेन सम्प्लुष्टा भक्तद्विषः येन सः रोष-दृक्-पात-सम्प्लुष्ट-भक्तद्विट् [बहु.]

शब्दपरिचय : सम् [उ.] प्लुष्ट

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : ह.ष.नपुं.प्र.ए.

भक्तसेवितः [३५.]

समासविग्रह : भक्तैः सेवितः इति भक्तसेवितः [तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सुखसेव्यः [३६.]

समासविग्रह : सुखेन सेव्यः इति सुखसेव्यः [तृ.तत्पु.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

दुराराध्यः [३७.]

शब्दपरिचय : दुर्[उ.]-आ[उ.]राध्यः
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

दुर्लभाङ्घ्रिसरोरुहः [३८.]

सन्धिविच्छेद : दुर्लभ + अङ्घ्रि = दुर्लभाङ्घ्रि [दीर्घ.]
समासविग्रह :
- अङ्घ्रि सरोरुहं इव इति अङ्घ्रिसरोरुहम् [कर्म.]
- दुर्लभे अङ्घ्रिसरोरुहे यस्य सः दुर्लभाङ्घ्रिसरोरुहः [बहु.]

शब्दपरिचय : दुर्[उ.]लभ.
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

उग्रप्रतापः [३९.]

समासविग्रह : उग्रः प्रतापः यस्य सः उग्रप्रतापः [बहु.]
शब्दपरिचय : प्र[उ.]ताप
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

वाक्सीधुपूरिताशेषसेवकः [४०.]

सन्धिविच्छेद : पूरित + अशेष = पूरिताशेष [दीर्घ]

समासविग्रह :

- वाग् एव सीधुः इति वाक्सीधुः [कर्म]
  न शेषः इति अशेषः [न.तत्पु.]
  अशेषाश्च ते सेवकाः इति अशेषसेवकाः [कर्म]
- वाक्सीधुना पूरिताः इति वाक्सीधुपूरिताः [तृ.तत्पु.]
  वाक्सीधुपूरिताः अशेषसेवकाः येन सः वाक्सीधु-पूरिताशेष-सेवकः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

श्रीभागवतपीयूषसमुद्रमथनक्षमः [४१.]

समासविग्रह :

- पीयूषस्य समुद्रः इति पीयूषसमुद्रः [ष.तत्पु.]
- श्रीभागवतम् एव पीयूषसमुद्रम् इति श्रीभागवतपीयूषसमुद्रम् [कर्म]
- तस्य मथनम् इति श्रीभागवतपीयूषसमुद्रमथनम् [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् क्षमः इति श्रीभागवत-पीयूष-समुद्र-मथन-क्षमः [स.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

तत्सारभूतरासस्त्रीभावपूरितविग्रहः [४२.]

समासविग्रह :

- तस्य (भागवतस्य) सारभूतः इति तत्सारभूतः [ष.तत्पु.]
- रासस्य (सम्बन्धिनी) स्त्री इति रासस्त्री [ष.तत्पु.]
  तासां भावः इति रासस्त्रीभावः [ष.तत्पु.]
- तत्सारभूतः यः रासस्त्रीभावः स तत्सारभूतरासस्त्रीभावः [कर्म]
  तेन पूरितः इति तत्सारभूतरासस्त्रीभावपूरितः [तृ.तत्पु.]
  तत्सारभूतरासस्त्रीभावपूरितः विग्रहः यस्य सः तत्सार-भूत-रासस्त्री-भावपूरित-विग्रहः [बहु.]

शब्दपरिचय : वि[३] ग्रह
वृत्तिपरिचय **:** समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सान्निध्यमात्रदत्तश्रीकृष्णप्रेमा [४३.]

समासविग्रह : श्रीकृष्णे प्रेम इति श्रीकृष्णप्रेम [स.तत्पु.] वा
- श्रीकृष्णस्य प्रेम इति श्रीकृष्णप्रेम [ष.तत्पु.]
- सान्निध्यमात्रेण दत्तं श्रीकृष्णप्रेम येन सः सान्निध्यमात्रदत्तश्रीकृष्णप्रेमा [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : ह.न.पुं.प्र.ए.

विमुक्तिदः [४४.]

समासविग्रह : विमुक्तिं ददाति इति विमुक्तिदः [उप.तत्पु.]
शब्दपरिचय : वि[३] मुक्तिदः
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

रासलीलैकतात्पर्यः [४५.]

सन्धिविच्छेद : लीला + एक = लीलैक [वृद्धि]
समासविग्रह :
- रासस्य लीला इति रासलीला [ष.तत्पु.]
- रासलीलायाम् एव एकं तात्पर्यं यस्य सः रासलीलैक-तात्पर्यः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

कृपयैतत्कथाप्रदः [४६.]

सन्धिविच्छेद : कृपया + एतत् = कृपयैतत् [वृद्धि]

समासविग्रह :

- एतस्याः कथा इति एतत्कथा [प.तत्पु.]
- प्रकर्षेण ददाति इति प्रदः [उप.स.]
- एतत्कथायाः प्रदः इति एतत्कथाप्रदः [प.तत्पु.]

शव्दपरिचय : कथा-प्र [उ.]दः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : कृपया – अ.आ.स्त्री.तृ.ए. एतत्कथाप्रदः – अ.अ.पुं.प्र.ए.

विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागोपदेशकः [४७.]

सन्धिविच्छेद :

विरह + अनुभव = विरहानुभव [दीर्घ.] अनुभवैक + अर्थ = अनुभवैकार्थ - [दीर्घ.]

अनुभव + एक = अनुभ -वैक [वृद्धि.] त्याग + उपदेशकः = त्यागोपदेशकः [गुण.]

समासविग्रह :

- विरहस्य अनुभवः इति विरहानुभवः [प.तत्पु.]
- सर्वेषां त्यागः इति सर्वत्यागः [प.तत्पु.] एकः अर्थः इति एकार्थः [कर्म.]
  विरहानुभव एव एकार्थ इति विरहानुभवैकार्थः [कर्म]
  तस्मै यः सर्वत्यागः विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागः [च.तत्पु.]
  तस्य उपदेशकः इति विरहानुभवैकार्थसर्वत्यागोपदेशकः [प.तत्पु.]

शब्दपरिचय : वि [उ.]रह-अनु [उ.]भव उप [उ.]देशकः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्त्याचारोपदेष्टा [४८.]

सन्धिविच्छेद :

भक्ति + आचार = भक्त्याचार [यण.] भक्त्याचार + उपदेष्टा = भक्त्याचारोपदेष्टा [गुण.]

समासविग्रह :

- भक्त्याः आचारः इति भक्त्याचारः [प.तत्पु.]

- भक्त्याचारस्य उपदेष्टा इति भक्त्याचारोपदेष्टा [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : भक्ति-आ [उ] चार-उप [उ] देष्टा.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

कर्ममार्गप्रवर्तकः [४९.]

समासविग्रह :

- कर्मएव मार्गः इति कर्ममार्गः [कर्म]
- कर्ममार्गस्य प्रवर्तकः इति कर्म-मार्ग-प्रवर्तकः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : प्र [उ] वर्तकः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

यागादौ भक्तिमार्गैकसाधनत्वोपदेशकः [५०.]

सन्धिविच्छेद : याग + आदौ = यागादौ [दीर्घ.]

मार्ग + एक = मार्गैक [वृद्धि.] साधनत्व + उपदेशकः = साधनत्वोपदेशकः [गुण]

समासविग्रह :

- यागः आदिर्यस्य (दानादेः) तत् यागादि [बहु.] तस्मिन् यागादौ
- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म]
- एकं च तत् साधनं च एकसाधनम् [कर्म]
- भक्तिमार्गस्य एकसाधनं इति भक्तिमार्गैक-साधनम् [ष.तत्पु.]

  तस्य भावः भक्तिमार्गैक-साधनत्वम् तस्य उपदेशकः इति भक्तिमार्गैकसाधनत्वोपदेशकः [ष.तत्पु]

शब्दपरिचय : साधनत्व-उप [उ] देशकः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय :

यागादौ - अ.इ.नपुं.स.ए. भक्ति...त्वोपदेशकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

पूर्णानन्दः [५१.]

सन्धिविच्छेद : पूर्ण + आनन्दः = पूर्णानन्दः [दीर्घ]

समासविग्रह : पूर्णः आनन्दो यस्य सः पूर्णानन्दः [बहु.]

शव्दपरिचय : आ [उ] नन्दः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

पूर्णकामः [५२.]

समासविग्रह : पूर्णाः कामाः यस्य सः पूर्णकामः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

वाक्पतिः [५३.]

समासविग्रह : वाचः पतिः इति वाक्पतिः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

विबुधेश्वरः [५४.]

सन्धिविच्छेद : विबुध + ईश्वरः = विबुधेश्वरः [गुण]

समासविग्रह : विबुधानां ईश्वरः इति विबुधेश्वरः [ष.तत्पु.]

शव्दपरिचय : वि [उ] बुधेश्वरः

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

कृष्णनामसहस्रस्य वक्ता [५५.]

समासविग्रह :

- कृष्णस्य नाम इति कृष्णनाम [ष.तत्पु.]
- कृष्णनाम्नां सहस्रं इति कृष्णनामसहस्रम् [ष.तत्पु.] तस्य कृष्णनामसहस्रस्य.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : कृष्णनामसहस्रस्य - अ.अ.नपुं.ष.ए. वक्ता - अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

भक्तपरायणः [५६.]

सन्धिविच्छेद : पर + अयनः = परायणः [दीर्घ]

समासविग्रह : भक्तेषु परायणः इति भक्तपरायणः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : पर [स.]-अयणः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यनिरूपकः [५७.]

सन्धिविच्छेद : भक्ति + आचार = भक्त्याचार [यण्]

आचार + उपदेश = आचारोपदेश [गुण] उपदेश + अर्थ = उपदेशार्थ [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्त्याः आचारः इति भक्त्याचारः [ष.तत्पु.]
- भक्त्याचारस्य उपदेशार्थं इति भक्त्याचारोपदेशार्थं [ष.तत्पु.]
- नाना (विधानि) च तानि वाक्यानि इति नानावाक्यानि [कर्म]
- भक्त्याचारोपदेशार्थानि यानि नानावाक्यानि तानि भक्त्याचारोपदेशार्थना-नावाक्यानि [कर्म.]

तेषां निरूपकः इति भक्त्याचारोपदेशार्थनानावाक्यनिरूपकः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : भक्ति-आ [उ.]चार-उप [उ.]देशार्थ नानावाक्य-नि [उ.]रूपकः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्वार्थोज्झिताखिलप्राणप्रियः [५८.]

सन्धिविच्छेद :

स्व + अर्थ = स्वार्थ [दीर्घ]

स्वार्थ + उज्झित = स्वार्थोज्झित [गुण]

उज्झित + अखिल = उज्झिताखिल [दीर्घ]   प्र + अन = प्राण [दीर्घ]

समासविग्रह :

- स्वस्य अर्थः इति स्वार्थः [ष.तत्पु.] तत् स्वार्थम्
- न खिलं इति अखिलम् [न.तत्पु.]
- स्वार्थम् (श्रीवल्लभार्थम्) उज्झितम् अखिलम् यैः ते स्वार्थोज्झिताखिलाः [बहु.]- प्राणेभ्यः (अपि) प्रियः इति प्राणप्रियः [पं.तत्पु.]
- स्वार्थोज्झिताखिलानां प्राणप्रियः इति स्वार्थोज्झिताखिल-प्राण-प्रियः [ष.तत्पु.] अथवा
- स्वार्थोज्झिताः प्राणप्रियः येषाम् ते स्वार्थोज्झिताप्राणप्रियः [बहु.]

शब्दपरिचय : प्र [उ.]-अनप्रियः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

तादृशवेष्टितः [५९.]

समासविग्रह : तादृशैः वेष्टितः इति तादृशवैष्टितः [तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्वदासार्थकृताशेषसाधनः [६०.]

सन्धिविच्छेद : दास + अर्थ = दासार्थ [दीर्घ.]   कृत + अशेष = कृताशेष [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- स्वस्य दासः इति स्वदासः [ष.तत्पु.] स्वदासस्य अर्थम् इति स्वदासार्थम् [ष.तत्पु.]
- न शेषम् इति अशेषम् [न.तत्पु.]

  अशेषाणि च यानि साधनानि तानि अशेषसाधनानि [कर्म.]- स्वदासार्थम् कृतानि अशेषसाधनानि येन सः स्वदासार्थ-कृताशेष-साधनः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पु.प्र.ए.

सर्वशक्तिधृक्[६१.]

समासविग्रह :

- सर्वा ताः शक्तयः इति सर्वशक्तयः[कर्म.]
- सर्वशक्तीषु धृष्णोति इति सर्वशक्तिधृक्[स.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : ह.क.पुं.प्र.ए.

भुवि भक्तिप्रचारैककृते स्वान्वयकृत्[६२.]

सन्धिविच्छेद : प्रचार + एक = प्रचारैक[वृद्धि.]

अनु + अय = अन्वय[यण्.] स्व + अन्वय = स्वान्वय[दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्त्याः प्रचारः इति भक्तिप्रचारः[ष.तत्पु.]
- स्वस्य अन्वयः इति स्वान्वयः[ष.तत्पु.]
  तं करोति इति स्वान्वयकृत्[उप.स.]
- एकस्य कृते (अर्थे) इति एककृते[ष.तत्पु.]
  भक्तिप्रचारस्य एककृते इति भक्तिप्रचारैककृते[ष.तत्पु.]

शव्दपरिचय : भक्ति-प्र[उ.]चारैककृते[नि.] स्व-अनु[उ.]अयकृत्.

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : भुवि - अ.ऊ.स्त्री.स.ए. स्वान्वयकृत् - ह.त.पुं.प्र.ए.

पिता[६३.]

शव्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

स्ववंशे स्थापिताशेषस्वमाहात्म्यः[६४.]

सन्धिविच्छेद : स्थापित + अशेष = स्थापिताशेष[दीर्घ.]

समासविग्रह :

- स्वस्य वंशः इति स्ववंशः [ष.तत्पु.] तस्मिन् स्ववंशे
- न शेषम् इति अशेषम् [न.तत्पु.]
- स्वस्य माहात्म्यम् इति स्वमाहात्म्यम् [ष.तत्पु.]
- अशेषं च तत् स्वमाहात्म्यं च अशेष-स्वमाहात्म्यम् [कर्म.]
- स्थापितम् अशेषस्वमाहात्म्यम् येन स स्थापिताशेषस्वमाहात्म्यः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय :

स्ववंशे - अ.अ.पुं.स.ए. स्थापिताशेषस्वमाहात्म्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्मयापहः [६५.]

सन्धिविच्छेद : स्मय + अपहः = स्मयापहः [दीर्घ.]

समासविग्रह : स्मयम् अपहन्ति इति स्मयापहः [उप.स.]

शब्दपरिचय : स्मय-अप [उ.] हः.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

पतिव्रतापतिः [६६.]

समासविग्रह :

- पतिः (पतिशब्दः पतिसेवायां लाक्षणिकः) व्रतम् यस्याः सा पतिव्रता [बहु.]
- पतिव्रतायाः पतिः इति प्रतिव्रतापतिः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

पारलौकिकैहिकदानकृत् [६७.]

सन्धिविच्छेद : पारलौकिक + ऐहिक = पारलौकिकैहिक [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- पारलौकिकं च ऐहिकं च इति पारलौकिकैहिके [द्वन्द्व.]

- दानं करोति इति दानकृत् [उप.स.]

पारलौकिकैहिकयोः दानकृत् इति पारलौकिकैहिकदानकृत् [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : ह.त्.पुं.प्र.ए.

निगूढहृदयः [६८.]

समासविग्रह : निगूढं हृदयं यस्य सः निगूढहृदयः [बहु.]

शब्दपरिचय : नि [उ.] गूढ.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

अनन्यभक्तेषु ज्ञापिताशयः [६९.]

सन्धिविच्छेद : ज्ञापित + आशयः = ज्ञापिताशयः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न अन्यः इति अनन्यः [न.तत्पु.] अनन्याः ये भक्ताः ते अनन्यभक्ताः [कर्म] तेषु
- ज्ञापितः आशयः येन सः ज्ञापिताशयः [बहु.]

शब्दपरिचय : आ [उ.] शयः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय :

अनन्यभक्तेषु - अ.अ.पुं.स.ब. ज्ञापिताशयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

उपासनादिमार्गातिमुग्धमोहनिवारकः [७०.]

सन्धिविच्छेद :

उप + आसना + आदि = उपासनादि [दीर्घ.] मार्ग + अति = मार्गाति [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- उपासना आदिः येषां ते उपासनादयः [बहु.] ते एव मार्गाः इति उपासनादिमार्गाः [कर्म]

- उपासनादिमार्गेषु अतिमुग्धाः उपासनादिमार्गातिमुग्धाः [स.तत्पु.]
  तेषां मोहः इति उपासनादिमार्गातिमुग्धमोहः [ष.तत्पु.]
  तस्य निवारकः इति उपासनादिमार्गातिमुग्धमोहनिवारकः [ष.तत्पु]

शव्दपरिचय : अति [उ] मुग्ध उप [उ] -आसना नि [उ] वारकः

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्तिमार्गे सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूतिकृत् [७१.]

सन्धिविच्छेद : वैलक्षण्य + अनुभूति = वैलक्षण्यानुभूति [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तिः एव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म] तस्मिन्
- सर्वे ये मार्गाः ते सर्वमार्गाः [कर्म] सर्वमार्गेभ्यः वैलक्षण्यं इति सर्वमार्गवैलक्षण्यम् [पं.तत्पु.]
- सर्वमार्गवैलक्षण्यस्य अनुभूति इति सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूति [ष.तत्पु.]
- सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूतिं करोति इति सर्वमार्गवैलक्षण्यानुभूतिकृत् [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : ह.त.पुं.प्र.ए.

पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा [७२.]

सन्धिविच्छेद : मार्ग + उपदेष्टा = मार्गोपदेष्टा [गुण]

समासविग्रह :

- शरण एव मार्गः इति शरणमार्गः [कर्म]
- (भक्तिमार्गात्) पृथक् यः शरणमार्गः स पृथक्शरणमार्गः [कर्म]
  तस्य उपदेष्टा इति पृथक्शरणमार्गोपदेष्टा [ष.तत्पु.]

शव्दपरिचय : मार्ग-उप [उ] देष्टा.

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

श्रीकृष्णहार्दवित् [७३.]

समासविग्रह :

- श्रीकृष्णस्य हार्दं इति श्रीकृष्णहार्दम् [ष.तत्पु.]
- श्रीकृष्णहार्दं वेत्ति इति श्रीकृष्णहार्दवित् [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : ह.द.पुं.प्र.ए.

प्रतिक्षणनिकुञ्जस्थलीलारससुपूरितः [७४.]

समासविग्रह :

- क्षणं क्षणं प्रति इति प्रतिक्षणम् [अव्य.]
- निकुञ्जे स्थित इति निकुञ्जस्थः [उप.स.]
- निकुञ्जस्थस्य लीला इति निकुञ्जस्थलीला [ष.तत्पु.]
  तस्याः रस इति निकुञ्जस्थलीलारस [ष.तत्पु.]
  तेन सुपूरितः इति निकुञ्जस्थलीलारससुपूरितः [तृ.तत्पु.]
- प्रतिक्षणं यः निकुञ्जस्थलीलारससुपूरितः स प्रतिक्षणनिकुञ्जस्थलीलारससुपूरितः [कर्म]

शब्दपरिचय : प्रति [उ.] क्षण सु [उ.] पूरितः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

तत्कथाक्षिप्तचित्तः [७५.]

सन्धिविच्छेद : कथा + आक्षिप्त = कथाक्षिप्त [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- तस्य कथा इति तत्कथा [ष.तत्पु.]
- तत्कथायाम् एव आक्षिप्तं चित्तं येन सः तत्कथाक्षिप्तचित्तः [बहु.]

शब्दपरिचय : आ [उ.] क्षिप्त.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

तद्विस्मृतान्यः [७६.]

सन्धिविच्छेद : विस्मृत + अन्यः = विस्मृतान्यः [दीर्घ]

समासविग्रह : तया विस्मृतं अन्यत् (सर्वं) येन इति तद्विस्मृतान्यः [बहु.]

शब्दपरिचय : वि [उ.]स्मृतान्य.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

व्रजप्रियः [७७.]

समासविग्रह :

- व्रजः प्रियः यस्य स व्रजप्रियः [बहु.] वा
- व्रजस्य प्रियः इति व्रजप्रियः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

प्रियव्रजस्थितिः [७८.]

समासविग्रह :

- व्रजे स्थितिः इति व्रजस्थितिः [स.तत्पु.]
- प्रिया व्रजस्थितिः यस्य सः प्रियव्रजस्थितिः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

पुष्टिलीलाकर्ता [७९.]

समासविग्रह :

- पुष्टेः लीला इति पुष्टिलीला [ष.तत्पु.]
- तस्याः कर्ता इति पुष्टिलीलाकर्ता [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

रहःप्रियः [८०.]

समासविग्रह : रहः (एकान्तं) प्रियं यस्य सः रहःप्रियः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्तेच्छापूरकः [८१.]

सन्धिविच्छेद : भक्त + इच्छा = भक्तेच्छा [गुण]

समासविग्रह :

- भक्तानां इच्छा इति भक्तेच्छा [ष.तत्पु.]
- तस्याः पूरकः इति भक्तेच्छापूरकः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सर्वाज्ञातलीलः [८२.]

सन्धिविच्छेद : सर्व + अज्ञात = सर्वाज्ञात [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न ज्ञाता इति अज्ञाता [न.तत्पु.]
- सर्वैः अज्ञाता लीला यस्य सः सर्वाज्ञातलीलः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

अतिमोहनः [८३.]

शब्दपरिचय : अति [उ] मोहनः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सर्वासक्तः ८४.

सन्धिविच्छेद : सर्व + असक्तः = सर्वासक्तः [दीर्घ]

समासविग्रह :

न सक्तः इति असक्तः [न.तत्पु.] सर्वेषु असक्तः इति सर्वासक्तः [स.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्तमात्रासक्तः ८५.

सन्धिविच्छेद : मात्र + आसक्तः = मात्रासक्तः [दीर्घ.]

समासविग्रह : भक्तमात्रे आसक्तः इति भक्तमात्रासक्तः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : भक्तमात्र-आ [उ.]सक्तः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

पतितपावनः ८६.

समासविग्रह : पतितानां पावनः इति पतितपावनः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्वयशोगानसंहृष्टहृदयाम्भोजविष्टरः ८७.

सन्धिविच्छेद :

यशः + गान = यशो गान [उ.गुण.] हृदय + अम्भोज = हृदयाम्भोज [दीर्घ.].

समासविग्रह :

- स्वस्य यशः इति स्वयशः [ष.तत्पु.]
- स्वयशसः गानम् इति स्वयशोगानम् [ष.तत्पु.]

- स्वयशोगानेन संहृष्टः इति स्वयशोगानसंहृष्टः [ष.तत्पु.]
- हृदयम् एव अम्भोजम् इति हृदयाम्भोजम् [कर्म]
- स्वयशोगानसंहृष्टानि यानि हृदयाम्भोजानि तानि स्वयशोगानसंहृष्टहृदयाम्भोजानि [कर्म]

  तानि विष्टररूपाणि यस्य सः स्वयशो-गान-संहृष्ट-हृदयाम्भोज-विष्टरः [बहु.]

शब्दपरिचय : सं [उ.]हृष्ट   वि [उ.]-ष्टरः

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

यशःपीयूषलहरीप्लावितान्यरसः [८८.]

सन्धिविच्छेद : प्लावित + अन्य = प्लावितान्य [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- यशः एव पीयूषं इति यशःपीयूषम् [कर्म]

  तस्य लहरी इति यशःपीयूषलहरी [ष.तत्पु.]
- अन्ये च ये रसाश्च ते अन्यरसाः [कर्म]

  यशःपीयूषलहरीभिः प्लाविता अन्यरसाः येन सः यशःपीयूषलहरीप्लावितान्यरसः [बहु.]

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

परः [८९.]

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

लीलामृतरसार्द्रार्द्रीकृताखिलशरीरभृत् [९०.]

सन्धिविच्छेद :

लीला + अमृत = लीलामृत [दीर्घ]

रस + आर्द्र + आर्द्री = रसार्द्रार्द्री [दीर्घ]   कृत + अखिल = कृताखिल [दीर्घ.]

समासविग्रह :
- अमृत एव रसः इति अमृतरसः [कर्म]
- लीला एव अमृतरसः इति लीलामृतरसः [कर्म]
- न खिलम् इति अखिलम् [न तत्पु] - शरीरं बिभर्ति इति शरीरभृत् [उप.स.]
- अखिलाः ये शरीरभृतः ते अखिलशरीरभृतः [कर्म]
- लीलामृतरसेन आर्द्राद्रीकृता अखिलशरीरभृतः येन सः लीलामृत-रसार्द्रार्द्री-कृताखिल-शरीर-भृत् [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : ह.त.पुं.प्र.ए.

गोवर्धनस्थित्युत्साहः [११.]

सन्धिविच्छेद : स्थिति + उत्साह = स्थित्युत्साहः [यण्.]

समासविग्रह :
- गोवर्धने स्थिति इति गोवर्धनस्थिति [स.तत्पु.]
- गोवर्धनस्थित्यां उत्साहः यस्य सः गोवर्धनस्थित्युत्साहः [बहु.]

शब्दपरिचय : उत् [उ.] -साहः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

तल्लीलाप्रेमपूरितः [१२.]

सन्धिविच्छेद : तत् + लीला = तल्लीला [लोर्लि.] .(प.स.).

समासविग्रह :
- तस्य लीला इति तल्लीला [प.तत्पु.]
- तल्लीलायां प्रेम इति तल्लीलाप्रेम [स.तत्पु.]
- तेन पूरितः इति तल्लीलाप्रेमपूरितः [तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

यज्ञभोक्ता [१३.]

समासविग्रह : यज्ञस्य भोक्ता इति यज्ञभोक्ता [ष.तत्पु.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

यज्ञकर्ता [१४.]

समासविग्रह : यज्ञस्य कर्ता इति यज्ञकर्ता [ष.तत्पु.]
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.

चतुवर्गविशारदः [१५.]

समासविग्रह :
- चर्तुर्णां वर्गः इति चतुर्वर्गः [ष.तत्पु.]
- तस्मिन् विशारदः इति चतुवर्गविशारदः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : चतुर्वर्ग-वि [उ.]शारदः.
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सत्यप्रतिज्ञः [१६.]

समासविग्रह : सत्या प्रतिज्ञा यस्य सः सत्यप्रतिज्ञः [बहु.]
शब्दपरिचय : प्रति [उ.]ज्ञः.
वृत्तिपरिचय : समास.
शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

त्रिगुणातीतः [१७.]

सन्धिविच्छेद : त्रिगुण + अति + इतः = त्रिगुणातीतः [दीर्घ.]
समासविग्रह : त्रयाणां गुणानां समाहारः इति त्रिगुणम् [द्विगु.]

- तत् अतीतः इति त्रिगुणातीतः [द्वि.तत्पु.]

शब्दपरिचय : त्रिगुण-अति[उ]-इतः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

नयविशारदः [९८.]

समासविग्रह : नये विरदः इति नयविशारदः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : नय-वि[उ.]शारदः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्वकीर्तिवर्धनः [९९.]

समासविग्रह :

- स्वस्य कीर्तिः इति स्वकीर्तिः [ष.तत्पु.]
- स्वकीर्त्याः वर्धनः इति स्वकीर्तिवर्धनः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

तत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शकः [१००.]

समासविग्रह : तत्त्वसूत्राणां भाष्यम् इति तत्त्वसूत्रभाष्यम् [ष.तत्पु.]

- तस्य प्रदर्शकः इति तत्त्वसूत्रभाष्यप्रदर्शकः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : प्र[उ.]दर्शकः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

मायावादाख्यतूलाग्निः [१०१.]

सन्धिविच्छेद : मायावाद + आख्यतूल + अग्निः = मायावादाख्यतूलाग्निः [दीर्घ]

समासविग्रह :

- मायाया: वादः इति मायावादः [प.तत्पु.]
- मायावादः आख्या यस्य सः मायावादाख्यः [बहु.] स एव तूलम् इति मायावादाख्यतूलम् [कर्म.] तस्य अग्निः (दाहकः) इति मायावादाख्यतूलाग्निः [प.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

ब्रह्मवादनिरूपकः [१०२.]

समासविग्रह :

- ब्रह्मणः वादः इति ब्रह्मवादः [प.तत्पु.]
- तस्य निरूपकः इति ब्रह्मवादनिरूपकः [प.तत्पु.]

शब्दपरिचय : ब्रह्मवादनि [उ.]रूपकः.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

अप्राकृताखिलाकल्पभूषितः [१०३.]

सन्धिविच्छेद : अप्राकृत + अखिल + आकल्प = अप्राकृताखिलाकल्प [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न प्राकृतः इति अप्राकृतः [न.तत्पु.]
- न खिलः इति अखिलः [न.तत्पु.]
- अखिलाश्च ये आकल्पाः ते अखिलाकल्पाः [कर्म]
- अप्राकृताश्च ये अखिलाकल्पाः इति अप्राकृताखिलाकल्पाः [कर्म] तैः भूषितः इति अप्राकृताखिलाकल्पभूषितः [तृ.तत्पु]

शब्दपरिचय : अखिल-आ [उ.]कल्प.

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सहजस्मितः [१०४.]

समासविग्रह : सहजं स्मितं यस्य सः सहजस्मितः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

त्रिलोकीभूषणम् [१०५.]

समासविग्रह :

- त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी [द्विगु.]
- त्रिलोक्याः भूषणं इति त्रिलोकीभूषणम् [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.नपुं.प्र.ए.

भूमिभाग्यम् [१०६.]

समासविग्रह : भूमेः भाग्यं इति भूमिभाग्यम् [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.नपुं.प्र.ए.

सहजसुन्दरः [१०७.]

समासविग्रह :

सह जायते इति सहजः [उप.स.] सहजश्चासौ सुन्दरश्च इति सहजसुन्दरः [कर्म.]

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

अशेषभक्तसम्प्रार्थ्यचरणाब्जरजोधनः [१०८.]

सन्धिविच्छेद : चरण + अब्ज = चरणाब्ज [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न शेष इति अशेष [न.तत्पु.]

- अशेषाः च ते भक्ताश्च अशेषभक्ताः [कर्म]
- चरण एव अब्जम् इति चरणाब्जम् [कर्म]

  तस्य रजः चरणाब्जरजः [प.तत्पु] तत् एव धनं चरणाब्जरजोधनम्
- अशेषभक्तैः सम्प्रार्थ्यं चरणाब्जरजोधनं यस्य सः अशेषभक्तसम्प्रार्थ्यचर-णाब्जरजोधनः [बहु]

शब्दपरिचय : सम् [उ.] -प्रार्थ्य.

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

(अष्टोत्तरशतनामपाठफलम्)

इत्यानन्दनिधेः प्रोक्तं नाम्नामष्टोत्तरं शतम् ।।३३।।
श्रद्धा-विशुद्ध-बुद्धिर्यः पठत्यनुदिनं जनः ।।
स तदेकमनाः सिद्धिम् उक्तां प्राप्नोत्यसंशयम् ।।३४।।
तदप्राप्तौ वृथा मोक्षः तदाप्तौ तद्गतार्थता ।।
अतः सर्वोत्तमं स्तोत्रं जप्यं कृष्णरसार्थिभिः ।।३५।।

।। इति श्रीमदग्निकुमारप्रोक्तं सर्वोत्तमस्तोत्रं सम्पूर्णम् ।।

सन्धिविच्छेद :

इति + आनन्द = इत्यानन्द [यण्.]

प्र + उक्तम् = प्रोक्तम् [गुण.]	प्र + आप्नोति = प्राप्नोति [दीर्घ.]
अष्ट + उत्तरम् = अष्टोत्तरम् [गुण.]	प्राप्नोति + असंशय = प्राप्नोत्यसंशय [यण्.]
बुद्धिः + यः = बुद्धिर्यः [रेफ.]	गत + अर्थता = गतार्थता [दीर्घ.]
पठति + अनु = पठत्यनु [यण्]	सर्व + उत्तमम् = सर्वोत्तमम् [गुण.]
सः + तदेक = स तदेक [वि.लो.]	रस + अर्थिभिः = रसार्थिभिः [दीर्घ]

समासविग्रह :

- आनन्दस्य निधिः इति आनन्दनिधिः [प.तत्पु]

तस्य आनन्दनिधेः

- अष्टौ उत्तरे यस्य तत् अष्टोत्तरम् [बहु.]
- श्रद्धया विशुद्धा बुद्धिः यस्य सः श्रद्धा-विशुद्ध-बुद्धिः [बहु.]
- दिनं दिन अनु इति अनुदिनम् [अव्य.]
- तेषु (श्रीआचार्येषु) एकं मनः यस्य सः तदेकमनाः [बहु.]
- संशयस्य अभावः इति असंशयम् [अव्य.]
- न प्राप्तिः इति अप्राप्तिः [न.तत्पु.]
  तस्य अप्राप्तिः इति तदप्राप्तिः [ष.तत्पु.] तस्यां तदप्राप्तौ
- तस्य आप्तिः इति तदाप्तिः [ष.तत्पु.] तस्यां तदाप्तौ
- गतः अर्थः यस्य सः गतार्थः [बहु.]
  तस्य भावः गतार्थता तस्य गतार्थता इति तद्गतार्थता [ष.तत्पु.]
- सर्वेषु उत्तमं इति सर्वोत्तमम् [स.तत्पु.] तत् सर्वोत्तमम्
- कृष्णः एव रसः इति कृष्णरसः [कर्म]
  तस्य अर्थी इति कृष्णरसार्थी [ष.तत्पु.] तैः कृष्णरसार्थिभिः

शब्दपरिचय :

इति [नि.]	अनु [उ.] दिनम् [नि.]	वृथा [नि.] मोक्षः [ना.]
आ [उ.] नन्दनिधेः [ना.]	जनः [ना.] सः [ना.]	तदाप्तौ [ना.]
प्र [उ.] उक्तम् [ना.]	तदेकमनाः [ना.]	तद्गतार्थता [ना.]
नाम्नाम् [ना.]	सिद्धिम् [ना.]	अतः [नि.]
अष्ट-उत् [उ.] तरम् [ना.]	उक्ताम् [ना.]	सर्व-उत् [उ.] तमं [ना.]
शतम् [ना.]	प्र [उ.] आप्नोति [आ.]	स्तोत्रम् [ना.]
श्रद्धा-वि [उ.] शुद्ध-बुद्धिः [ना.]	असंशयम् [नि.]	जप्यम् [ना.]
यः [ना.] पठति [आ.]	तद्-अ-प्र [उ.] आप्तौ [ना.]	कृष्णरसार्थिभिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

आनन्दनिधेः [स.] प्रोक्तम् [कर्म+स.] अष्टोत्तरम् [स.]

श्रद्धा-विशुद्ध-बुद्धिः [स.]	उक्ताम् [कृद्]	तद्गतार्थता [तद्धि.]
अनुदिनम् [स.]	असंशयम् [स.]	सर्वोत्तमम् [स.]
तदेकमनाः [स.]	तदप्राप्तौ [स.]	जप्यम् [कृद्]
सिद्धिम् [कृद्]	तदाप्तौ [स.]	कृष्णरसार्थिभिः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(प्रोक्तम्, अष्टोत्तरम्, शतम्, अनुदिनम्, सर्वोत्तमम्, स्तोत्रम्, जप्यम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सिद्धिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.
आनन्दनिधेः - अ.इ.पुं.ष.ए.	उक्ताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
नाम्नाम् - ह.न्.नपुं.ष.ब.	तदप्राप्तौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.
श्रद्धाविशुद्धबुद्धिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	मोक्षः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
यः, सः - ह.द.पुं.प्र.ए.	तदाप्तौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.
जनः - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तद्गतार्थता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
तदेकमनाः - ह.स.पुं.प्र.ए.	कृष्णरसार्थिभिः - ह.न्.पुं.तृ.ब.

धातुरूपपरिचय : पठति - भ्वा.लट्.प्र.ए. प्राप्नोति - स्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : इति आनन्दनिधेः नाम्नां अष्टोत्तरं शतं प्रोक्तं, यः श्रद्धा-विशुद्ध-बुद्धिः जनः अनुदिनं (एतत्) पठति स तदेकमनाः (भवति ततः), असंशयं उक्तां सिद्धिम् प्राप्नोति (३४). तदप्राप्तौ मोक्षः (अपि) वृथा (अस्ति) तदाप्तौ (च) तद्गतार्थता (एव अस्ति) अतः कृष्णरसार्थिभिः सर्वोत्तमं स्तोत्रं जप्यम्॥३५॥

।। श्रीवल्लभाष्टकम् ।।

(३)

(भूमौ श्रीवल्लभस्वरूपप्रादुर्भावस्य हेतु प्रयोजने)

श्रीमद् - वृन्दावनेन्दु - प्रकटित - रसिकानन्द - सन्दोहरूप-
स्फूर्जद्-रासादि-लीलामृत-जलधि-भराक्रान्त-सर्वोऽपि शश्वत् ।।
तस्यैवात्मानुभाव - प्रकटन - हृदयस्याज्ञया प्रादुरासीद्
भूमौ यः सन्मनुष्याकृतिरति-करुणस्तं प्रपद्ये हुताशम् ।।१।।

सन्धिविच्छेद :

श्रीमत् + वृन्दावन = श्रीमद्वृन्दावन [जश्त्व.]
वृन्दावन + इन्दु = वृन्दावनेन्दु [गुण.]
रसिक + आनन्द = रसिकानन्द [दीर्घ.]
रास + आदि = रासादि [दीर्घ]
लीला + अमृत = लीलामृत = [दीर्घ.]
भर + आक्रान्त = भराक्रान्त [दीर्घ.]
सर्वः + अपि = सर्वोऽपि [उ.पू.रू.]
तस्य + एव = तस्यैव [वृद्धि.]
तस्यैव + आत्मा = तस्यैवात्मा [दीर्घ.]
आत्मा + अनुभाव = आत्मानुभाव [दीर्घ.]
हृदयस्य + आज्ञया = हृदयस्याज्ञया [दीर्घ.]
प्रादुस् + आसीद् = प्रादुरासीद् [रेफ.]
आसीत् + भूमौ = आसीद्भूमौ [जश्त्व.]
सत् + मनुष्य = सन्मनुष्य [अनु.]
मनुष्य + आकृतिः = मनुष्याकृतिः [दीर्घ.]
आकृतिः + अति = आकृतिरति [रेफ.]
करुणः + तं = करुणस्तम् [स.]

समासविग्रह :

- श्रीमत् च तद् वृन्दावनं च इति श्रीमद्वृन्दावनम् [कर्म]
  श्रीमद्वृन्दावनस्य इन्दुः इति श्रीमद्वृन्दावनेन्दुः [ष.तत्पु]
  तेन प्रकटितः इति श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितः [तृ.तत्पु]

- आनन्दस्य सन्दोहः इति आनन्दसन्दोहः [ष.तत्पु.]
  रसिकेषु आनन्दसन्दोहः इति रसिकानन्दसन्दोहः [स.तत्पु.]
  श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटितः यः रसिकानन्दसन्दोहः सः श्रीमद्वृन्दावनेन्दु-प्रकटित-रसिकानन्दसन्दोहः [कर्म.]
  श्रीमद्वृन्दावनेन्दुप्रकटित-रसिकानन्दसन्दोहः रूपं यस्य सः श्रीमद्वृन्दा-वनेन्दुप्रकटितरसिकानन्दसन्दोहरूपः [बहु.]
- अमृतस्य जलधिः इति अमृतजलधिः [ष.तत्पु.]
  रास आदिर्यासां लीलानाम् ता रासादिलीलाः [बहु.]
  रासादिलीलाः एव अमृतजलधयः इति रासादिलीलामृतजलधयः [कर्म.]
- स्फूर्जन्तः ये रासादिलीलामृतजलधयः इति स्फूर्जद्...जलधयः [कर्म.]
  तेषां भरः इति स्फूर्जद्...जलधिभरः [ष.तत्पु.]
  तेन आक्रान्तं सर्वं यस्य सः स्फुर्जद्...जलधिभराक्रान्तसर्वः [बहु.]
- श्रीमद्-वृन्दावनेन्दु-प्रकटित-रसिकानन्द-सन्दोहरूपः च असौ स्फूर्जद्-रासादि-लीलामृत-जलधि-भराक्रान्त-सर्वः इति श्रीमद्वृन्दावनेन्दु...-सन्दोहरूप-स्फूर्जद्...सर्वः [कर्म.]
- आत्मनः अनुभावः इति आत्मानुभावः [ष.तत्पु.]
  आत्मानुभावस्य प्रकटनं इति आत्मानुभावप्रकटनम् [ष.तत्पु.]
  आत्मानुभावप्रकटने हृदयं यस्य स आत्मानुभावप्रकटनहृदयः [बहु.]
  तस्य आत्मानुभावप्रकटनहृदयस्य
- सत् च असौ मनुष्यश्च इति सन्मनुष्यः [कर्म.]
  सन्मनुष्यस्य आकृतिः यस्य सः सन्मनुष्याकृतिः [बहु.]
- हुतम् अश्नाति इति हुताशः [उप.स.] तम्.

शब्दपरिचय :

श्रीमद्-वृन्दावनेन्दु-प्र[उ]कटित-रसिक-आ[उ]नन्द-सं[उ]न्दोहरूप ...भर-आ[उ]क्रान्त-सर्वः [ना.] अपि [नि.] शश्वत् [नि.]
तस्य [ना.] एव [नि.] आत्मा-अनु[उ]भाव-प्र[उ]कटन-हृदयस्य [ना.]

आ[उ] ज्ञया[ना.]	यः[ना.]	तम्[ना.]
प्रादुस्[उ] -आसीद्[आ.]	सन्मनुष्य-आ[उ] कृतिः[ना.]	प्र[उ] पद्ये[आ.]
भूमौ[ना.]	अति[उ] करुणः[ना.]	हुताशम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

श्रीमद्...भराक्रान्तसर्वः[स.]	सन्मनुष्याकृतिः[स.]
आत्मानुभावप्रकटनहृदयस्य[स.]	अतिकरुणः[स.]
आज्ञया[स.]	हुताशम्[स.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीमद्...भराक्रान्त-सर्वः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	यः - ह.द.पुं.प्र.ए.
तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.	सन्मनुष्याकृतिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
आत्मानुभावप्रकटनहृदयस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	अति-करुणः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
आज्ञया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	तम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.
भूमौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.	हुताशम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

प्रादुरासीत् - अदा.लङ्.प्र.ए. प्रपद्ये - दिवादि.लट्.उ.ए.

अन्वय : शश्वत् श्रीमद्-वृन्दावनेन्दु-प्रकटित-रसिकानन्द- सन्दोहरूप-स्फूर्जद्-रासादि-लीलामृत-जलधि-भराक्रान्त-सर्वोऽपि आत्मानुभाव-प्रकटन-हृदयस्य तस्यैव आज्ञया भूमौ यः अतिकरुणः सन्मनुष्याकृतिः प्रादुरासीत्, तं हुताशं (अहं) प्रपद्ये॥१॥

(श्रीवल्लभप्रादुर्भावाभावे दैवसृष्टिवैयर्थ्यम्)

नाविर्भूयाद् भवांश्चेद् अधि-धरणि-तलं भूतनाथोदितासन्-
मार्गध्वान्तान्धतुल्या निगमपथगतौ देवसर्गेऽपि जाताः ।।

घोषाधीशं तदेमे कथमपि मनुजाः प्राप्नुयुर्नैव दैवी
सृष्टिर्व्यर्था च भूयान्निज-फल-रहिता देव! वैश्वानरैषा॥२॥

सन्धिविच्छेद :

न + आविर्भूयाद् = नाविर्भूयाद् [दीर्घ.]
भूयात् + भवान् = भूयाद् भवान् [जश्त्व.]
भवान् + चेद् = भवांश्चेद् [नश्छव्य.श्चु.]
भूतनाथ + उदित = भूतनाथोदित [गुण]
उदित + असन् = उदितासन् [दीर्घ.]
असत् + मार्ग = असन्मार्ग [अनु.]
ध्वान्त + अन्ध = ध्वान्तान्ध [दीर्घ.]
तुल्याः + निगम = तुल्या निगम [वि.लो.]
देवसर्गे + अपि = देवसर्गेऽपि [पू.रु.]
अधि + ईशम् = अधीशम् [दीर्घ.]

घोष + अधीशं = घोषाधीशम् [दीर्घ.]
तदा + इमे = तदेमे [गुण.]
प्र + आप्नुयुः = प्राप्नुयुः [दीर्घ.]
न + एव = नैव [वृद्धि.]
प्राप्नुयुः + नैव = प्राप्नुयुर्नैव [रेफ.]
सृष्टिः + व्यर्था = सृष्टिर्व्यर्था [रेफ.]
वि + अर्था = व्यर्था [यण्.]
भूयात् + निज = भूयान्निज [अनुना.]
नर + एषा = नरैषा [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- धरण्याः तलम् इति धरणितलम् [प.तत्पु.]
  धरणितले इति **अधिधरणितलम्** [अव्य.भा.]
- भूतानां नाथः इति भूतनाथः [प.तत्पु.]
  भूतनाथेन उदिताः इति भूतनाथोदिताः [तृ.तत्पु.]
  असन्तश्च ते मार्गाश्च असन्मार्गाः [कर्म]
  भूतनाथोदिताश्च ते असन्मार्गाश्च भूतनाथोदिताऽसन्मार्गाः [कर्म]
  भूतनाथोदिताऽसन्मार्गाणां ध्वान्तम् इति भूतनाथो...मार्गध्वान्तम् [प.तत्पु.]
- अन्धेन तुल्यः इति अन्धतुल्यः [तृ.तत्पु.]
  भूतनाथोदिताऽसन्मार्गध्वान्तेन अन्धतुल्यः भूतनाथो...ध्वान्तान्धतुल्यः [तृ.तत्पु.] ते
- निगमस्य पन्था इति निगमपथः [प तत्पु]

निगमपथे गतिः इति निगमपथगतिः [स.तत्पु.] तस्यां निगमपथगतौ
- देवानां सर्गः इति देवसर्गः [ष.तत्पु.] तस्मिन् देवसर्गे
- घोषस्य अधीशः इति घोषाधीशः [ष.तत्पु.] तं घोषाधीशम्
- मनोः जातः इति मनुजः [उप.स.] ते मनुजाः
- दैवी च असौ सृष्टिश्च इति दैवीसृष्टिः [कर्म]
- निजं च तद् फलम् इति निजफलम् [कर्म]

 निजफलेन रहिता इति निजफलरहिता [तृ.तत्पु.]

शव्दपरिचय :

न [नि.] आविर्भूयाद् [आ.]	जाताः [ना.]	एव [नि.] दैवीसृष्टिः [ना.]
भवान् [ना.] चेद् [नि.]	घोष-अधि [उ.]-ईशम् [ना.]	वि [उ.] अर्था [ना.]
अधि [उ.]-धरणि-तलम् [नि.]	तदा [नि.] इमे [ना.]	च [नि.] भूयात् [आ.]
भूतनाथो...तुल्याः [ना.]	कथम् [नि.] अपि [नि.]	निज-फल-रहिता [ना.]
नि [उ.] गमपथगतौ [ना.]	मनुजाः [ना.]	देव [ना.] वैश्वानर [ना.]
देवसर्गे [ना.] अपि [नि.]	प्र [उ.] आप्नुयुः [आ.]	एषा [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अधिधरणितलम् [स.]	जाताः [कृद.]	मनुजाः [स.]
भूतनाथो...तुल्याः [स.]	घोषाधीशम् [स.]	दैवीसृष्टिः [स.]
निगमपथगतौ [स.]	तदा [तद्धि.]	व्यर्था [स.]
देवसर्गे [स]	कथम् [तद्धि.]	निजफलरहिता [स.]

शव्दरूपपरिचय :

भवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.	जाताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
भूतनाथो...तुल्याः - अ.अ.पुं.प्र.व.	घोषाधीशम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
निगमपथगतौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.	इमे - ह.म.पुं.प्र.ब.
देवसर्गे - अ.अ.पुं.स.ए.	मनुजाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

दैवीसृष्टिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
व्यर्था - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
निज-फल-रहिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
देव - अ.अ.पुं.सम्बो.ए.
वैश्वानर - अ.अ.पुं.सम्बो.ए.
एषा - ह.द.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

आविर्भूयात् - भ्वा.आ.लिङ्.प्र.ए.
प्राप्नुयुः - स्वा.वि.लिङ्.प्र.ब.

अन्वय : हे देव! वैश्वानर! भवान् चेद् अधिधरणितलं न आविर्भूयाद् तदा देवसर्गेऽपि जाताः इमे मनुजाः निगमपथगतौ भूतनाथोदिताऽसन्मार्गध्वान्तान्धतुल्याः (सन्तः) कथमपि घोषाधीशं नैव प्राप्नुयुः च निजफलरहिताः (भवेयुः) एषा दैवीसृष्टिः च व्यर्था भूयात्॥२॥

(ऋते वाक्पतिं श्रुत्याशयानवबोधः)

नह्यन्यो वागधीशाच्छ्रुतिगणवचसां भावमाज्ञातुमीष्टे
यस्मात् साध्वी स्वभावं प्रकटयति वधूरग्रतः पत्युरेव॥
तस्माच्छ्रीवल्लभाख्य! त्वदुदितवचनाद् अन्यथा रूपयन्ति
भ्रान्ता ये ते निसर्गत्रिदशरिपुतया केवलान्धन्तमोगाः॥३॥

सन्धिविच्छेद :

हि + अन्यः = ह्यन्यः [यण.]
अन्यः + वाग.. = अन्यो वाग.. [उ.गुण.]
अधि + ईश = अधीश [दीर्घ.]
वाक् + अधीश = वागधीश [जश्त्व.]
अधीशात् + श्रुति = अधीशाच्छ्रुति [जश्त्व श्चु.छ.]
वधूः + अग्रतः = वधूरग्रतः [रेफ.]
भ्रान्ताः + ये = भ्रान्ता ये [वि.लो.]
तमः + गाः = तमोगाः [उ.गुण]
पत्युः + एव = पत्युरेव [रेफ.]
तस्माद् + श्री = तस्माच्छ्री [श्चु.छ.]
वल्लभ + आख्य = वल्लभाख्य [दीर्घ.]
त्वत् + उदित = त्वदुदित [जश्त्व.]
वचनात् + अन्यथा = वचनाद् अन्यथा [जश्त्व]
केवल + अन्ध = केवलान्ध [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- वाचः अधीशः इति वागधीशः [ष.तत्पु.] तस्मात् वागधीशात्
- श्रुतीनां गणः इति श्रुतिगणः [ष.तत्पु.]
  श्रुतिगणानां वचांसि इति श्रुतिगणवचांसि [ष.तत्पु.] तेषां श्रुतिगणवचसाम्
- स्वस्य भावः इति स्वभावः [ष.तत्पु.] तम्
- ‘वल्लभ’ इति आख्या यस्य सः वल्लभाख्यः [बहु.]
- त्वया उदितम् इति त्वदुदितम् [तृ.तत्पु.]
  त्वदुदितं च तत् वचनं च त्वदुदितवचनम् [कर्म]
  तस्मात् त्वदुदितवचनात्
- त्रिदशानां रिपुः इति त्रिदशरिपुः [ष.तत्पु.]
  तस्य भावः त्रिदशरिपुता निसर्गात् त्रिदशरिपुता इति निसर्गत्रिदशरिपुता [पं.तत्पु.] तया
- अन्धं च असौ तमश्च अन्धन्तमः [अलुक्.]
  केवलं यत् अन्धन्तमः तत् केवलान्धन्तमः [कर्म.]
  केवलान्धंन्तमसि ये गच्छन्ति ते केवलान्धन्तमोगाः [उप.स.] ते

शब्दपरिचय :

न [नि.] हि [नि.] अन्यः [ना.]	साध्वी [ना.]	त्वदुदितवचनाद् [ना.]
वाग्-अधि [उ.] -ईशात् [ना.]	स्वभावम् [ना.]	अन्यथा [नि.]
श्रुतिगणवचसाम् [ना.]	प्र [उ.] कटयति [आ.]	रूपयन्ति [आ.]
भावम् [ना.]	वधूः [ना.] अग्रतः [नि.]	भ्रान्ताः [ना.] ये [ना.]
आ [उ.] ज्ञातुम् [स.आ.]	पत्युः [ना.] एव [नि.]	ते [ना.]
ईष्टे [आ.]	तस्मात् [ना.]	नि [उ.] सर्गत्रिदशरिपुतया [ना.]
यस्मात् [ना.]	श्रीवल्लभाख्य [ना.]	केवलान्धन्तमोगाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

वागधीशात् [स.]   श्रुतिगणवचसाम् [स.]   आज्ञातुम् [कृद्+स]

स्वभावम् [स]	श्रीवल्लभाख्य [स]	भ्रान्ताः [कृद]
प्रकटयति [सना]	त्वदुदितवचनात् [स]	निसर्गत्रिदशरिपुतया [स]
अग्रतः [चादि]	अन्यथा [चादि]	केवलान्धन्तमोगाः [स]

शब्दरूपपरिचय :

अन्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
वागधीशात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
श्रुतिगणवचसाम् - ह.स.नपुं.ष.व.
भावम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
यस्मात्, तस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.
साध्वी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
स्वभावम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
वधूः - अ.ऊ.स्त्री.प्र.ए.
पत्युः - अ.इ.पुं.ष.ए.
श्रीवल्लभाख्य - अ.अ.पुं.सम्बो.ए.
त्वदुदितवचनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
भ्रान्ताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
ये - ह.द.पुं.प्र.ब.
ते - ह.द.पुं.प्र.ब.
निसर्गत्रिदशरिपुतया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
केवलान्धन्तमोगाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :

ईष्टे - अ.लट्.प्र.ए.
प्रकटयति - भ्वा.लट्.प्र.ए. (ण्यन्त)
रूपयन्ति - चुरा.लट्.प्र.ब.

अन्वय : नहि वागधीशाद् अन्यः श्रुतिगणवचसां भावम् आज्ञातुम् ईष्टे, यस्मात् साध्वी वधूः पत्युरेव अग्रतः स्वभावं प्रकटयति तस्मात् हे श्रीवल्लभाख्य! ये त्वदुदितवचनाद् अन्यथा रूपयन्ति ते निसर्गत्रिदशरिपुतया भ्रान्ताः केवलान्धन्तमोगाः (भवन्ति) ॥३॥

(स्वास्यप्रादुर्भावितमार्गे निवेदितस्य साक्षादुपभोगः)

प्रादुर्भूतेन भूमौ व्रजपति-चरणाम्भोज-सेवाख्य-वर्त्म-
प्राकट्यं यत् कृतं ते तदुत निजकृते श्रीहुताशेति मन्ये॥

यस्मादस्मिन् स्थितो यत् किमपि कथमपि क्वाप्युपाहर्तुमिच्छ-
त्यद्धा तद् गोपिकेशः स्ववदनकमले चारुहासे करोति ।।४।।

सन्धिविच्छेद :

चरण + अम्भोज = चरणाम्भोज [दीर्घ]
सेवा + आख्य = सेवाख्य [दीर्घ]
हुताश + इति = हुताशेति [गुण]
यस्मात् + अस्मिन् = यस्मादस्मिन् [जश्त्व.]
स्थितः + यत् = स्थितो यत् [उ.गुण.]

क्व + अपि = क्वापि [दीर्घ]
उप + आहर्तुम् = उपाहर्तुम् [दीर्घ.]
क्वापि + उपा = क्वाप्युपा [यण.]
इच्छति + अद्धा = इच्छत्यद्धा [यण्.]
गोपिका + ईशः = गोपिकेशः [गुण]

समासविग्रह :

- व्रजस्य पतिः इति व्रजपतिः [ष.तत्पु.]
- चरणौ अम्भोजे इव इति चरणाम्भोजे [कर्म]
  व्रजपतेः चरणाम्भोजे इति व्रजपतिचरणाम्भोजे [ष.तत्पु.]
- व्रजपतिचरणाम्भोजयोः सेवा इति व्रजपतिजरणाम्भोजसेवा [ष.तत्पु.]
  सैव आख्या यस्य तद् व्रजपतिचरणाम्भोज- सेवाख्यम् [बहु.]
  तद् एव वर्त्म इति व्रजपतिचरणाम्भोजसेवाख्यवर्त्म [कर्म]
  तस्य प्राकट्यम् इति व्रजपति - चरणाम्भोज - सेवाख्य - वर्त्म - प्राकट्यम् [ष.तत्पु.] तत्
- निजानां कृते इति निजकृते [ष.तत्पु.]
- गोपिकानाम् ईशः इति गोपिकेशः [ष.तत्पु.]
- वदनं कमलम् इव इति वदनकमलम् [कर्म]
  स्वस्य वदनकमलम् इति स्ववदनकमलम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् स्ववदनकमले
  चारुः हासः यत्र तद् चारुहासम् [बहु.] तस्मिन्

शब्दपरिचय :

प्र [उ.] -आदुर्भूतेन [ना.]   भूमौ [ना]   व्रजपति...प्राकट्यम् [ना.]

यत् [ना.]	मन्ये [आ.]	क्व [नि.] अपि
कृतम् [ना.]	यस्माद् [ना.]	उप [उ.] -आ [उ.] हर्तुम् [ना.आ.]
ते [ना.]	अस्मिन् [ना.]	इच्छति [आ.]
तद् [ना.]	स्थितः [ना.]	अद्धा [नि.] तद् [ना.]
उत [नि.]	यत् [ना.]	गोपिकेशः [ना.]
निजकृते [नि.]	किम् [ना.]	स्ववदनकमले [ना.]
श्रीहुताश [ना.]	अपि [नि.]	चारुहासे [ना.]
इति [नि.]	कथम् [नि.]	करोति [आ.]

वृत्तिपरिचय :

प्रादुर्भूतेन [कृद्+स.]	श्रीहुताश [स.]	उपाहर्तुम् [कृद्+स.]
व्रजपति...प्राकट्यम् [स.]	स्थितः [कृद्.]	गोपिकेशः [स.]
कृतम् [कृद्.]	कथम् [तद्धि.]	स्ववदनकमले [स.]
निजकृते [स.]	क्व [तद्धि.]	चारुहासे [स.]

शब्दरूपपरिचय :

प्रादुर्भूतेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
भूमौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.
व्रजपति-चरणाम्भोज-सेवाख्य-
वर्त्म-प्राकट्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
कृतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
ते - ह.द.ष.ए.
श्रीहुताश - अ.अ.पुं.सम्बो.ए.

यस्माद् - ह.द.पुं.पं.ए.
अस्मिन् - ह.म.पुं.स.ए.
स्थितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
किम् - ह.म.नपुं.द्वि.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
गोपिकेशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्ववदनकमले - अ.अ.नपुं.स.ए.
चारुहासे - अ.अ.नपुं.स.ए.

धातुरूपपरिचय :

मन्ये - दिवादि.लट्.उ.ए. इच्छति - तुदा.लट्.प्र.ए. करोति - तना.लट्.प्र.ए.

अन्वय : श्रीहुताश ! भूमौ प्रादुर्भूतेन (त्वया) यत् ते व्रजपति-चरणाम्भोज-सेवाख्य-वर्त्म-प्राकट्यं कृतं तद् उत निजकृते इति मन्ये, यस्माद् अस्मिन् (मार्गे) स्थितो यत् किमपि कथमपि क्वापि उपाहर्तुम् इच्छति अद्धा तद् गोपिकेशः चारुहासे स्ववदनकमले करोति ।।४।।

(न भौतिकाग्नित्वं किन्तु श्रीकृष्णमुखविरहाग्निरूपत्वम्)

उष्णत्वैक-स्वभावोप्यति-शिशिर-वचः-पुञ्ज-पीयूष-वृष्टीर्-
आर्तेष्वत्युग्र-मोहासुर-नृषु युगपत् तापमप्यत्र कुर्वन् ।।
स्वस्मिन् कृष्णास्यतां त्वं प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वमेतद्
यस्मादानन्ददं श्रीव्रजजननिचये नाशकं चासुराग्नेः ।।५।।

सन्धिविच्छेद :

उष्णत्व + एक = उष्णत्वैक [वृद्धि.]	
स्वभावः + अपि = स्वभावोपि [उ.पू.रू.]	अपि + अत्र = अप्यत्र [यण्.]
स्वभावोपि + अति = स्वभावोप्यति [यण्.]	कृष्ण + आस्यतां = कृष्णास्यताम् [दीर्घ.]
वृष्टीः + आर्तेषु = वृष्टीरार्तेषु [रेफ.]	नः + भूतदेवत्वं = नो भूतदेवत्वम् [उत्व.गुण.]
आर्तेषु + अति = आर्तेष्वति [यण्]	एतत् + यस्मात् = एतद् यस्माद् [जश्त्व.]
आर्तेष्वति + उग्र = आर्तेष्वत्युग्र [यण्.]	यस्मात् + आनन्द = यस्माद् आनन्द [जश्त्व.]
मोह + आसुर = मोहासुर [दीर्घ.]	च + असुर + अग्नेः = चासुराग्नेः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- स्वस्य भावः स्वभावः [ष.तत्पु.]
  उष्णत्वम् एव एकः स्वभावः यस्य सः उष्णत्वैक-स्वभावः [बहु.]
- अतिशिशिराणि च तानि वचांसि च अतिशिशिरवचांसि [कर्म.]
  तेषां पुञ्जाः इति अतिशिशिरवचःपुञ्जाः [ष.तत्पु.]
  पीयूषस्य वृष्टिः इति पीयूषवृष्टिः [ष.तत्पु.]
  अतिशिशिरवचःपुञ्जाः एव पीयूषवृष्टयः इति अतिशिशिरवचःपुञ्ज-

पीयूषवृष्टयः [कर्म.] ताः
- अत्युग्रः मोहो येषां ते अत्युग्रमोहाः [बहु.]
  आसुराः एव ते नराः इति आसुरनराः [कर्म.]
  अत्युग्रमोहाः च ते आसुरनराः च अत्युग्रमोहासुरनराः [कर्म.] तेषु अत्युग्रमोहासुरनृषु
- कृष्णस्य आस्यम् इति कृष्णास्यम् [ष.तत्पु.] तत्ता कृष्णास्यता ताम्
- भूतानां देवः इति भूतदेवः [ष.तत्पु.] तस्य भावः भूतदेवत्वम् तत्
- आनन्दं ददाति इति आनन्ददः [उप.स.] तम् आनन्ददम्
- श्रीव्रजस्य जनः इति श्रीव्रजजनः [ष.तत्पु.]
  श्रीव्रजजनानां निचयः इति श्रीव्रजजननिचयः [ष.तत्पु.] तस्मिन् श्रीव्रजजननिचये
- असुर एव अग्निः इति असुराग्निः [कर्म.] तस्य असुराग्नेः

शब्दपरिचय :

उष्णत्वैक-स्वभावः [ना.]	अपि [नि.]	
अपि [नि.]	अत्र [नि.]	भूतदेवत्वम् [ना.]
अति [उ.]-शिशिर-वचः-	कुर्वन् [स.आ.]	एतद् [ना.]
पुञ्ज-पीयूष-वृष्टीः [ना.]	स्वस्मिन् [ना.]	यस्माद् [ना.]
आर्तेषु [ना.]	कृष्णास्यताम् [ना.]	आ [उ.]नन्ददम् [ना.]
अति [उ.]-उग्र-	त्वम् [ना.]	श्रीव्रजजन-नि [उ.]चये [ना.]
मोहासुर-नृषु [ना.]	प्र [उ.]कटयसि [आ.]	नाशकम् [ना.]
युगपत् [नि.]	च [नि.]	च [नि.]
तापम् [ना.]	नो [नि.]	असुराग्नेः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

उष्णत्वैक-स्वभावः [स.] अति-शिशिर-वचः-पुञ्ज-पीयूष-वृष्टीः [स.]
अत्युग्र-मोहासुर-नृषु [स.] अत्र [तद्धि.] कुर्वन् [कृद.]

कृष्णास्यताम्[तरि.] भूतदेवत्वम्[तरि.] श्रीवजजननिचये[स.]
प्रकटयसि[समा] आनन्ददम्[स.] नाशकम्[कर्तृ.] असुराग्नेः[स.]

शब्दरूपपरिचय :

उष्णत्वैक-स्वभावः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अति...वृष्टीः - अ.इ.स्त्री.द्वि.व.
आर्तेषु - अ.अ.पुं.स.व.
अत्युग्र-मोहासुर-नृषु - अ.ऋ.पुं.स.ब.
तापम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
कुर्वन् - ह.त.पुं.प्र.ए.
स्वस्मिन् - अ.अ.पुं.स.ए.
कृष्णास्यताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

त्वम् - ह.द.प्र.ए.
भूतदेवत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
एतद् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
यस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.
आनन्ददम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
श्रीव्रजजननिचये - अ.अ.पुं.स.ए.
नाशकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
असुराग्नेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

प्रकटयसि - भ्वा.लट्.म.ए.(ण्यन्त)

अन्वय :

उष्णत्वैकस्वभावोऽपि अत्र आर्तेषु अतिशिशिरवचःपुञ्जपीयूषवृष्टीः अत्युग्रमोहासुरनृषु तापमपि युगपत् कुर्वन् त्वं स्वस्मिन् कृष्णास्यतां प्रकटयसि च नो भूतदेवत्वं यस्मात् एतत् श्रीव्रजजननिचये आनन्ददम् असुराग्नेः नाशकं च (रूपं अस्ति) ॥५॥

(आनन्दरूपश्रीवल्लभाग्नेः आनन्दरूपश्रीकृष्णसेवोदधिजन्म)
आम्नायोक्तं यदम्भो भवनमनलतस्तच्च सत्यं विभो यत्
सर्गादौ भूतरूपाद् अभवदनलतः पुष्करं भूतरूपम् ॥
आनन्दैकस्वरूपात् त्वदधिभु यदभूत कृष्णसेवारसाब्धिश्
चानन्दैकस्वरूपस् तदखिलमुचितं हेतुसाम्यं हि कार्ये ॥६॥

सन्धिविच्छेद :

आम्नाय + उक्तम् = आम्नायोक्तम्[गुण]

अम्भः + भवनम् = अम्भो भवनम्[उ.गुण.]

अनलतः + तत् = अनलतस्तत्[स.]

तत् + च = तच्च[श्चु.]

सर्ग + आदौ = सर्गादौ[दीर्घ.]

भूतरूपात् + अभवत् + अनलतः = भूतरूपाद् अभवद् अनलतः[जश्त्व.]

आनन्द + एक = आनन्दैक[वृद्धि.]

त्वत् + अधिभु = त्वदधिभु[जश्त्व.]

रस + अब्धिः = रसाब्धिः[दीर्घ.]

रसाब्धिः + च = रसाब्धिश्च[श्चु.]

च + आनन्दैक = चानन्दैक[दीर्घ.]

स्वरूपः + तद् = स्वरूपस्तद्[स.]

समासविग्रह :

- आम्नाये उक्तम् इति आम्नायोक्तम्[स.तत्पु.] तत्
- अम्भसः भवनम् इति अम्भोभवनम्[ष.तत्पु.] तत्
- सर्गस्य आदिः इति सर्गादिः[ष.तत्पु.] तस्मिन् सर्गादौ
- भूतं रूपं यस्य तद् भूतरूपम्[बहु.] तस्माद् भूतरूपात्
- आनन्दः एव एकं स्वरूपं यस्य स आनन्दैकस्वरूपः[बहु.] तस्मात् आनन्दैकस्वरूपात्
- भुवि इति अधिभु[अव्य.]
- रसस्य अब्धिः इति रसाब्धिः[ष.तत्पु.]
- कृष्णस्य सेवा इति कृष्णसेवा[ष.तत्पु.] कृष्णसेवा एव रसाब्धिः इति कृष्णसेवारसाब्धिः[कर्म]
- हेतोः साम्यं इति हेतुसाम्यम्[पञ्च.तत्पु.] तत्

शब्दपरिचय :

आम्नायोक्तम्[ना.]	च[नि.]	भूतरूपाद्[ना.]
यद्[ना.]	सत्यम्[ना.]	अभवद्[आ.]
अम्भोभवनम्[ना.]	वि[उ.]भो[ना.]	पुष्करम्[ना.]
अनलतः[नि.]	यत्[नि.]	भूतरूपम्[ना.]
तत्[ना.]	सर्गादौ[ना.]	आ[उ.]नन्दैकस्वरूपात्[ना.]

त्वद् [ना.]	च [नि.]	उचितम् [ना.]
अधि [उ] भु [नि.]	आ [उ] नन्दैकस्वरूपः [ना.]	हेतुसाम्यम् [ना.]
अभूत् [आ.]	तद् [ना.]	हि [नि.]
कृष्णसेवारसाब्धिः [ना.]	अखिलम् [ना.]	कार्ये [ना.]

वृत्तिपरिचय :

आम्नायोक्तम् [स.]	भूतरूपात् [स.]	कृष्णसेवारसाब्धिः [स.]
अम्भोभवनम् [स.]	भूतरूपम् [स.]	अखिलम् [स.]
अनलतः [तद्धि.]	आनन्दैकस्वरूपात् [स.]	उचितम् [कृद.]
विभोः [स.]	अधिभु [स.]	हेतुसाम्यम् [स.]
सर्गादौ [स.]	आनन्दैकस्वरूपः [स.]	कार्ये [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

आम्नायोक्तम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	भूतरूपम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.	आनन्दैकस्वरूपात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
अम्भोभवनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	त्वत् - ह.द.पं.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.	कृष्णसेवारसाब्धिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
सत्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	आनन्दैकस्वरूपः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
विभो - अ.उ.पुं.सं.ए.	अखिलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सर्गादौ - अ.इ.पुं.स.ए.	उचितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
भूतरूपाद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	हेतुसाम्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
पुष्करम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कार्ये - अ.अ.नपुं.स.ए.

धातुरूपपरिचय : अभवद् - भ्वा.लङ्.प्र.ए. अभूत् - भ्वा.लुङ.प्र.ए.

अन्वय : हे विभो! आम्नायोक्तं यद् अनलतः अम्भो भवनं तत् च सत्यं यत् सर्गादौ भूतरूपाद् अनलतः भूतरूपं पुष्करम् अभवद्

यद् आनन्दैकस्वरूपात् त्वद् अधिभु आनन्दैकस्वरूपः कृष्णसेवारसाब्धिः
अभूत् तत् कार्ये हेतुसाम्यं हि अखिलम् उचितम् (एव) ॥६॥

(श्रीवल्लभमुखदर्शनेन श्रीकृष्णदिदृक्षार्तितापः)

स्वामिन् श्रीवल्लभाग्ने! क्षणमपि भवतः सन्निधाने कृपातः
प्राणप्रेष्ठ-व्रजाधीश्वर-वदन-दिदृक्षार्ति-तापो जनेषु ॥
यत् प्रादुर्भावमाप्नोत्युचिततरमिदं यत्तु पश्चादपीत्थं
दृष्टेऽप्यस्मिन् मुखेन्दौ प्रचुरतरमुदेत्येव तच्चित्रमेतत् ॥७॥

सन्धिविच्छेद :

श्रीवल्लभ + अग्ने = श्रीवल्लभाग्ने [दीर्घ.]
सम् + निधाने = सन्निधाने [प.स.]
प्र + अण = प्राण [दीर्घ.]
अधि + ईश्वर = अधीश्वर [दीर्घ.]
व्रज + अधीश्वर = व्रजाधीश्वर [दीर्घ.]
दिदृक्षा + आर्ति = दिदृक्षार्ति [दीर्घ.]
तापः + जनेषु = तापो जनेषु [उत्व.पू.रू.]
आप्नोति + उचित = आप्नोत्युचित [यण.]
पश्चात् + अपि = पश्चादपि [जश्त्व.]
अपि + इत्थम् = अपीत्थम् [दीर्घ.]
दृष्टे + अपि = दृष्टेऽपि [पू.रू.]
अपि + अस्मिन् = अप्यस्मिन् [यण.]
मुख + इन्दौ = मुखेन्दौ [गुण]
उदेति + एव = उदेत्येव [यण.]
तत् + चित्रम् = तच्चित्रम् [श्चु.]

समासविग्रह :

- वल्लभ एव अग्निः इति वल्लभाग्निः [कर्म] सम्बोधने वल्लभाग्ने
- व्रजस्य अधीश्वरः इति व्रजाधीश्वरः [प.तत्पु.]
- प्राणात् (अपि) प्रेष्ठः इति प्राणप्रेष्ठः [पं.तत्पु]
- प्राणप्रेष्ठश्च असौ व्रजाधीश्वरश्च प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरः [कर्म]
  तस्य वदनम् इति प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनम् [ष.तत्पु.]
  तस्य दिदृक्षा इति प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिदृक्षा [ष.तत्पु.]
  तया आर्तिः इति प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वरवदनदिदृक्षार्तिः [तृ.तत्पु]

तस्याः तापः इति प्राण...दिदृक्षार्तितापः [ष.तत्पु.] स प्राणप्रेष्ठव्रजाधीश्वर-वदनदिदृक्षार्तितापःग- मुख एव इन्दुः इति मुखेन्दुः [कर्म.] तस्मिन् मुखेन्दौ

शव्दपरिचय :

स्वामिन् [ना.]	जनेषु [ना.]	दृष्टे [ना.]
श्रीवल्लभाग्ने [ना.]	यत् [ना.]	अस्मिन् [ना.]
क्षणम् [ना.] अपि [नि.]	प्र [उ.] आ [उ.] दुर् [उ.] भावम् [ना.]	मुखेन्दौ [ना.]
भवतः [ना.]	आप्नोति [आ.]	प्रचुरतरम् [ना.]
सम् [उ.] नि. [उ.] धाने [ना.]	उचिततरम् [ना.]	उद् [उ.] एति [आ.]
कृपातः [नि.]	इदम् [ना.]	एव [नि.]
प्र [उ.] -अणप्रेष्ठ-	तु [नि.]	तत् [ना.]
व्रज-अधि [उ.] ईश्वर-	पश्चाद् [नि.]	चित्रम् [ना.]
वदन-दिदृक्षार्ति-तापः [ना.]	इत्थम् [नि.]	एतत् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

श्रीवल्लभाग्ने [स.]	प्राण...तापः [स.]	दृष्टे [कृद.]
सन्निधाने [कृद+स.]	उचिततरम् [तद्धि.]	मुखेन्दौ [स.]
कृपातः [तद्धि.]	इत्थम् [तद्धि.]	प्रचुरतरम् [तद्धि.]

शव्दरूपपरिचय :

स्वामिन् - ह.न.पुं.सं.ए.

श्रीवल्लभाग्ने - अ.इ.पुं.सं.ए.

क्षणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

भवतः - ह.त.पु.ष.ए.

सन्निधाने - अ.अ.नपुं.स.ए.

प्राणप्रेष्ठ-व्रजाधीश्वर-वदन-दिदृक्षार्ति-तापः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

जनेषु - अ.अ.पुं.स.ब.

प्रादुर्भावम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

उचिततरम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

इदम् - ह.म.नपुं.प्र.ए.
यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
दृष्टे - अ.अ.पुं.स.ए.
अस्मिन् - ह.म.पुं.स.ए.
मुखेन्दौ - अ.उ.पुं.स.ए.

प्रचुरतरम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
चित्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

आप्नोति - स्वा.लट्.प्र.ए.   उदेति - अदादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : हे स्वामिन् श्रीवल्लभाग्ने! भवतः क्षणमपि सन्निधाने कृपातः जनेषु प्राणप्रेष्ठ-व्रजाधीश्वर-वदन-दिदृक्षार्ति-तापो यत् प्रादुर्भावम् आप्नोति इदम् उचिततरं (अस्ति) यत् तु अस्मिन् मुखेन्दौ दृष्टेऽपि पश्चाद् अपि इत्थं प्रचुरतरम् एव उदेति तद् एतत् चित्रम्!॥७॥

(अज्ञानान्धकारनिवारकत्वेनाग्नित्वं वस्तुतस्तु श्रीकृष्णत्वमेव)

अज्ञानाद्यन्धकार-प्रशमनपटुता-ख्यापनाय त्रिलोक्याम्
अग्नित्वं वर्णितं ते कविभिरपि सदा वस्तुतः कृष्णएव॥
प्रादुर्भूतो भवानित्यनुभव-निगमाद्युक्त-मानैरवेत्य
त्वां श्रीश्रीवल्लभेमे निखिलबुधजनाः गोकुलेशं भजन्ते॥८॥

॥ इति श्रीमद्विठ्ठलदीक्षितविरचितं श्रीवल्लभाष्टकं सम्पूर्णम् ॥

सन्धिविच्छेद :

अज्ञान + आदि = अज्ञानादि [दीर्घ.]
अज्ञानादि + अन्ध = अज्ञानाद्यन्ध [यण्.]
कविभिः + अपि = कविभिरपि [रेफ]
कृष्णः + एव = कृष्ण एव [वि.लो]
प्रादुर्भूतः + भवान् = प्रादुर्भूतो भवान् [उत्व गुण]
इति + अनुभव = इत्यनुभव [यण्.]
निगम + आदि = निगमादि [दीर्घ]
निगमादि + उक्त + निगमाद्युक्त [यण्.]

मानैः + अवेत्य = मानैरवेत्य [रेफ]　　श्रीवल्लभ + इमे = श्रीवल्लभेमे [गुण]
अव + इत्य = अवेत्य [गुण]　　गोकुल + ईशम् = गोकुलेशम् [गुण]

समासविग्रह :

- न ज्ञानम् इति अज्ञानम् [न.तत्पु.]
- अज्ञानम् आदिः येषां ते अज्ञानादयः [बहु.]
- अज्ञानादय एव अन्धकाराः इति अज्ञानाद्यन्धकाराः [कर्म]
  तेषां प्रशमनम् इति अज्ञानाद्यन्धकारप्रशमनम् [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् पटुता इति अज्ञानाद्यन्धकारप्रशमनपटुता [स.तत्पु.]
  तस्याः ख्यापनम् इति अज्ञानाद्यन्धकारप्रशमनपटुताख्यापनम् [ष.तत्पु.] तस्मै अज्ञानाद्यन्धकारप्रशमनपटुताख्यापनाय
- त्रयाणां लोकानां समाहारः त्रिलोकी [द्विगु.]
- निगमम् आदिः येषां ते निगमादयः [बहु.]
- अनुभवश्च निगमादयश्च अनुभव-निगमादयः [द्वन्द्व.]
  तैः उक्तम् इति अनुभव-निगमाद्युक्तम् [तृ.तत्पु.]
  अनुभव-निगमाद्युक्तानि यानि मानानि इति अनुभव-निगमाद्युक्तमानानि [कर्म] तैः अनुभव-निगमाद्युक्त-मानैः
- बुधश्चासौ जनश्च इति बुधजनः [कर्म]
  निखिलाश्च ते बुधजनाश्च इति निखिलबुधजनाः [कर्म.]
- गोकुलस्य ईशः इति गोकुलेशः [ष.तत्पु.] तं गोकुलेशम्

शव्दपरिचय :

अज्ञानाद्यन्धकार-	वर्णितमृतम् [ना.]	कृष्णः [ना.]
प्र [उ] शमनपटुता-	ते [ना.] कविभिः [ना.]	एव [नि.]
ख्यापनाय [ना]	अपि [नि]	प्रादुस् [उ] भूतः [ना.]
त्रिलोक्याम् [ना.]	सदा [नि]	भवान् [ना.]
अग्नित्वम् [ना]	वस्तुतः [नि.]	इति [नि.]

अनु [उ] भव-	त्वाम् [ना]	नि [उ] खिलबुधजनाः [ना.]
नि [उ] गमाद्युक्त-मानैः [ना.]	श्रीश्रीवल्लभ [ना.]	गोकुलेशम् [ना]
अव [उ] -इत्य [ग.आ.]	इमे [ना.]	भजन्ते [आ.]

वृत्तिपरिचय :

अज्ञाना...ख्यापनाय [स.]	वस्तुतः [तद्धि.]	अवेत्य [कृद+स.]
त्रिलोक्याम् [स]	प्रादुर्भूतः [कृद+स.]	श्रीश्रीवल्लभ [स.]
अग्नित्वम् [तद्धि]	अनुभव-निगमाद्युक्त-मानैः [स.]	निखिलबुधजनाः [स.]
वर्णितम् [कृद]		गोकुलेशम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अज्ञाना...ख्यापनाय - अ.अ.नपुं.च.ए. भवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.

त्रिलोक्याम् - अ.इ.स्त्री.स.ए.	अनुभवनिगमाद्युक्तमानैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
अग्नित्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	त्वाम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.
वर्णितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	श्रीश्रीवल्लभ - अ.अ.पुं.सं.ए.
ते - ह.द.ष.ए.	इमे - ह.म.पुं.प्र.ब.
कविभिः - अ.इ.पुं.तृ.ब.	निखिलबुधजनाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
कृष्णः, प्रादुर्भूतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	गोकुलेशम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : भजन्ते - भ्वा.लट्.प्र.ब.

अन्वय : त्रिलोक्यां कविभिरपि अज्ञानाद्यन्धकार-प्रशमनपटुता-ख्यापनाय ते अग्नित्वं सदा वर्णितम्, वस्तुतः भवान् कृष्ण एव प्रादुर्भूतः इति अनुभवनिगमाद्युक्तमानैः हे श्रीश्रीवल्लभ! त्वां गोकुलेशं अवेत्य इमे निखिलबुधजनाः भजन्ते ॥८॥

।। श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रम् ।।

(४)

[पुष्टिसम्प्रदायप्रवर्तकस्य गुरोः श्रीवल्लभस्य सप्तधा वर्णनं धर्मिस्वरूपस्य [१] ऐश्वर्यादिषड्गुणधर्माणां [२-७] च]

(पुष्टिसम्प्रदायप्रवर्तकगुरोःश्रीवल्लभस्यस्वरूपलक्षणं : ''श्रीकृष्णलीलारूप-सेवाकथा-परायणत्वं'' तदेव धर्मिस्वरूप [१] मिति निरूपणम्)

स्फुरत्-कृष्ण-प्रेमामृत-रस-भरेणाति-भरिता
विहारान् कुर्वाणा व्रजपति-विहाराब्धिषु सदा।।
प्रिया गोपीभर्तुः स्फुरतु सततं 'वल्लभ' इति
प्रथावत्यस्माकं हृदि सुभगमूर्तिः सकरुणा।।१।।

सन्धिविच्छेद :

प्रेम + अमृत = प्रेमामृत [दीर्घ.]
भरेण + अति = भरेणाति [दीर्घ.] वल्लभः + इति = वल्लभ इति [वि.लो.]
विहार + अब्धि = विहाराब्धि [दीर्घ.] प्रथावती + अस्माकं = प्रथावत्यस्माकं [यण्.]

समासविग्रह :

- प्रेम एव अमृतम् इति प्रेमामृतम् [कर्म]
- कृष्णस्य प्रेमामृतम् इति कृष्णप्रेमामृतम् [ष.तत्पु.]

स्फुरत् यत् कृष्णप्रेमामृतं तत् स्फुरत्-कृष्णप्रेमामृतम् [कर्म]
स्फुरत्-कृष्णप्रेमामृतस्य रसः इति स्फुरत्-कृष्णप्रेमामृतरसः [ष.तत्पु.]
तस्य भरः इति स्फुरत्-कृष्ण-प्रेमामृत-रस-भरः [ष.तत्पु.] तेन

स्फुरत्-कृष्ण-प्रेमामृत-रस-भरेण

- व्रजस्य पतिः इति व्रजपतिः [ष.तत्पु.]
  व्रजपतेः विहारः इति व्रजपतिविहारः [ष.तत्पु.]
  स एव अब्धिः इति व्रजपतिविहाराब्धिः [कर्म.] तेषु व्रजपतिविहाराब्धिषु
- गोपीनां भर्ता इति गोपीभर्ता [ष.तत्पु.] तस्य गोपीभर्तुः
- सुभगा च असौ मूर्तिश्च इति सुभगमूर्तिः [कर्म.]
- करुणया सह वर्तमाना सकरुणा [बहु.]

शब्दपरिचय :

स्फुरत्-कृष्ण-प्रेमामृत-रस-भरेण [ना.]	सदा [नि.]	इति [नि.]
	प्रिया [ना.]	प्रथावती [ना.]
अति [उ.] भरिता [ना.]	गोपीभर्तुः [ना.]	अस्माकम् [ना.]
वि [उ.] हारान् [ना.]	स्फुरतु [आ.]	हृदि [ना.]
कुर्वाणा [ना.]	सततम् [नि.]	सु [उ.] भगमूर्तिः [ना.]
व्रजपति-वि [उ.] हाराब्धिषु [ना.]	वल्लभः [ना.]	सकरुणा [ना.]

वृत्तिपरिचय :

स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतरसभरेण [स.]	कुर्वाणा [कृद.]	
अतिभरिता [स.]	व्रजपतिविहाराब्धिषु [स.]	सुभगमूर्तिः [स.]
विहारान् [कृद+स.]	गोपीभर्तुः [स.]	सकरुणा [स.]

शब्दरूपपरिचय :

स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतरसभरेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.	प्रिया - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
अति-भरिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	गोपीभर्तुः - अ.ऋ.पुं.ष.ए.
विहारान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.	वल्लभः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कुर्वाणा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	प्रथावती - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
व्रजपतिविहाराब्धिषु - अ.इ.पुं.स.ब.	अस्माकम् - ह.द.पुं.ष.ब.

हृदि - ह.द्.नपु.स.ए.   सुभगमूर्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.   सकरुणा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : स्फुरतु - तुदा.लोट्.प्र.ए.

अन्वय : स्फुरत्कृष्णप्रेमामृतरसभरेण अतिभरिता व्रजपतिविहाराब्धिषु सदा विहारान् कुर्वाणा गोपीभर्तुः प्रिया 'वल्लभ' इति प्रथावती सकरुणा सुभगमूर्तिः अस्माकं हृदि सततं स्फुरतु ॥१॥

(पुष्टिसमप्रदाये गुरुरूपस्य श्रीवल्लभस्य ऐश्वर्य [२]रूपो गुणः श्रीभागवततत्त्वज्ञतारूपः)

श्रीभागवत-प्रतिपद-मणिवर-भावांशु-भूषिता मूर्तिः ॥
'श्रीवल्लभा'भिधा नस्तनोतु निजदासस्य सौभाग्यम् ॥२॥

सन्धिविच्छेद :

भाव + अंशु = भावांशु [दीर्घ.]   श्रीवल्लभ + अभिधा = श्रीवल्लभाभिधा [दीर्घ.]

नः + तनोतु = नस्तनोतु [स.]

समासविग्रह :

- प्रत्येकं पदम् इति प्रतिपदम् [प्रादि.]
- श्रीभागवतस्य प्रतिपदम् इति श्रीभागवतप्रतिपदं [ष.तत्पु.]
  तानि श्रीभागवतप्रतिपदानि - मणिषु वरः इति मणिवरः [स.तत्पु.]
- श्रीभागवतप्रतिपदानि एव मणिवराः इति श्रीभागवत-प्रतिपदमणिवराः [कर्म]
  तेषां ये भावाः इति श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावाः [ष.तत्पु.]
  ते एव अंशवः इति श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशवः [कर्म]
  तैः भूषिता श्रीभागवतप्रतिपदमणिवरभावांशुभूषिता [तृ.तत्पु.]
- श्रीवल्लभः इति अभिधा यस्याः सा श्रीवल्लभाभिधा [बहु.]
- निजो यो दासः' स निजदासः [कर्म] तस्य निजदासस्य.

शव्दपरिचय :

श्रीभागवत-प्रति[उ]...भूषिता[ना] श्रीवल्लभ-अभि[उ]धा[ना] निजदासस्य[ना]
मूर्तिः[ना] नः[ना] तनोतु[आ] सौभाग्यम्[ना]

वृत्तिपरिचय :

श्रीभागवत...भूषिता[स.] श्रीवल्लभाभिधा[स.]
मूर्तिः[कृद्.] निजदासस्य[स.] सौभाग्यम्[स.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीभागवत...भूषिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
मूर्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
श्रीवल्लभाभिधा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
नः - ह.द्.ष.ब.
निजदासस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
सौभाग्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : तनोतु - तना.लोट्.प्र.ए.

अन्वय : श्रीभागवत-प्रतिपद-मणिवर-भावांशु-भूषिता श्रीवल्लभाभिधा मूर्तिः नः निजदासस्य सौभाग्यं तनोतु.(२)

(पुष्टिसम्प्रदाये गुरुरूपस्य श्रीवल्लभस्य वीर्य[१]रूपो गुणः : भगवत्सेवाप्रतिबन्धनिराकर्तृत्वे सति श्रीकृष्णसेवाप्रेरकत्वम्)

मायावादतमो निरस्य मधुभित्-सेवाख्य-वर्त्माद्भुतं
श्रीमद्-गोकुलनाथ-सङ्गमसुधा-सम्प्रापकं तत्क्षणात्।।
दुष्प्रापं प्रकटीचकार करुणा-रागाति-सम्मोहनः
स श्रीवल्लभ-भानुरुल्लसति यः श्रीवल्लवीशान्तरः ।।३।।

सन्धिविच्छेद :

तमः + निरस्य = तमो निरस्य[उ.गुण] सेवा + आख्य = सेवाख्य[दीर्घ.]

वर्त्म + अद्‌भुत = वर्त्माद्‌भुत दीर्घ.

सम् + गम = सङ्गम प.स.

प्र + आपकं = प्रापकम् दीर्घ

दुष्प्र + आपम् = दुष्प्रापम् दीर्घ

राग + अति = रागाति दीर्घ

सः + श्री = स श्री वि.लो.

उत् + लसति = उल्लसति प.स.

भानुः + उल्लसति = भानुरुल्लसति [illegible]

श्रीवल्लवी + ईश = श्रीवल्लवीश दीर्घ.

वल्लवीश + अन्तर =वल्लवीशान्तर दीर्घ.

समासविग्रह :

- मायायाः वादः इति मायावादः ष.तत्पु.
- मायावाद एव तमः इति मायावादतमः कर्म
- मधुं भिनत्ति इति मधुभित् उप.स. - मधुभितः सेवा मधुभित्-सेवा ष.तत्पु.
- मधुभित्-सेवा एव आख्या यस्य तत् मधुभित्-सेवाख्यम् बहु.
- मधुभित्-सेवाख्यं च तत् वर्त्म च मधुभित्सेवाख्यवर्त्म कर्म
- गोकुलस्य नाथः इति गोकुलनाथः ष.तत्पु.
- श्रीमान् च असौ गोकुलनाथः इति श्रीमद्-गोकुलनाथ कर्म.
- श्रीमद्-गोकुलनाथस्य सङ्गमः इति श्रीमद्-गोकुलनाथसङ्गमः ष.तत्पु.
- श्रीमद्-गोकुलनाथसङ्गम एव सुधा इति श्रीमद्-गोकुलनाथसङ्गमसुधा कर्म
  तस्याः सम्प्रापकम् इति श्रीमद्गोकुलनाथसङ्गमसुधासम्प्रापकम् ष.तत्पु. तत्
- तदेव क्षणम् इति तत्क्षणम् कर्म तस्मात् तत्क्षणात्
- करुणया रागः इति करुणारागः तृ.तत्पु.
  अतिशयं सम्मोहयति इति अतिसम्मोहनः उप.स.
  करुणारागेन अतिसम्मोहनः इति करुणारागातिसम्मोहनः तृ.तत्पु.
- श्रीवल्लभ एव भानुः इति श्रीवल्लभ-भानुः कर्म
- श्रीवल्लव्याः ईशः इति श्रीवल्लवीशः ष.तत्पु.
  श्रीवल्लवीशः आन्तरो यस्य स श्रीवल्लवीशान्तरः बहु.

शब्दपरिचय :

मायावादतमः ना. निरस्य स.अ. मधुभित्सेवाख्यवर्त्म ना.

अद्भुतम् [ना.]	दुष्[उ.] प्र[उ.]-	सः [ना.]
श्रीमद्-गोकुलनाथ-सम्[उ.] -	आपम्[ना.]	श्रीवल्लभ-भानुः [ना.]
गमसुधा-सम्[उ.] प्र[उ.] -	प्र[उ.] कटीचकार [आ.]	उत्[उ.] लसति [आ.]
आपकम्[ना.]	करुणा-राग-अति[उ.] -	यः [ना.]
तत्क्षणात्[ना.]	सम्[उ.] मोहनः [ना.]	श्रीवल्लवीशान्तरः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

मायावादतमः [स.]	तत्क्षणात्[स.]
निरस्य [कृद.]	दुष्प्रापम्[स.]
मधुभित्-सेवाख्य-वर्त्म [स.]	करुणारागातिसम्मोहनः [स.]
श्रीमद्गोकुलनाथसङ्गम-	श्रीवल्लभभानुः [स.]
सुधासम्प्रापकम्[स.]	श्रीवल्लवीशान्तरः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

मायावादतमः - ह.स.नपुं.द्वि.ए.	दुष्प्रापम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
मधुभित्सेवाख्यवर्त्म - ह.न्.नपुं.द्वि.ए.	करुणारागातिसम्मोहनः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अद्भुतम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	सः - ह.द्.पुं.प्र.ए.
श्रीमद्-गोकुलनाथ-सङ्गमसुधा-	श्रीवल्लभ-भानुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
सम्प्रापकम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	यः - ह.द्.पुं.प्र.ए.
तत्क्षणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	श्रीवल्लवीशान्तरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : प्रकटीचकार - तना.लिट्.प्र.ए. उल्लसति - तुदा.लट्.प्र.ए.

अन्वय :

यः मायावादतमो निरस्य दुष्प्रापं श्रीमद्-गोकुलनाथ-सङ्गमसुधा-सम्प्रापकम् अद्भुतं मधुभित्-सेवाख्य-वर्त्म प्रकटीचकार करुणा-रागाति-सम्मोहनः सः श्रीवल्लवीशान्तरः श्रीवल्लभभानुः उल्लसति ॥३॥

(पुष्टिसम्प्रदाये गुरुरूपस्य श्रीवल्लभस्य यशो[४] रूपगुणाः : पाण्डित्यं निगमगतिः तदनुकूलक्रिया वैष्णवमार्गीयिता श्रीव्रजपतिरतिः इत्येवमादयः)

क्वचित् पाण्डित्यं चेत् न निगमगतिः सापि यदि न
क्रिया सा सापि स्यात् यदि न हरिमार्गे परिचयः ।।
यदि स्यात् सोपि श्रीव्रजपति-रतिर्नेति निखिलैः
गुणैरन्यः को वा विलसति विना वल्लभवरम् ।।४।।

सन्धिविच्छेद :

सा + अपि = सापि [दीर्घ.]	न + इति = नेति [गुण]
सः + अपि = सोऽपि [उ.पू.रू.]	गुणैः + अन्यः = गुणैरन्यः [रेफ.]
रतिः + न = रतिर्न [रेफ.]	कः + वा = को वा [उ.गुण.]

समासविग्रह :

- निगमे गतिः इति निगमगतिः [स.तत्पु.]
- हरेः मार्गः इति हरिमार्गः [प.तत्पु.] तस्मिन्
- श्रीव्रजस्य पतिः इति श्रीव्रजपतिः [प.तत्पु.]
  तस्मिन् रतिः इति श्रीव्रजपतिरतिः [स.तत्पु.]
- वल्लभश्चासौ वरः इति वल्लभवरः [कर्म] तम्

शब्दपरिचय :

क्वचित् [नि.]	नि[उ.]गमगतिः [ना.]	क्रिया [ना.]	स्यात् [आ.]
पाण्डित्यम् [ना.]	सा [ना.]	स्यात् [आ.]	सः [ना.]
चेत् [नि.]	अपि [नि.]	हरिमार्गे [ना.]	श्रीव्रजपति-रतिः [ना.]
न [नि.]	यदि [नि.]	परि[उ.]चयः [ना.]	इति [नि]
नि[उ.]खिलैः [ना.]	अन्यः [ना]	वा [नि]	विना [नि.]
गुणैः [ना.]	कः [ना.]	वि[उ.]लसति [आ.]	वल्लभवरम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

पाण्डित्यम् [नरि]	हरिमार्गे [स]	श्रीव्रजपति-रतिः [स]
निगमगतिः [स]	परिचयः [स]	वल्लभवरम् [स]

शब्दरूपपरिचय :

पाण्डित्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

निगमगतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	श्रीव्रजपति-रतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
सा - ह.द.स्त्री.प्र.ए.	निखिलैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
क्रिया - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	गुणैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
हरिमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.	अन्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
परिचयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	कः - ह.म्.पुं.प्र.ए.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.	वल्लभवरम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

अन्वय : क्वचित् पाण्डित्यं चेत् निगमगतिः न, यदि सा (निगमगतिः) अपि (चेत्) सा क्रिया न, यदि सा(क्रिया) अपि स्याद् हरिमार्गे परिचयो न, यदि सः(हरिमार्गे परिचयः) अपि स्याद् श्रीव्रजपतिरतिः न (अस्ति), इति निखिलैः गुणैः वल्लभवरं विना अन्यः को वा विलसति ! ।।४।।

(पुष्टिसम्प्रदाये गुरुरूपस्य श्रीवल्लभस्य श्री रूपो गुणः - श्रीकृष्णसेवाप्रतिबन्धकवादनिराकरणेन प्रमाणचतुष्टयैकवाक्यतामूलकसिद्धान्तोपदेशकत्वे सति श्रीकृष्णसेवापरायणत्वे सति भगवत्सेवोचितनिरुपधिस्नेहोद्बोधकत्वंच)

मायावादि-करीन्द्र-दर्प-दलनेनास्येन्दु-राजोद्गत-
श्रीमद्-भागवताख्य-दुर्लभ-सुधा-वर्षेण वेदोक्तिभिः ।।
राधावल्लभ-सेवया तदुचित-प्रेम्णोपदेशैरपि
'श्रीमद्वल्लभ'-नामधेय-सदृशो भावी न भूतोऽस्त्यपि।।५।।

सन्धिविच्छेद :

करि + इन्द्र = करीन्द्र [दीर्घ]

दलनेन + आस्य = दलनेनास्य [दीर्घ]

आस्य + इन्दु = आस्येन्दु [गुण.]

राज + उद्गत = राजोद्गत [गुण.]

भागवत + आख्य = भागवताख्य [दीर्घ.]

वेद + उक्तिभिः = वेदोक्तिभिः [गुण.]

प्रेम्णा + उपदेशैः = प्रेम्णोपदेशैः [गुण.]

उपदेशैः + अपि = उपदेशैरपि [रेफ.]

सदृशः + भावी = सदृशो भावी [उत्व.गुण.]

भूतो + अस्ति = भूतोऽस्ति [उत्व.पू.रु.]

अस्ति + अपि = अस्त्यपि [यण्.]

समासविग्रह :

- करीणाम् इन्द्रः इति करीन्द्रः [ष.तत्पु.]
- मायावादिनः एव करीन्द्राः इति मायावादि-करीन्द्राः [कर्म.]
  तेषां दर्पः इति मायावादि-करीन्द्र-दर्पः [ष.तत्पु.]
  तस्य दलनम् इति मायावादि-करीन्द्र-दर्प-दलनम् [ष.तत्पु.]
  तेन मायावादि-करीन्द्र-दर्प-दलनेन
- इन्दुश्चासौ राजा च इति इन्दुराजः [कर्म]
- आस्यम् एव इन्दुराजः आस्येन्दुराजः [कर्म]
  तस्मात् उद्गता इति आस्येन्दुराजोद्गता [पं.तत्पु.]
- श्रीमद् च असौ भागवतं च इति श्रीमद्भागवतम् [कर्म]
- 'श्रीमद्-भागवतं' इति आख्या यस्याः सा श्रीमद्-भागवताख्या [बहु.]
- दुर्लभा च असौ सुधा इति दुर्लभसुधा [कर्म]
- श्रीमदभागवताख्या असौ दुर्लभसुधा श्रीमद्भागवताख्यदुर्लभसुधा [कर्म]
- आस्येन्दुराजोद्गता या श्रीमद्भागवताख्यदुर्लभसुधा आस्येन्दु...सुधा [कर्म]
  तस्याः वर्षः इति आस्येन्दु..सुधा-वर्षः [ष.तत्पु.] तेन
- वेदानाम् उक्तयः इति वेदोक्तयः [ष.तत्पु.] ताभिः वेदोक्तिभिः
- राधायाः वल्लभः इति राधावल्लभः [ष.तत्पु.]
  तस्य सेवा इति राधावल्लभ-सेवा [ष.तत्पु.] तया राधावल्लभ-सेवया
- तयोः उचितम् इति तदुचितम् [ष.तत्पु.]

तदुचितं यत् प्रेम तत् तदुचितप्रेम [कर्म] तेन तदुचित-प्रेम्णा
- श्रीमान् च असौ वल्लभश्च इति श्रीमद्वल्लभः [कर्म]
'श्रीमद्वल्लभ' इति नामधेयः यस्य सः 'श्रीमद्वल्लभ'नामधेयः [बहु.]
तस्य सदृशः इति 'श्रीमद्वल्लभ'-नामधेय-सदृशः [ष.तत्पु.]

शव्दपरिचय :

मायावादि-करीन्द्र-दर्प-दलनेन [ना.]	उप[उ.]देशैः [ना.]
आस्येन्दु-राज-उत्[उ.]गत-	अपि [नि.]
श्रीमद्-भागवताख्य-दुर्[उ.]लभ-	'श्रीमद्वल्लभ'-नामधेय-सदृशः [ना.]
सुधा-वर्षेण [ना.]	भावी [ना.]
वेदोक्तिभिः [ना.]	न [नि.]
राधावल्लभ-सेवया [ना.]	भूतः [ना.]
तदुचित-प्रेम्णा-	अस्ति [आ.] अपि [नि.]

वृत्तिपरिचय :

मायावादिकरिन्द्रदर्पदलनेन [स.]	तदुचित-प्रेम्णा [स.]
आस्येन्दु...सुधावर्षेण [स.]	उपदेशैः [स.]
वेदोक्तिभिः [स.] राधावल्लभसेवया [स.]	'श्रीमद्वल्लभ'-नामधेय-सदृशः [स.]
	भूतः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

मायावादि-करीन्द्र-दर्प-	राधावल्लभ-सेवया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
दलनेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	तदुचित-प्रेम्णा - ह.न.नपुं.तृ.ए.
आस्येन्दु...वर्षेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.	उपदेशैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
वेदोक्तिभिः - अ.इ.स्त्री.तृ.ब.	'श्रीमद्वल्लभ'नामधेयसदृशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भावी - ह.न.पुं.प्र.ए.	भूतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : अस्ति - अदादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : वेदोक्तिभिः मायावादि-करीन्द्र-दर्प-दलनेन, आस्येन्दु-राजोद्‌गत-श्रीमद्-भागवताख्य-दुर्लभ-सुधा-वर्षेण, राधावल्लभ-सेवया, तदुचित-प्रेम्णा, उपदेशैरपि 'श्रीमद्‌वल्लभ'-नामधेय-सदृशो न भूतो (न) अस्ति भावी अपि (न)॥५॥

(पुष्टिसम्प्रदाये गुरुरूपस्य श्रीवल्लभस्य ज्ञान रूपो गुणः :कलिबलभीति-निराकर्तृत्वे सति भगवत्प्रीतिकरसेवामार्गप्रवर्तकत्वम्)

यदङ्घ्रि-नख-मण्डल-प्रसृत-वारि-पीयूष-युग्-
वराङ्ग-हृदयैः कलिस्तृणमिवेह तुच्छीकृतः॥
व्रजाधिपतिरिन्दिरा-प्रभृति-मृग्य-पादाम्बुजः
क्षणेन परितोषितः तदनुगत्वमेवास्तु मे॥६॥

सन्धिविच्छेद :

वर + अङ्ग = वराङ्ग [दीर्घ.]

कलिः + तृणम् = कलिस्तृणम् [स.]	पतिः + इन्दिरा = पतिरिन्दिरा [रेफ.]
इव + इह = इवेह [गुण.]	पाद + अम्बुज = पादाम्बुज [दीर्घ.]
व्रज + अधिपतिः = व्रजाधिपतिः [दीर्घ.]	एव + अस्तु = एवास्तु [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- यस्य अङ्घ्रिः इति यदङ्घ्रिः [ष.तत्पु.]
- यदङ्घ्र्योः नखानि इति यदङ्घ्रि-नखानि [ष.तत्पु.]
  तेषां मण्डलानि इति यदङ्घ्रि-नख-मण्डलानि [ष.तत्पु.]
- प्रसृतं यद्वारि इति प्रसृतवारि [कर्म.]
- यदङ्घ्रिनखमण्डलेषु प्रसृतवारि इति यदङ्घ्रि-नख-मण्डल-प्रसृतवारि [स.तत्पु.]
- यदङ्घ्रि...वारि एव पीयूषम् इति यदङ्घ्रि...वारि-पीयूषम् [कर्म]
  तेन युक् इति यदङ्घ्रि...पीयूष-युग् [तृ.तत्पु.]

- वरं च असौ अङ्गम् इति वराङ्गम् [कर्म]
- वराङ्गं च हृदयं च इति वराङ्ग-हृदयम् [द्वन्द्व]
- यदङ्घ्रिनखमण्डलप्रसृतवारिपीयूषयुञ्जि वराङ्ग-हृदयानि येषां ते यदङ्घ्रि...पियूष-युग्-वराङ्गहृदयाः [बहु] तैः यदङ्घ्रि...वराङ्ग-हृदयैः
- पादौ एव अम्बुजे पादाम्बुजे [कर्म]
- इन्दिराप्रभृतिभिः मृग्यं पादाम्बुजं यस्य सः इन्दिराप्रभृतिमृग्यपादाम्बुजः [बहु]
- अनु गच्छति इति अनुगः [उप.स.]
  तस्य अनुगः इति तदनुगः [ष.तत्पु.] तस्य भावः तदनुगत्वम्

शब्दपरिचय :

यदङ्घ्रि...प्र[उ.]सृत-वारि...हृदयैः [ना.]	तुच्छीकृतः [ना.]	परि[उ.]तोषितः [ना.]
कलिः [ना.]	व्रज-अधि[उ.]पतिः [ना.]	तद्-अनु[उ.]गत्वम् [ना.]
तृणम् [ना.]	इन्दिरा-प्रभृति-मृग्य-पादाम्बुजः [ना.]	एव [नि.]
इव [नि.] इह [नि.]	क्षणेन [ना.]	अस्तु [आ.]
		मे [ना.]

वृत्तिपरिचय :

यदङ्घ्रि...हृदयैः [स.]	इन्दिरा-प्रभृति-मृग्य-पादाम्बुजः [स.]
इह [तद्धि.]	परितोषितः [कृद्+स.]
व्रजाधिपतिः [स.]	तदनुगत्वम् [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

यदङ्घ्रि...वराङ्गहृदयैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.	इन्दिरा...पादाम्बुजः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कलिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	क्षणेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.
तृणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	परितोषितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तुच्छीकृतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तदनुगत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
व्रजाधिपतिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	मे - ह.द्.ष.ए.

धातुरूपपरिचय : अस्तु - अदा.लोट्.प्र.ए.

अन्वय : यदङ्घ्रि-नख-मण्डल-प्रसृत-वारि-पीयुष-युग-वराङ्ग -हृदयैः तृणम् इव इह कलिः तृच्छीकृत (च) इन्दिरा-प्रभृति-मृग्य-पादाम्बुजः व्रजाधिपतिः क्षणेन परितोषितः तदनुगत्वम् एव मे अस्तु ॥६॥

(पुष्टिसम्प्रदाये गुरुरूपस्य श्रीवल्लभस्य वैराग्य ७रूपो गुणः : स्वानुगामिनां सकलकलिकालदोषनिवर्तनेतरविषयेषु विरतत्वम्)

अघौघ-तमसावृतं कलि-भुजङ्गमासादितम्
जगद्-विषय-सागरे पतितमस्वधर्मे रतम् ॥
यदीक्षण-सुधा-निधिः समुदितोऽनुकम्पामृताद्
अमृत्युम् अकरोत् क्षणादरणमस्तु मे तत्पदम् ॥७॥

॥ इति श्रीविट्ठलेश्वरविरचितं श्रीस्फुरत्कृष्णप्रेमामृतस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

सन्धिविच्छेद :
अघ + ओघ = अघौघ [वृद्धि.]
तमसा + आवृतं = तमसावृतम् [दीर्घ.]
भुजङ्गम + आसादितम् = भुजङ्गमासादितम् [दीर्घ.]
समुदितः + अनुकम्पा = समुदितोऽनुकम्पा [उ.पू.रू.]
अनुकम्पा + अमृताद् = अनुकम्पामृताद् [दीर्घ.]

समासविग्रह :
- अघानाम् ओघः इति अघौघः [ष.तत्पु.]
- अघौघः एव तमः अघौघतमः [कर्म.] तेन अघौघतमसा
- कलि एव भुजङ्गमः इति कलि-भुजङ्गमः [कर्म]
  तेन आसादितम् इति कलिभुजङ्गमासादितम् [तृ.तत्पु.]

- विषयः एव सागरः इति विषय-सागरः [कर्म]
- जगत् एव विषयसागरः इति जगद्विषयसागरः [कर्म] तस्मिन् जगद्विषयसागरे
- स्वस्य धर्मः इति स्वधर्मः [ष.तत्पु.]
- न स्वधर्मः अस्वधर्मः [न.तत्पु.] तस्मिन् अस्वधर्मे
- यस्य ईक्षणम् इति यदीक्षणम् [ष.तत्पु.]
- सुधायाः निधिः इति सुधानिधिः [ष.तत्पु.]
- यदीक्षणः एव सुधानिधिः इति यदीक्षण-सुधानिधिः [कर्म]
- अनुकम्पा एव अमृतम् इति अनुकम्पामृतम् [कर्म] तस्मात् अनुकम्पामृतात्
- न विद्यते मृत्युः यस्य स अमृत्युः [बहु.] तम् अमृत्युम्
- तेषां पदम् इति तत्पदम् [ष.तत्पु.].

शब्दपरिचय :

अघौघ-तमसा [ना.]	अस्वधर्मे [ना.]	अकरोत् [आ.]
आ [उ.] वृतम् [ना.]	रतम् [ना.]	क्षणाद् [ना.]
कलि-भुजङ्गम-आ [उ.]-सादितम् [ना.]	यदीक्षणसुधा-नि [उ.] धिः	अरणम् [ना.]
जगद्-वि [उ.] षय-सागरे [ना.]	सम् [उ.]-उत् [उ.]-इतः [ना.]	अस्तु [आ.]
पतितम् [ना.]	अनु [उ.] कम्पामृताद् [ना.]	मे [ना.]
	अमृत्युम् [ना.]	तत्पदम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अघौघ-तमसा [स.]	पतितम् [कृद.]	समुदितः [स.]
आवृतम् [कृद.]	अस्वधर्मे [स.]	अनुकम्पामृताद् [स.]
कलि-भुजङ्गमासादितम् [स.]	रतम् [कृद.]	अमृत्युम् [स.]
जगद्-विषय-सागरे [स.]	यदीक्षण-सुधा-निधिः [स.]	तत्पदम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अघौघतमसा - ह.स.नपुं.तृ.ए. आवृतम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

कलिभुजङ्गमासादितम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	अनुकम्पामृताद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
जगद्विषयसागरे - अ.अ.पुं.स.ए.	अमृत्युम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
पतितम्, रतम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	क्षणाद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
अस्वधर्मे - अ.अ.पुं.स.ए.	अरणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
यदीक्षण-सुधा-निधिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	मे - ह.द.पुं.ष.ए.
समुदितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तत्पदम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

अकरोत् - तनादि.लङ.प्र.ए. अस्तु - अदादि.लोट्.प्र.ए.

अन्वय : अस्वधर्मे रतम् अघौघ-तमसावृतं कलि-भुजङ्गमासादितं जगद्-विषय-सागरे पतितम् समुदितो यदीक्षणसुधानिधिः अनुकम्पामृतात् क्षणाद् अमृत्युम् अकरोत् तत्पदं (मे) अरणम् अस्तु ॥७॥

॥ नामरत्नाख्यस्तोत्रम् ॥

(५)

(मङ्गलोपक्रमः)

यन्नामार्कोदयात् पाप-ध्वान्त-राशिः प्रशाम्यति ।।
विकसन्ति हृदब्जानि तन्नामानि सदाश्रये ।।१।।

सन्धिविच्छेद :

यत् + नाम = यन्नाम [अनुना.]
नाम + अर्क = नामार्क [दीर्घ.]
नामार्क + उदयात् = नामार्कोदयात् [गुण.]
तत् + नामानि = तन्नामानि [अनुना.]
सदा + आश्रये = सदाश्रये [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- यस्य नाम इति यन्नाम [ष.तत्पु.] यन्नाम एव अर्कः इति यन्नामार्कः [कर्म] तस्य उदयः इति यन्नामार्कोदयः [ष.तत्पु.] तस्मात्
- पाप एव ध्वान्तम् इति पापध्वान्तम् [कर्म]
- पापध्वान्तस्य राशिः इति पाप-ध्वान्त-राशिः [ष.तत्पु.]
- हृत एव अब्जम् इति हृदब्जम् [कर्म] तानि हृदब्जानि
- तस्य नाम इति तन्नाम [ष.तत्पु.] तानि तन्नामानि

शब्दपरिचय :

यन्नामार्क-उद् [उ] -अयात् [ना.]
पाप-ध्वान्त-राशिः [ना.]
प्र [उ] शाम्यति [आ.]
वि [उ] कसन्ति [आ]
हृदब्जानि [ना.]
तन्नामानि [ना.]
सदा [नि]
आ [उ.]श्रये [आ.]

वृत्तिपरिचय :

यन्नामार्कोदयात् [म] हृदब्जानि [म]
पापध्वान्तराशिः [म] तन्नामानि [म]

शब्दरूपपरिचय :

यन्नामार्कोदयात् - अ.अ.पुं.पं.ए. हृदब्जानि - अ.अ.नपुं.प्र.ब.
पाप-ध्वान्त-राशिः - अ.इ.पुं.प्र.ए. तन्नामानि - ह.न.नपुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :

प्रशाम्यति - दिवा.लट्.प्र.ए. विकसन्ति - भ्वा.लट्.प्र.ब. आश्रये - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : यन्नामार्कोदयात् पाप-ध्वान्त-राशिः प्रशाम्यति हृदब्जानि (च) विकसन्ति तन्नामानि (अहं) सदा आश्रये ॥१॥

(स्तोत्रस्य-छन्द[१]-ऋषि[२]-देव[३]-विनियोग[४]-फल[५]निरूपणम्)

आनुष्टुभमिहच्छन्दः[१] ऋषिरग्निकुमारजः[२] ॥
सर्वशक्तिसमायुक्तो देवः श्रीवल्लभात्मजः[३] ॥२॥
विनियोगः समस्तेष्टसिद्ध्यर्थे विनिरूपितः[४] ॥

सन्धिविच्छेद :

इह + छन्द = इहच्छन्दः [तुक्.श्चुत्व.] वल्लभ + आत्मजः = वल्लभात्मजः [दीर्घ.]
ऋषिः + अग्नि = ऋषिरग्नि [रेफ.] समस्त + इष्ट = समस्तेष्ट [गुण.]
समायुक्तः + देवः = समायुक्तो देवः [उ.गुण] सिद्धि + अर्थे = सिद्ध्यर्थे [यण्.]

समासविग्रह :

- अग्नेः कुमारः इति अग्निकुमारः [ष.तत्पु.]
- अग्निकुमारात् जातः इति अग्निकुमारजः [उप.स.]

- सर्वाः च ताः शक्तयः इति सर्वशक्तयः [कर्म] सर्वशक्तिभिः समायुक्तः इति सर्वशक्तिसमायुक्तः [त.तत्पु.]
- आत्मनः जातः इति आत्मजः [उप.स.]
- श्रीवल्लभस्य आत्मजः इति श्रीवल्लभात्मजः [ष.तत्पु.]
- समस्तं च तद् इष्टं च समस्तेष्टम् [कर्म] तस्य सिद्धिः इति समस्तेष्टसिद्धिः [ष.तत्पु.] तस्याः अर्थम् इति समस्तेष्टसिद्ध्यर्थम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् समस्तेष्टसिद्ध्यर्थे

शब्दपरिचय :

आनुष्टुभम् [ना.]
इह [नि.]
छन्दः [ना.]
ऋषिः [ना.]

अग्निकुमारजः [ना.]
सर्वशक्ति-सम् [उ.]-
आ [उ.]युक्तः [ना.]
देवः [ना.]

श्रीवल्लभात्मजः [ना.]
वि [उ.]नि [उ.]योगः [ना.]
सम् [उ.]-अस्तेष्टसिद्ध्यर्थे [ना.]
वि [उ.]नि [उ.]रूपितः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

आनुष्टुभम् [तद्धि.]
इह [तद्धि.]
अग्निकुमारजः [स.]
सर्वशक्तिसमायुक्तः [स.]

श्रीवल्लभात्मजः [स.]
विनियोगः [कृद.+स.]
समस्तेष्टसिद्ध्यर्थे [स.]
विनिरूपितः [कृद.+स.]

शब्दरूपपरिचय :

आनुष्टुभम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए. छन्दः - ह.स.नपुं.प्र.ए. ऋषिः - अ.इ.पुं.प्र.ए. (अग्निकुमारजः, सर्वशक्तिसमायुक्तः, देवः, श्रीवल्लभात्मजः, विनियोगः, विनिरूपितः) - अ.अ.पुं.प्र.ए. समस्तेष्टसिद्ध्यर्थे - अ.अ.पुं.स.ए.

अन्वय : इह आनुष्टुभं छन्दः, अग्निकुमारजः ऋषिः, सर्वशक्तिसमायुक्तः श्रीवल्लभात्मजो देवः, समस्तेष्टसिद्ध्यर्थे विनियोगः विनिरूपितः

श्रीविट्ठलः [१.]

सन्धिविच्छेद : श्रीविद् + ठलः = श्रीविट्ठलः [ष्टुत्व,चर्त्व.]

वृत्तिपरिचय : समास　　**शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

कृपासिन्धुः [२.]

समासविग्रह : कृपायाः सिन्धुः इति कृपासिन्धुः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास　　**शब्दरूपपरिचय :** अ.उ.पुं.प्र.ए

भक्तवश्यः [३.]

समासविग्रह : भक्तैः वश्यः(वशीकर्तुं योग्यः)इति भक्तवश्यः [तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास　　**शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

अतिसुन्दरः [४.]

समासविग्रह : अतिक्रान्तानि सुन्दराणि येन स अतिसन्दुरः [बहु.].

शब्दपरिचय : अति [उ.]सुन्दरः

वृत्तिपरिचय : समास　　**शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

कृष्णलीलारसाविष्टः [५.]

सन्धिविच्छेद : रस + आविष्टः = रसाविष्टः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- कृष्णस्य लीला इति कृष्णलीला [ष.तत्पु.]
  तस्याः रस इति कृष्णलीलारसः [ष.तत्पु.] तेन आविष्टः इति कृष्णलीलारसाविष्टः [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय : रस-आ [उ] विष्टः

वृत्तिपरिचय : समास　　**शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

श्रीमान्[६]

वृत्तिपरिचय : तद्धित् शब्दरूपपरिचय : ह.तृ.पुं.प्र.ए

वल्लभनन्दनः[७]

समासविग्रह :

- वल्लभस्य नन्दनः इति वल्लभनन्दनः[ष.तत्पु.] वा
  वल्लभं नन्दयति इति वल्लभनन्दनः[उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

दुर्द्दृश्यः[८.]

शब्दपरिचय : दुर्[उ]दृश्यः

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

भक्तसन्दृश्यः[९.]

सन्धिविच्छेद : सम् + दृश्यः = सन्दृश्यः[प.स.]

समासविग्रह : भक्तैः सन्दृश्यः इति भक्तसन्दृश्यः[तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय : भक्त-सम्[उ]दृश्यः

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

भक्तिगम्यः[१०.]

समासविग्रह : भक्त्या गम्यः इति भक्तिगम्यः[तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

भयापहः[११.]

सन्धिविच्छेद : भय + अपहः = भयापहः[दीर्घ]

समासविग्रह : भयम् अपहन्ति इति भयापहः[उप.स.]

शब्दपरिचय : भय-अप[उ]हः.

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

अनन्यभक्तहृदयः [१२]

समासविग्रह :

- न (विद्यते) अन्यः येषां ते अनन्याः [बहु.]
  अनन्याश्च ये भक्ताः अनन्यभक्ताः [कर्म.]
  ते हृदयं यस्यः सः अनन्यभक्तहृदयः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

दीनानाथैकसंश्रयः [१३]

सन्धिविच्छेद :

दीन + अनाथ = दीनानाथ [दीर्घ.] नाथ + एक = नाथैक [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- न विद्यते नाथः यस्य स अनाथः [बहु.]
- दीनाश्च अनाथाश्च इति दीनानाथाः [द्वन्द्व.]
- एकः (एव) संश्रयः इति एकसंश्रयः [कर्म.]
- दीनानाथानां एकसंश्रयः इति दीनाथैकसंश्रयः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : सम् [उ.] श्रयः

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

राजीवलोचनः [१४]

समासविग्रह : राजीव इव लोचने यस्यः सः राजीवलोचनः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

रासलीलारसमहोदधिः [१५]

सन्धिविच्छेद : महा + उदधिः = महोदधिः [गुण]

समासविग्रह : महांश्च असौ उदधिश्च इति महोदधिः [कर्म]

- रासस्य लीला इति रासलीला [ष.तत्पु.]
- रासलीलायाः रसः इति रासलीलारसः [ष.तत्पु.]
  तस्य महोदधिः इति रासलीलारसमहोदधिः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.इ.पुं.प्र.ए

धर्मसेतुः [१६.]

समासविग्रह : धर्मस्य सेतुः (पालकः) इति धर्मसेतुः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.उ.पुं.प्र.ए

भक्तिसेतुः [१७.]

समासविग्रह : भक्तेः सेतुः(पालकः) इति भक्तिसेतुः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.उ.पुं.प्र.ए

सुखसेव्यः [१८.]

समासविग्रह : सुखेन सेव्यः इति सुखसेव्यः [तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

व्रजेश्वरः [१९.]

सन्धिविच्छेद : व्रज + ईश्वरः = व्रजेश्वरः [गुण.]

समासविग्रह : व्रजस्य ईश्वरः इति व्रजेश्वरः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

भक्तशोकापहः [२०.]

सन्धिविच्छेद : शोक + अपहः = शोकापहः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तानां शोकः इति भक्तशोकः [ष.तत्पु.]
  तम् अपहन्ति इति भक्तशोकापहः [उप.स.]

शव्दपरिचय : भक्तशोक-अप [3] हः
वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

शान्तः [२१.]

वृत्तिपरिचय : कृद् **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

सर्वज्ञः [२२.]

समासविग्रह : सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः [उप.स.]
वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

सर्वकामदः [२३.]

समासविग्रह :
- सर्वे ये कामाः ते सर्वकामाः [कर्म]
  तान् ददाति इति सर्वकामदः [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

रुक्मिणीरमणः [२४.]

समासविग्रह : रुक्मिण्याः रमणः इति रुक्मिणीरमणः [ष.तत्पु.]
वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

श्रीशः [२५]

सन्धिविच्छेद : श्री + ईशः = श्रीशः [दीर्घ.]
समासविग्रह : श्रियः ईशः इति श्रीशः [ष.तत्पु.]
वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

भक्तरत्नपरीक्षकः [२६.]

सन्धिविच्छेद : परि + ईक्षकः = परीक्षकः [दीर्घ]

समासविग्रह :

- भक्ता एव रत्नानि भक्तरत्नानि [कर्म]

  तेषां परीक्षकः इति भक्तरत्नपरीक्षकः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : भक्तरत्न-परि [ई]ईक्षकः

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

भक्तरक्षैकदक्षः [२७.]

सन्धिविच्छेद : रक्षा + एकदक्षः = रक्षैकदक्षः [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- भक्तानां रक्षा इति भक्तरक्षा [ष.तत्पु.]
- एक एव दक्ष इति एकदक्षः [कर्म.]
- भक्तरक्षायां एकदक्षः इति भक्तरक्षैकदक्षः [स.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्तकः [२८.]

समासविग्रह :

- श्रीकृष्णे भक्तिः इति श्रीकृष्णभक्तिः [स.तत्पु.]

  तस्याः प्रवर्त्तकः इति श्रीकृष्णभक्तिप्रवर्त्तकः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : भक्ति-प्र [३]वर्तकः

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

महासुरतिरस्कर्ता [२९.]

सन्धिविच्छेद : महा + असुर = महासुर [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- महान्तश्च ते असुराश्च इति महासुराः [कर्म]

  तेषां तिरस्कर्त्ता इति महासुरतिरस्कर्ता [ष.तत्पु]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.ऋ.पुं.प्र.ए

सर्वशास्त्रविदग्रणी [३०.]

समासविग्रह : शास्त्रं विदन्ति इति शास्त्रविदः [उप.स.]

- सर्वे च ते शास्त्रविदः इति सर्वशास्त्रविदः [कर्म.]

तेभ्यः अग्रणीः इति सर्वशास्त्रविदग्रणीः [पं.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.ई.पुं.प्र.ए

कर्मजाड्यभिदुष्णांशुः [३१.]

सन्धिविच्छेद : उष्ण + अंशुः = उष्णांशुः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- कर्मणां जाड्यम् इति कर्मजाड्यम् [ष.तत्पु.]

तद्भिनत्ति इति कर्मजाड्यभित् [उप.स.]

उष्णा अंशवः यस्य सः उष्णांशुः [बहु.]

कर्मजाड्यभित् च असौ उष्णांशुश्च कर्मजाड्यभिदुष्णांशुः [कर्म.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.उ.पुं.प्र.ए

भक्तनेत्रसुधाकरः [३२.]

समासविग्रह :

- सुधां करोति इति सुधाकरः [उप.स.]
- भक्तानां नेत्राणि इति भक्तनेत्राणि [ष.तत्पु.]

तेषां सुधाकरः इति भक्तनेत्रसुधाकरः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

महालक्ष्मीगर्भरत्नम् [३३.]

समासविग्रह :

- गर्भस्य रत्नम् इति गर्भरत्नम् [ष.तत्पु.]

महालक्ष्म्याः गर्भरत्नम् इति महालक्ष्मीगर्भरत्नम् [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.नपुं.प्र.ए

कृष्णवर्त्मसमुद्भवः [३४.]

समासविग्रह :

- कृष्णस्य वर्त्म इति कृष्णवर्त्म [प.तत्पु]

तस्य समुद्भवः यस्मात् सः कृष्णवर्त्मसमुद्भवः [बहु]

शव्दपरिचय : वर्त्म-सम्[उ.]-उद्[उ.]भवः

वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

भक्तचिन्तामणिः [३५.]

समासविग्रह : चिन्तामणिः भक्तानां चिन्तामणिः इति भक्तचिन्तामणिः [प.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.इ.पुं.प्र.ए

भक्तिकल्पद्रुमनवाङ्कुरः [३६.]

सन्धिविच्छेद : नव + अङ्कुरः = नवाङ्कुरः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- नवः यः अङ्कुरः इति नवाङ्कुरः [कर्म]

भक्तिरेव कल्पद्रुमः इति भक्तिकल्पद्रुमः [कर्म]

तस्य नवाङ्कुरः इति भक्तिकल्पद्रुमनवाङ्कुरः [प.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

श्रीगोकुलकृतावासः [३७.]

सन्धिविच्छेद : कृत + आवासः = कृतावासः [दीर्घ.]

समासविग्रह : श्रीगोकुले कृतः आवासो येन सः श्रीगोकुलकृतावासः [बहु.]

शब्दपरिचय : आ[उ.]-वासः

वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

कालिन्दीपुलिनप्रियः [३८.]

समासविग्रह : कालिन्द्या पुलिनम् इति कालिन्दीपुलिनम् [प.तत्पु.]

- कालिन्दीपुलिनं प्रियं यस्य स कालिन्दीपुलिनप्रियः [बहु.] वा
कालिन्दीपुलिने प्रियं(अभीष्टलीलासुखं) यस्य स कालिन्दीपुलिनप्रियः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

गोवर्धनागमरतः [३९.]

सन्धिविच्छेद : गोवर्द्धन + आगम = गोवर्द्धनागम [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- गोवर्द्धने आगमः इति गोवर्द्धनागमः [स.तत्पु.]
तस्मिन् रतः इति गोवर्द्धनागमरतः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : आ [उ.]-गम

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

प्रियवृन्दावनाचलः [४०.]

सन्धिविच्छेद : वृन्दावन + अचलः = वृन्दावनाचलः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न चलः इति अचलः [न.तत्पु.]
- वृन्दावनं च अचलश्च वृन्दावनाचलौ [द्वन्द्व.]
- प्रियौ वृन्दावनाचलौ यस्य सः प्रियवृन्दावनाचलः [बहु.] वा
- प्रियं च तद् वृन्दावनं इति प्रियवृन्दावनं [कर्म.]
तत्र अचलः इति प्रियवृन्दावनाचलः [स.तत्पु.]

शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

गोवर्धनाद्रिमखकृत् [४१.]

सन्धिविच्छेद :

गोवर्द्धन + अद्रि = गोवर्द्धनाद्रि [दीर्घ]

समासविग्रह : - गोवर्द्धनश्च असौ अद्रिश्च गोवर्द्धनाद्रिः [कर्म]

- गोवर्द्धनाद्रेः मखः इति गोवर्द्धनाद्रिमखः [ष.तत्पु.]

तं करोति इति गोवर्द्धनाद्रिमखकृत् [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : ह.त.पुं.प्र.ए

महेन्द्रमदभित्प्रियः [४२.]

सन्धिविच्छेद : महा + इन्द्र = महेन्द्र [गुण.]

समासविग्रह :

- महेन्द्रस्य मदः इति महेन्द्रमदः [ष.तत्पु.] तं भिनत्ति इति महेन्द्रमदभित् [उप.स.]

स प्रियः यस्य सः महेन्द्रमदभित्प्रियः [बहु.] वा

महेन्द्रमदभितः (प्रभोः) प्रियः इति महेन्द्रमदभित्प्रियः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय** : अ.अ.पुं.प्र.ए

कृष्णलीलैकसर्वस्वः [४३.]

सन्धिविच्छेद : लीला + एक = लीलैक [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- कृष्णस्य लीला इति कृष्णलीला [ष.तत्पु.]

सा एव एका सर्वस्वं यस्य सः कृष्णलीलैकसर्वस्वः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय** : अ.अ.पुं.प्र.ए

श्रीभागवतभाववित् [४४.]

समासविग्रह :

- श्रीभागवतस्य भावः इति श्रीभागवतभावः [ष.तत्पु.]

तं वेत्ति इति श्रीभागवतभाववित् [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : ह.त.पुं.प्र.ए

पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः [४५.]

समासविग्रह : पित्रा प्रवर्तितः इति पितृप्रवर्तितः [तृ.तत्पु.]

- पितृप्रवर्तित यः पन्था स पितृप्रवर्तितपथः [कर्म]
  तस्य प्रचार इति पितृप्रवर्तितपथप्रचार [ष.तत्पु]
  तस्य सुविचारकः इति पितृप्रवर्तितपथप्रचारसुविचारकः [ष.तत्पु]

शब्दपरिचय : पितृ-प्र [उ] वर्तितपथ- प्र [उ] चार-सु [उ] वि [उ] चारकः

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

व्रजेश्वरप्रीतिकर्ता [४६.]

सन्धिविच्छेद : व्रज + ईश्वर = व्रजेश्वरः [गुण]

समासविग्रह :

- व्रजस्य ईश्वर इति व्रजेश्वरः [ष.तत्पु.]
- व्रजेश्वरे प्रीति इति व्रजेश्वरप्रीतिः [स.तत्पु.]
  तस्याः कर्ता इति व्रजेश्वरप्रीतिकर्ता [ष.तत्पु.] वा
  व्रजेश्वरस्य प्रीति इति व्रजेश्वरप्रीतिः [ष.तत्पु.] (स्वभक्तेषु)
  तस्याः कर्ता इति व्रजेश्वरप्रीतिकर्ता [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.ऋ.पुं.प्र.ए

तन्निमन्त्रणभोजकः [४७.]

सन्धिविच्छेद : तत् + निमन्त्रण = तन्निमत्रण [अनुना.]

समासविग्रह :

- तस्य निमन्त्रणम् इति तन्निमन्त्रणम् [ष.तत्पु.]
  तेन भोजकः इति तन्निमन्त्रणभोजकः [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय : नि [उ] मन्त्रण

वृत्तिपरिचय : समास शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

बाललीलादिसुप्रीतः [४८.]

सन्धिविच्छेद : लीला + आदि = लीलादि [दीर्घ]

समासविग्रह : बालस्य लीला इति बाललीला [ष.तत्पु]

- बाललीला आदिः ययोः (पौगण्डकिशोरलीलयोः) ताः बाललीलादयः [बहु.]
  तासु (लीलासु) सुप्रीति यस्य सः बाललीलादिसुप्रीतः [बहु.]

शब्दपरिचय : सु [उ] प्रीतः

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

गोपीसम्बन्धिसत्कथः [४९.]

समासविग्रह :

- गोपीनां सम्बन्धो यासु ता गोपीसम्बन्धिन्यः [बहु.] (लीला)
  ताः एव सत्य इति गोपीसम्बन्धिसत्यः [कर्म]
  ताः कथयति इति गोपिसम्बंन्धिसत्कथः [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

अतिगम्भीरतात्पर्यः [५०.]

समासविग्रह : अतिगम्भीरं तात्पर्यं यस्य सः अतिगम्भीरतात्पर्यः [बहु.]

शब्दपरिचय : अति [उ.]गम्भीर

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

कथनीयगुणाकरः [५१.]

सन्धिविच्छेद : गुण + आकरः = गुणाकरः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- कथनीयाः ये गुणाः ते कथनीयगुणाः [कर्म]
  तेषाम् आकरः इति कथनीयगुणाकरः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : गुण-आ [उ.]करः

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

पितृवंशोदधिविधुः [५२.]

सन्धिविच्छेद : वंश + उदधि = वंशोदधि [गुण]

समासविग्रह :
- पितुः वंशः इति पितृवंशः [प.तत्पु.]
स एव उदधि इति पितृवंशोदधिः [कर्म]
तस्य विधुः पितृवंशोदधिविधुः [प.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास शव्दरूपपरिचय : अ.उ.पुं.प्र.ए

स्वानुरूपसुतप्रसुः [५३.]

सन्धिविच्छेद : स्व + अनुरूप = स्वानुरूप [दीर्घ.]

समासविग्रह :
- स्वस्य अनुरूप इति स्वानुरूप [प.तत्पु.]
- स्वानुरूपाश्च ते सुता च स्वानुरुपसुताः [कर्म]
तेषां प्रसूः (उत्पत्तिकर्ता) इति स्वानुरूपसूतप्रसूः [प.तत्पु.]

शव्दपरिचय : अनु [उ.] रूप-सुत-प्र [उ.] सूः

वृत्तिपरिचय : समास शव्दरूपपरिचय : अ.ऊ.पुं.प्र.ए

दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्तिः [५४.]

समासविग्रह :
- दिशायाः चक्रम् इति दिक्चक्रम् [प.तत्पु.]
तत्र वर्तिनि (व्याप्ता) इति दिक्चक्रवर्तिनी [स.तत्पु.]
- सती कीर्तिः इति सत्कीर्तिः [कर्म]
- दिक्चक्रवतिर्नी सत्कीर्तिः यस्य सः दिक्चक्रवर्तिसत्कीर्तिः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास शव्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए

महोज्जवलचरित्रवान् [५५.]

सन्धिविच्छेद :
महा + उज्जवल = महोज्जवल [गुण] उत् + ज्वल = उज्ज्वल [श्चु.तशास्त्र]

समासविग्रह : उज्ज्वलं यत् चरित्रं तत् उज्ज्वलचरित्रं [कर्म]

- महत् चासौ उज्ज्वलचरित्रं तत् महोज्ज्वलचरित्रं [कर्म]
  तद्वान् इति महोज्ज्वलचरित्रवान्

शब्दपरिचय : महा-उत् [उ] ज्वल

वृत्तिपरिचय : समास   **शब्दरूपपरिचय :** ह.त.पुं.प्र.ए

अनेकक्षितिपश्रेणीमूर्धासक्तपदाम्बुजः [५६.]

सन्धिविच्छेद :

मूर्ध + आसक्त = मूर्धासक्त [दीर्घ.]   पद + अम्बुजः = पदाम्बुजः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न एक इति अनेकः [न.तत्पु.]
- क्षितिं पाति इति क्षितिपः [उप.स.]
- अनेके च ते क्षितिपाः इति अनेकक्षितिपाः [कर्म]
  तेषां श्रेणयः अनेकक्षितिपश्रेणयः [ष.तत्पु.]
  तासां मूर्द्धानः इति अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्द्धानः [ष.तत्पु.]
- पदः एव अम्बुजम् इति पदाम्बुजम् [कर्म]
- अनेकक्षितिपश्रेणिमूर्धाभिः आसक्तं पदाम्बुजं यस्य स अनेकक्षितिपश्रे-
  णिमूर्धासक्तपदाम्बुजः [बहु.]

शब्दपरिचय : आ [उ] सक्त

वृत्तिपरिचय : समास   **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

विप्रदारिद्र्यदावाग्निः [५७.]

सन्धिविच्छेद : दाव + अग्निः = दावाग्निः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- विशेषेण प्रान्ति पूरयन्ति इति विप्राः [उप.स.]
- विप्राणां दारिद्र्यम् इति विप्रदारिद्र्यम् [ष.तत्पु]
- दावस्य अग्नि. इति दावाग्निः [ष.तत्पु]
- विप्रदारिद्र्यस्य दावाग्निः इति विप्रदारिद्र्यदावाग्निः [ष.तत्पु]

शव्दपरिचय : वि [३] प्र
वृत्तिपरिचय : समास शव्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए

भूदेवाग्निप्रपूजकः [५८.]

सन्धिविच्छेद : भूदेव + अग्नि = भूदेवाग्नि [दीर्घ.]
समासविग्रह :
- भुवः देवः इति भूदेवः [प.तत्पु.] ते भूदेवाः
- भूदेवाश्च अग्निश्च इति भूदेवाग्नयः [द्वन्द्व.] वा
  भूश्च देवाश्च अग्निश्च भूदेवाग्नयः [द्वन्द्व.]
  तेषां प्रपूजकः इति भूदेवाग्निप्रपूजकः [प.तत्पु.]

शब्दपरिचय : प्र [३.] पूजकः
वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

गोब्राह्मणप्राणरक्षापरः [५९.]

सन्धिविच्छेद : प्र + अण = प्राण [दीर्घ.]
समासविग्रह :
- प्राणस्य रक्षा इति प्राणरक्षा [प.तत्पु.]
- गावश्च ब्राह्मणाश्च इति गोब्राह्मणाः [द्वन्द्व.]
  तेषां प्राणरक्षा इति गोब्राह्मणप्राणरक्षा [प.तत्पु.]
  तस्यां परः इति गोब्राह्मणप्राणरक्षापरः [स.तत्पु.]

शव्दपरिचय : प्र [३.]-अण
वृत्तिपरिचय : समास शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए

सत्यपरायणः [६०.]

सन्धिविच्छेद : पर + अयनः = परायणः [दीर्घ.]
समासविग्रह :
- सत्ये परायणः इति सत्यपरायणः [स.तत्पु.] वा

- सत्ये पराः सत्यपराः [स.तत्पु.]

ते एव अयनं (स्थानं) यस्य सः सत्यपरायणः [बहु.] वा

सत्यं परम् आयनं (ज्ञानं) यस्य इति सत्यपरायणः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

प्रियश्रुतिपथः [६१.]

समासविग्रह :

- श्रुतेः पन्थाः इति श्रुतिपथः [ष.तत्पु.]
- प्रियः श्रुतिपथः यस्य सः प्रियश्रुतिपथः [बहु.] वा

श्रुतयो (गोप्यः) तासां पन्थाः श्रुतिपथः [ष.तत्पु.]

सः प्रियः यस्य सः प्रियश्रुतिपथः [बहु.] वा

प्रियः (श्रीकृष्णः) श्रुतिपथे (श्रवणे) यस्य सः प्रियश्रुतिपथः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

शश्वन् महामखकरः [६२.]

सन्धिविच्छेद : शश्वत् + महा = शश्वन्महा [अनुना.]

समासविग्रह :

- महान् च असौ मखकरश्च इति महामखकरः [कर्म] वा

महान् च असौ मखश्च महामखः [कर्म]

तान् करोति इति महामखकरः [उप.स.]

शव्दपरिचय : शश्वत् [नि.]

वृत्तिपरिचय : समास **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए

प्रभुः [६३.]

शव्दपरिचय : प्र [उ.] भुः

वृत्तिपरिचय : समास

शव्दरूपपरिचय : अ.उ.पुं.प्र.ए

कृष्णानुग्रहसंलभ्यः [६४.]

सन्धिविच्छेद : कृष्ण + अनुग्रह = कृष्णानुग्रह [दीर्घ]

समासविग्रह :

- कृष्णस्य अनुग्रहः इति कृष्णानुग्रहः [ष.तत्पु.]
- कृष्णानुग्रहः संलभ्यः यस्मात् सः कृष्णानुग्रहसंलभ्यः [बहु.] वा
  कृष्णानुग्रहेण संलभ्यः इति कृष्णानुग्रहसंलभ्यः [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय : अनु [उ.] ग्रह-सम् [उ.] लभ्यः

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

महापतितपावनः [६५.]

समासविग्रह :

- महापतितान् पावयति इति महापतितपावनः [उप.स.] वा
- महान् चासौ पतितश्च महापतितः [कर्म.]
  तान् पान्ति इति महापतितपाः [उप.स.] (सन्तः)
  तान् अवति इति महापतितपावनः [उप.स.] वा
  महापतिताः पावनाः यस्मात् सः महापतितपावनः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

अनेकमार्गसंक्लिष्टजीवस्वास्थ्यप्रदो महान् [६६.]

सन्धिविच्छेद : प्रदः + महान् = प्रदो महान [उ.गुण.]

समासविग्रह :

- न एकः इति अनेकः [न.तत्पु.] - अनेके च ते मार्गाश्च अनेकमार्गाः [कर्म.]
  तैः संक्लिष्टाः इति अनेकमार्गसंक्लिष्टाः [तृ.तत्पु.]
- अनेकमार्गसंक्लिष्टाश्च ते जीवाश्च अनेकमार्गसंक्लिष्टजीवाः [कर्म.]
  तेषां स्वास्थ्यः इति अनेकमार्गसंक्लिष्टजीवस्वास्थ्यः [ष.तत्पु.]
  तत प्रददाति इति अनेक...स्वास्थ्यप्रदः [उप.स.]

शब्दपरिचय : सं [उ.] क्लिष्ट, प्र [उ.] दः **वृत्तिपरिचय :** समास.

शव्दरूपपरिचय : अनेक...प्रदः - अ.अ.पुं.प्र.ए., महान् - ह.न.पुं.प्र.ए.

नानाभ्रमनिराकर्ता [६७.]

समासविग्रह :

- नाना(विध) यः भ्रमः इति नानाभ्रमः [कर्म]
  तं निराकरोति इति नानाभ्रमनिराकर्ता [उप.स.]

शव्दपरिचय : भ्रम-निर्[उ.]-आ[उ.]कर्ता

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय : अ.ऋ.पुं.प्र.ए.**

भक्ताज्ञानभिदुत्तमः [६८.]

सन्धिविच्छेद : भक्त + अज्ञान = भक्ताज्ञान [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तानाम् अज्ञानम् इति भक्ताज्ञानम् [ष.तत्पु]
  तं भिनत्ति इति भक्ताज्ञानभित् [उप.स.]
  स चासौ उत्तमश्च इति भक्ताज्ञानभिदुत्तमः [कर्म.]

शव्दपरिचय : उत्[उ.]तमः

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

महापुरुषसत्ख्यातिः [६९.]

समासविग्रह :

- महान् च असौ पुरुषश्च महापुरुषः [कर्म]
- महापुरुषेषु सती (वर्तमाना) ख्यातिः यस्य सः महापुरुषसत्ख्यातिः [बहु] वा
  महापुरुषाणां सती (समीचीना) ख्यातिः यस्मात् सः महापुरुषसत्ख्यातिः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास. शव्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

महापुरुषविग्रहः [७०]

समासविग्रह : महान् चासौ पुरुषश्च महापुरुषः [कर्म]

- महापुरुषार्थं विग्रहो यस्य सः महापुरुषविग्रहः [बहु.] वा
  महापुरुषाः विग्रहो यस्य सः महापुरुषविग्रहः [बहु.]

शव्दपरिचय : वि [उ.] ग्रहः

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

दर्शनीयतमः [७१.]

वृत्तिपरिचय : तद्धि. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

वाग्मी [७२.]

शव्दरूपपरिचय : ह.न.पुं.प्र.ए.

मायावादनिरासकृत् [७३.]

समासविग्रह :

- मायायाः वाद इति मायावादः [ष.तत्पु.] - निरासं करोति इति निरासकृत् [उप.स.]
- मायावादस्य निरासकृत् इति मायावादनिरासकृत् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : निर् [उ.]-आ [उ.]स-कृत्

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** ह.त.पुं.प्र.ए.

सदाप्रसन्नवदनः [७४.]

समासविग्रह :

- प्रसन्न वदनं यस्य सः प्रसन्नवदनः [बहु.] वा
- सतां आप्रसन्नानि वदनानि यस्मात् सः सदाप्रसन्नवदनः [बहु.]

शव्दपरिचय : सद्-आ [उ.]-प्र [उ.]सन्न

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

मुग्धस्मितमुखाम्बुजः [७५.]

सन्धिविच्छेद : मुख + अम्बुजः = मुखाम्बुजः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- मुग्धं च तद् स्मितं च मुग्धस्मितम् [कर्म.]
- मुखम् एव अम्बुजं मुखाम्बुजम् [कर्म.]
- मुग्धस्मितं मुखाम्बुजे यस्य सः मुग्धस्मितमुखाम्बुजः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षः [७६.]

सन्धिविच्छेद : प्रेम + आर्द्र = प्रेमार्द्र [दीर्घ.] विशाल + अक्षः = विशालाक्षः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- प्रेम्णा आर्द्रः इति प्रेमार्द्रः [तृ.तत्पु.]
- प्रेमार्द्रः दृशो येषां ते प्रेमार्द्रदृशः [बहु.]
- विशाले च ते अक्षिणी च विशालाक्षिणी [कर्म.]
- प्रेमार्द्रदृक्षु विशालाक्षिणी यस्य सः प्रेमार्द्रदृग्विशालाक्षः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

क्षितमण्डलमण्डनः [७७.]

समासविग्रह :

- क्षितेः मण्डलम् इति क्षितिमण्डलम् [ष.तत्पु.]
- क्षितिमण्डलस्य मण्डनः इति क्षितिमण्डलमण्डनः [ष.तत्पु.] वा
- क्षितिमण्डलं मण्डयति इति क्षितिमण्डलमण्डनः [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास. शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

त्रिजगद्व्यापिसत्कीर्तिधवलीकृतमेचकः [७८.]

सन्धिविच्छेद : वि + आपि = व्यापि [यण्.]

समासविग्रह :

- त्रयाणां जगतां समाहारः त्रिजगत् [द्विगु]

  तस्मिन् व्यापिनी इति त्रिजगत्व्यापिनी [स.तत्पु.]

सती च असौ कीर्तिश्च इति सत्कीर्तिः [कर्म]

- त्रिजगतव्यापिनी च असौ सत्कीर्तिश्च त्रिजगतव्यापिसत्कीर्तिः [कर्म]

तया धवलीकृताः मेचकाः (पापादिमलिना जीवाः) येन सः त्रिजगतव्यापिसत्कीर्तिधवलीकृतमेचकः [बहु.]

शव्दपरिचय : वि [3] आपि

वृत्तिपरिचय : समास. शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तःकरणः [७९.]

सन्धिविच्छेद :

सुधा + आकृष्ट = सुधाकृष्ट [दीर्घ.] भक्त + अन्तःकरण = भक्तान्तःकरण [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तानाम् अन्तःकरणानि इति भक्तान्तःकरणानि [ष.तत्पु.]

- वागेव सुधा इति वाक्सुधा [कर्म]

तया आकृष्टानि भक्तान्तःकरणानि येन सः वाक्सुधाकृष्टभक्तान्तःकरणः [बहु.]

शव्दपरिचय : आ [3] कृष्ट

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

शत्रुतापनः [८०.]

सन्धिविच्छेद : शत्रुता + अपनः = शत्रुतापनः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- शत्रून् तापयति इति शत्रूतापनः [उप.स.] वा

शत्रुतां (भक्तिमार्गविरुद्धतां) अपनयति इति शत्रुतापनः [उप.स.]

शव्दपरिचय : शत्रूता-अप [3] नः

वृत्तिपरिचय : समास. शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्तसंप्रार्थितकरः [८१.]

सन्धिविच्छेद : प्र + आर्थित = प्रार्थित [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तैः संप्रार्थितम् इति भक्तसम्प्रार्थितम् [तृ.तत्पु.]
  तत् करोति इति भक्तसम्प्रार्थितकरः [उप.स.]

शव्दपरिचय : सम् [उ] प्र [उ] अर्थित

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

दासदासीप्सितप्रदः [८२]

सन्धिविच्छेद : दासी + ईप्सित = दासीप्सित [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- दासाश्च दास्यश्च इति दासदास्यः [द्वन्द्व.]
- दासदासीनाम् ईप्सितम् इति दासदासीप्सितम् [ष.तत्पु.]
  तं प्रददाति इति दासदासीप्सितप्रदः [उप.स.]

शब्दपरिचय : प्र [उ] दः

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

अचिन्त्यमहिमामेयः [८३]

सन्धिविच्छेद : महिमा + अमेयः = महिमामेयः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न मेयः इति अमेयः [न.तत्पु.] - न चिन्त्य इति अचिन्त्यः [न.तत्पु.]
- अचिन्त्यो महिमा यस्य सः अचिन्त्यमहिमः [बहु.]
  तेन अमेयः इति अचिन्त्यमहिमामेयः [तृ.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

विस्मयास्पदविग्रहः [८४]

सन्धिविच्छेद : विस्मय + आस्पद = विस्मयास्पद [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- विस्मयस्य आस्पदं (स्थानभूतं) इति विस्मयास्पदम् [ष.तत्पु.]

तत् विग्रहः यस्य सः विस्मयास्पदविग्रहः [बहु.] अथवा

- विगतः स्मयो येषां ते विस्मयाः [बहु.]

तेषाम् आस्पदम् (आश्रयभूतो) विग्रहो यस्य सः विस्मयास्पदविग्रहः [बहु.]

शव्दपरिचय : वि [उ] स्मय वि [उ] ग्रहः

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्तक्लेशासहः [८५.]

सन्धिविच्छेद : क्लेश + असहः = क्लेशासहः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तानां क्लेशः इति भक्तक्लेशः [ष.तत्पु.] - न सहः इति असहः [न.तत्पु.]
- भक्तक्लेशानाम् असहः इति भक्तक्लेशासहः [ष.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

सर्वसहः [८६.]

समासविग्रह :

सर्वं (भक्तकृतापराधमात्रं) सहते इति सर्वसहः [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्तकृते वशः [८७.]

समासविग्रह : भक्तस्य कृते इति भक्तकृते [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : भक्तकृते [नि.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** वशः-अ.अ.पुं.प्र.ए.

आचार्यरत्नम् [८८.]

समासविग्रह :

- आचार्येषु रत्नम् इति आचार्यरत्नम् [स.तत्पु.] वा
- आचार्यस्य रत्नम् इति आचार्यरत्नम् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : आ [उ]चार्य.

वृत्तिपरिचय : समास. शब्दरूपपरिचय : अ.अ.नपुं.प्र.ए.

सर्वानुग्रहकृन्-मन्त्रवित्तमः [८९.]

सन्धिविच्छेद :

सर्व + अनुग्रह = सर्वानुग्रह [दीर्घ]

अनुग्रहकृत् + मन्त्र = अनुग्रहकृन्मन्त्र [अनुना.]

समासविग्रह :

- अनुग्रहं करोति इति अनुग्रहकृत् [उप.स.]
- सर्वेषु (भक्तेषु) अनुग्रहकृत् इति सर्वानुग्रहकृत् [स.तत्पु.]
- मन्त्राणि (वेदमन्त्राणि आचार्योपदिष्टवाक्यानि वा) वेत्ति इति मन्त्रविद् [उप.स.] (अतिशयितो मन्त्रवित् मन्त्रवित्तमः) सर्वानुग्रहकृत् च असौ मन्त्रवित्तमश्च सर्वानुग्रहकृन्मन्त्रवित्तमः [कर्म]

शब्दपरिचय : अनु [उ]ग्रह.

वृत्तिपरिचय : समास.**शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

सर्वस्वदानकुशलः [९०.]

समासविग्रह :

- सर्वं यत् स्वम् इति सर्वस्वम् [कर्म] (भगवत्स्वरूपं)
  तस्य दानम् इति सर्वस्वदानम् [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् कुशलः इति सर्वस्वदानकुशलः [स.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

गीतसङ्गीतसागरः [९१.]

सन्धिविच्छेद : सम् + गीत = सङ्गीत [प.स.]

समासविग्रह :

- गीतं च सङ्गीतं च इति गीतसङ्गीते [द्वन्द्व]

तयोः सागरः इति गीतसङ्गीतसागरः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय : सम् ' गीत

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

गोवर्धनाचलसखः [१२.]

सन्धिविच्छेद : गोवर्द्धन + अचल = गोवर्द्धनाचल [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- गोवर्द्धने अचलः इति गोवर्द्धनाचलः [स.तत्पु] (श्रीगोवर्द्धनधरः)
  स सखा यस्य सः गोवर्द्धनाचलसखः [बहु.] वा
  गोवर्द्धनः एव अचलः इति गोवर्द्धनाचलः [कर्म]
  स सखा यस्य सः गोवर्द्धनाचलसखः [बहु]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

गोपगोगोपिकाप्रियः [१३.]

समासविग्रह :

- गोपाश्च गावश्च गोपिकाश्च गोपगोगोपिकाः [द्वन्द्व.]
  ताः प्रिया यस्य सः गोपगोगोपिकाप्रियः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

चिन्तितज्ञः [१४.]

समासविग्रह : (भक्तानां वा प्रभूणां) चिन्तितं जानाति इति चिन्तितज्ञः [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

महाबुद्धिः [१५.]

समासविग्रह :

- महती बुद्धिः यस्य सः महाबुद्धिः [बहु] वा
  महतां बुद्धिः यस्मात् सः महाबुद्धिः [बहु]

वृत्तिपरिचय : समास. शव्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

जगद्वन्द्यपदाम्बुजः [१६]

सन्धिविच्छेद :

पद + अम्बुज = पदाम्बुज [दीर्घ]

समासविग्रह :

- जगति वन्द्यम् इति जगद्वन्द्यम् [स.तत्पु.]
- पदमेव अम्बुजम् इति पदाम्बुजम् [कर्म]
- जगद्वन्द्यं पदाम्बुजं यस्य सः जगद्वन्द्यपदाम्बुजः [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

जगदाश्चर्यरसकृत् [१७]

समासविग्रह :

- आश्चर्य एव रसः इति आश्चर्यरसः [कर्म]
- आश्चर्यरसं करोति इति आश्चर्यरसकृत् [उप.स.]
- जगति आश्चर्यरसकृत् इति जगदाश्चर्यरसकृत् [स.तत्पु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शव्दरूपपरिचय :** ह.त.पुं.प्र.ए.

सदा कृष्णकथाप्रियः [१८]

समासविग्रह :

- कृष्णस्य कथा इति कृष्णकथा [ष.तत्पु.]
- कृष्णकथा प्रिया यस्य सः कृष्णकथाप्रियः [बहु.]

शव्दपरिचय : सदा [नि.]

वृत्तिपरिचय : समास शव्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

सुखोदर्ककृतिः [१९]

सन्धिविच्छेद : सुख + उदर्क = सुखोदर्क [गुण]

समासविग्रह :
- सुखम् उदर्कः यस्याः सा सुखोदर्का [बहु.]
  तादृशी कृतिर्यस्य सः सुखोदर्ककृतिः [बहु.]

शब्दपरिचय : उद्[उ]-अर्क.

वृत्तिपरिचय : समास. शब्दरूपपरिचय : अ.इ.पुं.प्र.ए.

सर्वसन्देहच्छेददक्षिणः [१००.]

सन्धिविच्छेद : सन्देह + छेद = सन्देहच्छेद [तुक्.चर्त्वं.]

समासविग्रह :
- सर्वेषां (भक्तानां) सन्देहाः इति सर्वसन्देहाः [ष.तत्पु]
  तेषां छेदः सर्वसन्देहच्छेदः [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् दक्षिणः (प्रवीण) इति सर्वसन्देहच्छेददक्षिणः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : सम्[उ]देह

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्वपक्षरक्षणे दक्षः [१०१.]

समासविग्रह :
- स्वस्य पक्षः इति स्वपक्षः [ष.तत्पु.]
  तस्य रक्षणम् इति स्वपक्षरक्षणम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् स्वपक्षरक्षणे

वृत्तिपरिचय : समास.

शब्दरूपपरिचय : स्वपक्षरक्षणे(अ.अ.नपुं.स.ए.) दक्षः(अ.अ.पुं.प्र.ए)

प्रतिपक्षक्षयंकरः [१०२.]

सन्धिविच्छेद : क्षयम् + करः = क्षयङ्करः [प.स.]

समासविग्रह :
- प्रतिपक्षस्य क्षयः इति प्रतिपक्षक्षयः [ष.तत्पु.]
  तं करोति इति प्रतिपक्षक्षयंकरः [उप.स.]

शब्दपरिचय : प्रति [उ] पक्षः
वृत्तिपरिचय : समास. शब्दरूपपरिचय : अ.अ.पुं.प्र.ए.

गोपिकाविरहाविष्टः [१०३]

सन्धिविच्छेद : विरह + आविष्ट = विरहाविष्ट [दीर्घ].
समासविग्रह :
- गोपिकानां विरहः इति गोपिकाविरहः [ष.तत्पु.]
तेन आविष्टः इति गोपिकाविरहाविष्टः [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय : विरह-आ [उ] विष्टः
वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय** : अ.अ.पुं.प्र.ए.

कृष्णात्मा [१०४.]

सन्धिविच्छेद : कृष्ण + आतमा = कृष्णात्मा [दीर्घ.]
समासविग्रह :
- कृष्णस्य आत्मा (स्वरूप) इति कृष्णात्मा [ष.तत्पु.] वा
कृष्णे आत्मा (अन्तःकरणं) यस्य सः कृष्णात्मा [बहु.] वा
कृष्णस्य आत्मा (अन्तःकरणं) यस्मिन् सः कृष्णात्मा [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय** : ह.न.पुं.प्र.ए.

स्वसमर्पकः [१०५.]

समासविग्रह :
- स्वम् (आत्मधनादिकं भगवते) समर्पयति इति स्वसमर्पकः [उप.स.] वा
स्वान्(भक्तान्) समर्पयति इति स्वसमर्पकः [उप.स.]

वृत्तिपरिचय : समास **शब्दरूपपरिचय** : अ.अ.पुं.प्र.ए.

निवेदिभक्तसर्वस्वम् [१०६]

समासविग्रह : सर्वं च तत् स्वं च सर्वस्वम् [कर्म]

- निर्वेदिनश्च ये भक्ताः ते निर्वेदिभक्ताः [कर्म]
  तेषां सर्वस्वं इति निर्वेदिभक्तसर्वस्वम् [ष.तत्पु.] वा
  ते सर्वस्वं यस्य सः निर्वेदिभक्तसर्वस्वम् [बहु.]

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

शरणाध्वप्रदर्शकः [१०७.]

सन्धिविच्छेद : शरण + अध्वप्र.. = शरणाध्वप्र.. [दीर्घ.].

समासविग्रह :

- शरणः एव अध्वा इति शरणाध्वा [कर्म]
  तं प्रदर्शयति इति शरणाध्वप्रदर्शक [उप.स.].

शब्दपरिचय : प्र [उ] दर्शक.

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

श्रीकृष्णानुगृहीतैकप्रार्थनीयपदाम्बुजः [१०८.]

सन्धिविच्छेद :

श्रीकृष्ण + अनुगृहीत = श्रीकृष्णानुगृहीत [दीर्घ.]
अनुगृहीत + एक = अनुगृहीतैक [वृद्धि.]
प्र + अर्थनीय = प्रार्थनीय [दीर्घ.]
पद + अम्बुज = पदाम्बुज [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- श्रीकृष्णेन अनुगृहीताः इति श्रीकृष्णानुगृहीताः [तृ.तत्पु.]
- पद एव अम्बुजम् इति पदाम्बुजम् [कर्म]
- प्रार्थनीयं च तत् पदाम्बुजं च प्रार्थनीयपदाम्बुजम् [कर्म]
- श्रीकृष्णानुगृहीतैः एव एकं प्रार्थनीयपदाम्बुजं यस्य सः श्रीकृष्णानुगृहीतैकप्रार्थनीयपदाम्बुजः [बहु.].

शब्दपरिचय : अनु [उ] गृहीत, प्र [उ] अर्थनीय.

वृत्तिपरिचय : समास. **शब्दरूपपरिचय :** अ.अ.पुं.प्र.ए.

(स्तोत्रपाठफलम्)

इमानि नामरत्नानि श्रीविट्ठलपदाम्बुजम्।
ध्यात्वा तदेकशरणो यः पठेत् स हरिं लभेत्।।२८।।
यद्यन्मनस्यभिध्यायेत् तत्तदाप्नोत्यसंशयम्।
नामरत्नाभिधमिदं स्तोत्रं यः प्रपठेत् सुधीः।।२९।।
त्वदीयं तं गृहाणाशु प्रार्थ्यमेतन्मम प्रभो।।
श्रीविट्ठल-पदाम्भोज-मकरन्द-जुषोऽनिशम्।।
इयं श्रीरघुनाथस्य कृतिर्विजयतेतमाम्।।३०।।

।। इति श्रीरघुनाथविरचितं नामरत्नाख्यस्तोत्रं सम्पूर्णम्।।

सन्धिविच्छेद :

पद + अम्बुज = पदाम्बुज [दीर्घ.]
शरणः + यः = शरणो यः [उ.गुण.]
सः + हरिं = स हरिम् [वि.लो.]
यत् + मनसि = यन्मनसि [अनुना.]
मनसि + अभि = मनस्यभि [यण्.]
आप्नोति + असंशय = आप्नोत्यसंशय [यण्.]
रत्न + अभिधम् = रत्नाभिधम् [दीर्घ.]
गृहाण + आशु = गृहाणाशु [दीर्घ.]
प्र + अर्थ्यम् = प्रार्थ्यम् [दीर्घ.]
एतत् + मम = एतन्मम [अनुना.]
पद + अम्भोज = पदाम्भोज [दीर्घ.]
जुषः + अनिशं = जुषोऽनिशं [उ.पू.रू.]
कृतिः + विजयते = कृतिर्विजयते [रुत्व.]

समासविग्रह :

- नामानि एव रत्नानि इति नामरत्नानि [कर्म.]
- पद एव अम्बुजं इति पदाम्बुजम् [कर्म.]
- श्रीविट्ठलस्य पदाम्बुजं इति श्रीविट्ठलपदाम्बुजम् [ष.तत्पु.]
  स एव एकः शरणं यस्य सः तदेकशरणः [बहु.]
- न संशयं इति असंशयम् [न.तत्पु.]
- नामरत्नं इति अभिधा यस्य तत् नामरत्नाभिधम् [बहु.]

- सुष्ठु धीः यस्य सः सुधीः [बहु.]
- पद एव अम्भोजम् इति पदाम्भोजम् [बहु.]
- श्रीविट्ठलस्य पदाम्भोजं इति श्रीविट्ठलपदाम्भोजम् [प.तत्पु.]
  तस्य मकरन्दः श्रीविट्ठलपदाम्भोजमकरन्दः [प.तत्पु.]
  तं जुषति इति श्रीविट्ठलपदाम्भोजमकरन्दजुट् [प.तत्पु.] तस्य
- नास्ति निशा (चेष्टाविरामः) अस्मिन् इति अनिशम् [बहु.].

शब्दपरिचय :

इमानि [ना.]	अभि [उ.] ध्यायेत् [आ.]	गृहाण [आ.]
नामरत्नानि [ना.]	तत् [ना.]	आशु [ना.]
श्रीविट्ठलपदाम्बुजम् [ना.]	आप्नोति [आ.]	प्र [उ.] अर्थ्यम् [ना.]
ध्यात्वा [स.आ.]	असंशयम् [ना.]	एतत् [ना.]
तदेकशरणः [ना.]	नामरत्न-अभि [उ.] धम् [ना.]	मम [ना.]
यः [ना.]	इदम् [ना.]	प्र [उ.] भो [ना.]
पठेत् [आ.]	स्तोत्रम् [ना.]	श्रीविट्ठल...जुषः [ना.]
स [ना.]	यः [ना.]	अनिशम् [ना.]
हरिं [ना.]	प्र [उ.] पठेत् [आ.]	इयम् [ना.]
लभेत् [आ.]	सु [उ.] धीः [ना.]	श्रीरघुनाथस्य [ना.]
यद् [ना.]	त्वदीयम् [ना.]	कृतिः [ना.]
मनसि [ना.]	तम् [ना.]	वि [उ.] जयतेतमाम् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

नामरत्नानि [स.]

श्रीविट्ठलपदाम्बुजम् [स.]	नामरत्नाभिधम् [स.]	प्रभो [स.]
ध्यात्वा [कृद]	सुधीः [स.]	श्रीविट्ठल...जुषः [स.]
तदेकशरणः [स.]	त्वदीयम् [तद्धि.]	अनिशम् [स.]
असंशयम् [स.]	प्रार्थ्यम् [कृद.]	कृतिः [कृद]

शब्दरूपपरिचय :

(श्रीविठ्ठलपदाम्बुजम्, असंशयम्, नामरत्नाभिधम्, स्तोत्रम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

इमानि - ह.म.नपुं.प्र.ब.

नामरत्नानि - अ.अ.नपुं.प्र.ब..

तदेकशरणः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

यः, सः - ह.द.पुं.प्र.ए.

हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.

यत्, एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.

मनसि - ह.स.नपुं.स.ए.

तत् तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.

इदम् - ह.म्.नपुं.द्वि.ए.

सुधीः - अ.ई.पुं.प्र.ए.

त्वदीयम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

तम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.

प्रार्थ्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

मम - ह.द.ष.ए.

प्रभो - अ.उ.पुं.सं.ए.

श्रीविठ्ठल...जुषः - ह.ष.पुं.ष.ए.

इयम् - ह.म्.स्त्री.प्र.ए.

श्रीरघुनाथस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

कृतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

(पठेत्, लभेत्, अभिध्यायेत्, प्रपठेत्) - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

आप्नोति - स्वा.लट्.प्र.ए. गृहाण - क्र्या.लोट्.म.ए.

विजयतेतमाम् - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : यः तदेकशरणः (सन्) श्रीविठ्ठलपदाम्बुजम् ध्यात्वा इमानि नामरत्नानि पठेत् सः हरिं लभेत् (च) यद्यद् मनसि अभिध्यायेत् तत् तत् असंशयं प्राप्नोति. हे प्रभो! नामरत्नाभिधम् इदं स्तोत्रं यः सुधीः प्रपठेत् तं त्वदीयं आशु गृहाण. श्रीविठ्ठलपदाम्भोजमकरन्दजुषः श्रीरघुनाथस्य इयं कृतिः विजयतेतराम् ॥२८-३०॥

॥ श्रीयमुनाष्टकम् ॥

(६)

(श्रीयमुनायाः पुष्टिभक्तिमार्गीय-सकलसिद्धि-हेतुत्व-रूपैश्वर्य-वर्णनम्)

नमामि यमुनामहं सकलसिद्धिहेतुं मुदा
मुरारि - पद - पङ्कज - स्फुरदमन्द - रेणूत्कटाम् ॥
तटस्थ - नवकानन - प्रकट - मोद - पुष्पाम्बुना
सुरासुर-सुपूजित-स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् ॥१॥

सन्धिविच्छेद :

मुर + अरि = मुरारि [दीर्घ.]
रेणु + उत्कटाम् = रेणूत्कटाम् [दीर्घ.]
पुष्प + अम्बुना = पुष्पाम्बुना [दीर्घ.]
सुर + असुर = सुरासुर [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- सकलाश्च च ताः सिद्धयश्च इति सकलसिद्धयः [कर्म.]
- सकलसिद्धीनाम् हेतुः इति सकलसिद्धिहेतुः [ष.तत्पु.] तां सकलसिद्धिहेतुम्
- मुरस्य अरि इति मुरारि [ष.तत्पु.]
- पद एव पङ्कजं इति पदपङ्कजम् [कर्म.]
- मुरारेः पदपङ्कजं इति मुरारि-पदपङ्कजम् [ष.तत्पु.]
- मुरारिपदपङ्कजयोः स्फुरन्तः इति मुरारिपदपङ्कजस्फुरन्तः [स.तत्पु.]
- अमन्दाश्च ते रेणवश्च अमन्दरेणवः [कर्म.]
- मुरारिपदपङ्कजस्फुरन्तश्च ते अमन्दरेणवश्च ते मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्द-रेणवः [कर्म.]

  ते उत्कटाः यस्यां सा मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्दरेणूत्कटा [बहु.] ताम्

- तटे स्थितः इति तटस्थः [उप.स.]
- नवं च तत् काननं इति नवकाननम् [कर्म]
- तटस्थं च तत् नवकाननं च तटस्थनवकाननम् [कर्म]
- प्रकटो मोदः यैः तानी प्रकटमोदानि [बहु.]
  तानि च यानि पुष्पाणि इति प्रकटमोदपुष्पाणि [कर्म]
  तद्युक्तं अम्बु इति प्रकटमोदपुष्पाम्बु [म.प.लो.]
- तटस्थनवकानने प्रकटमोदपुष्पाम्बु इति तटस्थनवकाननप्रकटमोद-पुष्पाम्बु [स.तत्पु.]
  तेन तटस्थनवकाननप्रकटमोदपुष्पाम्बुना
- न सुरः इति असुरः [न.तत्पु.] - सुराश्च असुराश्च इति सुरासुराः [द्वन्द्व.]
- सुरासुरैः सुपुजितः इति सुरासुरसुपूजितः [तृ.तत्पु.]
- स्मरस्य पिता इति स्मरपिता [ष.तत्पु.]
- सुरासुरसुपूजितश्च असौ स्मरपिता च सुरासुरसुपूजितस्मरपिता [कर्म]
  तस्य सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः

शब्दपरिचय :

नमामि [आ.]

यमुनाम् [ना.]	मुरारिपदपङ्कजस्फुरदमन्द-	सुरासुर-सु [उ.]पूजित-
अहम् [ना.]	रेणु-उत् [उ.]कटाम् [ना.]	स्मरपितुः [ना.]
सकलसिद्धिहेतुम् [ना.]	तटस्थनवकानन-प्र [उ.]	श्रियम् [ना.]
मुदा [ना.]	कटमोदपुष्पाम्बुना [ना.]	बिभ्रतीम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सकलसिद्धिहेतुम् [स.]

मुरारि-पद-पङ्कज-स्फुरदमन्द-रेणूत्कटाम् [स.]

तटस्थ-नवकानन-प्रकटमोद-पुष्पाम्बुना [स.]

सुरासुर-सुपूजित-स्मरपितुः [स.] बिभ्रतीम् [कृ.]

शव्दरूपपरिचय :

यमुनाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

अहम् - ह.द.पुं.प्र.ए.

सकलसिद्धिहेतुम् - अ.उ.स्त्री.द्वि.ए.

मुदा - ह.द.स्त्री.तृ.ए.

मुरारि-पद-पङ्कज-स्फुरदमन्द-
रेणूत्कटाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

तटस्थ-नवकानन-प्रकटमोद-
पुष्पाम्बुना - अ.अ.नपु.तृ.ए.

सुरासुरसुपूजितस्मरपितुः - अ.ऋ.पुं.ष.ए.

श्रियम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.

बिभ्रतीम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : नमामि - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : सकलसिद्धिहेतुंमुरारि-पद-पङ्कज-स्फुरदमन्द-रेणूत्कटामृतटस्थ-नवकानन-प्रकट-मोद-पुष्पाम्बुना सुरासुर-सुपूजित-स्मरपितुः श्रियं बिभ्रतीम् यमुनाम् अहं मुदा नमामि॥१॥

(श्रीयमुनायाः भगवद्रति-वर्धकत्व-रूपैश्वर्यवर्णनम्)

कलिन्द - गिरि - मस्तके पतदमन्द - पूरोज्ज्वला
विलास-गमनोल्लसत् - प्रकट - गण्ड-शैलोन्नता॥
सघोष - गति - दन्तुरा समधिरूढ - दोलोत्तमा
मुकुन्द - रति - वर्धिनी जयति पद्मबन्धोः सुता॥२॥

सन्धिविच्छेद :

उद् + ज्वला = उज्जवला [अशल्व]

पूर + उज्ज्वला = पूरोज्ज्वला [गुण.]

उत् + लसत् = उल्लसत् [प.स.]

गमन + उल्लसत् = गमनोल्लसत् [गुण.]

उत् + नता = उन्नता [अनु.]

शैल + उन्नता = शैलोन्नता [गुण.]

दोल + उत्तमा = दोलोत्तमा [गुण.]

समासविग्रह : कलिन्दश्च असौ गिरिश्च इति कलिन्दगिरिः [कर्म]

- कलिन्दगिरेः मस्तकं इति कलिन्दगिरिमस्तकम् [ष.तत्पु]
  तस्मिन् कलिन्दगिरिमस्तके
- अमन्दश्च असौ पूरश्च अमन्दपूरः [कर्म]
- पतत् च असौ अमन्दपूरश्च पतदमन्दपूरः [कर्म]
  तेन उज्ज्वला इति पतदमन्दपूरोज्ज्वला [तृ.तत्पु.]
- विलासेन गमनं इति विलासगमनम् [तृ.तत्पु.]
- शैलानां गण्डाः इति गण्डशैलाः [ष.तत्पु.]
- प्रकटाश्च ते गण्डशैलाश्च प्रकटगण्डशैलाः [कर्म]
- उल्लसन्तश्च ते प्रकटगण्डशैलाश्च उल्लसत्प्रकटगण्डशैलाः [कर्म]
- विलासगमने उल्लसत्प्रकटगण्डशैलाः इति विलासगमनोल्लसत्प्रकट-
  गण्डशैलाः [स.तत्पु.]
- तैः उन्नताः इति विलासगमनोल्लसत्प्रकटगण्डशैलोन्नता [तृ.तत्पु.] सा
- घोषेण सह वर्तमाना इति सघोषा [बहु.]
- सघोषा च असौ गतिश्च सघोषगतिः [कर्म] तया दन्तुरा इति
  सघोषगतिदन्तुरा [तृ.तत्पु.] सा
- दोलासु उत्तमा इति दोलोत्तमा [स.तत्पु]
- समधिरूढा दोलोत्तमा यया सा समधिरूढदोलोत्तमा [तृ.बहु.] सा
- मुकुन्दे रतिः इति मुकुन्दरतिः [स.तत्पु.] वा
- मुकुन्दस्य रतिः इति मुकुन्दरतिः [ष.तत्पु.]
- मुकुन्दरत्याः वर्द्धिनी इति मुकुन्दरतिवर्द्धिनी [ष.तत्पु.]
- पद्मस्य बन्धुः इति पद्मबन्धुः [ष.तत्पु.] तस्य पद्मबन्धोः

शब्दपरिचय :

कलिन्द-गिरि-मस्तके [ना.]
पतदमन्दपूर-उत् [उ.]-ज्वला [ना.]
विलासगमन-उत् [उ.] लसत्-प्र [उ.] कट-
गण्डशैल-उत् [उ.] नता [ना.]

सघोषगतिदन्तुरा [ना.]
सम् [उ.] अधि [उ.] रूढदोल-उत् [उ.] तमा [ना.]
मुकुन्दरतिवर्धिनी [ना.]
जयति [आ.] पद्मबन्धोः [ना.] सुता [ना.]

वृत्तिपरिचय :

कलिन्द-गिरि-मस्तके [म.]
पतदमन्द-पूरोज्ज्वला [म.]
विलास-गमनोल्लसत्-प्रकट-
गण्ड-शैलोन्नता [म.]
सघोष-गति-दन्तुरा [म.]
समधिरूढदोलोत्तमा [म.]
मुकुन्द-रति-वर्धिनी [म.]
पद्मबन्धोः [म.]

शव्दरूपपरिचय :

कलिन्द-गिरि-मस्तके - अ.अ.पुं.स.ए.
पतदमन्द-पूरोज्ज्वला - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
विलास-गमनोल्लसत्-प्रकट-गण्ड-शैलोन्नता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
सघोष-गति-दन्तुरा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
समधिरूढदोलोत्तमा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
मुकुन्द-रति-वर्धिनी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
पद्मबन्धोः - अ.उ.पुं.ष.ए.
सुता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : जयति - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : कलिन्दगिरिमस्तके पतदमन्दपूरोज्ज्वला, विलास-गमनोल्लसत्प्रकटगण्डशैलोन्नता, सघोषगतिदन्तुरा, समधिरूढदोलोत्तमा, मुकुन्दरतिवर्धिनी पद्मबन्धोः सुता जयति ॥२॥

(प्रभुसम्बन्ध-प्रतिबन्ध-निवर्तनेन तदनुभावार्हशुद्धिरूप-भुवनपावनीत्व-रूपैश्वर्यवर्णनम्)

भुवं भुवन - पावनीम् अधिगतामनेक - स्वनैः
प्रियाभिरिव सेवितां शुक - मयूर - हंसादिभिः ।।
तरङ्ग - भुज - कङ्कण - प्रकट - मुक्तिका - वालुका-
नितम्ब-तट-सुन्दरीं नमत कृष्ण-तुर्य-प्रियाम् ।।३।।

सन्धिविच्छेद : प्रियाभिः + इव = प्रियाभिरिव [रेफ] हंस + आदि = हंसादि [दीर्घ]

समासविग्रह :

- भुवनस्य पावनी इति भुवनपावनी [ष.तत्पु.] ताम्
- न एक इति अनेक [न.तत्पु.]
- अनेकानि स्वनानि येषां ते अनेकस्वनाः [बहु.] तैः
- शुकाश्च मयूराश्च हंसाश्च इति शुकमयूरहंसाः [द्वन्द्व.]
- शुकमयूरहंसाः आदिः येषां ते शुकमयूरहंसादयः [बहु.] तैः
- तरङ्गाः एव भुजाः इति तरङ्गभुजाः [कर्म]
- तरङ्गभुजेषु कङ्कणानि इति तरङ्गभुजकङ्कणानि [स.तत्पु.]
- प्रकटाः याः मुक्तिकाः इति प्रकटमुक्तिकाः [कर्म]
- तरङ्गभुजकङ्कणेषु प्रकटमुक्तिकाः इति तरङ्गभुज - कङ्कणप्रकट-मुक्तिकाः [स.तत्पु.]
  ताः इव वालुकाः इति तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुकाः [कर्म]
- नितम्बः एव तटः इति नितम्बतटः [कर्म]
- तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुकाः सहित नितम्बतटः तरङ्गभुजकङ्कण-प्रकटमुक्तिकावालुकानितम्बतटः [म.प.लो.]
  तेन सुन्दरी इति तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुकानितम्बतट-सुन्दरी [तृ.तत्पु.] ताम्
- तुर्या च असौ प्रिया च तुर्यप्रिया [कर्म]
- कृष्णस्य तुर्यप्रिया इति कृष्णतुर्यप्रिया [ष.तत्पु.] ताम्

शब्दपरिचय :

भुवम् [ना.]	प्रियाभिः [ना.]	तरङ्गभुजकङ्कण-प्र [उ.] कट-
भुवन-पावनीम् [ना.]	इव [नि.]	मुक्तिकावालुकानितम्बतटसुन्दरीम् [ना.]
अधि [उ] गताम् [ना.]	सेविताम् [ना.]	नमत [आ]
अनेक-स्वनैः [ना.]	शुकमयूरहंसादिभिः [ना.]	कृष्ण-तुर्य-प्रियाम् [ना.]

वृत्तिपरिचय : भुवनपावनीम् [स.] अधिगताम् [कृद.]

अनेकस्वनैः [स.] सेविताम् [कृद.] शुकमयूरहंसादिभिः [स.]
तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिका-वालुकानितम्बतटसुन्दरीम् [स.]
कृष्णतुर्यप्रियाम् [स]

शव्दरूपपरिचय :

भुवम् - अ.उ.स्त्री.द्वि.ए.
भुवन-पावनीम् - अ.ई.पुं.द्वि.ए.
अधिगताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
अनेक-स्वनैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
प्रियाभिः - अ.आ.स्त्री.तृ.ब.
सेविताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
शुकमयूरहंसादिभिः - अ.इ.पुं.तृ.ब.
तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुका-
नितम्बतटसुन्दरीम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.
कृष्ण-तुर्य-प्रियाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : नमत - भ्वा.लोट्.म.ब.

अन्वय :

भुवं अधिगतां भुवनपावनीम् अनेकस्वनैः शुकमयूरहंसादिभिः प्रियाभिः इव सेवितां तरङ्गभुजकङ्कणप्रकटमुक्तिकावालुकानितम्बतटसुन्दरीं कृष्णतुर्यप्रियां (यूयं) नमत ॥३॥

(भगवत्-समानगुणधर्मवत्त्वेन भगवत्सम्बन्ध-सम्पादकत्व-रूपैश्वर्यवर्णनम्)

अनन्त - गुण - भूषिते शिव - विरञ्चि - देव - स्तुते
घनाघन - निभे सदा ध्रुवपराशराभीष्टदे ॥
विशुद्ध - मथुरा - तटे सकल - गोप - गोपी - वृते
कृपा - जलधि - संश्रिते मम मनःसुखं भावय ॥४॥

सन्धिविच्छेद :

अभि + इष्टदे = अभीष्टदे [दीर्घ]
ध्रुवपराशर + अभीष्ट = ध्रुवपराशराभीष्ट [दीर्घ.]

समासविग्रह :

१. श्रीयमुनापक्षे

- अनन्ताश्च ते गुणाश्च अनन्तगुणाः [कर्म]
  तैः भूषिता इति अनन्तगुणभूषिता [तृ.तत्पु.] (सम्बो) अनन्तगुणभूषिते
- शिवश्च विरञ्चिश्च देवाश्च शिवविरञ्चिदेवाः [द्वन्द्व.]
  तैः स्तुता इति शिवविरञ्चिदेवस्तुता [तृ.तत्पु.] (सम्बो) शिवविरञ्चिदेवस्तुते
- घनाघनस्य निभा इति घनाघननिभा [ष.तत्पु.] (सम्बो) घनाघननिभे !
- ध्रुवश्च पराशरश्च ध्रुवपराशरौ [द्वन्द्व.]
- अभीष्टं ददाति इति अभीष्टदा [उप.स.]
- ध्रुवपराशरयोः अभीष्टदा इति ध्रुवपराशराभीष्टदा [ष.तत्पु.] (सम्बो) ध्रुवपराशराभीष्टदे !
- विशुद्धा च असौ मथुरा इति विशुद्धमथुरा [कर्म]
- विशुद्धमथुरा तटे यस्याः सा विशुद्धमथुराततटा [बहु.] (सम्बो) विशुद्धमथुराततटे !
- कलया सहिताः इति सकलाः [बहु.]
- गोपाश्च गोप्यश्च इति गोपगोप्यः [द्वन्द्व.]
  सकलाश्च ताः गोपगोप्यश्च सकलगोपगोप्यः [कर्म]
  सकलगोपगोपीभिः वृता इति सकलगोपगोपीवृता [तृ.तत्पु.] (सम्बो) सकलगोपगोपीवृते !
- कृपायाः जलधिः इति कृपाजलधिः [ष.तत्पु.]
  तं संश्रिता इति कृपाजलधिसंश्रिता [द्वि.तत्पु.] (सं) कृपाजलधिसंश्रिते !
- मनसः सुखः इति मनःसुखः [ष.तत्पु.] तं मनःसुखं

२. श्रीकृष्णपक्षे

- घनाघनस्य निभः इति घनाघननिभः [ष.तत्पु.] तस्मिन् घनाघननिभे
- ध्रुवश्च पराशरश्च ध्रुवपराशरौ [द्वन्द्व.]
  तयोः अभीष्टम् इति ध्रुवपराशराभीष्टम् [ष.तत्पु.]

तं ददाति इति ध्रुवपराशराभीष्टदः [उप.स.] तस्मिन्
- विशुद्धामथुरा तटे (निकटे) यस्य सः विशुद्धमथुरातटः [बहु] तस्मिन्
- कलया सहिताः इति सकलाः [बहु]
- गोपाश्च गोप्यश्च इति गोपगोप्यः [द्वन्द्व]
- सकलाश्च ते गोपगोप्यश्च इति सकलगोपगोप्यः [कर्म]
  ताभिः वृतः इति सकलगोपगोपीवृतः [तृ.तत्पु.] तस्मिन्
- कृपा जलधिरिव इति कृपाजलधिः [कर्म]
- कृपाजलधिः संश्रितः यस्मिन् कृपाजलधिसंश्रितः [बहु] तस्मिन्

शब्दपरिचय :

अनन्त-गुण-भूषिते [ना.]
शिव-विरञ्चि-देव-स्तुते [ना.]
घनाघन-निभे [ना.]
सदा [नि]
ध्रुवपराशरा-अभि [उ.]इष्टदे [ना.]
वि [उ.]शुद्ध-मथुरा-तटे [ना.]
सकल-गोप-गोपी-वृते [ना.]
कृपा-जलधि-सं [उ.]श्रिते [ना.]
मम [ना.]
मनःसुखम् [ना.]
भावय [आ.]

वृत्तिपरिचय :

(अनन्तगुणभूषिते, शिवविरञ्चिदेवस्तुते, घनाघननिभे, ध्रुवपराशराभीष्टदे, विशुद्धमथुरातटे, सकलगोपगोपीवृते, कृपाजलधिसंश्रिते, मनःसुखम्) [स.] भावय [सनादि.]

शब्दरूपपरिचय :

१. श्रीयमुनापक्षे

(अनन्त-गुण-भूषिते, शिव-विरञ्चि-देव-स्तुते, घनाघन-निभे, ध्रुवपराश-राभीष्टदे, विशुद्ध-मथुरा-तटे, सकल-गोप-गोपी-वृते, कृपा-जलधि-संश्रिते) - अ.आ.स्त्री.सम्बो.ए.

२. श्रीकृष्णपक्षे

(अनन्त-गुण-भूषिते, शिव-विरञ्चि-देव-स्तुते, घनाघन-निभे, ध्रुवपराश-राभीष्टदे, विशुद्ध-मथुरा-तटे, सकल-गोप-गोपी-वृते, कृपा-जलधि-संश्रिते) - अ.अ.पुं.स.ए.

मम - ह.द्.पुं.ष.ए. मनःसुखम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : भावय - भ्वा.लोट्.म.ए. (ण्यन्त)

अन्वय : अनन्तगुणभूषिते, शिवविरञ्चिदेवस्तुते, घनाघननिभे, ध्रुवपराशराभीष्टदे, विशुद्धमथुरातटे, सकलगोपगोपीवृते, कृपाजलधिसंश्रिते सदा मम मनःसुखं भावय ॥४॥

(भगवत्प्रिय-कलि-निवारकत्व-रूपैश्वर्यवर्णनम्)

यया चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियम्भावुका
समागमनतोऽभवत् सकल-सिद्धिदा सेवताम् ॥
तया सदृशतामियात् कमलजा सपत्नीव यद्
हरिप्रिय-कलिन्दया मनसि मे सदा स्थीयताम् ॥५॥

सन्धिविच्छेद :

गमनतः + अभवत् = गमनतोऽभवत् [उ.पू.रू.] सपत्नी + इव = सपत्नीव [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- चरणौ पद्मौ इव इति चरणपद्मौ [कर्म] ताभ्यां जाता इति चरणपद्मजा [उप.स.] सा
- मुरस्य रिपुः इति मुररिपुः [ष.तत्पु] तस्य
- (अप्रियं प्रियं भावयति इति प्रियम्भावुका)
- सकलाश्च ताः सिद्धयश्च सकलसिद्धयः [कर्म] ताः ददाति इति सकलसिद्धिदा [उप.स.]

15

- कमलात् जाता इति कमलजा [उप.स.] सा
- हरेः प्रियः इति हरिप्रियः [ष.तत्पु.] - कलिं द्यति इति कलिन्दा [उप.स.]
- हरिप्रियाणां कलिन्दा इति हरिप्रियकलिन्दा [ष.तत्पु.] तया

शब्दपरिचय :

यया [ना.]	सकलसिद्धिदा [ना.]	सपत्नी [ना.] इव [नि.]
चरणपद्मजा [ना.]	सेवताम् [ना.]	यद् [नि.]
मुररिपोः [ना.]	तया [ना.]	हरिप्रियकलिन्दया [ना.]
प्रियम्भावुका [ना.]	सदृशताम् [ना.]	मनसि [ना.]
सम् [उ.] आ [उ.] गमनतः [नि.]	इयात् [आ.]	मे [ना.] सदा [नि.]
अभवत् [आ.]	कमलजा [ना.]	स्थीयताम् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

चरणपद्मजा [स.]	सकलसिद्धिदा [स.]	कमलजा [स.]
मुररिपोः [स.]	सेवताम् [कृद.]	हरिप्रियकलिन्दया [स.]
समागमनतः [तद्धि.]	सदृशताम् [तद्धि.]	स्थीयताम् [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

(चरणपद्मजा, प्रियम्भावुका, सकल-सिद्धिदा) - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

यया - ह.द.स्त्री.तृ.ए.	कमलजा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
मुररिपोः - अ.उ.पुं.ष.ए.	सपत्नी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
सेवताम् - उ.त.पुं.ष.ब.	हरिप्रिय-कलिन्दया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
तया - ह.द.स्त्री.तृ.ए.	मनसि - ह.स.नपुं.स.ए.
सदृशताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	मे - ह.द.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

अभवत् - भ्वा.लङ्.प्र.ए.   इयात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

स्थीयताम् - भ्वा.लोट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय : यया समागमनतः चरणपद्मजा मुररिपोः प्रियम्भावुका, सेवतां सकलसिद्धिदा (च) अभवत् तया सदृशतां कमलजा इयात् यत् सपत्नी इव (अस्ति), हरिप्रियकलिन्दया (त्वया) मे मनसि सदा स्थीयताम् ॥५॥

(भगवत्प्रियत्व-सम्पादकत्व-रूपैश्वर्यवर्णनम्)

नमोऽस्तु यमुने सदा तव चरित्रमत्यद्भुतं
न जातु यमयातना भवति ते पयःपानतः ॥
यमोऽपि भगिनी-सुतान् कथमु हन्ति दुष्टानपि
प्रियो भवति सेवनात् तव हरेर्यथा गोपिकाः ॥६॥

सन्धिविच्छेद :

नमः + अस्तु = नमोऽस्तु [उ.पू.रू.]
अति + अद्भुतं = अत्यद्भुतम् [यण्.] प्रियः + भवति = प्रियोभवति [उ.गुण.]
यमः + अपि = यमोऽपि [उ.पू.रू.] हरेः + यथा = हरेर्यथा [रेफ.]

समास विग्रह :

- यमस्य यातना इति यमयातना [ष.तत्पु.] सा
- पयसः पानं इति पयःपानम् [ष.तत्पु.] तस्मात् पयःपानतः [पं.तसि.]
- भगिन्याः सुतः इति भगिनीसुतः [ष.तत्पु.] तान्

शव्दपरिचय :

नमः [नि]	सदा [नि.]	अति [उ.] अद्भुतम् [ना.]
अस्तु [आ]	तव [ना]	न [नि]
यमुने [ना]	चरित्रम् [ना]	जातु [नि]

यमयातना [ना.]	भगिनी-सुतान् [ना.]	भवति [आ.]
भवति [आ.]	कथम् [नि.]	सेवनात् [ना.]
ते [ना.]	उ [नि.]	तव
पय.पानतः [नि.]	हन्ति [आ.]	हरेः [ना.]
यमः [ना.]	दुष्टान् [ना.]	यथा [नि.]
अपि [नि.]	प्रियः [ना.]	गोपिकाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अत्यद्भुतम् [स.]	पयःपानतः [तद्धि.]	कथम् [तद्धि.]
यमयातना [स.]	भगिनीसुतान् [स.]	दुष्टान् [तद्धि.] सेवनात् [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

यमुने - अ.आ.स्त्री.सं.ए.	भगिनी-सुतान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
तव - ह.द.ष.ए.	दुष्टान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
चरित्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	प्रियः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अत्यद्भुतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सेवनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
यमयातना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	तव
ते - ह.द.ष.ए.	हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
यमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	गोपिकाः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :

अस्तु - अदादि.लोट्.प्र.ए. भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए. हन्ति - अदादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : हे यमुने! (तुभ्यं) सदा नमः अस्तु, तव चरित्रम् अत्यद्भुतं (अस्ति) ते पयःपानतः जातु यमयातना न भवति, यमः अपि दुष्टान् अपि भगिनीसुतान् उ(अहो) कथं हन्ति! तव सेवनात् यथा गोपिकाः (हरेः प्रियाः अभवन् तथा जीवः) हरेः प्रियो भवति ॥६॥

(तनुनवत्व-सम्पादकत्व-रूपैश्वर्यवर्णनम्)

ममास्तु तव सन्निधौ तनु-नवत्त्वमेतावता
न दुर्लभतमा रतिर्मुररिपौ मुकुन्दप्रिये ।।
अतोऽस्तु तव लालना सुर-धुनी परं सङ्गमात्
तवैव भुवि कीर्तिता न तु कदापि पुष्टिस्थितैः ।।७।।

सन्धिविच्छेद :

मम + अस्तु = ममास्तु [दीर्घ.]	
सम् + निधौ = सन्निधौ [प.स.]	सम् + गमात् = सङ्गमात् [प.स.]
रतिः + मुररिपौ = रतिर्मुररिपौ [रेफ.]	तव + एव = तवैव [वृद्धि.]
अतः + अस्तु = अतोऽस्तु [उ.पू.रू.]	कदा + अपि = कदापि [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- तनोः नवत्वं इति तनुनवत्वम् [ष.तत्पु.] तत्
- मुरस्य रिपुः इति मुररिपुः [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- मुकुन्दस्य प्रिया इति मुकुन्दप्रिया [ष.तत्पु.] (सम्बो) मुकुन्दप्रिये!
- सुराणां धुनी इति सुरधुनी [ष.तत्पु.] सा
- पुष्टौ स्थिताः इति पुष्टिस्थिताः [स.तत्पु.] तैः

शव्दपरिचय :

मम [ना.]	दुर् [उ.]-लभतमा [ना.]	लालना [ना.]
अस्तु [आ.]	रतिः [ना.]	सुर-धुनी [ना.]
तव [ना.]	मुररिपौ [ना.]	परम् [नि.]
सम् [उ.]-नि [उ.]-धौ [ना.]	मुकुन्दप्रिये [ना.]	सम् [उ.]-गमात् [ना.]
तनु-नवत्वम् [ना.]	अतः [नि]	तव
एतावता [ना.]	अस्तु [आ.]	एव [नि.]
न [नि.]	तव	भुवि [ना.]

कीर्तिता [ना.]	तु [नि.]	अपि [नि.]
न [नि.]	कदा [नि.]	पुष्टिस्थितैः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सन्निधौ [स.]	मुररिपौ [स.]	
तनुनवत्वम् [तद्धि.]	मुकुन्दप्रिये [म.]	कीर्तिता [कृद्.]
दुर्लभतमा [तद्धि.]	अतः [तद्धि.]	कदा [तद्धि.]
रतिः [कृद्.]	सुरधुनी [स.]	पुष्टिस्थितैः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

मम - ह.द.ष.ए.

तव - ह.द.ष.ए.	मुकुन्दप्रिये - अ.आ.स्त्री.सम्बो.ए.
सन्निधौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.	लालना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
तनुनवत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सुरधुनी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
एतावता - ह.त्.पुं.तृ.ए.	सङ्गमात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
दुर्लभतमा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	भुवि - अ.ऊ.स्त्री.स.ए.
रतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	कीर्तिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
मुररिपौ - अ.उ.पुं.स.ए.	पुष्टिस्थितैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

धातुरूपपरिचय :

अस्तु - अदादि.लोट्.प्र.ए.

अन्वय :

हे मुकुन्दप्रिये! तव सन्निधौ मम तनुनवत्वम् अस्तु, एतावता मुररिपौ रतिः न दुर्लभतमा (भवति), अतः तव लालना अस्तु, सुरधुनी भुवि कीर्तिता, परं तवैव सङ्गमात्, पुष्टिस्थितैः तु कदा अपि (केवला सुरधुनी) न (कीर्तिता) ॥७॥

(लीलासामयिक-प्रभु-श्रमजलकण-सम्बन्ध-सम्पादकत्व-रूपैश्वर्यवर्णनम्)

स्तुतिं तव करोति कः कमलजा-सपत्नि! प्रिये!
हरेर्यदनुसेवया भवति सौख्यमामोक्षतः ।।
इयं तव कथाधिका सकल-गोपिका-सङ्गम-
स्मरश्रम - जलाणुभिः सकल-गात्रजैः सङ्गमः ।।८।।

सन्धिविच्छेद :

हरेः + यद् = हरेर्यद्[रेफ.] कथा + अधिका = कथाधिका[दीर्घ.] जल + अणु = जलाणु[दीर्घ.]

समास विग्रह :

- कमलात् जाता इति कमलजा[उप.स.]
- समानः पतिः यस्याः सा सपत्नी[बहु.]
- कमलजायाः सपत्नी इति कमलजा सपत्नी[ष.तत्पु.] (सम्बो) कमलजासपत्नि!
- यस्याः अनुसेवा इति यदनुसेवा[ष.तत्पु.] तया यदनुसेवया
- कलया सहिताः इति सकलाः[बहु.]
- सकलाः या गोपिकाः इति सकलगोपिकाः[कर्म.]
- सकलगोपिकानां सङ्गमः इति सकलगोपिकासङ्गमः[ष.तत्पु.]
- स्मरस्य श्रमः इति स्मरश्रमः[ष.तत्पु.]
- सकलगोपिका - सङ्गमेन स्मरश्रमः इति सकलगोपिका - सङ्गमस्मर-श्रमः[तृ.तत्पु.]
- जलस्य अणुः इति जलाणुः[ष.तत्पु.]
- सकलगोपिकासङ्गमस्मरश्रमस्य जलाणवः इति सकलगोपिकासङ्गमस्मर-श्रम- जलाणवः[ष.तत्पु.] तैः
- कलया सहितं इति सकलम्[बहु.]
- सकलं यत् गात्रं तत् सकलगात्रम्[कर्म.]
  तस्मात् जाता इति सकलगात्रजाः[उप.स.] तैः सकलगात्रजैः

शब्दपरिचय :

स्तुतिम् [ना.]	हरेः [ना.]	कथा [ना.]
तव [ना.]	यद्-अनु [उ.] सेवया [ना.]	अधिका [ना.]
करोति [आ.]	भवति [आ.]	सकलगोपिकासम् [उ.] -
कः [ना.]	सौख्यम् [ना.]	गमस्मरश्रमजलाणुभिः [ना.]
कमलजासपत्नि [ना.]	आ [उ.] मोक्षतः [ति.]	सकलगात्रजैः [ना.]
प्रिये [ना.]	इयम् [ना.]	सम् [उ.] -गमः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

स्तुतिम् [कृद.]	यदनुसेवया [स.]	आमोक्षतः [तद्धि.]
कमलजासपत्नि [स.]	सौख्यम् [तद्धि.]	सकलगात्रजैः [कृद.]
सङ्गमः [स.]	सकल-गोपिका-सङ्गम-स्मर-श्रम-जलाणुभिः [स.]	

शब्दरूपपरिचय :

स्तुतिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.	सौख्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तव - ह.द.ष.ए.	इयम् - ह.म.स्त्री.प्र.ए.
कः - ह.म.पुं.प्र.ए.	तव - ह.द.ष.ए.
कमलजासपत्नि - अ.ई.स्त्री.सं.ए.	कथा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
प्रिये - अ.आ.स्त्री.सं.ए.	अधिका - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.	सकल-गात्रजैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
यदनुसेवया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	सङ्गमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

सकल-गोपिका-सङ्गम-स्मरश्रम-जलाणुभिः - अ.उ.पुं.तृ.ब.

धातुरूपपरिचय : करोति - तना.लट्.प्र.ए. भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : कमलजासपत्नि! प्रिये! तव स्तुतिं कः करोति!, हरेः (सम्बन्धिन्याः लक्ष्म्याः) यदनुसेवया आमोक्षतः सौख्यं भवति, (न

तु केवलाया लक्ष्म्या). तव कथा इयं अधिका (यत्) सकलगात्रजैः सकलगोपिकासङ्गमस्मरश्रमजलाणुभिः सङ्गमः भवति ॥८॥

(एतत्पाठेन सर्वपापक्षयः सकलसिद्धयो मुकुन्दरतिः तत्सन्तोषः स्वभावविजयश्चेति फलानां सिद्धिः)

तवाष्टकमिदं मुदा पठति सूरसूते ! सदा
समस्त - दुरित - क्षयो भवति वै मुकुन्दे रतिः ॥
तया सकल - सिद्धयो मुररिपुश्च सन्तुष्यति
स्वभाव - विजयो भवेद् वदति वल्लभः श्रीहरेः ॥९॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं श्रीयमुनाष्टकस्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥

सन्धिविच्छेद :

तव + अष्टकम् = तवाष्टकम् [दीर्घ.] मुररिपुः + च = मुररिपुश्च [स.श्चु.]
क्षयः + भवति = क्षयो भवति [उ.गुण.] सम् + तुष्यति = सन्तुष्यति [प.स.]
सिद्धयः + मुर = सिद्धयो मुर [उ.गुण.] विजयः + भवेत् = विजयो भवेत् [उ.गुण.]

समास विग्रह :

- सूरात् सूता इति सूरसूता [पं.तत्पु.] (सम्बो) सूरसूते
- समस्ताश्च ते दुरिताश्च समस्तदुरिताः [कर्म]
  तेषां क्षयः इति समस्तदुरितक्षयः [ष.तत्पु.] सः
- सकलाश्च ताः सिद्धयश्च इति सकलसिद्धयः [कर्म] ताः
- मुरस्य रिपुः इति मुररिपुः [ष.तत्पु.] सः
- स्वभावस्य विजयः इति स्वभावविजयः [ष.तत्पु.] सः

शव्दपरिचय :

तव [ना.] अष्टकम् [ना] इदम् [ना.] मुदा [ना.]

पठति [आ.]	भवति [आ.] वै [नि.]	मुररिपुः [ना.]	भवेत् [आ.]
सूरसूते [ना.]	मुकुन्दे [ना.]	च [नि.]	वदति [आ.]
सदा [नि.]	रतिः [ना.] तया [ना.]	सम् [उ.] तुष्यति [आ.]	वल्लभः [ना.]
समस्तदुरितक्षयः [ना.]	सकलसिद्धयः [ना.]	स्वभाववि [उ.] जयः [ना.]	श्रीहरेः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अष्टकम् [तद्धि.]	समस्तदुरितक्षयः [स.]	सकलसिद्धयः [स.]	स्वभावविजयः [स.]
सूरसूते [स.]	रतिः [कृद्.]	मुररिपुः [स.]	श्रीहरेः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

तव - ह.द.ष.ए.	रतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
अष्टकम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	तया - ह.द.स्त्री.तृ.ए.
इदम् - ह.म.नपुं.द्वि.ए.	सकल-सिद्धयः - अ.इ.स्त्री.प्र.ब.
मुदा - ह.द.स्त्री.तृ.ए.	मुररिपुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
सूरसूते - अ.आ.स्त्री.सम्बो.ए.	स्वभावविजयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
समस्त-दुरित-क्षयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	वल्लभः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
मुकुन्दे - अ.अ.पुं.स.ए.	श्रीहरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

पठति - भ्वा.लट्.प्र.ए. भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए. सन्तुष्यति - दिवादि.लट्.प्र.ए.
भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. वदति - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : हे सूरसूते! तव इदम् अष्टकं (यः) सदा मुदा पठति (तस्य) समस्तदुरितक्षयो भवति, वै मुकुन्दे रतिः भवति, तया सकलसिद्धयः (भवन्ति) मुररिपुश्च सन्तुष्यति, स्वभावविजयः भवेत् (इति) श्रीहरेः वल्लभः वदति ॥९॥

।। बालबोधः ।।

(७)

(धर्मार्थकाममोक्ष-रूप-पुरुषार्थ-चतुष्टय-विषयक-सिद्धान्तसङ्ग्रहः)

नत्वा हरिं सदानन्दं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्।।
बालप्रबोधनार्थाय वदामि सुविनिश्चितम्।।१।।

सन्धिविच्छेद :

सिद्ध + अन्त = सिद्धान्त [दीर्घ]   प्रबोधन + अर्थाय = प्रबोधनार्थाय [दीर्घ]
सम् + ग्रहः = सङ्ग्रहः [प.स.]   निस् + चितम् = निश्चितम् [श्चु.]

समास विग्रह :

- सद्रूप आनन्दः यस्मिन् स सदानन्दः [बहु.] तम् सदानन्दम्
- सिद्धः अन्तः यस्य स सिद्धान्तः [बहु.]
- सर्वे च ते सिद्धान्ताश्च सर्वसिद्धान्ताः [कर्म.]
- सर्वसिद्धान्तानां सङ्ग्रहः इति सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहः [ष.तत्पु.] तं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम्
- बालानां प्रबोधनम् इति बालप्रबोधनम् [ष.तत्पु.]
- बालप्रबोधनस्य अर्थम् इति बालप्रबोधनार्थम् [ष.तत्पु.] तस्मै बालप्रबोधनार्थाय

शब्दपरिचय :

नत्वा [म.आ.]   हरिम् [ना.]   बाल-प्र [उ.] -बोधनार्थाय [ना.]
सत्-आ [उ.] नन्दम् [ना.]   वदामि [आ.]
सर्वसिद्धान्त-सम् [उ.] -ग्रहम् [ना.]   सु [उ.] वि [उ.] निस् [उ.] चितम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

नत्वा [कृद] सदानन्दम् [स] बालप्रबोधनार्थाय [स]
सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम् [स] सुविनिश्चितम् [कृद+स]

शब्दरूपपरिचय :

हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.
सदानन्दम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए. बालप्रबोधनार्थाय - अ.अ.पुं.च.ए.
सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए. सुविनिश्चितम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : वदामि - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : हरिं सदानन्दं नत्वा बालप्रबोधनार्थाय सुविनिश्चितं सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहं (अहम्) वदामि

(लौकिकत्वालौकिकत्वभेदभिन्नेषु पुरुषार्थचतुष्टयेषु धर्मार्थकामविचारस्य प्रकृतोपदेशानुपयोगित्वम्)

धर्मार्थकाममोक्षाख्याश् चत्वारोऽर्था मनीषिणाम्।।
जीवेश्वर-विचारेण द्विधा ते हि विचारिता: ।।२।।
अलौकिकास्तु वेदोक्ता: साध्यसाधनसंयुता: ।।
लौकिका ऋषिभि: प्रोक्तास् तथैवेश्वरशिक्षया।।३।।
लौकिकांस्तु प्रवक्ष्यामि वेदादाद्या यत: स्थिता: ।।
धर्मशास्त्राणि नीतिश्च कामशास्त्राणि च क्रमात् ।।४।।
त्रिवर्ग-साधकानीति न तन्निर्णय उच्यते।।

सन्धिविच्छेद :

धर्म + अर्थ = धर्मार्थ [दीर्घ] मोक्ष + आख्या: = मोक्षाख्या: [दीर्घ]
मोक्षाख्या: + चत्वार: = मोक्षाख्याश्चत्वार: [स.श्चु.]

चत्वारः + अर्था = चत्वारोऽर्था [उ.पू.रू.]

अर्थाः + मनीषि = अर्था मनीषि [वि.लो.]

जीव + ईश्वर = जीवेश्वर [गुण]

अलौकिकाः + तु = अलौकिकास्तु [स.]

वेद + उक्ताः = वेदोक्ताः [गुण.]

लौकिकाः + ऋषिभिः =

लौकिका ऋषिभिः [वि.लो.]

प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण]

प्रोक्ताः + तथैव = प्रोक्तास्तथैव [स]

तथा + एव = तथैव [वृद्धि.]

तथैव + ईश्वर = तथैवेश्वर [गुण]

लौकिकान् + तु =

लौकिकांस्तु [नश्छ. अनु. स]

वेदात् + आद्याः = वेदादाद्याः [जश्त्व.]

आद्याः + यतः = आद्या यतः [वि.लो.]

नीतिः + च = नीतिश्च [स.श्चु.]

साधकानि + इति = साधकानीति [दीर्घ.]

तत् + निर्णय = तन्निर्णय [अनुना.]

निर्णयः + उच्यते = निर्णय उच्यते [वि.लो.]

समासविग्रह :

- धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च इति धर्मार्थकाममोक्षाः [द्वन्द्व.]
- धर्मार्थकाममोक्षा इति आख्या येषां ते धर्मार्थकाममोक्षाख्याः [बहु.]
- जीवश्च ईश्वरश्च इति जीवेश्वरौ [द्वन्द्व.]
  तयोः विचारः इति जीवेश्वरविचारः [ष.तत्पु] तेन
- न लौकिकः इति अलौकिकः [न.तत्पु.] ते अलौकिकाः
- वेदे उक्तः इति वेदोक्तः [स.तत्पु.] ते वेदोक्ताः
- साध्यं च साधनं च साध्यसाधने [द्वन्द्व.]
- साध्यसाधनाभ्यां संयुताः इति साध्यसाधनसंयुताः [तृ.तत्पु.] ते
- ईश्वरस्य शिक्षा इति ईश्वरशिक्षा तया ईश्वरशिक्षया [ष.तत्पु.]
- धर्मस्य शास्त्रम् इति धर्मशास्त्रम् [ष.तत्पु.] तानि धर्मशास्त्राणि
- कामस्य शास्त्रम् इति कामशास्त्रम् [ष.तत्पु.]
- त्रयाणां वर्गाणां समाहारः त्रिवर्गम् [द्विगु.]
- त्रिवर्गस्य साधकम् इति त्रिवर्गसाधकम् [ष.तत्पु.] तानि त्रिवर्गसाधकानि
- तेषां निर्णयः इति तन्निर्णयः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

धर्मार्थकाममोक्षाख्याः [ना]	साध्यसाधन-सम् [उ] युताः [ना]	स्थिताः [ना]
चत्वारः [ना]	लौकिका [ना]	धर्मशास्त्राणि [ना]
अर्थाः [ना]	ऋषिभिः [ना] प्र [उ] उक्ताः [ना]	नीतिः [ना]
मनीषिणाम् [ना]	तथा [नि]	च [नि.]
जीवेश्वर-वि [उ] चारेण [ना]	एव [नि]	कामशास्त्राणि [ना]
द्विधा [नि.]	ईश्वरशिक्षया [ना]	च [नि.]
ते [ना]	लौकिकान् [ना.]	क्रमात् [ना.]
हि [नि]	तु [नि.]	त्रिवर्ग-साधकानि [ना.]
वि [उ] चारिताः [ना]	प्र [उ] वक्ष्यामि [आ.]	इति [नि.]
अलौकिकाः [ना.]	वेदाद् [ना.]	न [नि.]
तु [नि]	आद्याः [ना.]	तन्निर्णयः [ना.]
वेदोक्ताः [ना.]	यतः [नि.]	उच्यते [आ.]

वृत्तिपरिचय :

धर्मार्थकाममोक्षाख्याः [स.]	साध्यसाधनसंयुताः [स.]	यतः [तद्धि.] स्थिताः [कृद्.]
मनीषिणाम् [तद्धि.]	लौकिकाः [तद्धि]	धर्मशास्त्राणि [स.]
जीवेश्वरविचारेण [स.]	प्रोक्ताः [कृद्+स.]	नीतिः [कृद्.]
द्विधा [तद्धि.]	तथा [तद्धि.]	कामशास्त्राणि [स.]
विचारिताः [कृद्+स.]	ईश्वरशिक्षया [स.]	त्रिवर्गसाधकानि [स.]
अलौकिकाः [स.]	लौकिकान् [तद्धि.]	तन्निर्णयः [स.]
वेदोक्ताः [स.]	आद्याः [तद्धि.]	उच्यते [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

धर्मार्थकाममोक्षाख्याः - अ.अ.पुं.प्र.व.
चत्वारः - ह.र.पुं.प्र.व.
अर्थाः - अ.अ.पुं.प्र.व.
मनीषिणाम् - ह.न्.पुं.ष.व.
जीवेश्वरविचारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
ते - ह.द.पुं.प्र.व.

(विचारिताः, अलौकिकाः, वेदोक्ताः, साध्यसाधनसंयुताः, लौकिकाः, प्रोक्ताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

ऋषिभिः - अ.इ.पुं.तृ.ब. वेदात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

ईश्वरशिक्षया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए. आद्याः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

लौकिकान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब. स्थिताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

(धर्मशास्त्राणि, कामशास्त्राणि, त्रिवर्गसाधकानि) - अ.अ.नपुं.प्र.ब.

नीतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए. तन्निर्णयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : प्रवक्ष्यामि - अदा.लृट्.उ.ए. उच्यते - अदा.लट्.उ.ए (यक्)

अन्वय : धर्मार्थकाममोक्षाख्याः चत्वारः मनीषिणाम् अर्थाः (=पुरुषार्थाः) (सन्ति). ते हि जीवेश्वरविचारेण द्विधा विचारिताः (सन्ति). साध्यसाधनसंयुताः अलौकिकास्तु वेदोक्ताः, लौकिकाः तथैव ईश्वरशिक्षया ऋषिभिः प्रोक्ताः. लौकिकान् तु प्रवक्ष्यामि यतः आद्याः वेदाद् (एव) स्थिताः (सन्ति). धर्मशास्त्राणि नीतिः च कामशास्त्राणि च क्रमात् त्रिवर्गसाधकानि इति तन्निर्णयो न उच्यते।।४।।

(स्वतःपरतोभेदभिन्ने मोक्षे आद्यस्य बाह्याभ्यन्तरत्यागहेतुकद्वैविध्यम्)

मोक्षे चत्वारि शास्त्राणि लौकिके परतः स्वतः।।५।।
द्विधा द्वे द्वे स्वतस्तत्र सांख्य-योगौ प्रकीर्तितौ।।
त्यागात्याग-विभागेन सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः।।६।।
अहन्ता-ममता-नाशे सर्वथा निरहंकृतौ।
स्वरूपस्थो यदा जीवः कृतार्थः स निगद्यते।।७।।
तदर्थं प्रक्रिया काचित् पुराणेऽपि निरूपिता।।
ऋषिभिर्बहुधा प्रोक्ता फलमेकमबाह्यतः ।।८।।
अत्यागे योगमार्गो हि त्यागोऽपि मनसैव हि।।
यमादयस्तु कर्तव्याः सिद्धे योगे कृतार्थता।।९।।

सन्धिविच्छेद :

स्वतः + तत्र = स्वतस्तत्र [स]
त्याग + अत्याग = त्यागात्याग [दीर्घ]
स्वरूपस्थः + यदा = स्वरूपस्थो यदा [उ.गुण.]
पुराणे + अपि = पुराणेऽपि [पू.रू.]
ऋषिभिः + बहुधा = ऋषिभिर्बहुधा [रेफ]
प्र + उक्ता = प्रोक्ता [गुण.]
मार्गः + हि = मार्गो हि [उ.गुण]
त्यागः + अपि = त्यागोऽपि [उ.पू.रू.]
मनसा + एव = मनसैव [वृद्धि.]
यम + आदयः = यमादयः [दीर्घ.]
यमादयः + तु = यमादयस्तु [स.]
कृत + अर्थता = कृतार्थता [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- सांख्यश्च योगश्च सांख्ययोगौ [द्वन्द्व.]
- न त्यागः इति अत्यागः [न.तत्पु.]
- त्यागश्च अत्यागश्च इति त्यागात्यागौ [द्वन्द्व.]
  तयोः विभागः इति त्यागात्यागविभाग [ष.तत्पु.] तेन
- अहन्ता च ममता च अहन्ताममते [द्वन्द्व.]
- अहन्ताममतयोः नाशः इति अहन्ताममतानाशः [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- स्वरूपे स्थितः इति स्वरूपस्थः [उप.त.]
- कृतः (सम्पादितः) अर्थो येन सः कृतार्थः [बहु.]
- तस्य अर्थम् इति तदर्थम् [ष.तत्पु.]
- न बाह्यम् इति अबाह्यम् [न.तत्पु.] तस्मात् अबाह्यतः [पं.तसि.]
- न त्यागः इति अत्यागः [न.तत्पु.] तस्मिन् अत्यागे
- योग एव मार्गः इति योगमार्गः [कर्म.]
- यमः आदि येषां ते यमादयः [बहु.]
- कृतः अर्थो येन स कृतार्थः [बहु.] तस्य भावः कृतार्थता

शब्दपरिचय :

मोक्षे [ना]	शास्त्राणि [ना]	परतः [नि.]	द्विधा [नि.]
चत्वारि [ना]	लौकिके [ना.]	स्वतः [नि]	द्वे [ना.]

तत्र [नि.]
सांख्ययोगौ [ना.]
प्र [उ] कीर्तितौ [ना.]
त्यागात्याग-वि [उ] भागेन [ना.]
सांख्ये [ना.]
त्यागः [ना.]
प्र [उ.] कीर्तितः [ना.]
अहन्ताममतानाशे [ना.]
सर्वथा [नि.]
निर् [उ.] अहंकृतौ [ना.]
स्वरूपस्थः [ना.]
यदा [नि.]
जीवः [ना.]
कृतार्थः [ना.]

सः [ना.]
नि [उ] गद्यते [आ.]
तदर्थम् [ना.]
प्र [उ] क्रिया [ना.]
काचित् [नि.]
पुराणे [ना.]
अपि [नि.]
नि [उ] रूपिता [ना.]
ऋषिभिः [ना.]
बहुधा [नि.]
प्र [उ.] उक्ता [ना.]
फलम् [ना.]
एकम् [ना.]
अबाह्यतः [नि.]

अत्यागे [ना.]
योगमार्गः [ना.]
हि [नि.]
त्यागः [ना.]
अपि [नि.]
मनसा [ना.]
एव [नि.]
हि [नि.]
यमादयः [ना.]
तु [नि.]
कर्तव्याः [ना.]
सिद्धे [ना.]
योगे [ना.]
कृतार्थता [ना.]

वृत्तिपरिचय :

लौकिके [तद्धि.]
परतः [तद्धि.]
स्वतः [तद्धि.]
द्विधा [तद्धि.]
तत्र [तद्धि.]
सांख्ययोगौ [स.]
प्रकीर्तितौ [कृद+स.]
त्यागात्यागविभागेन [स.]
प्रकीर्तितः [कृद+स]
अहन्ता-ममता-नाशे [स.]
सर्वथा [तद्धि.]

निरहंकृतौ [कृद+स.]
स्वरूपस्थः [स.]
यदा [तद्धि.]
कृतार्थः [स.]
निगद्यते [सनादि.]
तदर्थं [स.]
प्रक्रिया [स.]
निरूपिता [कृद+स]
बहुधा [तद्धि.]

प्रोक्ता [कृद+स.]
अबाह्यतः [तद्धि.]
अत्यागे [स.]
योगमार्गः [स.]
यमादयः [स.]
कर्तव्याः [कृद.]
सिद्धे [कृद.]
कृतार्थता [तद्धि.]

शव्दरूपपरिचय :

मोक्षे - अ.अ.पुं.स.ए.

चत्वारि - ह.र.नपुं.प्र.ब.

शास्त्राणि - अ.अ.नपुं.प्र.ब.

लौकिके - अ.अ.पुं.स.ए.

द्वे - अ.इ.नपुं.प्र.द्वि.

सांख्य-योगौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.

प्रकीर्तितौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.

त्यागात्याग-विभागेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

सांख्ये - अ.अ.पुं.स.ए.

त्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

प्रकीर्तितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अहन्ता-ममता-नाशे - अ.अ.पुं.स.ए.

निरहंकृतौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.

(स्वरूपस्थः, जीवः, कृतार्थः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

सः - ह.द्.पुं.प्र.ए.

तदर्थम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

प्रक्रिया - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

पुराणे - अ.अ.नपुं.स.ए.

निरूपिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

ऋषिभिः - अ.इ.पुं.तृ.ब.

प्रोक्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

फलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

एकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

अत्यागे - अ.अ.पुं.स.ए.

योगमार्गः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

त्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

मनसा - ह.स.नपुं.तृ.ए.

यमादयः - अ.इ.पुं.प्र.ब.

सिद्धे - अ.अ.पुं.स.ए.

योगे - अ.अ.पुं.स.ए.

कृतार्थता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : निगद्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए. (यक्)

अन्वय : लौकिके मोक्षे स्वतः परतः (भेदेन) द्विधा द्वे द्वे (शास्त्रे, तेन) चत्वारि शास्त्राणि (सन्ति). तत्र स्वतः (मोक्षे) त्याग-अत्यागविभागेन सांख्य-योगौ प्रकीर्तितौ. सांख्ये त्यागः प्रकीर्तितः (अस्ति) (६). अहन्ताममतानाशे सर्वथा निरहंकृतौ (सन्) यदा जीवः स्वरूपस्थः (भवति) तदा स कृतार्थो निगद्यते (७). तदर्थं काचित् प्रक्रिया पुराणेऽपि निरूपिता. (सा प्रक्रिया) ऋषिभिः बहुधा प्रोक्ता (तथापि) अबाह्यतः (हेतोः) (सर्वासु प्रक्रियासु) फलं एकम् (एवास्ति) (८).

अत्यागे हि योगमार्गः (अस्ति). (तत्र) त्यागोऽपि मनसैव (कर्तव्यः) यमादयस्तु कर्तव्याः, योगे सिद्धे (सति) कृतार्थता (भवति)॥६-९॥

(ब्रह्मणो रूपत्रयमध्ये ब्रह्मा[क] मोक्षप्रदज्ञानप्रदइति परतोलभ्ये मोक्षप्रकारे शिव[ख]विष्णो[ग]रेव मोचकत्वं स्वस्वशास्त्रोदितेन सर्वात्मकनिर्दोषपूर्णगुणवद्-ब्रह्मत्वेन 'जगत्संहर्तृपालकत्वं च)

पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा सोऽपि निरूप्यते॥
ब्रह्मा[क] ब्राह्मणतां यातस् तद्रूपेण सुसेव्यते॥१०॥
ते सर्वार्था न चाद्येन[क] शास्त्रं किञ्चिदुदीरितम्॥
अतः शिव[ख]श्च विष्णु[ग]श्च जगतो हितकारकौ॥११॥
वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ शास्त्रप्रवर्तकौ॥
ब्रह्मैव तादृशं यस्मात् सर्वात्मकतयोदितौ॥१२॥
निर्दोष-पूर्ण-गुणता तत्तच्छास्त्रे तयोः[ख-ग] कृता॥

सन्धिविच्छेद :

पर + आश्रयेण = पराश्रयेण [दीर्घ.]
मोक्षः + तु = मोक्षस्तु [स.]
सः + अपि = सोऽपि [उ.पू.रू.]
यातः + तद्रूपेण = यातस्तद्रूपेण [स.]
सर्व + अर्थाः = सर्वार्थाः [दीर्घ.]
सर्वार्थाः + न = सर्वार्था न [वि.लो.]
च + आद्येन = चाद्येन [दीर्घ.]
किञ्चित् + उदीरितं = किञ्चिदुदीरितं [जश्त्व.]
शिवः + च = शिवश्च [स.श्चु.]
विष्णुः + च = विष्णुश्च [स.श्चु.]
जगतः + हित = जगतो हित [उ.गुण.]
ब्रह्म + एव = ब्रह्मैव [वृद्धि.]
सर्व + आत्मक = सर्वात्मक [दीर्घ.]
तया + उदितौ = तयोदितौ [गुण.]
तत्तत् + शास्त्रे = तत्तच्छास्त्रे [श्चु.छ.]

समासविग्रह :

- तस्य रूपं इति तद्रूपं तेन तद्रूपेण [ष.तत्पु.]
- परस्य आश्रयः इति पराश्रयः तेन पराश्रयेण [ष.तत्पु.]

- सर्वे च ते अर्थाः च इति सर्वार्थाः [कर्म.]
- हितस्य कारकः इति हितकारकः [प.तत्पु.] तौ हितकारकौ
- स्थितिश्च संहारश्च इति स्थितिसंहारौ [द्वन्द्व.]
- शास्त्रस्य प्रवर्तकः इति शास्त्रप्रवर्तकः [प.तत्पु.] तौ
- सर्वेषां आत्मा इति सर्वात्मा [प.तत्पु.] स एव सर्वात्मकः (स्वार्थे कन्) तस्य भावः सर्वात्मकता तया सर्वात्मकतया
- पूर्णाः गुणाः यस्मिन् स पूर्णगुणः [बहु.]
- निर्दोषश्च असौ पूर्णगुणश्च निर्दोषपूर्णगुणः [कर्म.]
  तस्य भावः निर्दोषपूर्णगुणता
- तस्मिन् तस्मिन् शास्त्रे इति तत्तच्छास्त्रे [स.तत्पु.]
- (वीप्साविवक्षया तच्छब्दस्य द्विरुक्तिः)

शव्दपरिचय :

पर-आ[उ.]श्रयेण[ना.]	न[नि.]	
मोक्षः[ना.]	च[नि.]	स्थिति-सम्[उ.]हारौ[ना.]
तु[नि.]	आद्येन[ना.]	कार्यौ[ना.]
द्विधा[नि.]	शास्त्रम्[ना.]	शास्त्र-प्र[उ.]वर्तकौ[ना.]
सः[ना.]	किञ्चिद्[नि.]	ब्रह्म[ना.]
अपि[नि.]	उद्[उ.]ईरितम्[ना.]	एव[नि.]
नि[उ.]रूप्यते[आ.]	अतः[नि.]	तादृशम्[ना.]
ब्रह्मा[ना.]	शिवः[ना.]	यस्मात्[ना.]
ब्राह्मणताम्[ना.]	च[नि.]	सर्वात्मकतया[ना.]
यातः[ना.]	विष्णुः[ना.]	उदितौ[ना.]
तद्रूपेण[ना.]	च[नि.]	निर्[उ.]दोषपूर्णगुणता[ना.]
सु[उ.]सेव्यते[आ.]	जगतः[ना.]	तत्तच्छास्त्रे[ना.]
ते[ना.]	हितकारकौ[ना.]	तयोः[ना.]
सर्वार्था[ना.]	वस्तुनः[ना.]	कृता[ना.]

वृत्तिपरिचय :

पराश्रयेण [स.]	सर्वार्थाः [स.]	शास्त्रप्रवर्तकौ [स.]
द्विधा [तद्धि.]	आद्येन [तद्धि.]	तादृशम् [तद्धि.]
निरूप्यते [कर्म]	उदीरितम् [स.]	सर्वात्मकतया [तद्धि]
ब्राह्मणताम् [तद्धि.]	अतः [तद्धि.]	उदितौ [स.]
यातः [कृद]	हितकारकौ [स.]	निर्दोषपूर्णगुणता [तद्धि.]
तद्रूपेण [स.]	स्थितिसंहारौ [स.]	तत्तच्छास्त्रे [स.]
सुसेव्यते [सना.]	कार्यौ [कृद.]	कृता [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

पराश्रयेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.	यातः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	शास्त्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
मोक्षः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तद्रूपेण - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	उदीरितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.	ते - ह.द.पुं.प्र.ब.	शिवः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
ब्रह्मा - ह.न.पुं.प्र.ए.	सर्वार्थाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	विष्णुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
ब्राह्मणताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	आद्येन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	जगतः - ह.त्.नपुं.ष.ए.

(हितकारकौ, स्थितिसंहारौ, कार्यौ, शास्त्रप्रवर्तकौ) - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.

वस्तुनः - अ.उ.नपुं.ष.ए.	उदितौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.
ब्रह्म - ह.न.नपुं.प्र.ए.	निर्दोषपूर्णगुणता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए
तादृशम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तत्तच्छास्त्रे - अ.अ.नपुं.स.ए
यस्मात् - ह.द.पु.पं.ए.	तयोः - ह.द.पु.ष.द्वि.
सर्वात्मकतया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	कृता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : निरूप्यते - चुरा.लट्.प्र.ए.(यक्) सुसेव्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए.(यक्)

अन्वय : पराश्रयेण मोक्षस्तु द्विधा (स्तः). सोपि निरूप्यते. ब्रह्मा ब्राह्मणतां यातः तद्रूपेण सुसेव्यते. आद्येन ते सर्वार्था न (यतः) किंचित् शास्त्रं उदीरितम् अतः शास्त्रप्रवर्तकौ शिवः विष्णुश्च (द्वौ

अपि) जगतः हितकारकौ (स्तः) (च तयोः) वस्तुनः स्थितिसंहारौ कार्यौ (स्तः). यस्मात् तादृशं ब्रह्म एव, तस्मात् (तौ) सर्वात्मकतया उदितौ (किञ्च) तत्तच्छास्त्रे तयोः निर्दोषपूर्णगुणता कृता (अस्ति)

(भोगमोक्षप्रदातृत्वे उभयोः समर्थेत्वपि शिव[ख]विष्णवोः[ग] स्वस्वातिप्रिया-भ्यामेव तदीयत्व[१]तदाश्रितत्व[२]हेतुके फलप्रदत्वे)

भोगमोक्षफले दातुं शक्तौ द्वावपि यद्यपि ।।१३।।
भोगः शिवेन मोक्षस्तु विष्णुनेति विनिश्चयः ।।
लोकेऽपि यत् प्रभुभुङ्क्ते तन्न यच्छति कर्हिचित् ।।१४।।
अतिप्रियाय तदपि दीयते क्वचिदेव हि ।।
नियतार्थ-प्रदानेन तदीयत्वं[ख१/ग१] तदाश्रयः[ख२/ग२] ।।१५।।
प्रत्येकं साधनं चैतत् द्वितीयार्थे महान् श्रमः ।।

सन्धिविच्छेद :

द्वौ + अपि = द्वावपि [आव.]
यदि + अपि = यद्यपि [यण्.]
मोक्षः + तु = मोक्षस्तु [स.]
विष्णुना + इति = विष्णुनेति [गुण.]
विनिस् + चयः = विनिश्चयः [श्चु.]
लोके + अपि = लोकेऽपि [पू.रू.]
प्रभुः + भुङ्क्ते = प्रभुर्भुङ्क्ते [रेफ.]
तत् + न = तन्न [अनुना.]
क्वचित् + एव = क्वचिदेव [जश्त्व.]
नियत + अर्थ = नियतार्थ [दीर्घ.]
द्वितीय + अर्थे = द्वितीयार्थे [दीर्घ.]
प्रति + एकं = प्रत्येकम् [यण्.]
च + एतत् = चैतत् [वृद्धि.]

समास विग्रह :

- भोगश्च मोक्षश्च इति भोगमोक्षौ [द्वन्द्व.]
- भोगमोक्षौ एव फले भोगमोक्षफले [कर्म]
- नियतश्च असौ अर्थश्च नियतार्थः [कर्म.] तस्य प्रदानम् इति नियतार्थप्रदानम् [ष.तत्पु.] तेन

- एकं एकं प्रति इति प्रत्येकम्[अव्य.]
- द्वितीयश्च असौ अर्थश्च द्वितीयार्थः[कर्म.] तस्मिन्

शब्दपरिचय :

भोगमोक्षफले[ना.]	तु[नि.]	न[नि.]	नि[उ.] यतार्थ-प्र[उ.]
दातुम्[स.आ.]	विष्णुना[ना.]	यच्छति[आ.]	दानेन[ना.]
शक्तौ[ना.]	इति[नि.]	कर्हिचित्[नि.]	तदीयत्वम्[ना.]
द्वौ[ना.]	वि[उ.] निस्[उ.]-चयः[ना.]	अति[उ.]	तद्-आ[उ.] श्रयः[ना.]
अपि[नि.]	लोके[ना.]	प्रियाय[ना.]	प्रति[उ.] एकम्[नि.]
यदि[नि.]	अपि[नि.]	अपि[नि.]	साधनम्[ना.]
अपि[नि.]	यत्[ना.]	दीयते[आ.]	च[नि.] एतत्[ना.]
भोगः[ना.]	प्र[उ.] भुः[ना.]	क्वचिद्[नि.]	द्वितीयार्थे[ना.]
शिवेन[ना]	भुङ्क्ते[आ.]	एव[नि.]	महान्[ना.]
मोक्षः[ना.]	तत्[ना.]	हि[नि.]	श्रमः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

भोगमोक्षफले[स.]	अतिप्रियाय[स.]	तदाश्रयम्[स.]
दातुम्[कृद.]	दीयते[सना.]	प्रत्येकम्[स.]
शक्तौ[कृद.]	नियतार्थप्रदानेन[स.]	साधनम्[कृद.]
विनिश्चयः[स.] प्रभुः[स.]	तदीयत्वम्[तद्धि.]	द्वितीयार्थे[स.]

शब्दरूपपरिचय :

भोगमोक्षफले - अ.अ.नपुं.द्वि.द्वि	मोक्षः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
शक्तौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि	विष्णुना - अ.उ.पुं.तृ.ए
द्वौ - अ.इ.पुं.प्र.द्वि.	विनिश्चयः - अ.अ.पुं.प्र.ए
भोगः - अ.अ.पुं.प्र.ए	लोके - अ.अ.पुं.स.ए.
शिवेन - अ.अ.पुं.तृ.ए	यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.

प्रभुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
अतिप्रियाय - अ.अ.पुं.च.ए.
नियतार्थप्रदानेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.
तदीयत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

तदाश्रयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
साधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
द्वितीयार्थे - अ.अ.नपुं.स.ए.
महान् - ह.त.पुं.प्र.ए. श्रमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :
भुङ्क्ते - अदा.लट्.प्र.ए. यच्छति - भ्वा.लट्.प्र.ए. दीयते - जुहो.लट्.प्र.ए.(यक्)

अन्वय : यद्यपि भोगमोक्षफले दातुं द्वौ अपि शक्तौ (स्तः) (तथापि) भोगः शिवेन (दीयते) मोक्षस्तु विष्णुना इति विनिश्चयः (अस्ति). लोके अपि यत् प्रभुः भुङ्क्ते तत् कर्हिचित् न यच्छति. अतिप्रियाय अपि तत् क्वचिद् एव हि दीयते. नियतार्थप्रदानेन तदीयत्वं तदाश्रयः प्रत्येकं च एतत् साधनम्. द्वितीयार्थे महान् श्रमः (भवति) ॥१५॥

(स्वाभाविकदोषनिवृत्त्यर्थं तत्तदाश्रय[ख२/ग२]-तत्तदीयत्व[ख१/ग१]बुद्ध्या स्वधर्माचरणस्य आवश्यकता)

जीवाः स्वभावतो दुष्टा दोषाभावाय सर्वदा ॥१६॥
श्रवणादि ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिध्यति ॥
मोक्षस्तु सुलभो विष्णोर्भोगश्च शिवतस्तथा ॥१७॥
समर्पणेनात्मनो हि तदीयत्वं भवेद् ध्रुवम् ॥
अतदीयतया चापि केवलश्चेत् समाश्रितः ॥१८॥
तदाश्रय[ख२/ग२]तदीयत्व[ख१/ग१]बुद्ध्यै किञ्चित् समाचरेत् ॥
स्वधर्मम् अनुतिष्ठन् वै भारद्वैगुण्यमन्यथा ॥
इत्येवं कथितं सर्वं नैतज्ज्ञाने भ्रमः पुनः ॥१९॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः बालबोधः सम्पूर्णः ॥

सन्धिविच्छेद :

स्वभावतः + दुष्टाः = स्वभावतो दुष्टाः [उ.गुण]

दुष्टाः + दोषाभावाय =

दुष्टा दोषाभावाय [वि.लो.]

दोष + अभा.. = दोषाभा.. [दीर्घ.]

श्रवण + आदि = श्रवणादि [दीर्घ.]

मोक्षः + तु = मोक्षस्तु [स.]

सुलभः + विष्णोः =

सुलभो विष्णोः [उ.गुण.]

विष्णोः + भोगः = विष्णोर्भोगः [रेफ.]

भोगः + च = भोगश्च [स.श्चु]

शिवतः + तथा = शिवतस्तथा [स.]

समर्पणेन + आत्मनः =

समर्पणेनात्मनः [दीर्घ.]

आत्मनः + हि = आत्मनो हि [उ.गुण.]

च + अपि = चापि [दीर्घ.]

केवलः + चेत् = केवलश्चेत् [स.श्चु]

इति + एवम् = इत्येवम् [यण्.]

न + एतत् = नैतत् [वृद्धि.]

नैतत् + ज्ञाने = नैतज्ज्ञाने [श्चु.]

समास विग्रह :

- स्वस्य भावः इति स्वभावः [ष.तत्पु.]
  तस्मात् स्वभावतः [पं.तसि.]
- न भावः इति अभावः [न.तत्पु.]
- दोषस्य अभावः इति दोषाभावः [ष.तत्पु.] तस्मै
- श्रवणम् आदिः यस्य(कीर्तनादेः) तत् श्रवणादि [बहु.]
- न तदीयता इति अतदीयता [न.तत्पु.] तया अतदीयतया
- तेषाम् आश्रयः इति तदाश्रयः [ष.तत्पु.]
- तदाश्रयश्च तदीयत्व च तदाश्रयतदीयत्वे [द्वन्द्व.]
  तयोः बुद्धिः(ज्ञानं) इति तदाश्रयतदीयत्वबुद्धिः [ष.तत्पु.]
  तस्यै तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै
- स्वस्य धर्मः स्वधर्मः [ष.तत्पु.]
- द्वयोः गुणयोः समाहारः द्विगुणम् [द्विगु]
  तस्य भावः द्वैगुण्यं भारस्य द्वैगुण्यं भारद्वैगुण्यम् [ष.तत्पु.]
- एतस्य ज्ञानम् इति एतज्ज्ञानम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् एतज्ज्ञाने

शब्दपरिचय :

जीवाः [ना.]	मोक्षः [ना.]	भवेद् [आ.]	स्वधर्मम् [ना.]
स्वभावतः [नि.]	तु [नि.]	ध्रुवम् [ना.]	अनु [उ.] तिष्ठन् [ना.]
दुष्टाः [ना.]	सु [उ.] लभः [ना.]	अतदीयतया [ना.]	वै [नि.]
दोषाभावाय [ना.]	विष्णोः [ना.]	च [नि.]	भारद्वैगुण्यम् [ना.]
सर्वदा [नि.]	भोगः [ना.]	अपि [नि.]	अन्यथा [नि.]
श्रवणादि [ना.]	च [नि.]	केवलः [ना.]	इति [नि.] एवम् [नि.]
ततः [नि.]	शिवतः [नि.]	चेत् [नि.]	कथितम् [ना.]
प्रेम्णा [ना.]	तथा [नि.]	सम् [उ.]-आ [उ.] श्रितः [ना.]	सर्वम् [ना.]
सर्वम् [ना.]	सम् [उ.] अर्पणेन [ना.]	तद्-आ [उ.] श्रय-	न [नि.]
कार्यम् [ना.]	आत्मनः [ना.]	तदीयत्वबुद्ध्यै [ना.]	एतत् [ना.]
हि [नि.]	हि	किञ्चित् [नि.]	ज्ञाने [ना.]
सिध्यति [आ.]	तदीयत्वम् [ना.]	सम् [उ.] आ [उ.] चरेत् [आ.]	भ्रमः [ना.] पुनः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

स्वभावतः [तद्धि.]	सुलभः [स.]	तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै [स.]
दुष्टाः [कृद.]	शिवतः [तद्धि.]	स्वधर्मम् [स.]
दोषाभावाय [स.]	तथा [तद्धि.]	अनुतिष्ठन् [स.]
सर्वदा [तद्धि.]	समर्पणेन [स.]	भारद्वैगुण्यम् [स.]
श्रवणादि [स.]	तदीयत्वम् [तद्धि.]	अन्यथा [तद्धि.]
ततः [तद्धि.]	अतदीयतया [स.]	कथितम् [कृद.]
कार्यम् [कृद.]	समाश्रितः [स.]	एतज्ज्ञाने [स.]

शब्दरूपपरिचय :

जीवाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	श्रवणादि - अ.इ.नपुं.प्र.ए.
दुष्टाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	प्रेम्णा - ह.न.नपुं.तृ.ए.
दोषाभावाय - अ.अ.पुं.च.ए.	सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	समाश्रितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
(मोक्षः, सुलभः, भोगः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै - अ.इ.स्त्री.च.ए.
विष्णोः - अ उ.पुं.पं.ए.	स्वधर्मम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
समर्पणेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	अनुतिष्ठन् - ह.त्.पुं.प्र.ए.
आत्मनः - ह.न.पुं.ष.ए.	भारद्वैगुण्यम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
तदीयत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कथितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
ध्रुवम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सर्वम्
अतदीयतया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	एतज्ज्ञाने - अ.अ.नपुं.स.ए.
केवलः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भ्रमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

सिध्यति - दिवा.लट्.प्र.ए. भवेद् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. समाचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वयः : जीवाः स्वभावतः दुष्टाः (सन्ति) (तस्मात्) दोषाभावाय सर्वदा श्रवणादि (कर्तव्यम्) ततः प्रेम्णा सर्वं कार्यं हि सिध्यति. विष्णोः मोक्षस्तु सुलभः (भवति) तथा भोगः च शिवतः सुलभः (भवति) (१७). आत्मनः समर्पणेन हि ध्रुवं तदीयत्वं भवेद्. अतदीयतया च चेत् केवलः समाश्रितः (सन्) स्वधर्मम् अनुतिष्ठन् तदाश्रयतदीयत्वबुद्ध्यै किञ्चित् (साधनं) समाचरेत्. अन्यथा वै भारद्वैगुण्यम् (भवति). इत्येवं (मया) सर्वं कथितम्. एतज्ज्ञाने पुनः भ्रमः न (भवति)॥१९॥

।। सिद्धान्तमुक्तावली ।।

(८)

(स्वसिद्धान्तविनिश्चयोपदेशः)

नत्वा हरिं प्रवक्ष्यामि स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् ।।

सन्धिविच्छेद : निस् + चय = निश्चय [श्चु.]

समास विग्रह :

- स्वस्य सिद्धान्तः इति स्वसिद्धान्तः [प.तत्पु..]
  तस्य विनिश्चयः इति स्वसिद्धान्तविनिश्चयः [प.तत्पु.] तम्

शब्दपरिचय :

नत्वा [स.आ.] हरिम् [ना.] प्र [उ.] वक्ष्यामि [आ.]

स्वसिद्धान्त-वि [उ.] निस् [उ.] चयम् [ना.]

वृत्तिपरिचय : नत्वा [कृत्.] स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए. स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : प्रवक्ष्यामि - अदादि.लृट्.उ.ए.

अन्वय : हरिं नत्वा स्वसिद्धान्तविनिश्चयम् (अहं) प्रवक्ष्यामि

(श्रीकृष्णसेवायाः नित्यकर्तव्यताकत्वं, सेवायाः फलावस्थालक्षणं[१] स्वरूपलक्षणं[२] साधनावस्थालक्षणं[३] अवान्तरफललक्षणं[४] च)

कृष्णसेवा सदा कार्या मानसी सा परा मता[१]॥१॥
चेतस्तत्प्रवणं सेवा[२] तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा[३]॥
ततः संसार-दुःखस्य निवृत्तिर्ब्रह्म-बोधनम्[४]॥२॥

सन्धिविच्छेद :

चेतः + तत् = चेतस्तत्[स.] निवृत्तिः + ब्रह्मबोध = निवृत्तिर्ब्रह्मबोध[रेफ.]

समास विग्रह :

- कृष्णस्य सेवा इति कृष्णसेवा[ष.तत्पु.]
- तस्मिन् प्रवणम् इति तत्प्रवणम्[स.तत्पु.]
- तस्याः सिद्धिः इति तत्सिद्धिः[ष.तत्पु.] तस्यै तत्सिद्ध्यै
- तनुश्च वित्तञ्च तनुवित्ते[द्वन्द्व.]
  ताभ्यां जाता तनुवित्तजा[उप.स.]
- संसारस्य दुःखम् इति संसारदुःखम्[ष.तत्पु.] तस्य संसारदुःखस्य
- ब्रह्मणः बोधनम् इति ब्रह्मबोधनम्[ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

कृष्णसेवा[ना.]	सा[ना.]	तत्-प्र[उ.]वणम्[ना.]	ततः[नि.]
सदा[नि.]	परा[ना.]	सेवा[ना.]	सम्[उ.]सार-दुःखस्य[ना.]
कार्या[ना.]	मता[ना.]	तत्सिद्ध्यै[ना.]	नि[उ.]वृत्तिः[ना.]
मानसी[ना.]	चेतः[ना.]	तनुवित्तजा[ना.]	ब्रह्म-बोधनम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

कृष्णसेवा[स.]	मानसी[तद्धि.]	तत्प्रवणम्[स.]	तनुवित्तजा[स.]
कार्या[कृद.]	मता[कृद.]	तत्सिद्ध्यै[स.]	ततः[तद्धि.]

संसारदुःखस्य [ष.]   निवृतिः [कर्त]   ब्रह्मबोधनम् [म]

शव्दरूपपरिचय :

कृष्णसेवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	तत्प्रवणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कार्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	सेवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
मानसी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.	तत्सिद्ध्यै - अ.इ.स्त्री.च.ए.
सा - ह.द.स्त्री.प्र.ए.	तनुवित्तजा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
परा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	संसारदुःखस्य - अ.अ.नपुं.ष.ए
मता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	निवृत्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए
चेतः - ह.स.नपुं.प्र.स.	ब्रह्मबोधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए

अन्वय : कृष्णसेवा सदा कार्या सा मानसी (चेत् तदा) परा मता (१). चेतस्तत्प्रवणं सेवा (भवति). तत्सिद्ध्यै तनुवित्तजा (कर्तव्या). ततः संसारदुःखस्य निवृत्तिः (किंच) ब्रह्मबोधनम् (भवति)॥२॥

(पुष्टिमार्गीयसेवायां सेव्यस्य ब्रह्मणः पराक्षर[क-ख]रूपद्वैविध्यम् अक्षरस्य च जगद्रूपत्वेन[ख-१] तद्विलक्षणत्वेन[ख-२] द्वैविध्यम्)

परं ब्रह्मतु कृष्णो[क]हि सच्चिदानन्दकं बृहत्[ख]॥
द्विरूपं तद्धि[ख] सर्वं स्याद्[ख/१] एकं तस्माद् विलक्षणम्[ख/२]॥३॥

सन्धिविच्छेद :

कृष्णः + हि = कृष्णो हि [उ गुण]   सच्चित् + आनन्द = सच्चिदानन्द [जश्त्व.]

सत् + चित् = सच्चित् [श्चु.]   तत् + हि = तद्धि [जश्त्व.पू.स.]

समास विग्रह :

- सत् च चित् च आनन्दश्च तेषां समाहारः इति सच्चिदानन्दम् [द्वन्द्व]
- सच्चिदानन्दम् इव प्रतिकृति इति सच्चिदानन्दकम् (कन् प्रत्यय)

- द्वयोः रूपयोः समाहारः इति द्विरूपम[द्विगु.]

शव्दपरिचय :

परम्[ना.]	हि[नि.]	तत्[ना.]	
ब्रह्म[ना.]	सच्चिदानन्दकम्[ना.]	हि[नि.]	एकम्[ना.]
तु[नि.]	बृहत्[ना.]	सर्वम्[ना.]	तस्माद्[ना.]
कृष्णः[ना.]	द्विरूपम्[ना.]	स्याद्[आ.]	वि[उ.]लक्षणम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

सच्चिदानन्दकम्[तद्धि.]   द्विरूपम्[स.]   विलक्षणम्[कृद+स.]

शब्दरूपपरिचय :

परम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

ब्रह्म - ह.न.नपुं.प्र.ए.	तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सच्चिदानन्दकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	एकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
बृहत् - ह.त.नपुं.प्र.ए.	तस्माद् - ह.द.नपुं.पं.ए.
द्विरूपम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	विलक्षणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : परं ब्रह्म तु कृष्णः हि (च) सच्चिदानन्दकं बृहत् (अस्ति) तद् हि द्विरूपं (भवति), एकं सर्वं स्याद्, एकं (अपरं रूपं) तस्माद् विलक्षणम् (अस्ति)

(सच्चिदानन्दकवृहद्[ख/१]विषये वहुविधवैमत्यपरिगणना तत्र श्रौतमतनिष्कर्षः च)

अपरं[ख-१] तत्र पूर्वस्मिन्[ख-२] वादिनो बहुधा जगुः ॥

मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं चेति नैकधा ॥४॥
तद्[ख-२] एवैतत्[ख-१] प्रकारेण भवतीति श्रुतेर्मतम् ॥

सन्धिविच्छेद :

वादिनः + बहुधा = वादिनो बहुधा [उ गुण]	तदेव + एतत् = तदेवैतत् [वृद्धि.]
च + इति = चेति [गुण]	भवति + इति = भवतीति [दीर्घ.]
न +एकधा = नैकधा [वृद्धि]	श्रुतेः + मतम् = श्रुतेर्मतम् [रेफ.]

समास विग्रह :

- न परम् इति अपरम्[नञ.तत्पु.] - गुणेन सहितं यत् तत् सगुणम्[बहु.]
- स्वस्य तन्त्रम् इति स्वतन्त्रम्[ष.तत्पु.] - न एकधा नैकधा[केवल.स.]
- एषः प्रकारः इति एतत्प्रकारः[कर्म.] तेन

शब्दपरिचय :

अपरम्[ना.]	बहुधा[नि.]	कार्यम्[ना.]	नैकधा[नि.]	भवति[आ.]
तत्र[नि.]	जगुः[आ.]	स्वतन्त्रम्[ना.]	तद्[ना.]	इति[नि.]
पूर्वस्मिन्[ना.]	मायिकम्[ना.]	च[नि.]	एव[नि.]	श्रुतेः[ना.]
वादिनः[ना.]	सगुणम्[ना.]	इति[नि.]	एतत्-प्र[उ.]कारेण[ना.]	मतम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

अपरम्[स.]	बहुधा[तद्धि.]	कार्यम्[कृद.]	एतत्प्रकारेण[स.]
तत्र[तद्धि.]	मायिकम्[तद्धि.]	स्वतन्त्रम्[स.]	श्रुतेः[कृद.]
वादिनः[तद्धि.]	सगुणम्[स.]	नैकधा[स.]	मतम्[कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

अपरम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	वादिनः - ह.न.पुं.प्र.व.
पूर्वस्मिन् - अ.अ.नपुं.स.ए.	मायिकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

सगुणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
स्वतन्त्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तद् - ह.द्.नपुं.प्र.ए.
एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
प्रकारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
श्रुतेः - अ.इ.स्त्री.ष.ए.
मतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

जगुः - भ्वा.लिट्.प्र.ब. भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : तत्र पूर्वस्मिन् (जगद्रूपे) वादिनः (वेदमतात्) अपरं (मतं) बहुधा जगुः मायिकं सगुणं कार्यं स्वतन्त्रं च इति नैकधा जगुः.(४). तदेव एतत्प्रकारेण भवति इति श्रुतेः मतम् (अस्ति).

(भक्त्येकगम्यपरब्रह्मश्रीकृष्णः[क], श्रुत्यादिविहितश्रवणाद्युपायैः ज्ञेयं बृहद्[ख], भजनौपयिकाखिलसामग्री च ब्रह्मात्मिका[ख-१]एवेति तत्र जल[१]-तीर्थ[२]-देवी[३]इत्येवं रूपत्रितयात्मकगङ्गादृष्टान्तेन उपपत्तिः)

द्विरूपं[ख/१-२] चापि गङ्गावज्ज्ञेयं सा जल[१]रूपिणी॥५॥
माहात्म्यसंयुता नृणां सेवतां भुक्तिमुक्तिदा॥
मर्यादामार्ग-विधिना तथा ब्रह्मा[ख/१-२]पि बुध्यताम्॥६॥
तत्रैव देवता[३]-मूर्तिः भक्त्या या दृश्यते क्वचित्॥
गङ्गायां च विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये॥७॥
प्रत्यक्षा सा[३] न सर्वेषां प्राकाम्यं स्यात् तया[३] जले[१]॥
विहिताच्च फलात् तद्धि प्रतीत्यापि विशिष्यते॥८॥
यथा जलं[१] तथा सर्वं[ख-१] यथा शक्ता[२] तथा बृहत्[ख-२]॥
यथा देवी[३] तथा कृष्णः[क]............॥

सन्धिविच्छेद :

च + अपि = चापि[दीर्घ.] गङ्गावत् + ज्ञेयम् = गङ्गावज्ज्ञेयम्[श्चु]

ब्रह्म + अपि = ब्रह्मापि [दीर्घ]

तत्र + एव = तत्रैव [वृद्धि.]

प्रवाह + अभेद = प्रवाहाभेद [दीर्घ]

प्रति + अक्षा = प्रत्यक्षा [यण्]

विहितात् + च = विहिताच्च [श्चु.]

तत् + हि = तद्धि [व्यञ्जन पू.स.]

प्रति + इत्या + अपि = प्रतीत्यापि [दीर्घ]

समास विग्रह :

- द्वयोः रूपयोः समाहारः इति द्विरूपम् [द्विगु.]
- जलस्य रूपं जलरूपम् [ष.तत्पु.] जलरूपम् यस्याः सा जलरूपिणी [बहु.]
- माहात्म्येन संयुता इति माहात्म्यसंयुता [तृ.तत्पु.] सा
- भुक्तिश्च मुक्तिश्च इति भुक्तिमुक्ती [द्वन्द्व.]
  ते ददाति इति भुक्तिमुक्तिदा [उप.स.]
- मर्यादा एव मार्गः इति मर्यादामार्गः [कर्म.]
  तस्य विधिः इति मर्यादामार्गविधिः [ष.तत्पु.]
  तेन मर्यादामार्गविधिना
- देवतायाः मूर्तिः इति देवतामूर्तिः [ष.तत्पु.] सा
- न भेदः इति अभेदः [नञ्.तत्पु.] अभेदस्य बुद्धिः इति अभेदबुद्धिः [ष.तत्पु.]
- प्रवाहे अभेदबुद्धिः यस्य स प्रवाहाभेदबुद्धिः [बहु.] तस्मै प्रवाहाभेदबुद्धये

शब्दपरिचय :

द्विरूपम् [ना.]	नृणाम् [ना.]	तत्र [नि.]
च [नि.]	सेवताम् [ना.]	एव [नि.]
अपि [नि.]	भुक्तिमुक्तिदा [ना.]	देवता-मूर्तिः [ना.]
गङ्गावत् [नि.]	मर्यादामार्ग-वि[उ]धिना [ना.]	भक्त्या [ना.]
ज्ञेयम् [ना.]	तथा [नि.]	या [ना.]
सा [ना.]	ब्रह्म [ना]	दृश्यते [आ.]
जलरूपिणी [ना.]	अपि [नि]	क्वचित् [नि.]
माहात्म्य-सम्[उ]युता [ना.]	तुध्यताम् [आ.]	गङ्गायाम् [ना]

च [नि]	तया [ना.]	
वि [उ.] शेषेण [ना.]	जले [ना.]	यथा [नि]
प्र [उ] वाहाभेदबुद्धये [ना.]	वि [उ.] हितात् [ना]	जलम् [ना.]
प्रति [उ.] अक्षा [ना.]	फलात् [ना.]	तथा [नि]
सा [ना.]	तद् [ना.]	सर्वम् [ना.]
न [नि.]	हि [नि.]	शक्ता [ना.]
सर्वेषाम् [ना.]	प्रति [उ.]-इत्या [ना.]	बृहत् [ना.]
प्र [उ.] आ [उ.] काम्यम् [ना.]	अपि [नि.]	देवी [ना.]
स्यात् [आ.]	वि [उ.] शिष्यते [आ.]	कृष्णः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

द्विरूपम् [स.]	मर्यादामार्गविधिना [स.]	प्रत्यक्षा [स.]
गङ्गावत् [तद्धि.]	तथा [तद्धि.] तत्र [तद्धि.]	प्राकाम्यम् [तद्धि.]
ज्ञेयम् [कृद.]	देवतामूर्तिः [स.]	विहितात् [कृद.+स.]
जलरूपिणी [स.]	भक्त्या [कृद.]	प्रतीत्या [कृद.स.]
माहात्म्यसंयुता [स.]	दृश्यते [सना.]	विशिष्यते [सना.]
सेवताम् [कृद.]	विशेषेण [स.]	यथा [तद्धि.]
भुक्तिमुक्तिदा [स.]	प्रवाहाभेदबुद्धये [स.]	शक्ता [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

द्विरूपम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
ज्ञेयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सा - ह.द.स्त्री.प्र.ए.
जलरूपिणी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
माहात्म्यसंयुता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
नृणाम् - अ.ऋ.पुं.ष.ब.
सेवताम् - ह.त.पुं.ष.ब.
भुक्तिमुक्तिदा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
मर्यादामार्ग-विधिना - अ.इ.पुं.तृ.ए.
ब्रह्म - ह.न.नपु.द्वि.ए.
देवता-मूर्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
भक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
या - ह.द्.स्त्री.प्र.ए.
गङ्गायाम् - अ.आ.स्त्री.स.ए.

विशेषेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.	फलात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
प्रवाहाभेदबुद्धये - अ.इ.पुं.च.ए.	तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
प्रत्यक्षा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	प्रतीत्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
सा - ह.द.स्त्री.प्र.ए.	जलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.व.	सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
प्राकाम्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	शक्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
तया - ह.द्.स्त्री.तृ.ए.	बृहत् - ह.त्.नपुं.प्र.ए.
जले - अ.अ.नपुं.स.ए.	देवी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
विहितात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

बुद्ध्यताम् - दिवादि.लोट्.प्र.ए.

दृश्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए. (यक् प्रत्ययान्त) विशिष्यते - रुधादि.लट्.प्र.ए. (यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय : द्विरूपं चापि गङ्गावत् ज्ञेयं, (एका) सा जलरूपिणी, (अपरा) माहात्म्यसंयुता मर्यादामार्गविधिना सेवतां नृणां भुक्तिमुक्तिदा (अस्ति) तथा ब्रह्मापि बुध्यताम्.(६) तत्रैव या देवतामूर्तिः (विराजते) (सा) भक्त्या गङ्गायां विशेषेण प्रवाहाभेदबुद्धये च क्वचित् दृश्यते, सा सर्वेषां प्रत्यक्षा न भवति, तया जले प्राकाम्यं स्यात्, तत् हि विहितात् फलात् च प्रतीत्यापि विशिष्यते.(७-८) यथा जलं तथा सर्वं, यथा शक्ता तथा बृहत्, यथा देवी तथा कृष्णः (अस्ति इति बुध्यताम्).

(लौकिकं जगत् त्रिविधम् इति लौकिकव्यवहारनियामकाः देवताः तिस्रः, स्वमार्गीया भक्तिर्हि श्रीकृष्णे अनन्यासक्तिरूपेति तन्नियामकोऽपि श्रीकृष्णः एकएव)

... ... **...तत्राप्येतदिहोच्यते ॥९॥**

जगत्तु त्रिविधं प्रोक्तं ब्रह्म-विष्णु-शिवास्ततः ।।
देवता-रूप-वत् प्रोक्ता ब्रह्मणीत्थं हरिर्मतः ।।१०।।
कामचारस्तु लोकेऽस्मिन् ब्रह्मादिभ्यो न चान्यथा ।।
परमानन्द-रूपेतु कृष्णे स्वात्मनि निश्चयः ।।११।।
अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिर्विधीयताम् ।।

सन्धिविच्छेद :

तत्र + अपि = तत्रापि [दीर्घ.]	लोके + अस्मिन् = लोकेऽस्मिन् [पू.रू.]
तत्रापि + एतत् = तत्राप्येतत् [यण्.]	ब्रह्मा + आदिभ्यः = ब्रह्मादिभ्यः [दीर्घ.]
इह + उच्यते = इहोच्यते [गुण]	ब्रह्मादिभ्यः + न = ब्रह्मादिभ्यो न [उ.गुण.]
प्र + उक्तम् = प्रोक्तम् [गुण.]	च + अन्यथा = चान्यथा [दीर्घ.]
शिवाः + ततः = शिवास्ततः [स.]	परम + आनन्द = परमानन्द [दीर्घ.]
प्रोक्ताः + ब्रह्मणि = प्रोक्ता ब्रह्मणि [वि.लो.]	स्व + आत्मनि = स्वात्मनि [दीर्घ.]
ब्रह्मणि + इत्थम् = ब्रह्मणीत्थम् [दीर्घ.]	निस् + चयः = निश्चयः [श्चु.]
हरिः + मतः = हरिर्मतः [रेफ.]	अतः + तु = अतस्तु [स.]
कामचारः + तु = कामचारस्तु [स.]	बुद्धिः + विधीयतां = बुद्धिर्विधीयतां [रेफ.]

समास विग्रह :

- त्रयो विधाः यस्य तत् त्रिविधम् [बहु.]
- ब्रह्मा च विष्णुश्च शिवश्च ब्रह्मविष्णुशिवाः [द्वन्द्व.]
- देवतायाः रूपम् इति देवतारूपम् [ष.तत्पु.] तद्वत् देवतारूपवत्
- कामेन चारः इति कामचारः [तृ.तत्पु.]
- ब्रह्मा आदिः येषां ते ब्रह्मादयः [बहु.] तेभ्यः ब्रह्मादिभ्यः
- परमो यः आनन्दः परमानन्दः [कर्म]
- परमानन्दः रूपं यस्य सः परमानन्दरूपः [बहु.] तस्मिन् परमानन्दरूपे
- स्वस्य आत्मा इति स्वात्मा [ष.तत्पु.] तस्मिन् स्वात्मनि
- ब्रह्मणः वादः इति ब्रह्मवादः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

तत्र [नि.]	प्र [उ.] उक्तम् [ना.]	मतः [ना.]	परम-आ [उ.] नन्दरूपे [ना.]
अपि [नि.]	ब्रह्मविष्णुशिवाः [ना.]	कामचारः [ना.]	कृष्णे [ना.]
एतत् [ना.]	ततः [नि.]	लोके [ना.]	स्वात्मनि [ना.]
इह [नि.]	देवतारूपवत् [नि.]	अस्मिन् [ना.]	निस् [उ.] चयः [ना.]
उच्यते [आ.]	प्र [उ.] -उक्ता [ना.]	ब्रह्मादिभ्यः [ना.]	अतः [नि.]
जगत् [ना.]	ब्रह्मणि [ना.]	न [नि.]	ब्रह्मवादेन [ना.]
तु [नि.]	इत्थम् [नि.]	च [नि.]	बुद्धिः [ना.]
त्रिविधम् [ना.]	हरिः [ना.]	अन्यथा [नि.]	वि [उ.] धीयताम् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

तत्र [तद्धि.]	देवतारूपवत् [तद्धि.]	
इह [तद्धि.]	प्रोक्ताः [कृद्.]	परमानन्दरूपे [स.]
उच्यते [सना.]	इत्थम् [तद्धि.]	स्वात्मनि [स.]
त्रिविधम् [स.]	मतः [कृद्.]	अतः [तद्धि.]
प्रोक्तम् [स.]	कामचारः [स.]	ब्रह्मवादेन [स.]
ब्रह्म-विष्णु-शिवाः [स.]	ब्रह्मादिभ्यः [स.]	बुद्धिः [कृद्.]
ततः [तद्धि.]	अन्यथा [तद्धि.]	विधीयताम् [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

एतद् - ह.द.नपुं.प्र.ए.	हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
जगत् - ह.त.नपुं.प्र.ए.	मतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
त्रिविधम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कामचारः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
प्रोक्तम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	लोके - अ.अ.पुं.स.ए.
ब्रह्म-विष्णु-शिवाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	अस्मिन् - ह.म.पुं.स.ए.
प्रोक्ताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	ब्रह्मादिभ्यः - अ.इ.पुं.पं.ब.
ब्रह्मणि - ह.न.नपुं.स.ए.	परमानन्दरूपे - अ.अ.पुं.स.ए.

कृष्णे - अ.अ.पुं.स.ए.   स्वात्मनि - ह.न.पुं.स.ए.   निश्चयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
ब्रह्मवादेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.   बुद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :
उच्यते - अदा.लट्.प्र.ए.(यक्)   विधीयताम् - भ्वा.लोट्.प्र.ए.(ण्यन्त)

अन्वय : तत्रापि एतत् इह उच्यते.(९). जगत् तु त्रिविधं प्रोक्तं ततः (हेतोः) ब्रह्मविष्णुशिवाः देवतारूपवत् प्रोक्ताः, ब्रह्मणि इत्थं हरिः मतः. (१०). अस्मिन् लोके कामचारस्तु ब्रह्मादिभ्यः (भवति) न च अन्यथा. परमानन्दरूपे कृष्णे तु स्वात्मनि निश्चयः (भवति). (११). अतस्तु ब्रह्मवादेन कृष्णे बुद्धिः विधीयताम्

(सेवाकर्तुः जीवात्मनः स्वस्वरूपज्ञानं[१] परब्रह्ममाहात्म्यज्ञानं[२] श्रीकृष्णानन्यरतिः[३] तदनुकूलक्रियाः[४] चेति चतुष्टयसाहित्ये उत्तमाधिकारित्वम्[उत्त.] एतेषु अन्यतमराहित्ये मध्यमाधिकारित्वम्[मध्य.] केवलक्रियाकारित्वे वा कनिष्ठाधिकारित्वम्[कनि.] लोकार्थितया भगवत्सेवने हीनाधिकारित्वम्[हीन.] इति अधिकारिचातुर्विध्यम्)

आत्मनि ब्रह्मरूपेतु छिद्रा व्योम्नीव चेतनाः ॥१२॥
उपाधिनाशे विज्ञाने[१] ब्रह्मात्मत्वावबोधने[२] ॥
गङ्गातीरस्थितो यद्वद् देवतां तत्र पश्यति ॥१३॥
तथा कृष्णं परं ब्रह्म स्वस्मिन्[३] ज्ञानी[४] प्रपश्यति॥
संसारी[मध्य.+कनि.] यस्तु भजते स दूरस्थो यथा तथा ॥१४॥
अपेक्षितजलादीनाम् अभावात् तत्र दुःखभाक् ॥
तस्माच्छ्रीकृष्णमार्गस्थो[उत्त.] विमुक्तः सर्वलोकतः ॥१५॥
आत्मानन्दसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत् ॥
लोकार्थी[हीन.] चेद् भजेत् कृष्णं क्लिष्टो भवति सर्वथा ॥१६॥
क्लिष्टो[कनि.]ऽपि चेद् भजेत् कृष्णं लोको नश्यति सर्वथा ॥

सन्धिविच्छेद :

छिद्रा + व्योम्नि = छिद्राव्योम्नि [वि.लो.]

व्योम्नि + इव = व्योम्नीव [दीर्घ.]

उप + आधि = उपाधि [दीर्घ.]

ब्रह्म + आत्मत्व = ब्रह्मात्मत्व [दीर्घ]

आत्मत्व + अवबोधने =
आत्मत्वावबोधने [दीर्घ.]

स्थितः + यद्वद् = स्थितो यद्वत् [उ.गुण.]

यः + तु = यस्तु [स.]

सः + दूरस्थः = स दूरस्थ [वि.लो.]

दूरस्थः + यथा = दूरस्थो [उ.गुण.]

अप + ईक्षित = अपेक्षित [गुण.]

जल + आदीनाम् = जलादीनाम् [दीर्घ.]

तस्मात् + श्रीकृष्ण =
तस्माच्छ्रीकृष्ण [चु.लो.]

मार्गस्थः + विमुक्तः =
मार्गस्थो विमुक्तः [उ.गुण.]

आत्मा + आनन्द = आत्मानन्द [दीर्घ.]

लोक + अर्थी = लोकार्थी [दीर्घ.]

चेत् + भजेत् = चेद्भजेत् [जश्त्व.]

क्लिष्टः + भवति = क्लिष्टो भवति [उ.गुण.]

क्लिष्टः + अपि = क्लिष्टोऽपि [उ.पू.रू.]

लोकः + नश्यति = लोको नश्यति [उ.गुण.]

समासविग्रह :

- ब्रह्मणः रूपम् इति ब्रह्मरूपम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् ब्रह्मरूपे
- उपाधेः नाशः इति उपाधिनाशः [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् उपाधिनाशे
- ब्रह्म आत्मा यस्य तत् ब्रह्मात्मम् [बहु.] ब्रह्मात्मनः भावः ब्रह्मात्मत्वम्
- ब्रह्मात्मत्वेन अवबोधनम् इति ब्रह्मात्मत्वावबोधनम् [तृ.तत्पु.] तस्मिन् ब्रह्मात्मत्वावबोधने
- गङ्गायाः तीरम् इति गङ्गातीरम् [ष.तत्पु.]
- गङ्गातीरे स्थितः इति गङ्गातीरस्थितः [स.तत्पु]
- दूरे तिष्ठति इति दूरस्थः [उप.स.]
- जलम् आदि येषां तानि जलादीनि [बहु]
- अपेक्षितानि च तानि जलादीनि च अपेक्षितजलादीनि [कर्म]
  तेषाम् अपेक्षितजलादीनाम्
- न भावः अभावः [न तत्पु] तस्मात् अभावात्

- दुःखं भजते इति दुःखभाक्[उप.स.] सः
- श्रीकृष्णस्य मार्गः इति श्रीकृष्णमार्गः[ष.तत्पु.]
  तस्मिन् तिष्ठति इति श्रीकृष्णमार्गस्थः[उप.स.]
- सर्वश्च असौ लोकश्च सर्वलोकः[कर्म] तस्मात् सर्वलोकतः[पं.तसि]
- आत्मनः आनन्दः इति आत्मानन्दः[ष.तत्पु.]
  स एव समुद्रः इति आत्मानन्दसमुद्रः[कर्म]
  तस्मिन् तिष्ठति सः आत्मानन्दसमुद्रस्थः[उप.स.] तं आत्मानन्दसमुद्रस्थम्
- लोकस्य अर्थी इति लोकार्थी[ष.तत्पु.] सः

शब्दपरिचय :

आत्मनि[ना.]	ब्रह्म[ना.]	आत्मा-आ[उ.]नन्द-
ब्रह्मरूपे[ना.]	स्वस्मिन्[ना.]	समुद्रस्थम्[ना.]
तु[नि.] छिद्रा[ना.]	ज्ञानी[ना.]	कृष्णम्[ना.]
व्योम्नि[ना.]	प्र[उ.]पश्यति[आ.]	एव[नि.]
इव[नि.]	सं[उ.]सारी[ना.]	वि[उ.]चिन्तयेत्[आ.]
चेतनाः[ना.]	यः[ना.]	लोकार्थी[ना.]
उप[उ.]आ[उ.]धिनाशे[ना.]	तु[नि.]	चेद्[नि.]
वि[उ.]ज्ञाने[ना.]	भजते[आ.] सः[ना.]	भजेत्[आ.]
ब्रह्मात्मत्व-अव[उ.]बोधने[ना.]	दूरस्थः[ना.]	क्लिष्टः[ना.]
गङ्गातीरस्थितः[ना.]	यथा[नि.]	भवति[आ.]
यद्वद्[नि.]	अप[उ.]ईक्षितजलादीनाम्[ना.]	सर्वथा[नि.]
देवताम्[ना.]	अभावात्[ना.]	क्लिष्टः[ना.]
तत्र[नि.]	दुःखभाक्[ना.]	अपि[नि.] चेद्[नि.]
पश्यति[आ.]	तस्मात्[ना.]	भजेत्[आ.]
तथा[नि.]	श्रीकृष्णमार्गस्थः[ना.]	लोकः[ना.]
कृष्णम्[ना.]	वि[उ.]मुक्तः[ना.]	नश्यति[आ.]
परम्[ना.]	सर्वलोकतः[नि.]	सर्वथा[नि.]

वृत्तिपरिचय :

ब्रह्मरूपे स.	ज्ञानी तद्धि.	दुःखभाक् स.
उपाधिनाशे स.	संसारी तद्धि.	श्रीकृष्णमार्गस्थः स.
विज्ञाने स.	दूरस्थः स.	विमुक्तः कृद्+स.
ब्रह्मात्मत्वावबोधने स.	यथा तद्धि.	सर्वलोकतः तद्धि.
गङ्गातीरस्थितः स.	तथा	आत्मानन्दसमुद्रस्थम् स.
यद्वत् तद्धि.	अपेक्षितजलादीनाम् स.	लोकार्थी स.
देवताम् तद्धि.	अभावात् स.	क्लिष्टः कृद्.
तत्र तद्धि. तथा तद्धि.	तत्र	सर्वथा तद्धि.

शब्दरूपपरिचय :

आत्मनि - ह.न.पुं.स.ए.
ब्रह्मरूपे - अ.अ.नपुं.स.ए.
छिद्राः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
व्योम्नि - ह.न.नपुं.स.ए.
चेतनाः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब.
उपाधिनाशे - अ.अ.पुं.स.ए.
विज्ञाने - अ.अ.नपुं.स.ए.
ब्रह्मात्मत्वावबोधने - अ.अ.नपुं.स.ए.
गङ्गातीरस्थितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
देवताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
कृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
परम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
ब्रह्म - ह.न्.नपुं.द्वि.ए.
स्वस्मिन् - अ.अ.पुं.स.ए.
ज्ञानी - ह.न.पुं.प्र.ए.
संसारी - ह.न.पुं.प्र.ए.
यः - ह.द.पुं.प्र.ए.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
दूरस्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अपेक्षितजलादीनाम् - अ.इ.नपुं.ष.ब.
अभावात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
दुःखभाक् - ह.ज.पुं.प्र.ए.
तस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.
श्रीकृष्णमार्गस्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
विमुक्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
आत्मानन्द - समुद्रस्थम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
लोकार्थी - ह.न.पुं.प्र.ए.
क्लिष्टः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
लोकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

पश्यति - भ्वा.लट्.प्र.ए.	विचिन्तयेत् - चुरादि.वि.लिङ्.प्र.ए.
भजते - भ्वा.लट्.प्र.ए.	भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : आत्मनि ब्रह्मरूपे तु चेतनाः व्योम्नि छिद्राः इव (प्रतीयन्ते) (१२). यद्वत् गङ्गातीरस्थितः तत्र देवतां पश्यति तथा उपाधिनाशे (सति) (च) ब्रह्मात्मत्वावबोधने विज्ञाने (सति) ज्ञानी स्वस्मिन् परं ब्रह्म कृष्णं प्रपश्यति. यथा (गङ्गातः) दूरस्थः अपेक्षितजलादीनाम् अभावात् तत्र दुःखभाक् (भवति) तथा यः संसारी (कृष्णम्) भजते सः तु दुःखभाक् (भवति). तस्मात् श्रीकृष्णमार्गस्थः सर्वलोकतः विमुक्तः (सन्) आत्मानन्दसमुद्रस्थं कृष्णमेव विचिन्तयेत्. लोकार्थी चेत् कृष्णं भजेत् (तर्हि सः) सर्वथा क्लिष्टः भवति. क्लिष्टः अपि चेत् कृष्णं भजेत् (तर्हि तस्य) लोकः सर्वथा नश्यति

(उत्तमाधिकाराभावे भगवत्सेवानुष्ठानप्रकारस्थलयोः उपदेशः)

ज्ञानाभावे पुष्टिमार्गी[मध्य.] तिष्ठेत् पूजोत्सवादिषु ॥१७॥
मर्यादास्थ[मध्य.]स्तु गङ्गायां श्रीभागवततत्परः ॥
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः ॥१८॥
उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्तैव फलिष्यति ॥
ज्ञानाधिको भक्तिमार्गः एवं तस्मान्निरूपितः ॥१९॥

सन्धिविच्छेद :

ज्ञान + अभावे = ज्ञानाभावे [दीर्घ.]	उभयोः + तु = उभयोस्तु [स.]
पूजा + उत्सव = पूजोत्सव [गुण]	क्रमेण + एव = क्रमेणैव [वृद्धि.]
पूजोत्सव + आदि = पूजोत्सवादि [दीर्घ.]	पूर्व + उक्ता = पूर्वोक्ता [गुण.]
मर्यादास्थः + तु = मर्यादास्थस्तु [स]	पूर्वोक्ता + एव = पूर्वोक्तैव [वृद्धि.]
नियामकः + इति = नियामक इति [वि.लो.]	ज्ञान + अधिकः = ज्ञानाधिकः [दीर्घ.]

ज्ञानाधिकः + भक्ति = ज्ञानाधिको भक्ति [उ गुण]
तस्मात् + निरूपितः = तस्मान्निरूपितः [प.स.]

समास विग्रह :

- न भावः इति अभावः [न.तत्पु.]
- ज्ञानस्य अभावः इति ज्ञानाभावः [ष.तत्पु.] तस्मिन् ज्ञानाभावे
- पुष्टिरेव मार्गः इति पुष्टिमार्गः [कर्म]
- पुष्टिमार्गः अस्य अस्ति इति पुष्टिमार्गी (इन् प्रत्यय)
- पूजा च उत्सवाश्च इति पूजोत्सवाः [द्वन्द्व.]
- पूजोत्सवाः आदिः येषां ते पूजोत्सवादयः [बहु.] तेषु पूजोत्सवादिषु
- मर्यादायां तिष्ठति इति मर्यादास्थः [उप.स.]
- तस्मिन् परः इति तत्परः [स.तत्पु.]
- श्रीभागवते तत्परः इति श्रीभागवततत्परः [स.तत्पु.]
- पूर्वं यत् उक्तं तत् पूर्वोक्तम् [कर्म] सा पूर्वोक्ता
- ज्ञानात् अधिकः इति ज्ञानाधिकः [पं.तत्पु.]
- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म]

शब्दपरिचय :

ज्ञानाभावे [ना.]	तु [नि.]	इति [नि.]	फलिष्यति [आ.]
पुष्टिमार्गी [ना.]	गङ्गायाम् [ना.]	स्थितिः [ना.]	ज्ञानाधिकः [ना.]
तिष्ठेत् [आ.]	श्रीभागवततत्परः [ना.]	उभयोः [ना.]	भक्तिमार्गः [ना.]
पूजा-उत् [उ.] -	अनु [उ.] ग्रहः [ना.]	क्रमेण [ना.]	एवम् [नि.]
सवादिषु [ना.]	पुष्टिमार्गे [ना.]	एव [नि.]	तस्मात् [ना.]
मर्यादास्थः [ना.]	नि [उ.] यामकः [ना.]	पूर्वोक्ता [ना.]	नि [उ.] रूपितः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

ज्ञानाभावे [स.]	पुष्टिमार्गी [तद्धि]	पूजोत्सवादिषु [स.]	मर्यादास्थः [स.]

श्रीभागवततत्परः [स.]	नियामकः [कृद्]	ज्ञानाधिकः [स.]
अनुग्रहः [स.]	स्थितिः [कृद्]	भक्तिमार्गः [स.]
पुष्टिमार्गे [स.]	पूर्वोक्ता [स.]	निरूपितः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

ज्ञानाभावे - अ.अ.पुं.स.ए.	अनुग्रहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
पुष्टिमार्गी - ह.न.पुं.प्र.ए.	पुष्टिमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.
पूजोत्सवादिषु - अ.इ.पुं.स.ब.	नियामकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
मर्यादास्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	स्थितिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
गङ्गायाम् - अ.आ.स्त्री.स.ए.	उभयोः - अ.अ.पुं.स.द्वि.
श्रीभागवततत्परः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	क्रमेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.

पूर्वोक्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए. (ज्ञानाधिकः, भक्तिमार्गः,निरूपितः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

तिष्ठेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. फलिष्यति - भ्वा.लृट्.प्र.ए.

अन्वय : पुष्टिमार्गी ज्ञानाभावे श्रीभागवततत्परः (सन्) पूजोत्सवादिषु तिष्ठेत्, मर्यादास्थस्तु श्रीभागवततत्परः (सन्) गङ्गायां तिष्ठेत्, पुष्टिमार्गे अनुग्रहो नियामकः इति स्थितिः (अस्ति).(१८). उभयोस्तु क्रमेणैव पूर्वोक्ता एव फलिष्यति (यतः) एवं (पुरुषोत्तमप्रापकतया) भक्तिमार्गः ज्ञानाधिकः (अस्ति) तस्मात् (गङ्गादृष्टान्तेन) निरूपितः ॥१९॥

(भक्त्यभावेऽन्यथाभावमापन्नस्य भगवत्सेवा व्यर्था)

भक्त्यभावेतु तीरस्थो यथा दुष्टैः स्वकर्मभिः ।।
अन्यथाभावमापन्नः तस्मात् स्थानाच्च नश्यति [हीन.] ।।२०।।

सन्धिविच्छेद : भक्ति + अभावे = भक्त्यभावे [गण]

तीरस्थः + यथा = तीरस्थो यथा [उ.गुण.] स्थानात् + च = स्थानाच्च [श्चु]

समास विग्रह :

- न भावः इति अभावः [न.तत्पु]
- भक्तेः अभावः इति भक्त्यभावः [प.तत्पु.] तस्मिन् भक्त्यभावे
- तीरे तिष्ठति इति तीरस्थः [उप.स.]
- स्वस्य कर्म इति स्वकर्म [प.तत्पु.] तैः स्वकर्मभिः
- अन्यथाभूतः भावः इति अन्यथाभावः [म.लो.] तम् अन्यथाभावम्

शब्दपरिचय :

भक्त्यभावे [ना.]	दुष्टैः [ना.]	तस्मात् [ना.]
तु [नि.]	स्वकर्मभिः [ना.]	स्थानात् [ना.]
तीरस्थः [ना.]	अन्यथाभावम् [ना.]	च [नि.]
यथा [नि.]	आ [उ.]पन्नः [ना.]	नश्यति [आ.]

वृत्तिपरिचय :

भक्त्यभावे [स.]	यथा [तद्धि.]	स्वकर्मभिः [स.]	आपन्नः [कृद.+स.]
तीरस्थः [स.]	दुष्टैः [कृद.]	अन्यथाभावम् [स.]	स्थानात् [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

भक्त्यभावे - अ.अ.पुं.स.ए.	अन्यथाभावम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
तीरस्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	आपन्नः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
दुष्टैः - अ.अ.नपुं.तृ.व.	तस्मात् - ह.द.नपुं.पं.ए.
स्वकर्मभिः - ह.न.नपुं.तृ.ब.	स्थानात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.

धातुरूपपरिचय :

नश्यति - दिवादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : भक्त्यभावे तु यथा तीरस्थः (जनः) दुष्टैः स्वकर्मभिः अन्यथाभावम् आपन्नः (सन्) तस्मात् स्थानात् च नश्यति. (तथा भक्तिहीनो अपि नश्यति इत्यर्थः).(२०)

(भगवत्सेवोपदेशोपसंहारः)

एवं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया गुप्तं निरूपितम्।।
एतद् बुद्ध्वा विमुच्येत पुरुषः सर्वसंशयात्।।२१।।

।।इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता सिद्धान्तमुक्तावली सम्पूर्णा।।

समास विग्रह :

- स्वस्य शास्त्रम् इति स्वशास्त्रम् [ष.तत्पु.]
- स्वशास्त्रस्य सर्वस्वम् इति स्वशास्त्रसर्वस्वम् [ष.तत्पु.] तत् स्वशास्त्रसर्वस्वम्
- सर्वः च असौ संशयश्च सर्वसंशयः [कर्म.] तस्मात् सर्वसंशयात्

शब्दपरिचय :

एवम् [नि.]	नि [उ.] रूपितम् [ना.]	वि [उ.] मुच्येत [आ.]
स्वशास्त्रसर्वस्वम् [ना.]	एतद् [ना.]	पुरुषः [ना.]
मया [ना.] गुप्तम् [ना.]	बुद्ध्वा [स.आ.]	सर्व-सं [उ.] शयात् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

स्वशास्त्रसर्वस्वम् [स]	निरूपितम् [कृद+स.]	विमुच्येत [सना.]
गुप्तम् [कृद.]	बुद्ध्वा [कृद.]	सर्वसंशयात् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

स्वशास्त्रसर्वस्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	गुप्तम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
मया - ह.द.पुं.तृ.ए.	निरूपितम् - अ.अ.पुं.प्र.ए.

एतद् - ह.द.नपुं.द्वि.ए.   पुरुषः - अ.अ.पुं.प्र.ए.   सर्वसंशयात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

धातुरूपपरिचय : विमुच्येत - तुदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.(यक्)

अन्वय : एवं गुप्तं स्वशास्त्रसर्वस्वं मया निरूपितम् एतत् बुद्ध्वा पुरुषः सर्वसंशयात् विमुच्येत ॥२१॥

॥ पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः ॥

(१)

(पुष्टि[क]प्रवाह[ख]मर्यादानां[ग] मार्ग[१]सर्ग[२]फल[३]-पार्थक्यनिरूपणम्)
पुष्टि[क/१]प्रवाह[ख/१]मर्यादा[ग/१] विशेषेण पृथक्-पृथक् ॥
जीव[२/घ]देह[२/र]क्रिया[२/ल]भेदैः प्रवाहेण[२] फलेन[३] च ॥१॥
वक्ष्यामि सर्वसन्देहा न भविष्यन्ति यच्छ्रुतेः ॥

सन्धिविच्छेद :

मर्यादाः + विशेषेण = मर्यादा विशेषेण [वि.लो.] सम् + देहाः = सन्देहाः [प.स.]
सर्वसन्देहाः + न = सर्वसन्देहा न [वि.लो.] यत् + श्रुतेः = यच्छ्रुतेः [श्चु.छो.]

समासविग्रह :

- पुष्टिश्च प्रवाहश्च मर्यादा च इति पुष्टिप्रवाहमर्यादाः [द्वन्द्व.]
- जीवश्च देहश्च क्रियाश्च इति जीवदेहक्रियाः [द्वन्द्व.]
- जीवदेहक्रियाणां भेदः इति जीवदेहक्रियाभेदः [प.तत्पु.] तैः जीवदेहक्रियाभेदैः
- सर्वे च ते सन्देहाः इति सर्वसन्देहाः [कर्म]
- यस्य श्रुतिः इति यच्छ्रुतिः [प.तत्पु.] तस्याः

शव्दपरिचय :

पुष्टि-प्र[उ.]वाह-मर्यादाः [ना.]	प्र[उ.]वाहेण [ना.]	सर्व-सम्[उ.]देहा [ना.]
वि[उ]शेषेण [ना.]	फलेन [ना]	न [नि.]
पृथक् [नि.]	च [नि.]	भविष्यन्ति [आ.]
जीवदेहक्रियाभेदैः [ना.]	वक्ष्यामि [आ]	यच्छ्रुतेः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

पुष्टिप्रवाहमर्यादाः [स.]　　जीवदेहक्रियाभेदैः [स.]　　सर्वसन्देहाः [स.]

विशेषेण [कृद+स.]　　प्रवाहेण [कृद+स.]　　यच्छ्रुतेः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

पुष्टि-प्रवाह-मर्यादाः - अ.आ.स्त्री.द्वि.ब.

विशेषेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.

जीव-देह-क्रिया-भेदैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

प्रवाहेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.

फलेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

सर्वसन्देहाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

यच्छ्रुतेः - अ.इ.स्त्री.पं.ए.

धातुरूपपरिचय :

वक्ष्यामि - अदादि.लृट्.उ.ए.　　भविष्यन्ति - भ्वा.लृट्.प्र.ब.

अन्वय :

पृथक् पृथक् विशेषेण जीवदेहक्रियाभेदैः प्रवाहेण फलेन च पुष्टिप्रवाहमर्यादाः (अहं) वक्ष्यामि.(१). यच्छ्रुतेः सर्वसन्देहाः न भविष्यन्ति

(मार्गत्रयभेदसाधकप्रमाणसङ्कलनम्)

भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ।।२।।
''द्वौ भूतसर्गावि''त्युक्तेः प्रवाहोऽपि व्यवस्थितः।।
वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादापि व्यवस्थिता।।३।।

सन्धिविच्छेद :

पुष्टिः + अस्ति = पुष्टिरस्ति [रेफ.]

अस्ति + इति = अस्तीति [दीर्घ.]

निस् + चयः = निश्चयः [श्चु]

सर्गौ + इति = सर्गाविति [आय.]

इति + उक्तेः = इत्युक्तेः [यण्.]

प्रवाहः + अपि = प्रवाहोऽपि [उ.पू.रू.]

वि + अवस्थितः = व्यवस्थितः [यण]

मर्यादा + अपि = मर्यादापि [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म] तस्य भक्तिमार्गस्य
- भूतानां सर्गः इति भूतसर्गः [ष.तत्पु] तौ

शव्दपरिचय :

भक्तिमार्गस्य [ना.]	द्वौ [ना.]	वि [उ.]अव [उ.]स्थितः [ना.]
कथनात् [ना.]	भूतसर्गौ [ना.]	वेदस्य [ना.]
पुष्टिः [ना.]	इति [नि.]	विद्यमानत्वात् [ना.]
अस्ति [आ.]	उक्तेः [ना.]	मर्यादा [ना.]
इति [नि.]	प्र [उ.]वाहः [ना.]	अपि [नि.]
निस् [उ.]चयः [ना.]	अपि [नि.]	वि [उ.]अव [उ.]स्थिता [ना.]

वृत्तिपरिचय :

भक्तिमार्गस्य [स.]	पुष्टिः [कृद.]	उक्तेः [कृद.]	विद्यमानत्वात् [तद्धि.]
कथनात् [कृद.]	भूतसर्गौ [स.]	व्यवस्थितः [कृद+स.]	व्यवस्थिता [कृद+स.]

शब्दरूपपरिचय :

भक्तिमार्गस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

कथनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	प्रवाहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
पुष्टिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	व्यवस्थितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
निश्चयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	वेदस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
द्वौ - अ.इ.पुं.प्र.द्वि.	विद्यमानत्वात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
भूतसर्गौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.	मर्यादा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
उक्तेः - अ.इ.स्त्री.पं.ए.	व्यवस्थिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

अन्वय : भक्तिमार्गस्य कथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः (भवति). 'द्वौ भूतसर्गौ' इति उक्तेः प्रवाहोपि व्यवस्थितः (अस्ति) (किञ्च)

वेदस्य विद्यमानत्वात् मर्यादापि व्यवस्थिता (अस्ति) ॥३॥

(पुष्टिमार्ग[क/ख] पार्थक्यस्य विशेषेण प्रमाणोपपत्तिः)
कश्चिदेव हि भक्तो हि ''यो मद्भक्त''इतीरणात् ॥
सर्वत्रोत्कर्षकथनात् पुष्टिरस्तीति निश्चयः ॥४॥
न सर्वोऽतः प्रवाहाद्धि भिन्नो वेदाच्च भेदतः ॥
''यदा यस्ये''ति वचनात् ''नाहं वेदैरि''तीरणात् ॥५॥
मार्गैकत्वेऽपि चेदन्त्यौ तनू भक्त्यागमौ मतौ ॥
न तद् युक्तं सूत्रतोहि भिन्नो युक्त्या हि वैदिकः ॥६॥
जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं नित्यताश्रुतेः ॥
यथा तद्वत् पुष्टिमार्गे द्वयोरपि निषेधतः ॥७॥
प्रमाणभेदाद् भिन्नोहि पुष्टिमार्गो निरूपितः ॥

सन्धिविच्छेद :

कः + चिद् = कश्चिद्[स.श्चु.]
कश्चित् + एव = कश्चिदेव[जश्त्व.]
भक्तः + हि = भक्तो हि[उ.गुण.]
यः + मद्भक्त = यो मद्भक्त[उ.गुण.]
भक्तः + इति = भक्त इति[वि.लो.]
इति + ईरणात् = इतीरणात्[दीर्घ.]
सर्वत्र + उत्कर्ष = सर्वत्रोत्कर्ष[गुण.]
पुष्टिः + अस्ति = पुष्टिरस्ति[रेफ.]
अस्ति + इति = अस्तीति[दीर्घ.]
निस् + चयः = निश्चयः[श्चु]
सर्वः + अतः = सर्वोऽतः[उ.पू.रू.]
प्रवाहात् + हि = प्रवाहाद्धि[जश्त्व.पू.स]
भिन्नः + वेदात् = भिन्नो वेदात्[उ.गुण.]

वेदात् + च = वेदाच्च[श्चु.]
यस्य + इति = यस्येति[गुण.]
न + अहम् = नाहम्[दीर्घ.]
वेदैः + इति = वेदैरिति[रेफ.]
इति + ईरणात् = इतीरणात्[दीर्घ.]
मार्ग + एकत्वे = मार्गैकत्वे[वृद्धि.]
एकत्वे + अपि = एकत्वेंऽपि[पू.रू.]
चेत् + अन्त्यौ = चेदन्त्यौ[जश्त्व.]
भक्ति + आगमौ =
भक्त्यागमौ[यण्.]
सूत्रतः + हि = सूत्रतोहि[उ.गुण.]
भिन्नः + युक्त्या =
भिन्नो युक्त्या[उ.गुण.]

द्वयोः + अपि = द्वयोरपि [रेफ] भिन्नः + हि = भिन्नहि [उ गुण]
भेदात् + भिन्न = भेदाद्भिन्न [जश्त्व] मार्गः + निरूपितः = मार्गो निरूपितः [उ गुण]

समासविग्रह :

- मम भक्तः इति मद्भक्तः [ष.तत्पु.]
- उत्कर्षस्य कथनम् इति उत्कर्षकथनम् [ष.तत्पु.] तस्मात् उत्कर्षकथनात्
- एकस्य भावः एकत्वं मार्गाणां एकत्वम् इति मार्गैकत्वम् [ष.तत्पु.] तत्र मार्गैकत्वे
- भक्तेः आगमः (अभिव्यक्तिः) याभ्यां तौ भक्त्यागमौ [बहु.]
- जीवाश्च देहाश्च कृतयश्च इति जीवदेहकृतयः [द्वन्द्व.] तासाम् जीवदेहकृतीनाम्
- नित्यतायाः श्रुतिः इति नित्यताश्रुतिः [ष.तत्पु.] तस्या नित्यताश्रुतेः
- पुष्टिरेव मार्गः पुष्टिमार्गः [कर्म] तत्र पुष्टिमार्गे
- प्रमाणानां भेदः इति प्रमाणभेदः [ष.तत्पु.] तस्मात्

शब्दपरिचय :

कश्चिद् [नि.]	पुष्टिः [ना.]	यदा [नि.] यस्य [ना.]	मतौ [ना.]
एव [नि.] हि [नि.]	अस्ति [आ.]	वचनात् [ना.]	तद् [ना.]
भक्तः [ना.]	निस् [उ.]चयः [ना.]	अहम् [ना.]	युक्तम् [ना.]
हि [नि.]	न [नि.]	वेदैः [ना.]	सूत्रतः [नि.]
यः [ना.]	सर्वः [ना.]	मार्गैकत्वे [ना.]	युक्त्या [ना.]
मद्भक्तः [ना.]	अतः [नि.]	अपि [नि.]	वैदिकः [ना.]
इति [नि.]	प्र [उ.]वाहात् [ना.]	चेद् [नि.]	जीवदेहकृतीनाम् [ना.]
ईरणात् [ना.]	भिन्नः [ना]	अन्त्यौ [ना.]	भिन्नत्वम् [ना.]
सर्वत्र [नि.]	वेदात् [ना.]	तनू [ना.]	नित्यताश्रुतेः [ना.]
उत् [उ.]कर्ष-	च [नि.]	भक्ति-आ [उ.]	यथा [नि.]
कथनात् [ना.]	भेदतः [नि.]	गमौ [ना.]	तद्वत् [नि.]

पुष्टिमार्गे [ना.]	अपि [नि.]	प्र [उ.] माणभेदाद् [ना.]	पुष्टिमार्गः [ना.]
द्वयोः [ना.]	नि [उ.] षेधतः [नि.]	भिन्नः [ना.]	नि [उ.] रूपितः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

भक्तः [कृद्.]	प्रवाहात् [स.]	जीवदेहकृतीनां [स.]
मद्भक्तः [स.]	भिन्नः [कृद्.]	नित्यताश्रुतेः [स.]
ईरणात् [कृद्]	वचनात् [कृद्.]	यथा [तद्धि.] तद्वत् [तद्धि.]
सर्वत्र [तद्धि.]	मार्गैकत्वे [स.]	पुष्टिमार्गे [स.]
उत्कर्षकथनात् [स.]	अन्त्यौ [तद्धि]	निषेधतः [तद्धि.]
पुष्टिः [कृद्.]	भक्त्यागमौ [स.]	प्रमाणभेदात् [स.]
निश्चयः [स.]	(मतौ, युक्तम्, युक्त्या) [कृद्.]	पुष्टिमार्गः [स.]
(अतः, भेदतः, यदा) [तद्धि.]	(सूत्रतः, वैदिकः, भिन्नत्वम्) [तद्धि.]	निरूपितः [कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

भक्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	अहम् - ह.द.प्र.ए.
यः - ह.द.पुं.प्र.ए.	वेदैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
मद्भक्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	मार्गैकत्वे - अ.अ.नपुं.स.ए.
ईरणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	तनू - अ.उ.स्त्री.प्र.द्वि.
उत्कर्षकथनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	(अन्त्यौ, भक्त्यागमौ,
पुष्टिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	मतौ) - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.
निश्चयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
सर्वः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	युक्तम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
प्रवाहात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	युक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
भिन्नः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	वैदिकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
वेदात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	जीवदेहकृतीनाम् - अ.इ.स्त्री.ष.ब.
यस्य - ह.द.पुं.ष.ए.	भिन्नत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वचनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	नित्यताश्रुतेः - अ.इ.स्त्री.पं.ए.

पुष्टिमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.

द्वयोः - अ.इ.पुं.ष.द्वि. पुष्टिमार्गः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

प्रमाणभेदाद् - अ.अ.पुं.पं.ए. निरूपितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : अस्ति - अदादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : "यदा यस्य " इति वचनात् "नाहं वेदैः " इति ईरणात् प्रवाहात् हि भिन्नः वेदात् च भेदतः कश्चित् एव हि भक्तः (भवति) न सर्वः, "यो मद् भक्त" इति ईरणात् सर्वत्र उत्कर्षकथनात् पुष्टिः अस्ति इति निश्चयः (भवति) (४-५)

मार्गैकत्वे अपि अन्त्यौ भक्त्यागमौ तनू मतौ (इति) चेत् तत् न युक्तं. सूत्रतः युक्त्या (च) वैदिकः(मार्गः) हि भिन्न (अस्ति) (६).

यथा नित्यताश्रुतेः जीवदेहकृतीनां च भिन्नत्वं तद्वत् पुष्टिमार्गे द्वयोः अपि निषेधतः (भिन्नत्वम् अतः) प्रमाणभेदात् पुष्टिमार्गः भिन्नः निरूपितः. (वा यथा जीवदेहकृतीनां च नित्यताश्रुतेः पुष्टिमार्गे भिन्नत्वं तद्वत् द्वयोरपि (देहिज्ञानिनोः भगवत्प्राप्तेः) निषेधतः (पुष्टिमार्गभिन्नत्वम् अतः) प्रमाणभेदात् पुष्टिमार्गः भिन्नः निरूपितः)

(सर्गभेदकारकहेतूनां सङ्कलनम्)

सर्गभेदं[२] प्रवक्ष्यामि स्वरूपा[य]ऽङ्ग[र]क्रिया[ल]युतम्॥८॥
इच्छामात्रेण[ख/२] मनसा प्रवाहं सृष्टवान् हरिः॥
वचसा[ग/२] वेदमार्गंहि पुष्टिं कायेन[क/२] निश्चयः॥९॥

सन्धिविच्छेद :

स्वरूप + अङ्ग = स्वरूपाङ्ग[दीर्घ] निस् + चयः = निश्चयः[श्चु.]

समासविग्रह : सर्गस्य भेद इति सर्गभेदः[ष.तत्पु.] तं सर्गभेदम्

- स्वस्य रूपम् इति स्वरूपम् [ष.तत्पु.]
- स्वरूपं च अङ्गश्च क्रियाश्च इति स्वरूपाङ्गक्रियाः [द्वन्द्व.]
  ताभिर्युतः इति स्वरूपाङ्गक्रियायुतः [तृ.तत्पु.] तं स्वरूपाङ्गक्रियायुतम्
- वेद एव मार्गः इति वेदमार्ग. [कर्म.] तं वेदमार्गं

शब्दपरिचय :

सर्गभेदम् [ना.]	मनसा [ना.]	वेदमार्गम् [ना.]
प्र[उ.]वक्ष्यामि [आ.]	प्र[उ.]वाहम् [ना.]	हि [नि.] पुष्टिम् [ना.]
स्वरूपाऽङ्गक्रियायुतम् [ना.]	सृष्टवान् [ना.]	कायेन [ना.]
इच्छामात्रेण [ना.]	हरिः [ना.] वचसा [ना.]	निस्[उ.]चयः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्गभेदम् [स.]	इच्छामात्रेण [तद्धि.]	सृष्टवान् [कृद.]
स्वरूपाङ्गक्रियायुतम् [स.]	प्रवाहम् [कृद+स.]	वेदमार्गम् [स.] पुष्टिम् [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

सर्गभेदम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
स्वरूपाऽङ्गक्रियायुतम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	वचसा - ह.स.नपुं.तृ.ए.
इच्छामात्रेण - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	वेदमार्गम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
मनसा - ह.स.नपुं.तृ.ए.	पुष्टिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.
प्रवाहम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	कायेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
सृष्टवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.	निश्चयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

प्रवक्ष्यामि - अदादि.लृट्.उ.ए.

अन्वय : (अथ) स्वरूपाङ्गक्रियायुतम् सर्गभेदं प्रवक्ष्यामि. हरिः

इच्छामात्रेण मनसा प्रवाहं, वचसा हि वेदमार्गं कायेन (च) पुष्टिं सृष्टवान् (इति) निश्चयः (अस्ति)।।९।।

(मार्गत्रये फलभेदकारकहेतूनां सङ्कलनम्)

मूलेच्छातः [ख/३] फलं लोके, वेदोक्तं [ग/३] वैदिकेऽपि च।।
कायेन [क/३] तु फलं पुष्टौ भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा।।१०।।

सन्धिविच्छेद :

मूल + इच्छातः = मूलेच्छातः [गुण]
भिन्न + इच्छातः = भिन्नेच्छातः [गुण]
वेद + उक्तम् = वेदोक्तम् [गुण]
इच्छातः + अपि = इच्छातोऽपि [उ.पू.रू.]
वैदिके + अपि = वैदिकेऽपि [पू.रू.]
न + एकधा = नैकधा [वृद्धि.]

समास विग्रह :

- मूला च या इच्छा सा मूलेच्छा [कर्म] तस्याः मूलेच्छातः [पं.तसि.]
- वेदे उक्तम् इति वेदोक्तम् [स.तत्पु.]
- भिन्ना या इच्छा सा भिन्नेच्छा [कर्म] तस्याः भिन्नेच्छातः [पं.तसि.]

शव्दपरिचय :

मूलेच्छातः [नि.]	वैदिके [ना.]	तु [नि.]
फलम् [ना.]	अपि [नि.]	पुष्टौ [ना.]
लोके [ना.]	च [नि.]	भिन्नेच्छातः [नि.]
वेदोक्तम् [ना.]	कायेन [ना.]	नैकधा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

मूलेच्छातः [तद्धि.]	वैदिके [तद्धि.]	भिन्नेच्छातः [तद्धि.]
वेदोक्तम् [स.]	पुष्टौ [कृद्]	नैकधा [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

फलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
लोके - अ.अ.पुं.स.ए.
वेदोक्तम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वैदिके - अ.अ.पुं.स.ए.
कायेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
पुष्टौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.

अन्वय : लोके मूलेच्छातः फलं (भवति) च वैदिके अपि वेदोक्तं फलं (भवति) पुष्टौ तु कायेन फलं (भवति). (एवं) भिन्नेच्छातोऽपि नैकधा (सन्ति) ॥१०॥

(जीवानां त्रिविधः सर्गः [कखग/२])

''तानहं द्विषतो''वाक्याद् भिन्ना जीवाः प्रवाहिणः ॥
अत एवेतरौ भिन्नौ सान्तौ मोक्षप्रवेशतः ॥११॥

सन्धिविच्छेद :

द्विषतः + वाक्याद् = द्विषतो वाक्याद् [उ.गुण.]
वाक्यात् + भिन्नाः = वाक्याद्भिन्नाः [जश्त्व.]
भिन्नाः + जीवाः = भिन्ना जीवाः [वि.लो.]
अतः + एव = अत एव [वि.लो.]
एव + इतरौ = एवेतरौ [गुण]
स + अन्तौ = सान्तौ [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- अन्तेन सह इति सान्तः [बहु.] तौ सान्तौ
- मोक्षे प्रवेशः इति मोक्षप्रवेशः [स.तत्पु.] तस्मात् मोक्षप्रवेशतः [पं.तसि.]

शब्दपरिचय :

तान् [ना.]
अहम् [ना.]
द्विषतः [ना.]
वाक्याद् [ना]
भिन्नाः [ना.]
जीवाः [ना.]
प्र [उ] वाहिणः [ना.]
अतः [नि]
एव [नि]
इतरौ [ना.] भिन्नौ [ना]
सान्तौ [ना]
मोक्ष-प्र [उ] वेशतः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

द्विषतः [कृद्.]	प्रवाहिणः [तद्धि.]	भिन्नौ [कृद्.]	मोक्षप्रवेशतः [तद्धि.]
भिन्नाः [कृद्]	अतः [तद्धि.]	सान्तौ [स.]	अतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

तान् - ह.द.पुं.द्वि.ब.	जीवाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
अहम् - ह.द्.प्र.ए.	प्रवाहिणः - ह.न.पुं.प्र.ब.
द्विषतः - ह.त.पुं.द्वि.ब.	इतरौ - ह.द.पुं.प्र.द्वि.
वाक्याद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	भिन्नौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.
भिन्नाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	सान्तौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.

अन्वय :

"तान् अहं द्विषतः" (इति) वाक्यात् प्रवाहिणो जीवाः भिन्नाः (सन्ति). अत एव इतरौ (मर्यादापुष्टिजीवौ) मोक्षप्रवेशतः सान्तौ भिन्नौ (च) (स्तः)॥११॥

(तत्र पुष्टिमार्गसर्गे विशेषेण जीव [२/य]देह [२/र]क्रिया [२/ल]णाम् उपभेदाः)

तस्माज्जीवाः पुष्टिमार्गे भिन्नाएव न संशयः॥
भगवद्-रूप-सेवार्थं तत्सृष्टिर्नान्यथा भवेत्[क/२/य]॥१२॥
स्वरूपेणावतारेण लिङ्गेन च गुणेन च॥
तारतम्यं न स्वरूपे देहे वा तत्क्रियासु वा॥१३॥
तथापि यावता कार्यं तावत् तस्य करोति हि[क/२/र]॥
तेहि द्विधा शुद्ध-मिश्र-भेदान् मिश्रास्त्रिधा पुनः॥१४॥
प्रवाहादि-विभेदेन भगवत्कार्यसिद्धये॥
पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः प्रवाहेण क्रियारताः॥१५॥
मर्यादया गुणज्ञास्ते शुद्धाः प्रेम्णातिदुर्लभाः[क/२/ल]॥
एवं सर्गस्तु तेषां हि... ... ...॥

सन्धिविच्छेद :

तस्मात् + जीवाः = तस्माज्जीवाः [श्चु.जश्त्व]

भिन्नाः + एव = भिन्ना एव [वि.लो]

सेवा + अर्थं = सेवार्थम् [दीर्घ.]

सृष्टिः + न = सृष्टिर्न [रेफ.]

न + अन्यथा = नान्यथा [दीर्घ.]

रूपेण + अवतारेण = रूपेणावतारेण [दीर्घ.]

तथा + अपि = तथापि [दीर्घ.]

भेदात् + मिश्राः = भेदान्मिश्राः [अनु.]

मिश्राः + त्रिधा = मिश्रास्त्रिधा [स.]

प्रवाह + आदि = प्रवाहादि [दीर्घ.]

गुणज्ञाः + ते = गुणज्ञास्ते [स.]

प्रेम्णा + अति = प्रेम्णाति [दीर्घ.]

सर्गः + तु = सर्गस्तु [स.]

समास विग्रह :

- पुष्टिरेव मार्गः इति पुष्टिमार्गः [ष.तत्पु.] तत्र पुष्टिमार्गे
- भगवतः रूपम् इति भगवद्रूपम् [ष.तत्पु.]
  तस्य सेवा इति भगवद्रूपसेवा [ष.तत्पु.]
  तस्याः अर्थं इति भगवद्रूपसेवार्थम् [ष.तत्पु.]
- तेषां सृष्टिः इति तत्सृष्टिः [ष.तत्पु.]
- स्वस्य रूपम् इति स्वरूपम् [ष.तत्पु.] तेन स्वरूपेण
- तेषां क्रियाः इति तत्क्रियाः [ष.तत्पु.] तासु
- शुद्धाश्च मिश्राश्च इति शुद्धमिश्राः [द्वन्द्व.]
  तेषां भेदः इति शुद्धमिश्रभेदः [ष.तत्पु.] तस्मात् शुद्धमिश्रभेदात्
- प्रवाहः आदि येषां ते प्रवाहादयः [बहु.]
  तेषां विभेदः इति प्रवाहादिविभेदः [ष.तत्पु.]
  तेन प्रवाहादिविभेदेन
- भगवतः कार्यम् इति भगवत्कार्यम् [ष.तत्पु.]
- भगवत्कार्यस्य सिद्धये इति भगवत्कार्यसिद्धये [ष.तत्पु.]
- सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः [उप.स.] ते सर्वज्ञाः
- क्रियासु रताः इति क्रियारताः [स.तत्पु.]
- गुणं जानाति इति गुणज्ञः [उप.स.] ते गुणज्ञाः

शब्दपरिचय :

तस्मात् [ना.]	तारतम्यम् [ना.]	त्रिधा [नि.]
जीवाः [ना.]	न [नि.]	पुनः [नि.]
पुष्टिमार्गे [ना.]	स्वरूपे [ना.]	प्र [उ.] वाहादि-
भिन्नाः [ना.]	देहे [ना.]	वि [उ.] भेदेन [ना.]
एव [नि.]	वा [नि.]	भगवत्कार्यसिद्धये [ना.]
न [नि.]	तत्क्रियासु [ना.]	पुष्ट्या [ना.]
सं [उ.] शयः [ना.]	तथापि [नि.]	वि [उ.] मिश्राः [ना.]
भगवद्-रूप-सेवार्थम् [ना.]	यावता [ना.]	सर्वज्ञाः [ना.]
तत् [ना.]	कार्यम् [ना.]	प्र [उ.] वाहेण [ना.]
सृष्टिः [ना.]	तावत् [ना.]	क्रियारताः [ना.]
अन्यथा [नि.]	तस्य [ना.]	मर्यादया [ना.]
भवेत् [आ.]	करोति [आ.]	गुणज्ञाः [ना.]
स्वरूपेण [ना.]	हि [नि.]	शुद्धाः [ना.] प्रेम्णा [ना.]
अव [उ.] तारेण [ना.]	ते [ना.]	अति [उ.] दुर् [उ.] लभाः [ना.]
लिङ्गेन [ना.]	द्विधा [नि.]	एवम् [नि.]
च [नि.]	शुद्ध-मिश्र-भेदात् [ना.]	सर्गः [ना.] तु [नि.]
गुणेन [ना.]	मिश्राः [ना.]	तेषाम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

पुष्टिमार्गे [स.]	कार्यम् [कृद.]	प्रवाहेण [कृद+स.]
भिन्नाः [कृद.]	तावत् [तद्धि.]	क्रियारताः [स.]
तत्क्रियासु [स.]	त्रिधा [तद्धि.] द्विधा [तद्धि.]	गुणज्ञाः [स.] शुद्धाः [कृद.]
यावता [तद्धि.]	पुष्ट्या [कृद.]	अतिदुर्लभाः [स.]

(शुद्ध-मिश्र-भेदात्, प्रवाहादिविभेदेन, भगवत्कार्यसिद्धये, विमिश्राः, सर्वज्ञाः, संशयः, भगवद्-रूप-सेवार्थं, तत्सृष्टि, स्वरूपेण, अवतारेण, स्वरूपे) [स.] (अन्यथा, तारतम्यम्, तथा) [तद्धि.]

शव्दरूपपरिचय :

तस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.	ते - ह.द.पुं.प्र.ब.
जीवाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	शुद्धमिश्रभेदात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
पुष्टिमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.	मिश्राः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
भिन्नाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	प्रवाहादि-विभेदेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
संशयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भगवत्कार्यसिद्धये - अ.इ.स्त्री.च.ए.
भगवद्रूपसेवार्थम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	पुष्ट्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
तत्सृष्टिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	विमिश्राः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
(स्वरूपेण, अवतारेण, लिङ्गेन, गुणेन) - अ.अ.पुं.तृ.ए.	सर्वज्ञाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
	प्रवाहेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
तारतम्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	क्रियारताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
स्वरूपे - अ.अ.नपुं.स.ए.	मर्यादया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
देहे - अ.अ.पुं.स.ए.	गुणज्ञाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
तत्क्रियासु - अ.आ.स्त्री.स.ब.	शुद्धाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
यावता - ह.त.नपुं.तृ.ए.	प्रेम्णा - ह.न.नपुं.तृ.ए.
कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	अतिदुर्लभाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
तावत् - ह.त.नपुं.प्र.ए.	सर्गः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.	तेषाम् - ह.द.पुं.ष.ब.

धातुरूपपरिचय :

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. करोति - तनादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : तस्मात् पुष्टिमार्गे जीवाः भिन्नाएव (सन्ति) (अत्र) संशयः न (अस्ति). तत्सृष्टिः भगवद्रूपसेवार्थं (जाता) अन्यथा न भवेत् (१२). स्वरूपेण अवतारेण च लिङ्गेन गुणेन च स्वरूपे वा देहे वा तत्क्रियासु तारतम्यं न (अस्ति) (१३). तथापि यावता (तारतम्येन) कार्यं तावत् (तारतम्यं) तस्य करोति हि. ते हि शुद्धमिश्रभेदात् द्विधा, पुनः

भगवत्कार्यसिद्धये मिश्राः प्रवाहादिविभेदेन त्रिधा (सन्ति), पुष्ट्या विमिश्राः सर्वज्ञाः (भवन्ति), प्रवाहेण विमिश्रा क्रियारताः (भवन्ति), मर्यादया (विमिश्राः) गुणज्ञाः (भवन्ति) (किञ्च) प्रेम्णा शुद्धाः ते अतिदुर्लभाः (भवन्ति). एवं तेषां सर्गस्तु (निरूपितः).

(पुष्टिमार्गे[क/३] विशेषेण फलनिरूपणम्)

... ...फलं त्वत्र निरूप्यते ॥१६॥
भगवानेव हि फलं स यथाविर्भवेद् भुवि ॥
गुणस्वरूपभेदेन तथा तेषां फलं भवेत् ॥१७॥
आसक्तौ भगवानेव शापं दापयति क्वचित् ॥
अहङ्कारेऽथवा लोके तन्मार्ग-स्थापनायहि ॥१८॥
न ते पाषण्डतां यान्ति नच रोगाद्युपद्रवाः ॥
महानुभावाः प्रायेण शास्त्रं शुद्धत्व-हेतवे ॥१९॥
भगवत्-तारतम्येन तारतम्यं भजन्ति हि ॥
लौकिकत्वं वैदिकत्वं कापटचात् तेषु नान्यथा ॥२०॥
वैष्णवत्वंहि सहजं ततोऽन्यत्र विपर्ययः ॥

सन्धिविच्छेद :

तु + अत्र = त्वत्र [यण्.]	रोग + आदि = रोगादि [दीर्घ.]
सः + यथा = स यथा [वि.लो.]	रोगादि + उपद्रवाः = रोगाद्युपद्रवाः [यण्.]
यथा + आविर्भवेत् = यथाविर्भवेत् [दीर्घ.]	महा + अनुभावाः = महानुभावाः [दीर्घ.]
भवेत् + भुवि = भवेद् भुवि [जश्त्व.]	न + अन्यथा = नान्यथा [दीर्घ.]
अहङ्कारे + अथवा = अहङ्कारेऽथवा [पू.रू.]	ततः +अन्यत्र = ततोऽन्यत्र [उ.पूर्व.]
तत् + मार्ग = तन्मार्ग [अनुना.]	विपरि + अयः = विपर्ययः [गण्.]

समास विग्रह :

- गुणश्च स्वरूपं च इति गुणस्वरूपे [द्वन्द्व.]

तयोः भेदः इति गुणस्वरूपभेदः [ष.तत्पु.] तेन गुणस्वरूपभेदेन

- तस्य मार्गः इति तन्मार्गः [ष.तत्पु.]
- तन्मार्गस्य स्थापनम् इति तन्मार्गस्थापनम् [ष.तत्पु.] तस्मै तन्मार्गस्थापनाय
- रोगः आदि येषां ते रोगादयः [बहु.]
- रोगादयः एव उपद्रवाः इति रोगाद्युपद्रवाः [कर्म]
- महान् अनुभावो येषां ते महानुभावाः [बहु.]
- शुद्धत्वस्य हेतुः इति शुद्धत्वहेतुः [ष.तत्पु.] तस्मै शुद्धत्व-हेतवे
- भगवतः तारतम्यम् इति भगवत्-तारतम्यम् [ष.तत्पु.] तेन भगवत्-तारतम्येन
- सह जायते इति सहजः [उप.स.] तं सहजम्

शब्दपरिचय :

फलम् [ना.]	भगवान् [ना.]	प्रायेण [ना.]
तु [नि.] अत्र [नि.]	शापम् [ना.]	शास्त्रम् [ना.]
नि [उ.] रूप्यते [आ.]	दापयति [आ.]	शुद्धत्व-हेतवे [ना.]
भगवान् [ना.]	क्वचित् [नि.]	भगवत्-तारतम्येन [ना.]
एव [नि.] हि [नि.]	अहङ्कारे [ना.]	तारतम्यम् [ना.]
फलम् [ना.]	अथवा [नि.]	भजन्ति [आ.]
सः [ना.]	लोके [ना.]	लौकिकत्वम् [ना.]
यथा [नि.]	तन्मार्ग-स्थापनाय [ना.]	वैदिकत्वम् [ना.]
आविस् [उ.] भवेद् [आ.]	हि [नि.]	कापटचात् [ना.]
भुवि [ना.]	न [नि.]	तेषु [ना.] न [नि.]
गुणस्वरूपभेदेन [ना.]	ते [ना.]	अन्यथा [नि.]
तथा [नि.]	पाषण्डताम् [ना.]	वैष्णवत्वम् [ना.]
तेषाम् [ना.]	यान्ति [आ.]	सहजम् [ना.]
फलम् [ना.]	च [नि.]	ततः [नि.]
भवेत् [आ.]	रोगादि-उप [उ.] द्रवाः [ना.]	अन्यत्र [नि.]
आ [उ.] सक्तौ [ना.]	महा-अनु [उ.] भावाः [ना.]	वि [उ.] परि [उ.] -अयः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अत्र [तद्धि.]	आसक्तौ [स.]	शुद्धत्वहेतवे [स.]
निरूप्यते [सना.]	दापयति [सना.]	भगवत्-तारतम्येन [स.]
भगवान् [तद्धि.]	तन्मार्गस्थापनाय [स.]	सहजम् [स.]
यथा [तद्धि.]	पाषण्डताम् [तद्धि.]	ततः [तद्धि.]
गुणस्वरूपभेदेन [स.]	रोगाद्युपद्रवाः [स.]	अन्यत्र [तद्धि.]
तथा [तद्धि.]	महानुभावाः [स.]	विपर्ययः [स.]

(तारतम्यम्, लौकिकत्वम्, वैदिकत्वम्, कापट्यात्, वैष्णवत्वम्) [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

(फलम्, शास्त्रम्, तारतम्यम्, लौकिकत्वम्, वैदिकत्वम्, वैष्णवत्वम्, सहजम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

भगवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.	ते - ह.द.पुं.प्र.ब.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.	पाषण्डताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
भुवि - अ.ऊ.स्त्री.स.ए.	रोगाद्युपद्रवाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
गुणस्वरूपभेदेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	महानुभावाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
तेषाम् - ह.द.पुं.ष.ब.	प्रायेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
आसक्तौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.	शुद्धत्वहेतवे - अ.उ.पुं.च.ए.
शापम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	भगवत्-तारतम्येन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.
अहङ्कारे - अ.अ.पुं.स.ए.	कापट्यात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
लोके - अ.अ.पुं.स.ए.	तेषु - ह.द.पुं.स.ब.
तन्मार्गस्थापनाय - अ.अ.नपुं.च.ए.	विपर्ययः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

निरूप्यते - चुरा.लट्.प्र.ए.(यक्)	भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
आविर्भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	दापयति - जुहो.लट्.प्र.ए.(णिच्)
यान्ति - अदा.लट्.प्र.ब.	भजन्ति - भ्वा.लट्.प्र.ब.

अन्वय : अत्र (पुष्टिमार्गे) तु फलं निरूप्यते भगवानेव हि फलम्.सः भुवि गुणस्वरूपभेदेन यथा आविर्भवेत् तथा तेषां फलं भवेत् (१७).(पुष्टिजीवानां) (अन्यत्र) आसक्तौ, अहङ्कारे अथवा लोके तन्मार्गस्थापनाय क्वचित् भगवानेव शापं दापयति (१८). ते पाषण्डतां न यान्ति (तेषां) रोगाद्युपद्रवाः च न (भवन्ति), प्रायेण (ते) महानुभावाः (एव भवन्ति), शास्त्रं तेषां शुद्धत्वहेतवे (भवति). भगवत्तारतम्येन हि (ते) तारतम्यं भजन्ति. तेषु वैदिकत्वं लौकिकत्वं (च) कापट्यात् (एव) अन्यथा न, (तेषु) वैष्णवत्वं हि सहजं, ततः अन्यत्र विपर्ययः अस्ति ॥

(पुष्टि-प्रवाह-मर्यादा-मार्गेषु कर्मणां गहनया गत्या परिभ्रमन्तः एकस्मिन् मार्गे समागताः अतन्मार्गीयत्वेऽपि तन्मार्गीयत्वाभासं प्रकटयन्तः चर्षण्यो जीवाः)

सम्बन्धिनस्तु ये जीवाः प्रवाहस्थास्तथाऽपरे ॥२१॥
'चर्षणी' शब्दवाच्यास्ते ते सर्वे सर्ववर्त्मसु ॥
क्षणात् सर्वत्वमायान्ति रूचिस्तेषां न कुत्रचित् ॥२२॥
तेषां क्रियानुसारेण सर्वत्र सकलं फलम् ॥

सन्धिविच्छेद :

सम्बन्धिनः + तु = सम्बन्धिनस्तु स.	वाच्याः + ते = वाच्यास्ते स.
प्रवाहस्थाः + तथा = प्रवाहस्थास्तथा स.	रूचिः + तेषाम् = रूचिस्तेषाम् स.
तथा + अपरे = तथाऽपरे दीर्घ.	क्रिया + अनु = क्रियानु दीर्घ.

समासविग्रह :

- प्रवाहे तिष्ठति इति प्रवाहस्थः उप.स. ते
- सर्वाणि च तानि वर्त्मानि इति सर्ववर्त्मानि कर्म तेषु सर्ववर्त्मसु
- 'चर्पणी' यः शब्दः इति चर्षणीशब्दः कर्म

  चर्षणीशब्देन वाच्यः इति चर्षणीशब्दवाच्यः तृ.तत्पु ते

- क्रियायाः अनुसारः इति क्रियानुसारः [प.तत्पु] तेन
- कलया सहितम् इति सकलम् [बहु.] तत्

शब्दपरिचय :

सम्[उ] बन्धिनः [ना.]	ते [ना.] सर्वे [ना.]	तेषाम् [ना.] न [नि.]
तु [नि.] ये [ना.]	सर्ववर्त्मसु [ना.]	कुत्रचित् [नि.]
जीवाः [ना.]	क्षणात् [ना.]	क्रिया-अनु[उ.]सारेण [ना.]
प्र[उ.]वाहस्थाः [ना.]	सर्वत्वम् [ना.]	सर्वत्र [नि.]
तथा [नि.] अपरे [ना.]	आ[उ.]यान्ति [आ.]	सकलम् [ना.]
चर्षणीशब्दवाच्याः [ना.]	रूचिः [ना.]	फलम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सम्बन्धिनः [तद्धि.]	'चर्षणी'शब्दवाच्याः [स.]	क्रियानुसारेण [स.]
प्रवाहस्थाः [स.]	सर्ववर्त्मसु [स.]	सर्वत्र [तद्धि.]
तथा [तद्धि.] अपरे [स.]	सर्वत्वम् [तद्धि.]	सकलम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

सम्बन्धिनः - ह.न.पुं.प्र.ब.	चर्षणीशब्दवाच्याः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
ये - ह.द.पुं.प्र.ब.	ते - ह.द्.पुं.प्र.ब.
जीवाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	सर्वे - अ.अ.पुं.प्र.ब.
प्रवाहस्थाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	सर्ववर्त्मसु - ह.न्.नपुं.स.ब.
अपरे - अ.अ.पुं.प्र.ब.	क्षणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
सर्वत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	क्रियानुसारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
रूचिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	सकलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तेषाम् - ह.द्.पुं.ष.ब.	फलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : आयान्ति - अदा.लट्.प्र.ब.

अन्वय : ये सम्बन्धिनः जीवाः तथा (ये) प्रवाहस्थाः अपरा (जीवाः) ते तु सर्वे चर्षणीशब्दवाच्याः ते सर्वे सर्ववर्त्मसु क्षणात् सर्वत्वं (=तत्तन्मार्गानुसारित्वं) आयान्ति (=प्राप्नुवन्ति) तेषां रूचिः कुत्रचित् (अपि) न (भवति). सर्वत्र तेषां क्रियानुसारेण सकलं फलं (भवति)

(प्रवाहमार्गे जीवा[ख-२-य]नां भेदः)

प्रवाहस्थान्[ख]प्रवक्ष्यामि स्वरूपा[ख-२-य]ङ्ग[ख-२-र]क्रिया[ख-२-ल]युतान्॥२३॥
जीवास्[ख-२-य]ते ह्यासुराः सर्वे "प्रवृतिञ्चे"ति वर्णिताः॥
तेच द्विधा प्रकीर्त्यन्ते ह्यज्ञ-दुर्ज्ञ-विभेदतः॥२४॥
दुर्ज्ञास्ते भगवत्प्रोक्ता ह्यज्ञास्ताननु ये पुनः॥
प्रवाहेऽपि समागत्य पुष्टिस्थस्तैर्न युज्यते॥२५॥
सोऽपि तैस्तत्कुले जातः कर्मणा जायते यतः॥
... ...॥

[इतो ग्रन्थस्य 'ख'भागे '२/र+ल'अंशयोः '३' अंशस्य च तथैव 'ग'भागे '२/य-र-ल'+'३' अंशानामपि त्रुटिः]

॥इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः पुष्टिप्रवाहमर्यादाभेदः सम्पूर्णः॥

सन्धिविच्छेद :

स्वरूप + अङ्ग = स्वरूपाङ्ग [दीर्घ.]
जीवाः + ते = जीवास्ते [स.]
हि + आसुराः = ह्यासुराः [यण्.]
प्रवृत्तिं + च = प्रवृत्तिञ्च [प.स.]
च + इति = चेति [गुण]
हि + अज्ञ = ह्यज्ञ [यण.]
दुर्ज्ञाः + ते = दुर्ज्ञास्ते [स.]
प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण.]
प्रोक्ताः + ह्यज्ञाः =
प्रोक्ता ह्यज्ञाः [वि.लो.]
अज्ञाः + तान् = अज्ञास्तान् [स.]
प्रवाहे + अपि = प्रवाहेऽपि [पू.रू.]
पुष्टिस्थः + तै = पुष्टिस्थस्तै [स.]
तै + न = तैर्न [रेफ.]

सः + अपि = सोऽपि [उ.पू.रू.] तैः + तत्कुले = तैस्तत्कुले [स.]

समासविग्रह :

- प्रवाहे तिष्ठति इति प्रवाहस्थः [उप.स.] तान् प्रवाहस्थान्
- स्वरूपञ्च अङ्गश्च क्रियाश्च इति स्वरूपाङ्गक्रियाः [द्वन्द्व.]
  ताभिः युतः इति स्वरूपाङ्गक्रियायुतः, तान् स्वरूपाङ्गक्रियायुतान्
- न जानाति इति अज्ञः [उप.स.] ते अज्ञाः
- दुष्टं जानाति इति दुर्ज्ञः [उप.स.] ते दुर्ज्ञाः
- अज्ञाश्च दुर्ज्ञाश्च अज्ञदुर्ज्ञाः [द्वन्द्व.] - अज्ञदुर्ज्ञानां विभेदः इति अज्ञदुर्ज्ञविभेदः [ष.तत्पु.]
- तस्मात् अज्ञदुर्ज्ञविभेदतः [पं.तसि.]
- भगवता प्रोक्तः इति भगवत्प्रोक्तः [ष.तत्पु.] ते
- पुष्टौ तिष्ठति इति पुष्टिस्थः [उप.स.]
- तेषां कुलः इति तत्कुलः [ष.तत्पु.] तस्मिन्

शब्दपरिचय :

प्र[उ.]वाहस्थान्[ना.]	च[नि.] द्विधा[नि.]	अपि[नि.]
प्र[उ.]वक्ष्यामि[आ.]	प्र[उ.]कीर्त्यन्ते[आ.]	सम्[उ.]-आ[उ.]गत्य[स.आ.]
स्वरूपाङ्गक्रियायुतान्[ना.]	अज्ञदुर्ज्ञवि[उ.]भेदतः[नि.]	पुष्टिस्थः[ना.]
जीवाः[ना.] ते[ना.]	दुर्[उ.]ज्ञाः[ना.]	तैः[ना.] न[नि.]
हि[नि.] आसुराः[ना.]	भगवत्-प्र[उ.]उक्ताः[ना.]	युज्यते[आ.] सः[ना.]
सर्वे[ना.]	अज्ञाः[ना.] तान्[ना.]	तैः[ना.] तत्कुले[ना.]
प्र[उ.]वृत्तिम्[ना.]	अनु[नि.] ये[ना.]	जातः[ना.] कर्मणा[ना.]
च[नि.] इति[नि.]	पुनः[नि.]	जायते[आ.]
वर्णिताः[ना.]	प्र[उ.]वाहे[ना.]	यतः[नि.]

वृत्तिपरिचय :

प्रवाहस्थान्[स.] स्वरूपाङ्गक्रियायुतान्[स.] आसुराः[तद्धि.]

प्रवृत्तिम् [स.]	दुर्ज्ञाः [स.]	पुष्टिस्थः [स.]
वर्णिताः [कृद.] द्विधा [तद्धि.]	भगवत्प्रोक्ताः [स]	युज्यते [सना.]
प्रकीर्त्यन्ते [सना]	अज्ञाः [स.] प्रवाह [स.]	तत्कुले [स.]
अज्ञदुर्ज्ञविभेदतः [स+तद्धि.]	समागत्य [कृद.]	जातः [कृद.] यतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

(जीवाः, आसुराः, सर्वे, वर्णिताः, दुर्ज्ञाः, भगवत्प्रोक्ताः,

अज्ञाः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.	प्रवाहे - अ.अ.पुं.स.ए.
प्रवाहस्थान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.	पुष्टिस्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्वरूपाङ्गक्रियायुतान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.	तैः - ह.द.पुं.तृ.ब.
ते - ह.द.पुं.प्र.ब.	सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
प्रवृत्तिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.	तत्कुले - अ.अ.नपुं.स.ए.
तान् - ह.द.पुं.द्वि.ब.	जातः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
ये - ह.द.पुं.प्र.ब.	कर्मणा - ह.न.नपुं.तृ.ए.

धातुरूपपरिचय :

प्रवक्ष्यामि - अदादि.लृट्.उ.ए.	युज्यते - रुधा.लट्.प्र.ए.(यक्)
प्रकीर्त्यन्ते - चुरा.लट्.प्र.ब.(यक्)	जायते - दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : स्वरूपाङ्गक्रियायुतान् प्रवाहस्थान् (अहं) प्रवक्ष्यामि. ते सर्वे जीवाः हि आसुराः ''प्रवृत्तिञ्च'' इति (गीतायां) वर्णिताः ते च अज्ञदुर्ज्ञविभेदतः द्विधा प्रकीर्त्यन्ते. (ये) पुनः तान् अनु(सरन्ति) ते वै अज्ञाः. पुष्टिस्थः प्रवाहे समागत्य अपि तैः (सह) न युज्यते, सः अपि तैः (सह न युज्यते), यतः कर्मणा तत्कुले जायते॥

।। सिद्धान्तरहस्यम् ।।

(१०)

(नैकविधदोषग्रस्तेन हि जीवेन दोषाशङ्कालेशरहितो भगवान् कथं सेवनीयो भवेदिति चिन्तानिवारणार्थं भगवता प्रादुर्भूय समर्पणपूर्वकसेवायां दोषाणां स्वसेवाऽबाधकताबोधनम्)

श्रावणस्यामले पक्षे एकादश्यां महानिशि।।
साक्षाद् भगवता प्रोक्तं तदक्षरश उच्यते।।१।।

सन्धिविच्छेद :

श्रावणस्य + अमले = श्रावणस्यामले [दीर्घ.]　प्र + उक्तम् = प्रोक्तम् [गुण]
साक्षात् + भगवता = साक्षाद्भगवता [जश्त्व.]　अक्षरशः + उच्यते = अक्षरश उच्यते [वि.लो.]

समासविग्रह :

- अविद्यमानः मलः यस्मिन् इति अमलः [बहु.] तस्मिन् अमले
- महती च असौ निट् इति महानिट् [कर्म.] तस्यां महानिशि

शब्दपरिचय :

श्रावणस्य [ना.]	महानिशि [ना.]	प्र [उ.] उक्तम् [ना.]
अमले [ना.] पक्षे [ना.]	साक्षाद् [नि.]	तद् [ना.] अक्षरशः [नि.]
एकादश्याम् [ना.]	भगवता [ना.]	उच्यते [आ.]

वृत्तिपरिचय :

अमले [स.]　महानिशि [स.]　भगवता [तद्धि]　प्रोक्तम् [कृद्+स.]　उच्यते [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रावणस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	महानिशि - ह.श.स्त्री.स.ए.
अमले - अ.अ.पुं.स.ए.	भगवता - ह.त.पुं.तृ.ए.
पक्षे - अ.अ.पुं.स.ए	प्रोक्तम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
एकादश्याम् - अ.ई.स्त्री.स.ए.	तद् - ह.द.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : उच्यते - अदा.लट्.प्र.ए. (यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय : श्रावणस्य अमले पक्षे एकादश्यां महानिशि साक्षात् भगवता (यत्) प्रोक्तं तद् अक्षरशः उच्यते.

(स्वात्मात्मीयानां परमात्मने समर्पणं ब्रह्मसम्बन्धेन भवति, तेन च पञ्च [१-५]विधदोषाणां भगवत्सेवायां अबाधकता)

ब्रह्म-सम्बन्ध-करणात् सर्वेषां देहजीवयोः ॥
सर्व-दोष-निवृत्तिर्हि दोषाः पञ्चविधाः स्मृताः ॥२॥
सहजा[१] देशकालोत्थाः[२-३] लोकवेदनिरूपिताः ॥
संयोगजाः[४] स्पर्शजा[५]श्च न मन्तव्याः कथञ्चन ॥३॥
अन्यथा सर्वदोषाणां न निवृत्तिः कथञ्चन ॥

सन्धिविच्छेद :

निवृत्तिः + हि = निवृत्तिर्हि [रेफ.]

सहजाः + देश = सहजा देश [वि.लो.] स्पर्शजाः + च = स्पर्शजाश्च [स.श्चु.]

काल + उत्था = कालोत्था [गुण.] कथम् + चन = कथञ्चन [प.स.]

समासविग्रह :

- ब्रह्मणः सम्बन्धः इति ब्रह्मसम्बन्ध [प तत्पु]
  तस्य करणम् इति ब्रह्म-सम्बन्ध-करणम् [प.तत्पु.]

तस्मात् ब्रह्म-सम्बन्ध-करणात्

- देहश्च जीवश्च इति देह-जीवौ [द्वन्द्व.] तयोः देहजीवयोः
- सर्वे च ते दोषाः च सर्वदोषाः [कर्म]
- सर्वदोषाणां निवृत्तिः इति सर्व-दोष-निवृत्तिः [ष.तत्पु.]
- पञ्च विधाः यस्य स पञ्चविधः [बहु.] ते
- सह जायते इति सहजः [उप.स] ते
- उद्गतः तिष्ठति इति उत्थः [उप.स.]
- देशश्च कालश्च इति देशकालौ [द्वन्द्व.]
  ताभ्याम् उत्थाः इति देशकालोत्थाः [पं.तत्पु.]
- लोकश्च वेदश्च इति लोकवेदौ [द्वन्द्व.]
  ताभ्यां निरूपितः इति लोकवेदनिरूपितः [तृ.तत्पु.] ते
- संयोगात् जायते इति संयोगजः [उप.स.] ते संयोगजाः
- स्पर्शात् जायते इति स्पर्शजः [उप.स.] ते स्पर्शजाः
- सर्वे च ते दोषाश्च इति सर्वदोषाः [कर्म] तेषां सर्वदोषाणाम्

शब्दपरिचय :

ब्रह्म-सम्[उ.]-बन्धकरणात्[ना.]	स्मृताः[ना.]	न[नि.]
सर्वेषाम्[ना.]	सहजाः[ना.]	मन्तव्याः[ना.]
देहजीवयोः[ना.]	देशकालोत्थाः[ना.]	कथञ्चन[नि.]
सर्व-दोष-नि[उ.]वृत्तिः[ना.]	लोकवेद-नि[उ.]रूपिताः[ना.]	अन्यथा[नि.]
हि[नि.]	सम्[उ.]-योगजाः[ना.]	सर्वदोषाणाम्[ना.]
दोषाः[ना.]	स्पर्शजाः[ना.]	नि[उ.]वृत्तिः[ना.]
पञ्चविधाः[ना.]	च[नि.]	कथञ्चन[नि.]

वृत्तिपरिचय :

ब्रह्मसम्बन्धकरणात्[स.]	सर्वदोषनिवृत्तिः[स.]	स्मृताः[कृद.]
देहजीवयोः[स.]	पञ्चविधाः[स.]	सहजाः[स.]

देशकालोत्थाः [स.] संयोगजाः [स.] मन्तव्याः [कृद.] सर्वदोषाणाम् [स.]
लोकवेदनिरूपिताः [स.] स्पर्शजाः [स.] अन्यथा [तद्धि.] निवृत्तिः [कृद]

शब्दरूपपरिचय :

ब्रह्मसम्बन्धकरणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
देहजीवयोः - अ.अ.पुं.ष.द्वि.
सर्वदोषनिवृत्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
सर्वदोषाणाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
निवृत्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
(दोषाः, पञ्चविधाः, स्मृताः, सहजाः, देशकालोत्थाः, लोकवेदनिरूपिताः, संयोगजाः, स्पर्शजाः, मन्तव्याः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय. : ब्रह्मसम्बन्धकरणात् सर्वेषां देहजीवयोः सर्वदोषनिवृत्तिः हि (भवति). दोषाः पंचविधाः स्मृताः. लोकवेदनिरूपिताः सहजाः देशकालोत्थाः संयोगजाः स्पर्शजाः च कथञ्चन (हरिसेवायां प्रतिबन्धकाः) न मन्तव्याः. अन्यथा (=ब्रह्मसम्बन्धातिरिक्तप्रकारेण) सर्वदोषाणां निवृत्तिः कथञ्चन न (भवति) ॥३॥

(कृतात्मनिवेदनस्य असमर्पितवस्तुत्यागः [१] समर्पितस्यैवोपभोगः [२] सामिभुक्तस्यासमर्पणम् [३] इति त्रयो नियमाः)

असमर्पित-वस्तूनां तस्माद् वर्जनमाचरेत् [१]॥४॥
निवेदिभिः समर्प्यैव सर्वं कुर्याद् इति स्थितिः [२]॥
न मतं देवदेवस्य सामिभुक्त-समर्पणम् [३]॥५॥
तस्मादादौ सर्वकार्ये सर्ववस्तुसमर्पणम्॥

सन्धिविच्छेद :

तस्मात् + वर्जनम् = तस्माद् वर्जनम् [जश्त्व.]
समर्प्य + एव = समर्प्यैव [वृद्धि.]
तस्मात् + आदौ = तस्मादादौ [जश्त्व.]

समासविग्रह : न समर्पितः इति असमर्पितः [न.तत्पु.]

- असमर्पितं च तद् वस्तु च असमर्पित-वस्तु [कर्म] तेषां असमर्पित-वस्तूनाम्
- देवानां देवः इति देवदेवः [ष.तत्पु] तस्य
- सामि भुक्तम् इति सामिभुक्तम् [तत्पु]
  तस्य समर्पणम् इति सामिभुक्तसमर्पणम् [ष.तत्पु]
- सर्वं च तत्कार्यं च इति सर्वकार्यम् [कर्म] तस्मिन् सर्वकार्ये
- सर्वं च तत् वस्तु च सर्ववस्तु [कर्म]
- सर्ववस्तूनां समर्पणम् इति सर्ववस्तुसमपर्णम् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

अ-सम् [उ.] -अर्पितवस्तूनाम् [ना.]	एव [नि.]	मतम् [ना.]
तस्माद् [ना.]	सर्वम् [ना.]	देवदेवस्य [ना.]
वर्जनम् [ना.]	कुर्याद् [आ.]	सामिभुक्त-सम् [उ.] -अर्पणम् [ना.]
आ [उ.] चरेत् [आ.]	इति [नि.]	आदौ [ना.]
नि [उ.] वेदिभिः [ना.]	स्थितिः [ना.]	सर्वकार्ये [ना.]
सम् [उ.] -अर्प्य [स.आ.]	न [नि.]	सर्ववस्तु-सम् [उ.] -अर्पणम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

असमर्पित-वस्तूनाम् [स.]	समर्प्य [कृद+स.]	सामिभुक्त-समर्पणम् [स.]
वर्जनम् [कृद.]	स्थितिः [कृद.] मतम् [कृद.]	सर्वकार्ये [स.]
निवेदिभिः [तद्धि.]	देवदेवस्य [स.]	सर्ववस्तुसमर्पणम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

असमर्पित-वस्तूनाम् - अ.उ.नपुं.ष.ब.	स्थितिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
तस्माद् - ह.द.पुं.पं.ए.	मतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वर्जनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	देवदेवस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
निवेदिभिः - ह.न.पुं.तृ.ब.	सामिभुक्त-समर्पणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	आदौ - अ.इ.पुं.स.ए.

सर्वकार्ये - अ.अ.नपुं.स.ए.　　　　सर्ववस्तुसमर्पणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :
आचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.　　कुर्यात् - तनादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : तस्मात् असमर्पितवस्तूनां वर्जनं आचरेत्.(४). निवेदिभिः (कृतात्मनिवेदिभिः) समर्प्यैव एव सर्वं कुर्यात् इति स्थितिः (भक्तिमार्गमर्यादाः अस्ति) वा (भक्तः) समर्प्यैव एव निवेदिभिः (पदार्थैः) सर्वं कुर्यात् इति स्थितिः (भक्तिमार्गमर्यादा अस्ति). देवदेवस्य सामिभुक्तं समर्पणं न मतम्.(५). तस्मात् सर्वकार्ये आदौ सर्ववस्तुसमर्पणम् (कर्तव्यम्).

(लोके दासस्य स्वस्वीययोः यथा स्वस्वामिने समर्पणमेव नतु दानं तथा जीवस्य भगवते समर्पणं नतु दानमिति न दत्तापहारदोषाशंका)

दत्तापहारवचनं तथा च सकलं हरेः ।।६।।
न ग्राह्यमिति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम् ।।
सेवकानां यथा लोके व्यवहारः प्रसिध्यति ।।७।।
तथा कार्यं समर्प्यैव सर्वेषां ब्रह्मता ततः ।।

सन्धिविच्छेद :　　　　दत्त + अपहार = दत्तापहार [दीर्घ.]
वि + अवहारः = व्यवहारः [यण्.]　　समर्प्य + एव = समर्प्यैव [वृद्धि.]

समास विग्रह :
- दत्तस्य अपहार इति दत्तापहार [ष.तत्पु.]
- दत्तापहारस्य वचनम् इति दत्तापहारवचनम् [ष.तत्पु.]
- कलया सह इति सकलम् [बहु.]
- भिन्नः यः मार्गः स भिन्नमार्गः [कर्म.]

तस्मिन् परः भिन्नमार्गपरः [ष.तत्पु.] तं भिन्नमार्गपरम्.

शब्दपरिचय :

दत्त-अप[उ.]हारवचनम्[ना.]
तथा[नि.]
च[नि.]
सकलम्[ना.]
हरेः[ना.]
न[नि.]
ग्राह्यम्[ना.]
इति[नि.]

वाक्यम्[ना.]
हि[नि.]
भिन्नमार्गपरम्[ना.]
मतम्[ना.]
सेवकानाम्[ना.]
यथा[नि.]
लोके[ना.]
वि[उ.]-अव[उ.]हारः[ना.]

प्र[उ] सिध्यति[आ.]
तथा[नि.]
कार्यम्[ना.]
सम्[उ.]-अर्प्य[स.आ.]
एव[नि.]
सर्वेषाम्[ना.]
ब्रह्मता[ना.]
ततः[नि.]

वृत्तिपरिचय :

दत्तापहारवचनम्[स.]
तथा[तद्धि.]
सकलम्[स.]
ग्राह्यम्[कृद.]
वाक्यम्[कृद.]

भिन्नमार्गपरम्[स.]
मतम्[कृद.]
सेवकानाम्[कृद.]
यथा[तद्धि.]
व्यवहारः[स.]

कार्यम्[कृद.]
समर्प्य[कृद+स.]
ब्रह्मता[तद्धि.]
ततः[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

दत्तापहारवचनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सकलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
ग्राह्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वाक्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
भिन्नमार्गपरम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
मतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

सेवकानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
लोके - अ.अ.पुं.स.ए.
व्यवहारः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
ब्रह्मता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : प्रसिध्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वयः : दत्तापहारवचनं तथा च हरेः सकलं न ग्राह्यम् इति वाक्यं हि भिन्नमार्गपरं मतम्, यथा लोके सेवकानां व्यवहारः प्रसिद्ध्यति तथा समर्प्यैव (सर्वं) कार्यं
ततः सर्वेषां ब्रह्मता (स्यात्).

(निखिलस्वात्मात्मीयानां भगवत्समर्पणेन सेवायां विनियोगौपयिकशुद्धिः भवत्येव)

गङ्गात्वं सर्वदोषाणां गुणदोषादिवर्णना ॥८॥
गङ्गात्वे न निरूप्या स्यात् तद्वदत्रापि चैव हि ॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं श्रीसिद्धान्तरहस्यं सम्पूर्णम् ॥

सन्धिविच्छेद :

दोष + आदि = दोषादि [दीर्घ.]　　अत्र + अपि = अत्रापि [दीर्घ.]
तद्वत् + अत्र = तद्वदत्र [जश्त्व.]　　च + एव = चैव [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- सर्वे च ते दोषाः इति सर्वदोषाः [कर्म] तेषां सर्वदोषाणाम्
- गुणाश्च दोषाश्च इति गुणदोषाः [द्वन्द्व.]
- गुणदोषाः आदिर्येषां ते गुणदोषादयः [षष्ठ.]
  तेषां वर्णना इति गुणदोषादिवर्णना [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

गङ्गात्वम् [ना.]　गुणदोषादिवर्णना [ना.]　न [नि.]　स्यात् [आ.]
सर्वदोषाणाम् [ना.]　गङ्गात्वे [ना.]　नि [उ.] रूप्या [म.आ.]　तद्वद् [नि.]

अत्र [नि.] अपि [नि.] च [नि.] एव [नि.] हि [नि.]

वृत्तिपरिचय :

गङ्गात्वम् [तद्धि.] गुणदोषादिवर्णना [स.] निरूप्या [कृद्+स]
सर्वदोषाणाम् [स.] गङ्गात्वे [तद्धि.] तदवत् [तद्धि.] अत्र [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

गङ्गात्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सर्वदोषाणाम् - अ.अ.पुं.ष.ब. गङ्गात्वे - अ.अ.नपुं.स.ए.
गुणदोषादिवर्णना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए. निरूप्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : सर्वदोषाणां गंगात्वं च गुणदोषादिवर्णना गंगात्वे न एव निरूप्या स्यात् तद्वद् अत्र अपि (ज्ञेयम्) ॥

॥ नवरत्नम् ॥

(११)

(आत्मनिवेदनस्वरूपस्य चिन्तनेन लौकिक्याः अलौकिक्याः वा, सेवोपयोगिवस्तुविषयिण्याः तदनुपयोगिवस्तुविषयिण्याः वा, क्रियमाणायाः सर्वविधचिन्तायाः अकर्तव्यत्वस्य उपदेशः)

चिन्ता कापि न कार्या निवेदितात्मभिः कदापीति।।
भगवानपि पुष्टिस्थो न करिष्यति लौकिकीञ्च गतिम्।।१।।
निवेदनन्तु स्मर्तव्यं सर्वथा तादृशैर्जनैः।।
सर्वेश्वरश्च सर्वात्मा निजेच्छातः करिष्यति।।२।।

सन्धिविच्छेद :

का + अपि = कापि [दीर्घ.]
निवेदित + आत्म = निवेदितात्म [दीर्घ.]
कदा + अपि = कदापि [दीर्घ.]
अपि + इति = अपीति [दीर्घ.]
पुष्टिस्थः + न = पुष्टिस्थो न [उ.गुण.]
लौकिकीं + च = लौकिकीञ्च [प.स.]
निवेदनम् + तु = निवेदनन्तु [प.स.]
तादृशैः + जनैः = तादृशैर्जनैः [रेफ.]
सर्व + ईश्वरः = सर्वेश्वरः [गुण]
सर्वेश्वरः + च = सर्वेश्वरश्च [स.श्चु.]
सर्व + आत्मा = सर्वात्मा [दीर्घ.]
निज + इच्छातः = निजेच्छातः [गुण]

समासविग्रह :

- निवेदितः आत्मा येन सः निवेदितात्मा [बहु.] तैः निवेदितात्मभिः
- पुष्टौ तिष्ठति इति पुष्टिस्थः [उप.स.]
- सर्वेषाम् ईश्वरः इति सर्वेश्वरः [ष.तत्पु.]
- सर्वेषाम् आत्मा इति सर्वात्मा [ष.तत्पु]

- निजा च असौ इच्छा निजेच्छा [कर्म.] तस्याः (वा)
  निजानां इच्छा इति निजेच्छा [ष तत्पु] तस्याः निजेच्छात. [प तमि.]

शब्दपरिचय :

चिन्ता [ना.]	भगवान् [ना.]	स्मर्तव्यम् [ना.]
का [ना.]	पुष्टिस्थः [ना.]	सर्वथा [नि.]
अपि [नि.]	करिष्यति [आ.]	तादृशैः [ना.]
न [नि.]	लौकिकीम् [ना.]	जनैः [ना.]
कार्या [ना.]	च [नि.]	सर्वेश्वरः [ना.]
नि [उ.]वेदितात्मभिः [ना.]	गतिम् [ना.]	सर्वात्मा [ना.]
कदा [नि.]	नि [उ.]वेदनम् [ना.]	निजेच्छातः [नि.]
इति [नि.]	तु [नि.]	करिष्यति [आ.]

वृत्तिपरिचय :

कार्या [कृद.]	लौकिकीम् [तद्धि.]	सर्वथा [तद्धि.]
निवेदितात्मभिः [स.]	गतिम् [कृद.]	सर्वेश्वरः [स.]
कदा [तद्धि.] भगवान् [तद्धि.]	निवेदनम् [कृद+स.]	सर्वात्मा [स.]
पुष्टिस्थः [स.]	स्मर्तव्यम् [कृद.]	निजेच्छातः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

चिन्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	गतिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.
का - ह.म.स्त्री.प्र.ए.	निवेदनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कार्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	स्मर्तव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
निवेदितात्मभिः - ह.न.पुं.तृ.ब.	तादृशैः - अ.अ.पुं.तृ.व.
भगवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.	जनैः - अ.अ.पुं.तृ.व.
पुष्टिस्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	सर्वेश्वरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
लौकिकीम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.	सर्वात्मा - ह.न.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : करिष्यति - तनादि.लृट्.प्र.ए.

अन्वय. : निवेदितात्मभिः का अपि चिन्ता कदा अपि न कार्या इति भगवानपि पुष्टिस्थः लौकिकीं च गतिं न करिष्यति (१). निवेदनं तु तादृशैः जनैः (सह) सर्वथा स्मर्तव्यं, सर्वेश्वरः च सर्वात्मा (भगवान्) निजेच्छातः करिष्यति ॥२॥

(निवेदितात्मना निवेदितेषु अनिवेदितेषु वा स्वस्य स्वकीयानां वा विनियोगेपि भक्त्यर्थं क्रियमाणा चिन्ता आत्मनिवेदनस्वरूपविचारेण निवर्तनीया)

सर्वेषां प्रभुसम्बन्धो न प्रत्येकमिति स्थितिः ।।
अतोन्यविनियोगेपि चिन्ता का स्वस्य सोऽपि चेत् ।।३।।
अज्ञानादथवा ज्ञानात् कृतमात्मनिवेदनम् ।।
यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः तेषां का परिदेवना ।।४।।

सन्धिविच्छेद :

प्रभुसम्बन्धः + न = प्रभुसम्बन्धो न [उ.गुण.]	सः + अपि = सोऽपि [उ.पू.रू.]
प्रति + एकं = प्रत्येकम् [यण्.]	अज्ञानात् + अथवा =
अतः + अन्य = अतोन्य [उ.पू.रू.]	अज्ञानादथवा [जश्त्व.]
विनियोगे + अपि = विनियोगेपि [पू.रू.]	प्र + आनैः = प्राणैः [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- प्रभोः सम्बन्धः प्रभुसम्बन्धः [ष.तत्पु.] - एकं एकं प्रति प्रत्येकम् [अव्य.]
- अन्यस्मिन् विनियोगः इति अन्यविनियोगः [स.तत्पु.] वा
- अन्येषां विनियोगः अन्यविनियोगः [ष.तत्पु.] तस्मिन् अन्यविनियोगे
- न ज्ञानम् इति अज्ञानम् [न.तत्पु.] तस्मात् अज्ञानात्
- आत्मनः निवेदनम् इति आत्मनिवेदनम् [ष.तत्पु.] तत् आत्मनिवेदनम्

- सात्कृताः प्राणाः यस्य स सात्कृतप्राणः [बहु.]
- कृष्णे सात्कृतप्राणः इति कृष्णसात्कृतप्राणः [स.तत्पु.] तैः कृष्णसात्कृतप्राणैः

शब्दपरिचय :

सर्वेषाम् [ना.]	अपि [नि.]	ज्ञानात् [ना.]
प्रभु-सम् [उ.] बन्धः [ना.]	चिन्ता [ना.]	कृतम् [ना.]
न [नि.]	का [ना.]	आत्म-नि [उ.] वेदनम् [ना.]
प्रत्येकम् [नि.]	स्वस्य [ना.]	यैः [ना.]
इति [नि.]	सः [ना.] अपि [नि.]	कृष्णसात्कृत-प्र [उ.]-आणैः [ना.]
स्थितिः [ना.]	चेत् [नि.]	तेषाम् [ना.]
अतः [नि.]	अज्ञानाद् [ना.]	का [ना.]
अन्य-वि [उ.] नि [उ.] योगे [ना.]	अथवा [नि.]	परि [उ.] देवना [ना.]

वृत्तिपरिचय :

प्रभुसम्बन्धः [स.]	अन्यविनियोगे [स.]	आत्मनिवेदनम् [स.]
प्रत्येकम् [स.]	अज्ञानात् [स.]	कृष्णसात्कृतप्राणैः [स.]
स्थितिः [कृद.] अतः [तद्धि.]	ज्ञानात् [कृद.] कृतम् [कृद.]	परिदेवना [स.]

शब्दरूपपरिचय :

सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.	अज्ञानाद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
प्रभुसम्बन्धः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	ज्ञानात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
स्थितिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	कृतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
अन्यविनियोगे - अ.अ.पुं.स.ए.	आत्मनिवेदनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
चिन्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	यैः - ह.द.पुं.तृ.ब.
का - ह.म.स्त्री.प्र.ए.	कृष्णसात्कृतप्राणैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
स्वस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	तेषाम् - ह.द्.पुं.ष.व.
सः - ह.द्.पुं.प्र.ए.	परिदेवना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

अन्वय : सर्वेषां प्रभुसम्बन्धः प्रत्येकं न इति स्थितिः (अङ्गीकारमर्यादाः), अतः (अन्येषां) अन्यविनियोगे अपि का चिन्ता, स्वस्य सः (अन्यविनियोग) अपि चेत् (तदापि का चिन्ता).(३) अज्ञानाद् अथवा ज्ञानाद् यैः आत्मनिवेदनं कृतम् तेषां (चिन्ता न, तदा) यैः कृष्णसात्कृतप्राणैः (आत्मनिवेदनम् कृतं) तेषां का परिदेवना! ॥४॥

(आत्मनिवेदनाविश्वासाद् वा निवेदितस्य भगवत्सेवायामविनियोगाद् वा क्रियमाणापि चिन्ता श्रीपुरुषोत्तमस्वरूपचिन्तनेन निवर्तनीया)

तथा निवेदने चिन्ता त्याज्या श्रीपुरुषोत्तमे ।।
विनियोगेऽपि सा त्याज्या समर्थोहि हरिः स्वतः ।।५।।

सन्धिविच्छेद :

विनियोगे + अपि = विनियोगेऽपि [पू.रू.] समर्थः + हि = समर्थोहि [उ.गुण.]

समासविग्रह :

- पुरुषेषु उत्तमः इति पुरुषोत्तमः [स.तत्पु.]
- श्रीसहितः पुरुषोत्तमः इति श्रीपुरुषोत्तमः [म.प.लो.] तस्मिन् श्रीपुरुषोत्तमे

शब्दपरिचय :

तथा [नि.]	श्रीपुरुषोत्तमे [ना.]	समर्थः [ना.]
नि [उ.] वेदने [ना.]	वि [उ.] नि [उ.] योगे [ना.]	हि [नि.]
चिन्ता [ना.]	अपि [नि.] सा [ना.]	हरिः [ना.]
त्याज्या [ना.]	त्याज्या [ना.]	स्वतः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

तथा [तद्धि.]	त्याज्या [कृद्]	विनियोगे [कृद्+स.]
निवेदने [कृद्+स.]	श्रीपुरुषोत्तमे [स.]	समर्थः [स.] स्वतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

निवेदने - अ.अ.नपुं.स.ए.	विनियोगे - अ.अ.पुं.स.ए.
चिन्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	सा - ह.द.स्त्री.प्र.ए.
त्याज्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	समर्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
श्रीपुरुषोत्तमे - अ.अ.पुं.स.ए.	हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : श्रीपुरुषोत्तमे निवेदने चिन्ता त्याज्या तथा विनियोगेऽपि सा त्याज्या हि हरिः स्वतः समर्थः (अस्ति) ॥५॥

(निवेदितात्मना स्वस्य स्वकीयानां वा लौकिके वैदिकेऽपि वा व्यवहारे स्वास्थ्याभावविषयिणी या क्रियमाणा चिन्ता सापि स्वसाक्षिभावचिन्तनेन निवर्तनीया)

लोके स्वास्थ्यं तथा वेदे हरिस्तु न करिष्यति।।
पुष्टिमार्गस्थितो यस्मात् साक्षिणो भवताखिलाः ।।६।।

सन्धिविच्छेद :

हरिः + तु = हरिस्तु [स.]	साक्षिणः + भवत = साक्षिणो भवत [उ.गुण.]
स्थितः + यस्मात् = स्थितो यस्मात् [उ.गुण.]	भवत + अखिलाः = भवताखिलाः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- स्वस्मिन् तिष्ठति इति स्वस्थः [उप.स.] तस्य भावः स्वास्थ्यम्
- पुष्टिः एव मार्गः पुष्टिमार्गः [कर्म]
- पुष्टिमार्गे स्थितः इति पुष्टिमार्गस्थितः [स.तत्पु.]
- न खिलः इति अखिलः [न.तत्पु.] ते

शब्दपरिचय : लोके [ना.] स्वास्थ्यम् [ना.] तथा [नि.] वेदे [ना.]

हरिः [ना.]	करिष्यति [आ.]	यस्मात् [ना.]	भवत [आ.]
तु [नि.] न [नि.]	पुष्टिमार्गस्थितः [ना.]	साक्षिणः [ना.]	अखिलाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

स्वास्थ्यम् [तद्धि.]	तथा [तद्धि.]	पुष्टिमार्गस्थितः [स.]	अखिला [स.]

शब्दरूपपरिचय :

लोके - अ.अ.पुं.स.ए.	पुष्टिमार्गस्थितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्वास्थ्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	यस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.
वेदे - अ.अ.पुं.स.ए.	साक्षिणः - ह.न.पुं.प्र.ब.
हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	अखिलाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :

करिष्यति - तनादि.लृट्.प्र.ए. भवत - भ्वा.लोट्.म.ब.

अन्वय : यस्मात् हरिः पुष्टिमार्गस्थितः (तस्मात्) लोके तथा वेदे स्वास्थ्यं तु न करिष्यति (तस्मात् लौकिकवैदिककर्मषु) अखिलाः साक्षिणः भवत ॥६॥

(गुरुभगवतोरन्यतरस्य आज्ञाभंगभयेन क्रियमाणा स्वसेव्यप्रभुविषयिणी चिन्ता भगवत्सेवायाः तात्पर्यविवेकेन निवर्तनीया)

सेवाकृतिर्गुरोराज्ञा बाधनं वा हरीच्छया।
अतः सेवापरं चित्तं विधाय स्थीयतां सुखम्॥७॥

सन्धिविच्छेद :

सेवाकृतिः + गुरोः + आज्ञा = सेवाकृतिर् गुरोर् आज्ञा [रेफ.]

हरि + इच्छया = हरीच्छया [दीर्घ]

समासविग्रह :

- सेवायाः कृतिः इति सेवाकृतिः [ष.तत्पु.]
- हरेः इच्छा इति हरीच्छा [ष.तत्पु.] तया हरीच्छया
- सेवायां परम् इति सेवापरम् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

सेवाकृतिः [ना.]	वा [नि.]	चित्तम् [ना.]
गुरोः [ना.]	हरीच्छया [ना.]	विधाय [स.आ.]
आ [उ.]ज्ञा [ना.]	अतः [नि.]	स्थीयताम् [आ.]
बाधनम् [ना.]	सेवापरम् [ना.]	सुखम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सेवाकृतिः [स.]	बाधनम् [कृद.]	अतः [तद्धि.]	विधाय [कृद+स.]
आज्ञा [स.]	हरीच्छया [स.]	सेवापरम् [स.]	स्थीयताम् [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

सेवाकृतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	हरीच्छया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
गुरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.	सेवापरम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
आज्ञा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	चित्तम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
बाधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सुखम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

स्थीयताम् - भ्वा.लोट्.प्र.ए. (यक्)

अन्वय : गुरोः आज्ञा (अबाधिता यथा स्यात् तथा) सेवाकृतिः (करणीया), वा हरीच्छया बाधनं (कर्तव्यं), (बाधने अबाधने वा सेवैव मुख्या) अतः सेवापरं चित्तं विधाय सुखं स्थीयताम्॥७॥

(भगवल्लीलाभावनया भगवच्छरणागत्या वा यथोपदिष्टनिर्वाहसामर्थ्या-सामर्थ्ययोः स्वतोजायमानापि चिन्ता निवर्तनीया)

चित्तोद्वेगं विधायापि हरिर्यद्यत् करिष्यति ।।
तथैव तस्य लीलेति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् ।।८।।
तस्मात् सर्वात्मना नित्यं ''श्रीकृष्णः शरणं मम'' ।।
वदद्भिरेवं सततं स्थेयमित्येव मे मतिः ।।९।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं नवरत्नं सम्पूर्णम् ।।

सन्धिविच्छेद :

चित्त + उद्वेगं = चित्तोद्वेगम् [गुण]
उत् + वेगम् = उद्वेगम् [जश्त्व.]
विधाय + अपि = विधायापि [दीर्घ.]
हरिः + यद् = हरिर्यद् [रेफ.]
तथा + एव = तथैव [वृद्धि.]
लीला + इति = लीलेति [गुण]
सर्व + आत्मना = सर्वात्मना [दीर्घ.]
वदद्भिः + एवम् = वदद्भिरेवम् [रेफ.]
इति + एव = इत्येव [यण.]

समास विग्रह :

- चित्तस्य उद्वेगम् इति चित्तोद्वेगम् [ष.तत्पु.]
- सर्वश्चासौ आत्मा (अन्तःकरणं) च इति सर्वात्मा [कर्म] तेन सर्वात्मना

शब्दपरिचय :

चित्त-उत् [उ.] -वेगम् [ना.]	तथा [नि.]	चिन्ताम् [ना.]	श्रीकृष्णः [ना.]
वि [उ.] धाय [स.आ.]	एव [नि.]	द्रुतम् [ना.]	शरणम् [ना.]
अपि [नि.]	तस्य [ना.]	त्यजेत् [आ.]	मम [ना.]
हरिः [ना.]	लीला [ना.]	तस्मात् [ना.]	वदद्भिः [ना.]
यत् [ना.]	इति [नि.]	सर्वात्मना [ना.]	एव [नि.]
करिष्यति [आ.]	मत्वा [स आ.]	नित्यम् [नि]	सततम् [नि.]

स्थेयम् [ना.] इति [नि.] एव [नि.] मे [ना.] मतिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

चित्तोद्वेगम् [स.]	द्रुतम् [कृद.]	शरणम् [कृद.]
विधाय [कृद.+स.]	सर्वात्मना [स.]	वदद्भिः [कृद.]
तथा [तद्धि.] मत्वा [कृद.]	श्रीकृष्णः [स.]	स्थेयम् [कृद.] मतिः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

चित्तोद्वेगम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	तस्मात् - ह.द.नपुं.पं.ए.
हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	सर्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए.
यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.	श्रीकृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.	शरणम्, स्थेयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
लीला - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	मम, मे - ह.द.ष.ए.
चिन्ताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	वदद्भिः - ह.त.पुं.तृ.ब.
द्रुतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	मतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : करिष्यति - तनादि.लृट्.प्र.ए. त्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : चित्तोद्वेगं विधायापि हरिः यत् यत् करिष्यति (तत् तत्) तस्य तथैव लीला (अस्ति) इति मत्वा चिन्तां द्रुतं त्यजेत् (८). तस्मात् सर्वात्मना नित्यं 'श्रीकृष्णःशरणंमम' एवं सततं वदद्भिरेव स्थेयम् (वा 'श्रीकृष्णःशरणंममः' एव वदद्भिः एवं (=सेवापरतया) स्थेयं) इति मे मतिः (अस्ति) ॥९॥

॥ अन्तःकरणप्रबोधः ॥

(१२)

(भगवदाज्ञानुसरणाय अन्तःकरणप्रबोधनम्)

अन्तःकरण! मद्वाक्यं सावधानतया शृणु॥
कृष्णात् परं नास्ति दैवं वस्तुतो दोषवर्जितम्॥१॥

सन्धिविच्छेद :

न + अस्ति = नास्ति [दीर्घ.]   वस्तुतः + दोष = वस्तुतो दोष [उ.गुण.]

समास विग्रह :

- मम वाक्यम् इति मद्वाक्यम् [ष.तत्पु.] - दोषैः वर्जितम् इति दोषवर्जितम् [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

अन्तःकरण [ना.]	शृणु [आ.]	अस्ति [आ.] दैवम् [ना.]
मद्वाक्यम् [ना.]	कृष्णात् [ना.]	वस्तुतः [नि.]
सावधानतया [ना.]	परम् [ना.] न [नि.]	दोषवर्जितम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

मद्वाक्यम् [स.]	सावधानतया [तद्धि.]	दैवम् [तद्धि.]
वस्तुतः [तद्धि.]	दोषवर्जितम् [स.]	

शब्दरूपपरिचय :

अन्तःकरण - अ.अ.नपुं.सम्बो.ए.   मद्-वाक्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

सावधानतया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
कृष्णात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
दैवम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
दोषवर्जितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :
शृणु - स्वा.लोट्.म.ए.
अस्ति - अदादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय :हे अन्तःकरण! मद्वाक्यं सावधानतया शृणु (यत्) कृष्णात् परं वस्तुतः दोषवर्जितम् दैवं नास्ति ॥१॥

(स्वमनोरथप्रतिकूलायां भगवदाज्ञायां सत्यामपि पश्चात्तापस्य अकर्तव्यतोपदेशः)

चाण्डाली चेद् राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता ॥
कदाचिदपमानेऽपि मूलतः का क्षतिर्भवेत् ॥२॥
समर्पणादहं पूर्वम् उत्तमः किं सदा स्थितः ॥
का ममाधमता भाव्या पश्चात्तापो यतो भवेत् ॥३॥

सन्धिविच्छेद :
चेत् + राज... = चेद् राज... जश्त्व.
समर्पणात् + अहं = समर्पणादहं जश्त्व.
कदाचित् + अपमाने = कदाचिदपमाने जश्त्व.
मम + अधमता = ममाधमता दीर्घ.
अपमाने + अपि = अपमानेऽपि पू.रू.
तापः + यतः + भवेत् = तापो यतो भवेत् उ.गुण.
क्षतिः + भवेत् = क्षतिर्भवेत् रेफ.

समास विग्रह :
- राज्ञः पत्नी इति राजपत्नी ष.तत्पु. - पश्चात् यः तापः स पश्चात्तापः कर्म.

शब्दपरिचय :
चाण्डाली ना. चेद् नि. राजपत्नी ना. जाता ना.

राज्ञा [ना.]	मूलतः [नि.]	पूर्वम् [ना.]	मम [ना.]
च [नि.]	का [ना.]	उत् [उ.] तमः [ना.]	अधमता [ना.]
मानिता [ना.]	क्षतिः [ना]	किम् [ना]	भाव्या [ना]
कदाचिद् [नि.]	भवेत् [आ]	सदा [नि]	पश्चात्तापः [ना.]
अप [उ.] माने [ना]	सम् [उ.] अर्पणाद् [ना.]	स्थितः [ना.]	यतः [नि.]
अपि [नि.]	अहम् [ना.]	का [ना.]	भवेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

चाण्डाली [तद्धि.]	मूलतः [तद्धि.]	अधमता [तद्धि.]
राजपत्नी [स.]	क्षतिः [कृद.]	भाव्या [कृद.]
जाता [कृद.] मानिता [कृद.]	समर्पणात् [कृद+स.]	पश्चात्तापः [स.]
अपमाने [कृद+स.]	उत्तमः [स.] स्थितः [कृद.]	यतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

चाण्डाली - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.	अहम् - ह.द्.प्र.ए.
राजपत्नी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.	पूर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
जाता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	उत्तमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
राज्ञा - ह.न.पुं.तृ.ए.	किम् - ह.म.नपुं.प्र.ए.
मानिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	स्थितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अपमाने - अ.अ.नपुं.स.ए.	का, मम - ह.द.ष.ए.
का - ह.म्.स्त्री.प्र.ए.	अधमता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
क्षतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	भाव्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
समर्पणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	पश्चात्तापः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : चाण्डाली चेद् राजपत्नी जाता राज्ञा च मानिता (जाता

तदा) काचिद् अपमानेऽपि मूलतः का क्षतिः भवेत्? (२) समर्पणाद् पूर्वं किम् अहं सदा उत्तमः स्थितः? मम अधमता का भाव्या यतः (मे) पश्चात्तापो भवेत्॥३॥

(भगवदाज्ञायाएव अनुसरणीयत्वे हेतुत्रयम्)

सत्यसङ्कल्पतो विष्णुः नान्यथा तु करिष्यति[१]।
आज्ञैव कार्या सततं स्वामिद्रोहोऽन्यथा भवेत्[२]॥४॥
सेवकस्य तु धर्मोऽयं स्वामी स्वस्य करिष्यति[३]॥

सन्धिविच्छेद :

सम् + कल्पतः = सङ्कल्पतः [प.स.]

सङ्कल्पतः + विष्णुः =	आज्ञा + एव = आज्ञैव [वृध्दि.]
सङ्कल्पतो विष्णुः [उ.गुण.]	द्रोहः + अन्यथा = द्रोहोऽन्यथा [उ.पू.रू.]
न + अन्यथा = नान्यथा [दीर्घ.]	धर्मः + अयं = धर्मोऽयम् [उ.पू.रू.]

समास विग्रह :

- सत्यः यः सङ्कल्पः इति सत्यसङ्कल्पः [कर्म.]
- तस्मात् (हेतोः) सत्यसङ्कल्पतः [पं.तसि.]
- स्वामिनः द्रोहः इति स्वामिद्रोहः [प.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

सत्य-सम्[उ.]कल्पतः [नि.]	आज्ञा [ना.]	भवेत् [आ.]
विष्णुः [ना.]	एव [नि.]	सेवकस्य [ना.]
न [नि.]	कार्या [ना.]	तु [नि.] धर्मः [ना.]
अन्यथा [नि.]	सततम् [नि.]	अयम् [ना.]
तु [नि.]	स्वामिद्रोहः [ना]	स्वामी [ना] स्वस्य [ना.]
करिष्यति [आ.]	अन्यथा [नि.]	करिष्यति [आ.]

वृत्तिपरिचय :

सत्यसङ्कल्पतः [तद्धि.]	आज्ञा [स.]	स्वामिद्रोहः [स.]
अन्यथा [तद्धि.]	कार्या [कृद्.]	सेवकस्य [कृद्.]

शब्दरूपपरिचय :

विष्णुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.

आज्ञा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	धर्मः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कार्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए.
स्वामिद्रोहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	स्वामी - ह.न.पुं.प्र.ए.
सेवकस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	स्वस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

करिष्यति - तनादि.लृट्.प्र.ए. भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : विष्णुः सत्यसङ्कल्पतः अन्यथा तु न करिष्यति. आज्ञा एव सततं कार्या अन्यथा स्वामिद्रोहो भवेत्. सेवकस्य तु अयं धर्मः (अस्ति) स्वामी स्वस्य (धर्मः) करिष्यति.

(प्रागननुष्ठिते द्वे भगवदाज्ञे)

आज्ञा पूर्वन्तु या जाता गङ्गासागरसङ्गमे ।।५।।
यापि पश्चात् मधुवने न कृतं तद्द्वयं मया ।।

सन्धिविच्छेद :

पूर्वम् + तु = पूर्वन्तु [प.स.] सम् + गमे = सङ्गमे [प.स.] या + अपि = यापि [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- गङ्गा च सागरश्च इति गङ्गासागरौ [द्वन्द्व.]

- तयोः सङ्गमः इति गङ्गासागरसङ्गमः [ष.तत्पु.] तस्मिन् गङ्गासागरसङ्गमे
- मधोः वनम् इति मधुवनम् [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- तयोः द्वयम् इति तद्द्वयम् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

आज्ञा [ना.]	जाता [ना.]	पश्चात् [नि.]	कृतम् [ना.]
पूर्वम् [ना.]	गङ्गासागरसङ्गमे [ना.]	मधुवने [ना.]	तद्द्वयम् [ना.]
तु [नि.] या [ना.]	या अपि [नि.]	न [नि.]	मया [ना.]

वृत्तिपरिचय :

आज्ञा [स.]	गङ्गासागरसङ्गमे [स.]	कृतम् [कृद.]
जाता [कृद.]	मधुवने [स.]	तद्द्वयम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

आज्ञा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

पूर्वम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	मधुवने - अ.अ.नपुं.स.ए.
या - ह.द.स्त्री.प्र.ए.	कृतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
जाता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	तद्द्वयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
गङ्गासागरसङ्गमे - अ.अ.पुं.स.ए.	मया - ह.द.पुं.तृ.ए.

अन्वय : पूर्वं तु गङ्गासागरसङ्गमे या आज्ञा जाता पश्चात् मधुवनेऽपि या जाता तद्द्वयं मया न कृतं.

(लोकगोचरदेहदेशपरित्यागविषयिण्याः तृतीयायाः आज्ञायाः अवश्यानुष्ठेयत्वेऽपि षण्णां पश्चात्तापाभावहेतूनां परिगणनम्)

देहदेशपरित्यागः तृतीयो लोकगोचरः ॥६॥
पश्चात्तापः कथं तत्र सेवकोऽहं न चान्यथा[१]॥

लौकिकप्रभुवत् कृष्णो न दृष्टव्यः कदाचन[२]॥७॥
सर्वं समर्पितं भक्त्या कृतार्थोऽसि[३] सुखी भव॥
प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहात् न प्रेष्यते वरे॥८॥
तथा देहे न कर्तव्यं वरस्तुष्यति नान्यथा[४]॥
लोकवच्चेत् स्थितिर्मे स्यात् किं स्यादिति विचारय[५]॥९॥
अशक्ये हरिरेवास्ति मोहं मा गाः कथञ्चन[६]॥

सन्धिविच्छेद :

तृतीयः + लोक.. = तृतीयो लोक.. [उ.गुण.]
सेवकः + अहम् = सेवकोऽहम् [उ.पू.रू.]
च + अन्यथा = चान्यथा [दीर्घ.]
कृष्णः + न = कृष्णो न [उ.गुण.]
कृतार्थः + असि = कृतार्थोऽसि [उ.पू.रू.]
प्र + ऊढा = प्रौढा [वृद्धि.]
प्रौढा + अपि = प्रोढापि [दीर्घ.]
प्र + इष्यते = प्रेष्यते [गुण]

वरः + तुस्यति = वरस्तुष्यति [स.]
न + अन्यथा = नान्यथा [दीर्घ.]
लोकवत् + चेत् = लोकवच्चेत् [श्चु.]
स्थितिः + मे = स्थितिर्मे [रेफ.]
स्यात् + इति = स्यादिति [जश्त्व.]
हरिः + एव = हरिरेव [रेफ.]
हरिरेव + अस्ति = हरिरेवास्ति [दीर्घ.]
कथम् + चन = कथञ्चन [प.स.]

समासविग्रह :

- देहश्च देशश्च इति देहदेशौ [द्वन्द्व.]
  तयोः परित्यागः इति देहदेशपरित्यागः [प.तत्पु.]
- लोके गोचरः इति लोकगोचरः [स.तत्पु.] - पश्चात् यः तापः स पश्चात्तापः [कर्म]
- लौकिकश्च असौ प्रभुश्च इति लौकिकप्रभुः [कर्म] तद्वत् लौकिकप्रभुवत्
- कृतः(सम्पादितः) अर्थः येन सः कृतार्थः [बहु.]
- न शक्यम् इति अशक्यम् [न.तत्पु.] तस्मिन् अशक्ये

शब्दपरिचय :

देहदेश-परि [उ] त्यागः [ना]   तृतीयः [ना.]   लोकगोचरः [ना.]   पश्चात्तापः [ना.]

कथम् [नि.]	सम् [उ.]-अर्पितम् [ना.]	तथा [नि.]	किम् [ना.]
तत्र [नि.]	भक्त्या [ना.]	देहे [ना.]	स्यात् [आ.]
सेवकः [ना.]	कृतार्थः [ना.]	कर्तव्यम् [ना.]	इति [नि.]
अहम् [ना.]	असि [आ.]	वरः [ना.]	वि [उ.] चारय [आ.]
न [नि.] च [नि.]	सुखी [ना.] भव [आ.]	तुष्यति [आ.]	अशक्ये [ना.]
अन्यथा [नि.]	प्र [उ.]-ऊढा [ना.]	न [नि.]	हरिः [ना.]
लौकिकप्रभुवत् [नि.]	अपि [नि.]	अन्यथा [नि.]	एव [नि.]
कृष्णः [ना.]	दुहिता [ना.]	लोकवत् [नि.]	अस्ति [आ.]
न [नि.]	यद्वत् [नि.]	चेत् [नि.]	मोहम् [ना.]
दृष्टव्यः [ना.]	स्नेहात् [ना.]	स्थितिः [ना.]	मा [नि.]
कदाचन [नि.]	प्रेष्यते [आ.]	मे [ना.]	गाः [आ.]
सर्वम् [ना.]	वरे [ना.]	स्यात् [आ.]	कथञ्चन [नि.]

वृत्तिपरिचय :

देहदेशपरित्यागः [स.]	अन्यथा [तद्धि.]	यद्वत् [तद्धि.]
तृतीयः [तद्धि.]	लौकिकप्रभुवत् [तद्धि.]	प्रेष्यते [सना.] तथा [तद्धि.]
लोकगोचरः [स.]	दृष्टव्यः [कृद्.]	कर्तव्यम् [कृद्.]
पश्चात्तापः [स.]	समर्पितम् [कृद्+स.]	अन्यथा [तद्धि.]
कथम् [तद्धि.]	भक्त्या [कृद्.]	लोकवत् [तद्धि.]
तत्र [तद्धि.]	कृतार्थः [स.]	स्थितिः [कृद्.]
सेवकः [कृद्.]	प्रौढा [कृद्+स.]	अशक्ये [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(देहदेशपरित्यागः, तृतीयः, लोकगोचरः, पश्चात्तापः, सेवकः, कृष्णः, दृष्टव्यः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

समर्पितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

अहम् - ह.द्.प्र.ए.

भक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.

सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

कृतार्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

सुखी - ह.न.पुं.प्र.ए.
प्रौढा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
दुहिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
स्नेहात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
वरे - अ.अ.पुं.स.ए.
देहे - अ.अ.पुं.स.ए.
कर्तव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

वरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्थितिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
मे - ह.द.ष.ए.
किम् - ह.म.नपुं.प्र.ए.
अशक्ये - अ.अ.नपुं.स.ए.
हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
मोहम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

असि - अदादि.लोट्.म.ए.
भव - भ्वा.लोट्.म.ए.
प्रेष्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए. (यक्)
तुष्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.

स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.
अस्ति - अदा.लट्.प्र.ए.
विचारय - चुरा.लोट्.म.ए.
गाः - अदा.लुङ्.म.ए.

अन्वय : (पूर्वं) देहदेशपरित्यागः (आज्ञाविषयः आसीत् पश्चात्). तृतीयः लोकगोचरः (परित्यागः आज्ञाविषयः जातः). तत्र कथं पश्चात्तापः (कर्तव्यः यतः) अहं सेवकः न च अन्यथा. लौकिकप्रभुवत् कृष्णो कदाचन न द्रष्टव्यः. सर्वं भक्त्या समर्पितं (अतः) कृतार्थो असि, सुखी भव. प्रौढापि दुहिता यद्वत् स्नेहात् वरे न प्रेष्यते तथा देहे न कर्तव्यं अन्यथा (=प्रकारान्तरे) वरो न तुष्यति. लोकवत् चेत् मे स्थितिः स्यात् (तदा) किं स्याद्? इति (त्वं) विचारय. अशक्ये हरिरेव (शरणं) अस्ति. कथञ्चन मोहं मा गाः॥६-९॥

(एवं स्वान्तःकरणप्रबोधनप्रकटनेन स्वीयानां चिन्तादूरीकरणम्)
इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य हितं वचः ॥१०॥
चित्तं प्रति यदाकर्ण्य भक्तो निश्चिन्ततां व्रजेत्॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो अन्तःकरणप्रबोधः सम्पूर्णः ॥

सन्धिविच्छेद :

भक्तः + निश्चिन्ततां = भक्तो निश्चिन्तताम् [उ.गुण.]

निस् + चिन्ततां = निश्चिन्तताम् [श्चु.]

समासविग्रह :

श्रीकृष्णस्य दासः इति श्रीकृष्णदासः [ष.तत्पु.] तस्य श्रीकृष्णदासस्य.

शब्दपरिचय :

इति [नि.]	वचः [ना.]	आ [उ.] कर्ण्य [स.आ.]
श्रीकृष्णदासस्य [ना.]	चित्तम् [ना.]	भक्तः [ना.]
वल्लभस्य [ना.]	प्रति [नि.]	निस् [उ.] चिन्तताम् [ना.]
हितम् [ना.]	यद् [ना.]	व्रजेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

श्रीकृष्णदासस्य [स.] आकर्ण्य [कृद्+स.] भक्तः [कृद्.] निश्चिन्तताम् [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीकृष्णदासस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	चित्तम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
वल्लभस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	यद् - ह.द.नपुं.द्वि.ए.
हितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	भक्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
वचः - ह.स.नपुं.प्र.ए.	निश्चिन्तताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : व्रजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वयः : इति श्रीकृष्णदासस्य वल्लभस्य चित्तं प्रति वचः हितं (अस्ति). यद् आकर्ण्य भक्तो (अपि) निश्चिन्ततां व्रजेत्॥१०॥

।। विवेकधैर्याश्रयः ।।

(१३)

(विवेक [क] धैर्य [ख] -आश्रय [ग] रक्षणावश्यकता)

विवेक - धैर्ये सततं रक्षणीये तथाश्रयः ।।

सन्धिविच्छेद : तथा + आश्रयः = तथाश्रयः [दीर्घ.]

समासविग्रह : विवेकश्च धैर्यं च इति विवेकधैर्ये [द्वन्द्व.]

शब्दपरिचय :

विवेकधैर्ये [ना.] सततम् [नि.] रक्षणीये [ना.] तथा [नि.] आ [उ.] श्रयः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

विवेकधैर्ये [स.] रक्षणीये [कृद.] तथा [तद्धि.] आश्रयः [कृद+स.]

शब्दरूपपरिचय :

विवेकधैर्ये - अ.अ.नपुं.प्र.द्वि. रक्षणीये - अ.अ.नपुं.प्र.द्वि. आश्रयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : विवेकधैर्ये सततं रक्षणीये तथा आश्रयः (रक्षणीयः)

(विवेकस्वरूप [क] लक्षणं तदुपलब्ध्यै च अप्रार्थनम् [१] अनभिमानः [२] हठाभावो [३] अनाग्रहः [४] चेति उपायचतुष्टयम्)

विवेकस्तु हरिः सर्वं निजेच्छातः करिष्यति [क] ।।१।।

प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् स्वाम्यभिप्राय-संशयात्॥
सर्वत्र तस्य सर्वं हि सर्वसामर्थ्यमेव च[1]॥२॥
अभिमानश्च सन्त्याज्यः स्वाम्यधीनत्व-भावनात्॥
विशेषतश्चेदाज्ञा स्याद् अन्तःकरणगोचरः॥३॥
तदा विशेषगत्यादि भाव्यं भिन्नन्तु दैहिकात्[2]॥
आपद्-गत्यादि-कार्येषु हठस्त्याज्यश्च सर्वथा[3]॥४॥
अनाग्रहश्च सर्वत्र धर्माधर्माग्र-दर्शनम्[4]॥
विवेकोऽयं समाख्यातो... ... ...॥

सन्धिविच्छेद :

विवेकः + तु = विवेकस्तु [स.]
निज + इच्छातः = निजेच्छातः [गुण]
प्र + अर्थितः = प्रार्थितः [दीर्घ.]
स्वामि + अभिप्राय =
स्वाम्यभिप्राय [यण्.]
अभिमानः + च = अभिमानश्च [स.श्चु.]
सम् + त्याज्यः = सन्त्याज्यः [प.स.]
स्वामि + अधीनत्व =
स्वाम्यधीनत्व [यण्.]
विशेषतः + चेद् = विशेषतश्चेद् [स.श्चु.]
चेत् + आज्ञा = चेदाज्ञा [जश्त्व.]

स्यात् + अन्त.. = स्यादन्त.. [जश्त्व.]
गति + आदि = गत्यादि [यण्.]
भिन्नम् + तु = भिन्नन्तु [प.स.]
हठः + त्याज्यः = हठस्त्याज्यः [स.]
त्याज्यः + च = त्याज्यश्च [स.श्चु.]
अनाग्रहः + च = अनाग्रहश्च [स.श्चु.]
धर्म + अधर्म + अग्र = धर्माधर्माग्र [दीर्घ.]
विवेकः + अयं =
विवेकोऽयं [उ.गुण.पू.रू.]
समाख्यातः + धैर्यं =
समाख्यातो धैर्यं [उ.गुण.]

समास विग्रह :

- निजा या इच्छा सा निजेच्छा [कर्म] तस्याः निजेच्छातः [पं.तसि.]
- स्वामिनः अभिप्रायः इति स्वाम्यभिप्रायः [ष.तत्पु.]
- स्वाम्यभिप्राये संशयः इति स्वाम्यभिप्रायसंशयः [स.तत्पु.] तस्मात् स्वाम्यभिप्रायसंशयात्

- सर्वं यत् सामर्थ्यं तत् सर्वसामर्थ्यम् [कर्म]
- अधीनस्य भावः अधीनत्वम्, स्वामिनः अधीनत्वम् इति स्वाम्यधीनत्वम् [ष.तत्पु.]
  तस्य भावनम् इति स्वाम्यधीनत्वभावनम् [ष.तत्पु.] तस्मात्
- अन्तःकरणे गोचरः अन्तःकरणगोचरः [स.तत्पु.]
- विशेषा या गतिः सा विशेषगतिः [कर्म]
  विशेषगतिः आदि यस्य तत् विशेषगत्यादि [बहु.]
- आपदः गतिः इति आपद्गतिः [ष.तत्पु.]
  सा आदि येषां तानि आपद्गत्यादीनि [बहु.]
  तानि च कार्याणि आपद्गत्यादिकार्याणि [कर्म] तेषु आपद्-गत्यादि-कार्येषु
- न आग्रहः इति अनाग्रहः [न.तत्पु.] - अग्रे दर्शनम् इति अग्रदर्शनम् [स.तत्पु.]
- न धर्मः इति अधर्मः [न.तत्पु.] धर्मश्च- अधर्मश्च धर्माधर्मौ [द्वन्द्व.]
- धर्माधर्मयोः अग्रदर्शनम् इति धर्माधर्माग्रदर्शनम् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

विवेकः [ना.]	सर्वत्र [नि.]	अन्तःकरण-	
तु [नि.]	तस्य [ना.] हि [नि.]	गोचरः [ना.]	
हरिः [ना.]	सर्वसामर्थ्यम् [ना.]	तदा [नि.]	त्याज्यः [ना.]
सर्वम् [ना.]	एव [नि.]	वि [उ.] शेष-	सर्वथा [नि.]
निजेच्छातः [नि.]	च [नि.]	गत्यादि [ना.]	अनाग्रहः [ना.]
करिष्यति [आ.]	अभि [उ.] मानः [ना.]	भाव्यम् [ना.]	सर्वत्र [नि.]
प्र [उ.] अर्थिते [ना.]	सम् [उ.] त्याज्यः [ना.]	भिन्नम् [ना.]	धर्माधर्माग्र-
वा [नि.] ततः [नि.]	स्वाम्यधीनत्व-	तु [नि.]	दर्शनम् [ना.]
किम् [ना.]	भावनात् [ना.]	दैहिकात् [ना]	विवेकः [ना.]
स्यात् [आ]	वि [उ.] शेषतः [नि]	आपद्-गत्यादि-	अयम् [ना.]
स्वामि-अभि [उ.] प्राय- चेद् [नि.]		कार्येषु [ना.]	सम् [उ.] आ [उ.]
सम् [उ.] शयात् [ना.]	आ [उ.] ज्ञा [ना]	हठः [ना.]	ख्यातः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

निजेच्छातः [तद्धि.]	स्वाम्यधीनत्वभावनात् [स.]	दैहिकात् [तद्धि.]
प्रार्थिते [कृद्+स.]	विशेषतः [तद्धि.]	आपद्-गत्यादि-कार्येषु [स.]
ततः [तद्धि.]	आज्ञा [स.]	त्याज्यः [कृद्.]
स्वाम्यभिप्रायसंशयात् [स.]	अन्तःकरणगोचरः [स.]	सर्वथा [तद्धि.]
सर्वत्र [तद्धि.]	तदा [तद्धि.]	अनाग्रहः [स.]
सर्वसामर्थ्यम् [स.]	विशेषगत्यादि [स.]	सर्वत्र [तद्धि.]
अभिमानः [कृद्+स.]	भाव्यम् [कृद्.]	धर्माधर्माग्रदर्शनम् [स.]
सन्त्याज्यः [कृद्+स.]	भिन्नम् [कृद्.]	समाख्यातः [कृद्.]

शब्दरूपपरिचय :

विवेकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
सर्वम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
प्रार्थिते - अ.अ.पुं.स.ए.
किम् - ह.म.नपुं.प्र.ए.
स्वाम्यभिप्राय-संशयात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.
सर्वसामर्थ्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
अभिमानः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सन्त्याज्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्वाम्यधीनत्व-
भावनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
आज्ञा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

अन्तःकरणगोचरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
विशेषगत्यादि - अ.इ.नपुं.प्र.ए.
भाव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
भिन्नम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
दैहिकात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
आपद्गत्यादिकार्येषु - अ.अ.नपुं.स.ब.
हठः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
त्याज्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अनाग्रहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
धर्माधर्माग्र-दर्शनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
विवेकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
समाख्यातः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

करिष्यति - तनादि.लृट्.प्र.ए.
स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : विवेकस्तु हरिः निजेच्छातः सर्वं करिष्यति (इति अस्ति) (१), प्रार्थिते वा ततः किं स्यात् (न किमपि यतः) स्वाम्यभिप्रायसंशयात्, तस्य हि सर्वत्र सर्वमेव सर्वसामर्थ्यं च (अस्ति) (२). स्वाम्यधीनत्वभावनात् अभिमानश्च संत्याज्यः, अंतःकरणगोचरः आज्ञा विशेषतः चेत् स्यात् तदा विशेषगत्यादि भाव्यं (=कार्यं) (परं) दैहिकात् तु भिन्नं (भाव्यम्). आपद्गत्यादिकार्येषु च हठः सर्वथा त्याज्यः.(४). सर्वत्र अनाग्रहः धर्माधर्माग्रदर्शनम् (च कर्तव्यः). अयं विवेकः समाख्यातः

(धैर्यस्वरूप[ख]लक्षणं तदुपलब्ध्यै च अनाग्रहः[१] सहनं[२] त्यागः[३] असामर्थ्यभावना[४] चेति क्रमिकोपायचतुष्टयम्)

... ... धैर्यन्तु विनिरूप्यते ।।५।।
त्रिदुःखसहनं धैर्यम् आमृतेः सर्वतः सदा[ख] ।।
तक्रवद्[१] देहवद्[२], भाव्यं, जडवद्[३]गोपभार्यवत्[४] ।।६।।
प्रतीकारो यदृच्छातः सिद्धश्चेन्नाग्रही भवेत्[१]।।
भार्यादीनां तथान्येषाम् असतश्चाक्रमं सहेत्[२]।।७।।
स्वयमिन्द्रिय-कार्याणि काय-वाङ्-मनसा त्यजेत्[३]।।
अशूरेणापि कर्तव्यं स्वस्यासामर्थ्य-भावनात्[४]।।८।।
अशक्ये हरिरेवास्ति सर्वमाश्रयतो भवेत् ।।
एतत् सहनम् अत्रोक्तम् ... ...।।

सन्धिविच्छेद :

धैर्यं + तु = धैर्यन्तु [प.स.]
तक्रवत् + देहवत् + भाव्यम्
जडवत् गोप = तक्रवद् देहवद्
भाव्यम् जडवद् गोप [जश्त्व.]
प्रतीकारः + यदृच्छातः =
प्रतीकारो यदृच्छातः [उ.गुण.]

सिद्धः + चेत् = सिद्धश्चेत् [स.श्चु.]
चेत् + न = चेन्न [प.स.]
चेन्न + आग्रही = चेन्नाग्रही [दीर्घ.]
भार्या + आदीनाम् =
भार्यादीनाम् [दीर्घ]
तथा + अन्येषां = तथान्येषां [दीर्घ.]

असतः + च = असतश्च [स.श्चु.]	हरिः + एव = हरिरेव [रेफ.]
च + आक्रमम् = चाक्रमम् [दीर्घ.]	एव + अस्ति = एवास्ति [दीर्घ.]
अशूरेण + अपि = अशूरेणापि [दीर्घ]	आश्रयतः + भवेत् =
स्वस्य + असामर्थ्य =	आश्रयतो भवेत् [उ.गुण]
स्वस्यासामर्थ्य [दीर्घ.]	अत्र + उक्तम् = अत्रोक्तम् [गुण]

समासविग्रह :

- त्रयाणां दुखानां समाहारः त्रिदुःखम् [द्विगु.]
- त्रिदुःखस्य सहनम् त्रिदुःखसहनम् [ष.तत्पु.]
- (भार्याणाम् समूहम् भार्यम्)
- गोपानां भार्यम् गोपभार्यम् [ष.तत्पु.] तद्वत्
- भार्या आदिः येषां ते भार्यादयः [बहु.] तेषां भार्यादीनाम्
- न सत् असत् [न.तत्पु.] तस्य
- इन्द्रियस्य कार्यम् इति इन्द्रियकार्यं [ष.तत्पु.] तानि इन्द्रियकार्याणि
- कायश्च वाक् च मनश्च तेषां समाहार इति कायवाङ्मनः [द्वन्द्व.] तेन कायवाङ्मनसा
- न शूरः इति अशूरः [न.तत्पु.] तेन- न सामर्थ्यम् इति असामर्थ्यम् [न.तत्पु.]
- असामर्थ्यस्य भावनम् इति असामर्थ्यभावनम् [ष.तत्पु.] तस्मात् असामर्थ्यभावनात्
- न शक्यं अशक्यं [न.तत्पु.] तस्मिन् अशक्ये

शब्दपरिचय :

धैर्यम् [ना.]	आ [उ.] मृतेः [ना.]	भाव्यम् [ना.]	सिद्धः [ना.]
तु [नि.]	सर्वतः [नि.]	जडवद् [नि.]	चेत् [नि.] न [नि.]
वि [उ.] नि [उ.] रूप्यते [आ.]	सदा [नि.]	गोपभार्यवत् [नि.]	आ [उ.] ग्रही [ना.]
त्रिदुःखसहनम् [ना.]	तक्रवद् [नि]	प्रती [उ] कारः [ना.]	भवेत् [आ.]
धैर्यम् [ना.]	देहवद् [नि]	यदृच्छातः [नि.]	भार्यादीनाम् [ना.]

तथा [नि]	त्यजेत् [आ.]	अस्ति [आ.]
अन्येषाम् [ना.]	अशूरेण [ना.]	सर्वम् [ना.]
असतः [ना.] च [नि]	अपि [नि.]	आ [उ.] श्रयतः [नि.]
आ [उ] क्रमम् [ना.]	कर्तव्यम् [ना.]	भवेत् [आ.]
सहेत् [आ.]	स्वस्य [ना.]	एतत् [ना.]
स्वयम् [नि.]	असामर्थ्यभावनात् [ना.]	सहनम् [ना.]
इन्द्रियकार्याणि [ना.]	अशक्ये [ना.]	अत्र [नि.]
कायवाङ्मनसा [ना.]	हरिः [ना.] एव [नि.]	उक्तम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

धैर्यम् [तद्धि.]	प्रतीकारः [स.]	इन्द्रियकार्याणि [स.]
विनिरूप्यते [सना.]	यदृच्छातः [तद्धि.]	कायवाङ्मनसा [स.]
त्रिदुःखसहनम् [स.]	सिद्धः [कृद.]	अशूरेण [स.] कर्तव्यं [कृद.]
आमृतेः [कृद+स.]	आग्रही [तद्धि.]	असामर्थ्यभावनात् [स.]
सर्वतः [तद्धि.]	भार्यादीनाम् [स.]	अशक्ये [स.]
(तक्रवद्, देहवद्, जडवद्, गोपभार्यवत्) [तद्धि.]	तथा [तद्धि.]	आश्रयतः [तद्धि.]
	असतः [स.]	सहनम् [कृद.]
भाव्यम् [कृद.]	आक्रमम् [स.]	अत्र [तद्धि.] उक्तम् [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

(धैर्यम्, त्रिदुःखसहनम्, भाव्यम्, सर्वम्, सहनम्, उक्तम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

आमृतेः - अ.इ.स्त्री.पं.ए.	असतः - ह.त.पुं.ष.ए.
प्रतीकारः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	आक्रमम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
सिद्धः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	इन्द्रिय-कार्याणि - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.
आग्रही - ह.न.पुं.प्र.ए.	काय-वाङ्-मनसा - ह.स.नपुं.तृ.ए.
भार्यादीनाम् - अ.इ.पुं.ष.ब.	अशूरेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
अन्येषाम् - अ.अ.पुं.ष.व.	कर्तव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

स्वस्य - अ.अ.पुं.ष.ए. अशक्ये - अ.अ.नपुं.स.ए.
असामर्थ्य-भावनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए. हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :
विनिरूप्यते - चुरादि.लट्.प्र.ए.(यक्)
भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. त्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
सहेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. अस्ति - अदा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : धैर्यं तु विनिरूप्यते (५). आमृतेः सर्वतः सदा त्रिदुःखसहनं धैर्यं (उच्यते). (तत्) तक्रवद्[१], देहवद्[२], जडवद्[३], गोपभार्यवत्[४] भाव्यं (६). यदृच्छातः प्रतीकारः सिद्धः चेत् (तदा तक्रवत्) आग्रही न भवेत्, भार्यादीनां तथा अन्येषां असतः च आक्रमं (देहवत्) सहेत् (७). स्वयं इन्द्रियकार्याणि कायवाङ्मनसा (जडवत्) त्यजेत्, अशूरेणापि स्वस्य असामर्थ्यभावनात् (गोपभार्यवत् धैर्यं) कर्तव्यं (८). अशक्ये हरिरेव (आश्रयः) अस्ति. आश्रयतः सर्वं भवेत्. एतत् सहनम् अत्र उक्तम्

(आश्रयस्वरूप[ग]लक्षणम्)

... ...आश्रयोऽतो निरूप्यते ॥९॥
ऐहिके पारलोके च सर्वथा शरणं हरिः[ग]॥

सन्धिविच्छेद :
आश्रयः + अतः = आश्रयोऽतः [उ.पूर्व.] अतः + निरूप्यते = अतो निरूप्यते [उ.गुण.]

समास विग्रह :
- परश्च असौ लोकः इति परलोकः [कर्म.]
- परलोकस्य इदम् इति पारलोकं तस्मिन् पारलोके

शब्दपरिचय :

आ[उ]श्रयः[ना]	ऐहिके[ना]	सर्वथा[नि.]
अतः[नि]	पारलोके[ना]	शरणम्[ना.]
नि[उ]रूप्यते[आ]	च[नि.]	हरिः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

आश्रयः[स.] अतः[तद्धि.]	ऐहिके[तद्धि.]	सर्वथा[तद्धि.]
निरूप्यते[समा.]	पारलोके[तद्धि.]	शरणम्[कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

आश्रयः - अ.अ.पुं.प्र.ए. ऐहिके - अ.अ.पुं.स.ए. पारलोके - अ.अ.पुं.स.ए.
शरणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए. हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : निरूप्यते - चुरा.लट्.प्र.ए. (यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय :

अतः आश्रयो निरूप्यते. ऐहिके पारलोके च सर्वथा हरिः शरणम् (अस्ति).

(सर्वास्वप्यवस्थासु भगवदाश्रयस्य अनुष्ठेयत्वम्)

दुःखहानौ तथा पापे भये कामाद्यपूरणे॥१०॥
भक्तद्रोहे भक्त्यभावे भक्तैश्चातिक्रमे कृते॥
अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा शरणं हरिः॥११॥
अहङ्कार-कृते चैव पोष्य-पोषण-रक्षणे॥
ष्यातिक्रमणे चैव तथान्तेवास्यतिक्रमे॥१२॥
अलौकिक-मनःसिद्धौ सर्वथा शरणं हरिः॥

सन्धिविच्छेद :

काम + आदि = कामादि [दीर्घ]
कामादि + अपूरणे =
कामाद्यपूरणे [यण्]
भक्ति + अभावे = भक्त्यभावे [यण्]
भक्तैः + च = भक्तैश्च [स.श्चु]
च + अतिक्रमे = चातिक्रमे [दीर्घ.]

च + एव = चैव [वृद्धि]
पोष्य + अतिक्रमणे =
पोष्यातिक्रमणे [दीर्घ.]
तथा + अन्तेवासी = तथान्तेवासी [दीर्घ.]
अन्तेवासी + अतिक्रमे =
अन्तेवास्यतिक्रमे [यण्.]

समास विग्रह :

- दुःखस्य हानिः इति दुःखहानिः [ष.तत्पु.] तस्मिन् दुःखहानौ
- कामः आदिः येषां ते कामादयः [बहु.] - न पूरणम् इति अपूरणम् [न.तत्पु.]
- कामादीनाम् अपूरणम् इति कामाद्यपूरणम् [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- भक्तस्य द्रोहः इति भक्तद्रोहः [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- न भावः इति अभावः [न.तत्पु.] भक्तेः
- अभावः भक्त्यभावः [ष.तत्पु.] तस्मिन् भक्त्यभावे
- न शक्यम् इति अशक्यम् [न.तत्पु.] तस्मिन् अशक्ये
- अहङ्कारेण कृतम् इति अहङ्कारकृतम् [तृ.तत्पु.] तस्मिन् अहङ्कारकृते
- पोषणं च रक्षणम् इति पोषणरक्षणम् [द्वन्द्व.]
- पोष्यानां पोषणरक्षणम् इति पोष्यपोषणरक्षणम् [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- पौष्यानां अतिक्रमणम् इति पौष्यातिक्रमणम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् पोष्यातिक्रमणे
- अन्तेवासिनां अतिक्रमः इति अन्तेवास्यतिक्रमः [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- न लौकिकम् इति अलौकिकम् [न.तत्पु.]
- अलौकिकं च अदः मनश्च इति अलौकिकमनः [कर्म] तस्य सिद्धिः इति अलौकिकमनःसिद्धिः [ष.तत्पु.] तस्याम् अलौकिकमनःसिद्धौ

शव्दपरिचय :

दुःखहानौ [ना.] तथा [नि.] पापे [ना.] भये [ना.] कामाद्यपूरणे [ना.]

भक्तद्रोहे [ना.]	वा [नि.]	च [नि.] एव [नि.]
भक्त्यभावे [ना]	सु [उ] शक्ये [ना.]	पोष्य-पोषण-रक्षणे [ना.]
भक्तैः [ना.] च [नि.]	सर्वथा [नि.]	पोष्य-अति [उ] क्रमणे [ना.]
अति [उ] क्रमे [ना.]	शरणम् [ना.]	तथा [नि.]
कृते [ना.]	हरिः [ना.]	अन्तेवासि-अति [उ] क्रमे [ना]
अशक्ये [ना.]	अहङ्कार-कृते [ना.]	अलौकिक-मनःसिद्धौ [ना.]

वृत्तिपरिचय :

दुःखहानौ [स.]	**भक्तैः [कृद्.]**	**अहङ्कारकृते [स.]**
तथा [तद्धि.]	**अतिक्रमे [स.]**	**पोष्यपोषणरक्षणे [स.]**
कामाद्यपूरणे [स.]	**कृते [कृद्.] अशक्ये [स.]**	**पोष्यातिक्रमणे [स.]**
भक्तद्रोहे [स.]	**सुशक्ये [स.]**	**अन्तेवास्यतिक्रमे [स.]**
भक्त्यभावे [स.]	**सर्वथा [तद्धि.] शरणम् [कृद्.]**	**अलौकिकमनःसिद्धौ [स.]**

शब्दरूपपरिचय :

दुःखहानौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.	शरणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
भक्तैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	हरिः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अशक्ये - अ.अ.नपुं.स.ए.	अन्तेवास्यतिक्रमे - अ.अ.पुं.स.ए.
सुशक्ये - अ.अ.नपुं.स.ए.	अलौकिकमनःसिद्धौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.

(पापे, भये, कामाद्यपूरणे, अहङ्कार-कृते, पोष्य-पोषण-रक्षणे, पोष्यातिक्रमणे) - अ.अ.नपुं.स.ए. (भक्तद्रोहे, भक्त्यभावे, अतिक्रमे, कृते) - अ.अ.पुं.स.ए.

अन्वय : दुःखहानौ तथा पापे, भये, कामाद्यपूरणे, भक्तद्रोहे, भक्त्यभावे, भक्तैः च अतिक्रमे कृते, अशक्ये वा सुशक्ये वा सर्वथा हरिः शरणम् (अस्ति). अहंकारकृते च एव पोष्यपोषणरक्षणे च एव पोष्यातिक्रमणे तथा अन्तेवास्यतिक्रमे अलौकिकमनः सिद्धौ च सर्वथा हरिः शरणम् (अस्ति)

(भगवदाश्रयसिद्ध्यै क्रमिकोपाय[१-४]चतुष्टयम्)

एवं चित्ते सदा भाव्यं वाचा च परिकीर्तयेत्[१]॥१३॥
अन्यस्य भजनं तत्र स्वतोगमनमेव च॥
प्रार्थना कार्यमात्रेऽपि तथान्यत्र विवर्जयेत्[२]॥१४॥
अविश्वासो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः॥
ब्रह्मास्त्रचातकौ भाव्यौ[३] प्राप्तं सेवेत निर्ममः॥१५॥
यथाकथञ्चित् कार्याणि कुर्यादुच्चावचान्यपि॥
किंवा प्रोक्तेन बहुना शरणं भावयेद् हरिम्[४]॥१६॥

सन्धिविच्छेद :

स्वतः + गमनम् = स्वतो गमनम्[उ.गुण.]	कथम् + चित् = कथञ्चित्[प.स.]
कार्यमात्रे + अपि = कार्यमात्रेऽपि[उ.पू.रू.]	कुर्यात् + उच्च = कुर्यादुच्च[जशत्व.]
तथा + अन्यत्र = तथान्यत्र[दीर्घ.]	उच्च + अवचानि = उच्चावचानि[दीर्घ.]
अविश्वासः + न = अविश्वासो न[उ.गुण.]	अवचानि + अपि = अवचान्यपि[यण.]
बाधकः + तु = बाधकस्तु[स.]	प्र + उक्तेन = प्रोक्तेन[गुण]
ब्रह्म + अस्त्र = ब्रह्मास्त्र[दीर्घ.]	भावयेत् + हरिम् = भावयेद् हरिम्[जशत्व.]
प्र + आप्तम् = प्राप्तम्[दीर्घ.]	

समासविग्रह :

- न विश्वासः इति अविश्वासः[न.तत्पु.]
- ब्रह्मास्त्रं च चातकः च ब्रह्मास्त्रचातकौ[द्वन्द्व.]
- उच्चानि च अवचानि च इति उच्चावचानि[द्वन्द्व.]

शब्दपरिचय :

एवम्[नि.]	भाव्यम्[ना.]	परि[उ.]कीर्तयेत्[आ.]	तत्र[नि.]
चित्ते[ना.]	वाचा[ना.]	अन्यस्य[ना.]	स्वतः[नि.]
सदा[नि.]	च[नि.]	भजनम्[ना.]	गमनम्[ना]

एव [नि.]	बाधकः [ना.]	
प्रार्थना [ना.]	तु [नि.] सः [ना.]	कुर्याद् [आ.]
कार्यमात्रे [ना.]	ब्रह्मास्त्रचातकौ [ना.]	उच्चावचानि [ना.]
अपि [नि.] तथा [नि.]	भाव्यौ [ना.]	किंवा [नि.]
अन्यत्र [नि.]	प्र [उ.]-आप्तम् [ना.]	प्र [उ.]उक्तेन [ना.]
वि [उ.]वर्जयेत् [आ.]	सेवेत [आ.]	बहुना [ना.]
अविश्वासः [ना.]	निर् [उ.]-ममः [ना.]	शरणम् [ना.]
न [नि.] कर्तव्यः [ना.]	यथाकथञ्चित् [नि.]	भावयेद् [आ.]
सर्वथा [नि.]	कार्याणि [ना.]	हरिम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

भाव्यम् [कृद.]	अन्यत्र [तद्धि.]	प्राप्तम् [कृद+स.]
भजनम् [कृद.]	अविश्वासः [स.]	निर्ममः [स.]
तत्र [तद्धि.] स्वतः [तद्धि.]	कर्तव्यः [कृद.]	कार्याणि [कृद.]
गमनम् [कृद.]	सर्वथा [तद्धि.]	उच्चावचानि [स.]
प्रार्थना [कृद.]	बाधकः [कृद.]	प्रोक्तेन [कृद+स.]
कार्यमात्रे [तद्धि.]	ब्रह्मास्त्रचातकौ [स.]	शरणम् [कृद.]
तथा [तद्धि.]	भाव्यौ [कृद.]	भावयेद् [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

चित्ते - अ.अ.नपुं.स.ए.	कार्यमात्रे - अ.अ.नपुं.स.ए.
भाव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	(अविश्वासः, कर्तव्यः,
वाचा - ह.च.स्त्री.तृ.ए.	बाधकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अन्यस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
भजनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	ब्रह्मास्त्रचातकौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.
गमनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	भाव्यौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.
प्रार्थना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	प्राप्तम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

चत्वार· + अर्था = चत्वारोऽर्था [उ.पू.रू.]

अर्थाः + मनीषि = अर्था मनीषि [वि.लो.]

जीव + ईश्वर = जीवेश्वर [गुण]

अलौकिकाः + तु = अलौकिकास्तु [स]

वेद + उक्ताः = वेदोक्ताः [गुण.]

लौकिकाः + ऋषिभिः =

लौकिका ऋषिभिः [वि.लो.]

प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण]

प्रोक्ताः + तथैव = प्रोक्तास्तथैव [स]

तथा + एव = तथैव [वृद्धि.]

तथैव + ईश्वर = तथैवेश्वर [गुण.]

लौकिकान् + तु =

लौकिकांस्तु [नश्छ अनु स.]

वेदात् + आद्याः = वेदादाद्याः [जश्त्व.]

आद्याः + यतः = आद्या यतः [वि.लो.]

नीतिः + च = नीतिश्च [स.श्चु.]

साधकानि + इति = साधकानीति [दीर्घ.]

तत् + निर्णय = तन्निर्णय [अनुना.]

निर्णयः + उच्यते = निर्णय उच्यते [वि.लो.]

समासविग्रह :

- धर्मश्च अर्थश्च कामश्च मोक्षश्च इति धर्मार्थकाममोक्षाः [द्वन्द्व.]
- धर्मार्थकाममोक्षा इति आख्या येषां ते धर्मार्थकाममोक्षाख्याः [बहु.]
- जीवश्च ईश्वरश्च इति जीवेश्वरौ [द्वन्द्व.]
  तयोः विचारः इति जीवेश्वरविचारः [ष.तत्पु.] तेन
- न लौकिकः इति अलौकिकः [न.तत्पु.] ते अलौकिकाः
- वेदे उक्तः इति वेदोक्तः [स.तत्पु.] ते वेदोक्ताः
- साध्यं च साधनं च साध्यसाधने [द्वन्द्व.]
- साध्यसाधनाभ्यां संयुताः इति साध्यसाधनसंयुताः [तृ.तत्पु.] ते
- ईश्वरस्य शिक्षा इति ईश्वरशिक्षा तया ईश्वरशिक्षया [ष.तत्पु.]
- धर्मस्य शास्त्रम् इति धर्मशास्त्रम् [ष.तत्पु.] तानि धर्मशास्त्राणि
- कामस्य शास्त्रम् इति कामशास्त्रम् [ष.तत्पु.]
- त्रयाणां वर्गाणां समाहारः त्रिवर्गम् [द्विगु.]
- त्रिवर्गस्य साधकम् इति त्रिवर्गसाधकम् [ष.तत्पु.] तानि त्रिवर्गसाधकानि
- तेषां निर्णयः इति तन्निर्णय. [ष.तत्पु.]

- भक्त्यादयः एव मार्गाः इति भक्त्यादिमार्गाः [कर्म]

शब्दपरिचय :

एवम् [नि.]	सर्वेषाम् [ना.]	कलौ [ना.]	दुः [उ.] साध्या [ना.]
आ [उ.] श्रयणम् [ना.]	सर्वदा [नि.]	भक्त्यादिमार्गाः [ना.]	इति [नि.]
प्र [उ.] उक्तम् [ना.]	हितम् [ना.]	हि [नि.]	मे [ना.] मतिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

आश्रयणम् [कृद्+स.]	सर्वदा [तद्धि.] हितम् [कृद्]	दुःसाध्या [कृद्+स.]
प्रोक्तम् [कृद्+स.]	भक्त्यादिमार्गा [स.]	मतिः [कृद्]

शब्दरूपपरिचय :

आश्रयणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	
प्रोक्तम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	भक्त्यादिमार्गा - अ.अ.पुं.प्र.ब.
सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.	दुःसाध्याः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
हितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	मे - ह.द.ष.ए.
कलौ - अ.इ.पुं.स.ए.	मतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

अन्वय : एवम् सर्वेषां सर्वदा हितम् आश्रयणं प्रोक्तं. कलौ भक्त्यादिमार्गा हि दुःसाध्या इति. मे मतिः (अस्ति) ॥१७॥

॥ कृष्णाश्रयस्तोत्रम् ॥

(१४)

[लोकाश्रय[क] वेदाश्रय[ख] वैफल्यनिरूपणपूर्वकं कृष्णाश्रय[ग] साफल्यनिरूपणाय षण्णां धर्माङ्गानां काल[१] देश[२] द्रव्य[३] कर्तृ[४] मन्त्र[५] कर्मणाम्[६] सम्प्रति असाधकता कर्म[घ] ज्ञान[ङ] भक्ति[च] प्रपत्ति[छ] मार्गानुसारेणापि श्रीकृष्णाश्रयस्यैव कर्तव्यतानिरूपणम्]

(लोकाश्रय[क] वैफल्यनिरूपणपूर्वकं कृष्णाश्रय[ग] साफल्यनिरूपणाय षड्विधधर्माङ्गेषु काल[१]स्य सम्प्रति असाधकतानिरूपणम्)

सर्वमार्गेषु नष्टेषु कलौ[१] च खलधर्मिणि ।
पाषण्डप्रचुरे लोके[क] कृष्णएव गतिर्मम ॥१॥

सन्धिविच्छेद :

कृष्णः + एव = कृष्णएव[वि.लो.]   गतिः + मम = गतिर्मम[रेफ.]

समासविग्रह :

- सर्वे च ते मार्गाश्च सर्वमार्गाः[कर्म.] तेषु सर्वमार्गेषु
- खलः धर्मो यस्मिन् सः खलधर्मः[बहु.] तस्मिन् खलधर्मिणि
- पाषण्डः प्रचुरो यस्मिन् स पाषण्डप्रचुरः[बहु.] तस्मिन् पाषण्डप्रचुरे

शब्दपरिचय :

(सर्वमार्गेषु, नष्टेषु, कलौ, खलधर्मिणि)[ना.] च[नि.] पाषण्ड-प्र[उ.]चुरे[ना.]
लोके[ना.] कृष्णः[ना.] एव[नि.] गतिः[ना.] मम[ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वमार्गेषु [स.] नष्टेषु [कृद्] खलधर्मिणि [स.] पाषण्डप्रचुरे [स.] गतिः [कृत्.]

शब्दरूपपरिचय :

सर्वमार्गेषु - अ.अ.पुं.स.व.

नष्टेषु - अ.अ.पुं.स.व.	लोके - अ.अ.पुं.स.ए.
कलौ - अ.इ.पुं.स.ए.	कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
खलधर्मिणि - ह.न.पुं.स.ए.	गतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
पाषण्डप्रचुरे - अ.अ.पुं.स.ए.	मम - ह.पुं.ष.ए.

अन्वय : खलधर्मिणि कलौ सर्वमार्गेषु नष्टेषु पाषण्डप्रचुरे लोके च (जाते) कृष्णः एव मम गतिः (अस्तु)॥१॥

(''कृष्णएव गतिर्मम''इत्यस्य व्याकरणं सर्वत्र समानत्वात् केवल-प्रथमश्लोके एव दीयते.)

(लोकाश्रय [क]वैफल्यनिरूपणपूर्वकं कृष्णाश्रय [ग] साफल्यनिरूपणाय षड्विधधर्माङ्गिषु देश [२]स्य सम्प्रति असाधकतानिरूपणम्)

म्लेच्छाक्रान्तेषु देशेषु [२] पापैक-निलयेषु च॥
सत्पीडा-व्यग्र-लोकेषु [क] कृष्णएव गतिर्मम॥२॥

सन्धिविच्छेद :

म्लेच्छ + आक्रान्तेषु = म्लेच्छाक्रान्तेषु [दीर्घ.]　　पाप + एक = पापैक [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- म्लेच्छैः आक्रान्तः इति म्लेच्छाक्रान्तः [तृ तत्पु.] तेषु म्लेच्छाक्रान्तेषु
- एक एव निलयः इति एकनिलयः [कर्म]

- पापानाम् एकनिलयः इति पापैकनिलयः [प.तत्पु.] तेषु
- सतां पीडा इति सत्पीडा [प.तत्पु.] तया व्यग्रः सत्पीडाव्यग्रः [तृ.तत्पु.]
  सत्पीडाव्यग्रश्च असौ लोकश्च सत्पीडाव्यग्रलोकः [कर्म]
  तेषु सत्पीडा-व्यग्र-लोकेषु

शव्दपरिचय :

म्लेच्छ-आ[उ]क्रान्तेषु [ना.] देशेषु [ना.] पापैक-नि[उ]लयेषु [ना.]
च [नि.] सत्पीडा-व्यग्र-लोकेषु [ना.]

वृत्तिपरिचय :

म्लेच्छाक्रान्तेषु [स.] पापैक-निलयेषु [स.] सत्पीडा-व्यग्र-लोकेषु [स.]

शव्दरूपपरिचय :

(म्लेच्छाक्रान्तेषु, देशेषु, पापैकनिलयेषु, सत्पीडाव्यग्रलोकेषु) - अ.अ.पुं.स.ब.

अन्वय : म्लेच्छाक्रान्तेषु पापैक-निलयेषु च देशेषु (सत्सु) सत्पीडा-व्यग्र-लोकेषु (सत्सु) कृष्णः एव मम गतिः (अस्तु)॥२॥

(लोकाश्रय [क]वैफल्यनिरूपणपूर्वकं कृष्णाश्रय [ग]साफल्यनिरूपणाय षड्विध-धर्माङ्गेषु द्रव्य [३]स्य सम्प्रति असाधकतानिरूपणम्)

गङ्गादि-तीर्थ [३]-वर्येषु दुष्टैरेवावृतेष्विह [क]॥
तिरोहिताधिदैवेषु कृष्णएव गतिर्मम॥३॥

सन्धिविच्छेद :

गङ्गा + आदि = गङ्गादि [दीर्घ.]
दुष्टैः + एव = दुष्टैरेव [रेफ.]
आवृतेषु + इह = आवृतेष्विह [यण.]
एव + आवृतेषु = एवावृतेषु [दीर्घ.]
तिरोहित + अधि = तिरोहिताधि [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- तीर्थेषु वर्यः इति तीर्थवर्यः [स तत्पु.] - गङ्गा आदिर्येषां तानि गङ्गादीनि [बहु.]
- गङ्गादीनि यानि तीर्थवर्याणि इति गङ्गादितीर्थवर्याणि [कर्म] तेषु गङ्गादि-तीर्थ-वर्येषु
- दैवे इति अधिदैवम् [अव्य.]
- तिरोहितम् अधिदैवं यस्मिन् तत् तिरोहिताधिदैवः [बहु]
  तेषु तिरोहिताधिदैवेषु

शब्दपरिचय :

गङ्गादि-तीर्थ-वर्येषु [ना.]   दुष्टैः [ना.]   एव [नि.]   आ [उ.] वृतेषु [ना.]
इह [नि.]   तिरोहित-अधि [उ.] दैवेषु [ना.]

वृत्तिपरिचय :

गङ्गादि-तीर्थ-वर्येषु [स.]   दुष्टैः [कृद.]   आवृतेषु [कृद्+स.]   इहः [तद्धि.]
तिरोहिताधिदैवेषु [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(गङ्गादि-तीर्थ-वर्येषु, आवृतेषु, तिरोहिताधिदैवेषु) - अ.अ.पुं.स.व.
दुष्टैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

अन्वय : इह गङ्गादि-तीर्थ-वर्येषु दुष्टैरेव आवृतेषु तिरोहिताधिदैवेषु (सत्सु) कृष्णएव मम गतिः (अस्तु)॥३॥

(वेदाश्रय [ख]वैफल्यनिरूपणपूर्वकं कृष्णाश्रय [ग]साफल्यनिरूपणाय षड्विधधर्मिषु कर्तुः [४] सम्प्रति असाधकतानिरूपणम्)

अहङ्कारविमूढेषु सत्सु [ख] पापानुवर्तिषु॥
लाभ-पूजार्थ-यत्नेषु [४] कृष्णएव गतिर्मम॥४॥

सन्धिविच्छेद :

अहम् + कार = अहङ्कार [प.स.] पाप + अनुवर्तिषु = पापानुवर्तिषु [दीर्घ.]

पूजा + अर्थ = पूजार्थ [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- अहङ्कारेण विमूढः इति अहङ्कारविमूढः [तृ.तत्पु.] तेषु
- पापानाम् अनुवर्ती इति पापानुवर्ती [ष.तत्पु.] तेषु पापानुवर्तिषु
- लाभश्च पूजा च इति लाभ-पूजे [द्वन्द्व.]
- लाभपूजयोः अर्थम् इति लाभपूजार्थं [ष.तत्पु.]
- लाभपूजार्थमेव यत्नो येषां ते लाभपूजार्थयत्नाः [बहु.] तेषु लाभपूजार्थयत्नेषु

शब्दपरिचय :

अहङ्कार-वि [उ.] मूढेषु [ना.] सत्सु [ना.] पाप-अनु [उ.] वर्तिषु [ना.]

लाभ-पूजार्थ-यत्नेषु [ना.]

वृत्तिपरिचय : अहङ्कारविमूढेषु [स.] पापानुवर्तिषु [स.] लाभ-पूजार्थ-यत्नेषु [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अहङ्कारविमूढेषु - अ.अ.पुं.स.ब. पापानुवर्तिषु - ह.न.पुं.स.ब.

सत्सु - ह.त.पुं.स.ब. लाभ-पूजार्थ-यत्नेषु - अ.अ.पुं.स.ब.

अन्वय : सत्सु अहङ्कारविमूढेषु पापानुवर्तिषु लाभ-पूजार्थ-यत्नेषु (च) (जातेषु) कृष्णएव मम गतिः (अस्तु)॥४॥

(वेदाश्रय [ख]वैफल्यनिरूपणपूर्वकं कृष्णाश्रय [ग]साफल्यनिरूपणाय षड्विधध-मज्ञिषु मन्त्रस्य ऽ सम्प्रति असाधकतानिरूपणम्)

अपरिज्ञान-नष्टेषु मन्त्रे ऽष्ववव्रतयोगिषु॥

तिरोहितार्थदेवेषु [ख] कृष्णएव गतिमम ॥५॥

सन्धिविच्छेद :

मन्त्रेषु + अव्रत = मन्त्रेष्वव्रत [यण्.] तिरोहित + अर्थ = तिरोहितार्थ [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न परिज्ञानम् इति अपरिज्ञानम् [न.तत्पु.]
- तेन नष्टः इति अपरिज्ञाननष्टः [तृ.तत्पु.] तेषु अपरिज्ञाननष्टेषु
- अविद्यमानः व्रतो येषां ते अव्रताः [बहु.]
- अव्रतेषु योगो येषां ते अव्रतयोगिनः [बहु.] तेषु
- अर्थश्च देवश्च इति अर्थदेवौ [द्वन्द्व.]
- तिरोहितौ अर्थदेवौ येषां ते तिरोहितार्थदेवाः [बहु.] तेषु तिरोहितार्थदेवेषु

शब्दपरिचय :

अ-परि [उ.] ज्ञान-नष्टेषु [ना.] मन्त्रेषु [ना.] अव्रतयोगिषु [ना.] तिरोहितार्थदेवेषु [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अपरिज्ञान-नष्टेषु [स.] अव्रतयोगिषु [स.] तिरोहितार्थदेवेषु [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(अपरिज्ञान-नष्टेषु, मन्त्रेषु, तिरोहितार्थदेवेषु) - अ.अ.पुं.स.ब.
अव्रतयोगिषु - ह.न.पुं.स.व.

अन्वय : अपरिज्ञान-नष्टेषु अव्रतयोगिषु तिरोहितार्थदेवेषु मन्त्रेषु (च सत्सु) कृष्णएव मम गतिः (अस्तु) ॥५॥

(वेदाश्रय [ख] वैफल्यनिरूपणपूर्वकं कृष्णाश्रय [ग] साफल्यनिरूपणाय षड्विधध-

मञ्जिषु कर्मणः [६] सम्प्रति असाधकतानिरूपणम्)

नाना-वाद-विनष्टेषु सर्व-कर्म[६]-व्रतादिषु[ख]।।
पाषण्डैक - प्रयत्नेषु कृष्णएव गतिर्मम ।।६।।

सन्धिविच्छेद :

व्रत + आदिषु = व्रतादिषु [दीर्घ.]   पाषण्ड + एक = पाषण्डैक [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- नाना ये वादाः नानावादाः [कर्म]
- नानावादैः विनष्टः इति नानावादविनष्टः [तृ.तत्पु.] तेषु नानावादविनष्टेषु
- कर्माणि च व्रतानि च इति कर्मव्रतानि [द्वन्द्व.]
- सर्वाणि च तानि कर्मव्रतानि इति सर्वकर्मव्रतानि [कर्म]
- सर्वकर्मव्रतानि आदिः येषां ते सर्वकर्मव्रतादयः [बहु.] तेषु सर्वकर्मव्रतादिषु
- पाषण्डे एकः प्रयत्नो येषां ते पाषण्डैकप्रयत्नाः [बहु.] तेषु

शब्दपरिचय :

नाना-वाद-वि[उ.]नष्टेषु[ना.]   सर्व-कर्म-व्रतादिषु[ना.]   पाषण्डैक-प्र[उ.]यत्नेषु[ना.]

वृत्तिपरिचय :

नाना-वाद-विनष्टेषु[स.]   सर्व-कर्म-व्रतादिषु[स.]   पाषण्डैकप्रयत्नेषु[स.]

शब्दरूपपरिचय :

नानावादविनष्टेषु - अ.अ.पुं.स.व. सर्वकर्मव्रतादिषु - अ.इ.पुं.स.व. पाषण्डैकप्र-यत्नेषु- अ.अ.पुं.स.व.

अन्वय : नाना-वाद-विनष्टेषु पाषण्डैकप्रयत्नेषु सर्व-कर्म-व्रतादिषु (सत्सु) कृष्णएव मम गतिः (अस्तु) ।।७।।

(कृष्णाश्रय [ग]साफल्यनिरूपणाय कर्ममार्ग [ग]दृष्ट्यापि तदावश्यकतानिरूपणम्)

अजामिलादिदोषाणां नाशको [य]ऽनुभवे स्थितः ।।
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः [ग] कृष्णएव गतिर्मम ।।७।।

सन्धिविच्छेद :

अजामिल + आदि = अजामिलादि [दीर्घ.]
नाशकः + अनुभवे = नाशकोऽनुभवे [उ.पू.रू.] ज्ञापित + अखिल = ज्ञापिताखिल [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- अजामिलः आदिः येषां ते अजामिलादयः [बहु.]
  तेषां दोषाः इति अजामिलादिदोषाः [ष.तत्पु.]
  तेषाम् अजामिलादिदोषाणाम्
- अखिलं च अदः माहात्म्यम् इति अखिलमाहात्म्यम् [कर्म]
- ज्ञापितम् अखिलमाहात्म्यं येन स ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः [बहु.]

शब्दपरिचय :

अजामिलादिदोषाणाम् [ना.] नाशकः [ना.] अनु [उ.]भवे [ना.] स्थितः [ना.]
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अजामिलादिदोषाणाम् [स.] नाशकः [कृद.] अनुभवे [स.] स्थितः [कृद.]
ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अजामिलादिदोषाणाम् - अ.अ.पुं.ष.व. अनुभवे - अ.अ.पुं.स.ए.
(नाशकः, स्थितः, ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : अजामिलादिदोषाणां नाशकः अनुभवे स्थितः ज्ञापिताखिलमाहात्म्यः कृष्णः एव मम गतिः (अस्तु) ॥७॥

(कृष्णाश्रय[ग]साफल्यनिरूपणाय ज्ञानोपासनामार्ग[र]दृष्ट्चापि तदावश्यकता-निरूपणम्)

प्राकृताः सकला देवा गणितानन्दकं बृहत्[र]॥
पूर्णानन्दो हरिस्[ग]तस्मात् कृष्णएव गतिर्मम ॥८॥

सन्धिविच्छेद :

सकलाः + देवाः + गणिता =
सकला देवा गणित... [वि.लो.]
गणित + आनन्दकम् =
गणितानन्दकम्[दीर्घ.]

पूर्ण + आनन्दः = पूर्णानन्दः[दीर्घ.]
पूर्णानन्दः + हरिः =
पूर्णानन्दो हरिः[उ.गुण.]
हरिः + तस्मात् = हरिस्तस्मात्[स.]

समासविग्रह :

- कलया सहितः इति सकलः[बहु.] ते सकलाः
- गणितः आनन्दो यत्र तत् गणितानन्दम्[बहु.]
  तदेव (स्वार्थे कः प्रत्ययः) गणितानन्दकम्
- पूर्णः आनन्दो यत्र स पूर्णानन्दः[बहु]

शब्दपरिचय :

प्राकृताः[ना.] देवाः[ना.] बृहत्[ना.] हरिः[ना.]
सकलाः[ना.] गणित-आ[उ.]नन्दकम्[ना.] पूर्ण-आ[उ.]नन्दः[ना.] तस्मात्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

प्राकृताः[तद्धि.] सकला[स.]
गणितानन्दकम्[तद्धि] पूर्णानन्दः[स.]

शव्दरूपपरिचय :

(प्राकृताः, सकलाः, देवाः) - अ.अ.पुं.प्र.व.
पूर्णानन्दः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
गणितानन्दकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
बृहत् - ह.त.नपुं.प्र.ए.
तस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.

अन्वय : सकलाः देवाः प्राकृताः (सन्ति), बृहत् गणितानन्दकम् (अस्ति), हरिः पूर्णानन्दः (अस्ति) तस्मात् कृष्णएव मम गतिः (अस्तु) ॥८॥

(कृष्णाश्रय[ग]साफल्यनिरूपणाय भक्तिमार्ग[ल]दृष्ट्यापि तदावश्यकतानिरूपणम्)

विवेकधैर्यभक्त्यादि[ल]-रहितस्य विशेषतः ।।
पापासक्तस्य दीनस्य कृष्ण[ग]एव गतिर्मम ।।९।।

सन्धिविच्छेद :

भक्ति + आदि = भक्त्यादि [यण्.] पाप + आसक्तस्य = पापासक्तस्य [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- विवेकश्च धैर्यश्च भक्तिश्च इति विवेकधैर्यभक्तयः [द्वन्द्व.]
  ते आदिः येषां ते विवेकधैर्यभक्त्यादयः [बहु.]
  तैः रहितः इति विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितः [तृ.तत्पु.]
  तस्य विवेकधैर्यभक्त्यादिरहितस्य
- पापेषु आसक्तः इति पापासक्तः [स.तत्पु.] तस्य पापासक्तस्य

शब्दपरिचय :

विवेकधैर्यभक्त्यादि-रहितस्य [ना.]
पाप-आ[उ.]सक्तस्य [ना.]
वि[उ.]शेषतः [नि.]
दीनस्य [ना.]

वृत्तिपरिचय :

विवेकधैर्यभक्त्यादि-रहितस्य [ग] विशेषतः [नदि] पापासक्तस्य [म.]

शब्दरूपपरिचय :

(विवेकधैर्यभक्त्यादि-रहितस्य, पापासक्तस्य, दीनस्य) - अ.अ.पुं.ष.ए.

अन्वय : विवेकधैर्यभक्त्यादि-रहितस्य विशेषतः पापासक्तस्य दीनस्य मम कृष्णएव गतिः (अस्तु) ॥९॥

(कृष्णाश्रय [ग]·साफल्यनिरूपणाय प्रपत्तिमार्ग [व]दृष्ट्यापि तदावश्यकतानिरू-पणम्)

सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्रैवाखिलार्थकृत् ।।
शरणस्थ [व]समुद्धारं कृष्णं [ग] विज्ञापयाम्यहम् ।।१०।।

सन्धिविच्छेद :

सर्वत्र + एव = सर्वत्रैव [वृद्धि.]	उद् + हारम् = उद्धारम् [पू.स.]
सर्वत्रैव + अखिल + अर्थ = सर्वत्रैवाखिलार्थ [दीर्घ.]	विज्ञापयामि + अहम् = विज्ञापयाम्यहम् [यण्.]

समासविग्रह :

- सर्वं च तत् सामर्थ्यं इति सर्वसामर्थ्यम् [कर्म]
  तेन सहितः इति सर्वसामर्थ्यसहितः [तृ.तत्पु.]
- न खिलं इति अखिलम् [न.तत्पु.]
- अखिलाः च ते अर्थाश्च इति अखिलार्थाः [कर्म]
- अखिलार्थानां कृत् इति अखिलार्थकृत् [ष.तत्पु.]
- शरणे तिष्ठति इति शरणस्थः [उप.स.]
- शरणस्थानां समुद्धारः इति शरणस्थसमुद्धारः [ष.तत्पु.] तं शरणस्थसमुद्धारम्

शब्दपरिचय :

सर्वसामर्थ्यसहितः [ना] अखिलार्थकृत् [ना] वि [उ.] ज्ञापयामि [आ.]
सर्वत्र [नि.] एव [नि.] शरणस्थ-सम् [उ] उत् [उ] धारम् [ना.] कृष्णम् [ना.] अहम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वसामर्थ्यसहितः [स.] सर्वत्र [तद्धि.] अखिलार्थकृत् [स.] शरणस्थसमुद्धारम् [स.]
विज्ञापयामि [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

सर्वसामर्थ्यसहितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अखिलार्थकृत् - ह.त.पुं.प्र.ए.
शरणस्थसमुद्धारम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
कृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
अहम् - ह.द.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : विज्ञापयामि - क्र्या.लट्.उ.ए. (णिच्)

अन्वय : सर्वसामर्थ्यसहितः सर्वत्र एव अखिलार्थकृत् (कृष्णः अस्ति). (तं) कृष्णं शरणस्थसमुद्धारम् अहं विज्ञापयामि॥१०॥

कृष्णाश्रयमिदं स्तोत्रं यः पठेत् कृष्णसन्निधौ॥
तस्याश्रयो भवेत् कृष्ण " इति श्रीवल्लभोऽब्रवीत्॥११॥

॥इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं कृष्णाश्रयस्तोत्रं सम्पूर्णम्॥

सन्धिविच्छेद :

कृष्ण + आश्रयम् = कृष्णाश्रयम् [दीर्घ.]
तस्याश्रयः + भवेत् = तस्याश्रयो भवेत् [उ.गुण.]
सम् + निधौ = सन्निधौ [प.स.]
कृष्णः + इति = कृष्ण इति [वि.लो.]
तस्य + आश्रयः = तस्याश्रयः [दीर्घ.]
श्रीवल्लभः + अब्रवीत् = श्रीवल्लभोऽब्रवीत् [उ.पू.रू.]

समासविग्रह :

- कृष्णः आश्रीयते (आसमन्तात् सेव्यते) येन इति कृष्णाश्रयः [बहु.] वा
  कृष्णः आश्रयो येन इति कृष्णाश्रयः [बहु.] वा
  कृष्णः आश्रयो यस्मात् इति कृष्णाश्रयः [बहु.]
- कृष्णस्य सन्निधिः इति कृष्णसन्निधिः [ष.तत्पु] तस्मिन् कृष्णसन्निधौ

शब्दपरिचय :

कृष्ण-आ [उ.] श्रयम् [ना.]	कृष्ण-सम् [उ.]-नि [उ.] धौ [ना.]	कृष्णः [ना.]
इदम् [ना.]	तस्य [ना.]	इति [नि.]
स्तोत्रम् [ना.]	आ [उ.] श्रयः [ना.]	श्रीवल्लभः [ना.]
यः [ना.] पठेत् [आ.]	भवेत् [आ.]	अब्रवीत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

कृष्णाश्रयम् [स.] कृष्णसन्निधौ [स.] आश्रयः [स.] श्रीवल्लभः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

कृष्णाश्रयम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

इदम् - ह.म.नपुं.द्वि.ए.	तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.
स्तोत्रम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	आश्रयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
यः - ह.द.पुं.प्र.ए.	कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कृष्णसन्निधौ - अ.इ.पुं.स.ए.	श्रीवल्लभः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

पठेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. अब्रवीत् - अदादि.लङ्.प्र.ए.

अन्वय : इदं कृष्णाश्रयम् स्तोत्रं यः कृष्णसन्निधौ पठेत् तस्य कृष्णः आश्रयो भवेत् इति श्रीवल्लभः अब्रवीत्॥११॥

॥ चतुःश्लोकी ॥

(१५)

(पुष्टिभक्तिमार्गीयधर्मपुरुषार्थस्वरूपनिरूपणम्)

सर्वदा सर्वभावेन भजनीयो व्रजाधिपः ॥
स्वस्यायमेव धर्मोहि नान्यः क्वापि कदाचन ॥१॥

सन्धिविच्छेद :

भजनीयः + व्रजाधिपः = भजनीयो व्रजाधिपः [उ.गुण.] धर्मः + हि = धर्मो हि [उ.गुण.]
व्रज + अधिपः = व्रजाधिपः [दीर्घ.] न + अन्यः = नान्यः [दीर्घ.]
स्वस्य + अयम् = स्वस्यायम् [दीर्घ.] क्व + अपि = क्वापि [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- सर्वश्च असौ भावश्च इति सर्वभावः [कर्म] तेन सर्वभावेन
- व्रजस्य अधिपः इति व्रजाधिपः [प.तत्पु.]

शव्दपरिचय :

सर्वदा [नि.]	व्रज-अधि [उ.]पः [ना.]	एव [नि.]	अन्यः [ना.]
सर्वभावेन [ना.]	स्वस्य [ना.]	धर्मः [ना.]	क्व [नि.] अपि [नि.]
भजनीयः [ना.]	अयम् [ना.]	हि [नि.] न [नि.]	कदाचन [नि.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वदा [तद्धि.] सर्वभावेन [स.] भजनीयः [कृद.] व्रजाधिपः [स.] क्व [तद्धि.]

शव्दरूपपरिचय :

सर्वभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

भजनीयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए.
व्रजाधिपः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	धर्मः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्वस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	अन्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : सर्वदा सर्वभावेन व्रजाधिपः भजनीयः (अस्ति). स्वस्य अयम् एव हि धर्मः (अस्ति). कदाचन क्व अपि अन्यः (धर्मः) न (अस्ति) ॥१॥

(पुष्टिभक्तिमार्गीयार्थपुरुषार्थस्वरूपनिरूपणम्)

एवं सदा स्म कर्तव्यं स्वयमेव करिष्यति ॥
प्रभुः सर्वसमर्थोहि ततो निश्चिन्ततां व्रजेत् ॥२॥

सन्धिविच्छेद :

सर्वसमर्थः + हि = सर्वसमर्थोहि [उ.गुण.]

ततः + निश्चिन्ततां = ततो निश्चिन्तताम् [उ.गुण.]

निस् + चिन्ततां = निश्चिन्तताम् [श्चु.]

समासविग्रह :

- सर्वस्मिन् समर्थः इति सर्वसमर्थः [स.तंत्पु.]

शव्दपरिचय :

एवम् [नि.]	स्वयम् [नि.]	सर्वसमर्थः [ना.]
सदा [नि.]	एव [नि.]	हि [नि] ततः [नि.]
स्म [नि]	करिष्यति [आ.]	निस् [उ.] चिन्तताम् [ना.]
कर्तव्यम् [ना.]	प्र [उ.] भुः [ना.]	व्रजेत् [आ]

वृत्तिपरिचय :
कर्तव्यम्[कृद.] प्रभुः[स.] ततः[तद्धि.] सर्वसमर्थः[स.] निश्चिन्तताम्[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :
कर्तव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए. सर्वसमर्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
प्रभुः - अ.उ.पुं.प्र.ए. निश्चिन्तताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :
करिष्यति - तना.लृट्.प्र.ए. व्रजेत् - भ्वा.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : (वैष्णवैः) एवं (प्रकारेण) सदा कर्तव्यं (भवति). (यतः) प्रभुः हि सर्वसमर्थः (अस्ति स) स्वयम् एव (वैष्णवानां सर्वकार्यं) करिष्यति स्म ततः निश्चिन्ततां व्रजेत्॥२॥

(पुष्टिभक्तिमार्गीयकामपुरुषार्थस्वरूपनिरूपणम्)
यदि श्रीगोकुलाधीशो धृतः सर्वात्मना हृदि।
ततः किमपरं ब्रूहि लौकिकैर्वैदिकैरपि॥३॥

सन्धिविच्छेद :
श्रीगोकुल + अधि + ईशः = श्रीगोकुलाधीशः[दीर्घ.]
श्रीगोकुलाधीशः + धृतः = श्रीगोकुलाधीशो धृतः[उ.गुण.]
सर्व + आत्मना = सर्वात्मना[दीर्घ.]
लौकिकैः + वैदिकैः + अपि = लौकिकैर्वैदिकैरपि[रेफ.]

समास विग्रह :
श्रीगोकुलस्य अधीशः इति श्रीगोकुलाधीशः[ष.तत्पु.]
सर्वो यः आत्मा स सर्वात्मा[कर्म] तेन सर्वात्मना.

शब्दपरिचय :

यदि [नि]	हृदि [ना.]	ब्रूहि [आ.]
श्रीगोकुल-अधि [उ] शः [ना]	ततः [नि.]	लौकिकैः [ना.]
धृतः [ना.]	किम् [ना.]	वैदिकैः [ना.]
सर्वात्मना [ना.]	अपरम् [ना.]	अपि [नि]

वृत्तिपरिचय :

श्रीगोकुलाधीशः [स.]	सर्वात्मना [स.]	अपरम् [स.]
धृतः [कृद.]	ततः [तद्धि.]	लौकिकैः [तद्धि.] वैदिकैः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीगोकुलाधीशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	किम् - ह.म.नपुं.प्र.ए.
धृतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	अपरम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सर्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए.	लौकिकैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
हृदि - ह.द.नपुं.स.ए.	वैदिकैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

धातुरूपपरिचय : ब्रूहि - अदादि.लोट्.म.ए.

अन्वय : यदि श्रीगोकुलाधीशो हृदि सर्वात्मना धृतः (चेत्) ततः लौकिकैः वैदिकैः अपि अपरं (फलम्) किम् (भवेद् इति) ब्रूहि. वा लौकिकैः वैदिकैः (साधनैः) अपि अपरं (उत्कृष्टं फलं) किम् (अपि भवेद् तत् त्वं) ब्रूहि॥३॥

(पुष्टिभक्तिमार्गीयमोक्षपुरुषार्थस्वरूपनिरूपणम्)

अतः सर्वात्मना शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः॥
स्मरणं भजनं चापि न त्याज्यमिति मे मतिः॥४॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता चतुःश्लोकी सम्पूर्णा॥

सन्धिविच्छेद :

सर्व + आत्मना = सर्वात्मना [दीर्घ.] गोकुल + ईश्वरः = गोकुलेश्वर [गुण.]
शश्वत् + गोकुल = शश्वद् गोकुल [अश्त्व.] च + अपि = चापि [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- सर्वो यः आत्मा (अन्तःकरण) स सर्वात्मा [कर्म.] तेन सर्वात्मना
- गोकुलस्य ईश्वरः इति गोकुलेश्वरः [प.तत्पु.]
  तस्य पादौ इति गोकुलेश्वरपादौ [प.तत्पु.] तयोः गोकुलेश्वरपादयोः

शब्दपरिचय :

अतः [नि.]	गोकुलेश्वरपादयोः [ना.]	च [नि.] अपि [नि.] न [नि.]
सर्वात्मना [ना.]	स्मरणम् [ना.]	त्याज्यम् [ना.]
शश्वद् [नि.]	भजनम् [ना.]	इति [नि.] मे [ना.] मतिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अतः [तद्धि.]	गोकुलेश्वरपादयोः [स.]	भजनम् [कृद.]
सर्वात्मना [स.]	स्मरणम् [कृद.]	त्याज्यम् [कृद.] मतिः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

सर्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए. (स्मरणम् भजनम् त्याज्यम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
गोकुलेश्वरपादयोः - अ.अ.पुं.ष.द्वि. मे - ह.द.ष.ए. मतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

अन्वय : अतः शश्वद् गोकुलेश्वरपादयोः सर्वात्मना स्मरणं भजनं च अपि न त्याज्यम् इति मे मतिः (अस्ति) ॥४॥

॥ भक्तिवर्धिनी ॥

(१६)

(दृढबीजभावानाम्[क] पुष्टिजीवानां कृते भक्तेः फलात्मकप्रवृद्ध्युपायाः)

यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथोपायो निरूप्यते॥
बीजभावे दृढे तु स्यात् त्यागाच्छ्रवणकीर्तनात्॥१॥

सन्धिविच्छेद :

तथा + उपायः = तथोपायः [गुण.] उपायः + निरूप्यते = उपायो निरूप्यते [उ.गुण.]
उप + अय = उपायः [दीर्घ.] त्यागात् + श्रवण = त्यागाच्छ्रवण [जश्त्व.श्चु.छ.]

समासविग्रह :

- बीजम् एव भावः इति बीजभावः[कर्म.] तस्मिन् बीजभावे
- श्रवणं च कीर्तनं च तयोः समाहार श्रवणकीर्तनम्[द्वन्द्व.] तस्मात् श्रवणकीर्तनात्.

शब्दपरिचय :

यथा [नि.]	स्यात् [आ.]	नि [उ.] रूप्यते [आ.]	तु [नि.]
भक्तिः [ना.]	तथा [नि.]	बीजभावे [ना.]	त्यागात् [ना.]
प्र [उ.] वृद्धाः [ना.]	उप [उ.] अयः [ना.]	दृढे [ना.]	श्रवणकीर्तनात् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

यथा [तद्धि.]	प्रवृद्धा [कृद+म.]	निरूप्यते [सना]	दृढे [कृद.]
भक्तिः [कृद]	तथा [तद्धि.]	बीजभावे [स.]	श्रवणकीर्तनात् [स.]

शव्दरूपपरिचय :

भक्तिः = अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

प्रवृद्धा = अ.आ.स्त्री.प्र.ए. | दृढे = अ.अ.पुं.स.ए.

उपायः = अ.अ.पुं.प्र.ए. | त्यागात् = अ.अ.पुं.पं.ए.

बीजभावे = अ.अ.पुं.स.ए. | श्रवणकीर्तनात् = अ.अ.नपुं.पं.ए.

धातुरूपपरिचय :

निरूप्यते = चुरा.लट्.प्र.ए. (यक् प्रत्ययान्त) स्यात् = अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : यथा भक्तिः प्रवृद्धा स्यात् तथा उपायः निरूप्यते. बीजभावे दृढे तु त्यागात् श्रवणकीर्तनात् (भक्तिः प्रवृद्धा) स्यात्॥१॥

(अदृढबीजभावानाम् अव्यावृत्तानाम्[ख/१] व्यावृत्तानां[ख/२] पुष्टिजीवानां कृते भक्तेः फलात्मकप्रवृद्ध्युपायाः)

बीजदार्ढ्यप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः ।।
अव्यावृत्तो भजेत् कृष्णं पूजया श्रवणादिभिः[ख/१]।।२।।
व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं श्रवणादौ न्यसेत् सदा[ख/२]।।

सन्धिविच्छेद :

प्रकारः + तु = प्रकारस्तु[स.]

अ-वि + आवृत्त = अ-व्यावृत्त[यण्.] व्यावृत्तः + अपि = व्यावृत्तोऽपि[उ.पू.रू.]

अव्यावृतः + भजेत् = अव्यावृतो भजेत्[उ.गुण.] श्रवण + आदौ = श्रवणादौ[दीर्घ.]

श्रवण + आदि = श्रवणादि[दीर्घ.] नि + असेत् = न्यसेत्[यण्.]

समासविग्रह :

- बीजस्य दार्ढ्यम् इति बीजदार्ढ्यम्[ष.तत्पु.]
- बीजदार्ढ्यस्य प्रकारः इति बीजदार्ढ्यप्रकारः[ष.तत्पु.]

- स्वस्य धर्मः इति स्वधर्मः [प.तत्पु.] तस्मात् स्वधर्मतः [प.तसि.]
- न व्यावृत्तः इति अव्यावृत्तः [न.तत्पु.]
- श्रवणम् आदिः येषां तानि श्रवणादीनि [बहु.] तैः श्रवणादिभिः
- श्रवणं आदिर्यस्य (साधनस्य) तत् श्रवणादि [बहु.] तस्मिन् श्रवणादौ

शब्दपरिचय :

बीजदाढर्च-प्र [उ.]कारः [ना.]	भजेत् [आ.]	
तु [नि.]	कृष्णम् [ना.]	हरौ [ना.]
गृहे [ना.]	पूजया [ना.]	चित्तम् [ना.]
स्थित्वा [स.आ.]	श्रवणादिभिः [ना.]	श्रवणादौ [ना.]
स्वधर्मतः [नि.]	वि [उ.]-आ [उ.]वृत्तः [ना.]	नि [उ.]असेत् [आ.]
अ-वि [उ.]-आ [उ.]वृत्तः [ना.]	अपि [नि.]	सदा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

बीजदाढर्चप्रकारः [स.]	स्वधर्मतः [स+तद्धि.]	श्रवणादिभिः [स.]
स्थित्वा [कृद.]	अव्यावृत्तः [स.]	व्यावृत्तः [कृद.] श्रवणादौ [स.]

शब्दरूपपरिचय :

बीजदाढर्चप्रकारः = अ.अ.पुं.प्र.ए.	श्रवणादिभिः = अ.इ.नपुं.तृ.ब.
गृहे = अ.अ.नपुं.स.ए.	व्यावृत्तः = अ.अ.पुं.प्र.ए.
अव्यावृत्तः = अ.अ.पुं.प्र.ए.	हरौ = अ.इ.पुं.स.ए.
कृष्णम् = अ.अ.पुं.द्वि.ए.	चित्तम् = अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
पूजया = अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	श्रवणादौ = अ.इ.नपुं.स.ए.

धातुरूपपरिचय : भजेत् = भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. न्यसेत् = दिवा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : बीजदाढर्चप्रकारस्तु गृहे स्थित्वा स्वधर्मतः अव्यावृत्तः (सन्)

पूजया श्रवणादिभिः कृष्णं भजेत् (२). व्यावृत्तोऽपि हरौ चित्तं (स्थापयित्वा) श्रवणादौ सदा न्यसेत्.

(अदृढबीजस्य व्यावृत्तस्य [ख-२] जीवस्य प्रेम [य]-आसक्ति [र]-व्यसन [ल]सोपानक्रमेण बीजभावदृढतायां [व] रागविनाशादिना कृतार्थता च)

ततः प्रेम [य] तथासक्तिः [र] व्यसनं [ल] च यदा भवेत्॥३॥
बीजं तदुच्यते शास्त्रे दृढं [व] यन्नापि नश्यति॥
स्नेहाद् रागविनाशः स्याद् [य] आसक्त्या स्याद् गृहारुचिः [र]॥४॥
गृहस्थानां बाधकत्वम् अनात्मत्वं च भासते॥
यदा स्याद् व्यसनं कृष्णे [ल] कृतार्थः [व] स्यात् तदैव हि॥५॥

सन्धिविच्छेद :

तथा + आसक्तिः = तथासक्तिः [दीर्घ.]
वि + असनं = व्यसनम् [यण्.]
आसक्तिः + व्यसनं = आसक्तिर्व्यसनम् [रेफ.]
यत् + नापि = यन्नापि [अनु.]
न + अपि = नापि [दीर्घ.]
स्नेहात् + राग = स्नेहाद् राग [जश्त्व.]
स्यात् + आसक्त्या = स्याद् आसक्त्या [जश्त्व.]
गृह + अरुचिः = गृहारुचिः [दीर्घ.]
स्यात् + व्यसनं = स्याद् व्यसनम् [जश्त्व.]
कृत + अर्थः = कृतार्थः [दीर्घ.]
तदा + एव = तदैव [वृद्धि.]

समास विग्रह :

- रागस्य विनाशः इति रागविनाशः [ष.तत्पु.]
- न रुचिः इति अरुचिः [न.तत्पु.] गृहे अरुचिः इति गृहारुचिः [स.तत्पु.]
- गृहे तिष्ठति इति गृहस्थः [उप.स.]
- आत्मनः भावः आत्मत्वम् न आत्मत्वम् इति अनात्मत्वम् [न.तत्पु.] तं अनात्मत्वम्
- कृतः(सम्पादितः) अर्थः येन सः कृतार्थः [बहु.]

शब्दपरिचय :

ततः [नि.]	तद् [ना.]	राग-वि [उ.] नाशः [ना.]	भासते [आ]
प्रेम [ना.]	उच्यते [आ.]	स्याद् [आ.]	यदा [नि]
तथा [नि.]	शास्त्रे [ना.]	आ [उ] सक्त्या [ना.]	व्यसनम् [ना.]
आसक्तिः [ना.]	दृढम् [ना.]	गृहारुचिः [ना.]	कृष्णे [ना]
व्यसनम् [ना.]	यत् [ना.] न [नि.]	गृहस्थानाम् [ना.]	कृतार्थः [ना.]
च [नि.] यदा [नि.]	अपि [नि.]	बाधकत्वम् [ना.]	तदा [नि.]
भवेत् [आ.]	नश्यति [आ.]	अनात्मत्वम् [ना.]	एव [नि.]
बीजम् [ना.]	स्नेहाद् [ना.]	च [नि.]	हि [नि.]

वृत्तिपरिचय :

ततः [तद्धि.]	उच्यते [सना.]	गृहस्थानाम् [स.]
तथा [तद्धि.]	दृढम् [कृद.]	बाधकत्वम् [तद्धि.]
आसक्तिः [कृद्+स.]	रागविनाशः [स.]	अनात्मत्वम् [स.]
व्यसनम् [कृद्+स.]	आसक्त्या [कृद्+स.]	कृतार्थः [स.]
यदा [तद्धि.]	गृहारुचिः [स.]	तदा [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

प्रेम = ह.न.नपुं.प्र.ए.

आसक्तिः = अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	रागविनाशः = अ.अ.पुं.प्र.ए.
व्यसनम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.	आसक्त्या = अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
बीजम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.	गृहारुचिः = अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
तद् = ह.द्.नपुं.प्र.ए.	गृहस्थानाम् = अ.अ.पुं.ष.ब.
शास्त्रे = अ.अ.नपुं.स.ए.	(बाधकत्वम्, अनात्मत्वम्,
दृढम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.	व्यसनम्) = अ.अ.नपुं.प्र.ए.
यत् = ह.द.नपुं.प्र.ए.	कृष्णे = अ.अ.पुं.स.ए.
स्नेहात् = अ.अ.पुं.पं.ए.	कृतार्थः = अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

भवेत् = भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

उच्यते = अदा.लङ्.प्र.ए. (यक्)　　स्याद् = अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

नश्यति = दिवा.लट्.प्र.ए.　　भासते = भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : ततः प्रेम तथा आसक्तिः च (भवति) यदा व्यसनं भवेत्, (तदा) तत् बीजं शास्त्रे दृढम् उच्यते यत् न अपि नश्यति. स्नेहाद् रागविनाशः स्यात्. आसक्त्या गृहारुचिः स्यात्, गृहस्थानां बाधकत्वम् अनात्मत्वं च भासते, यदा कृष्णे व्यसनं (स्यात्) तदैव हि कृतार्थः स्यात्।।५।।

(भगवति जातव्यसनस्यापि व्यावृत्तस्य सर्वदा गृहएव निवासः भक्तिभावबाधको भवतीति गृहत्यागप्रसंशा)

तादृशस्यापि सततं गेहस्थानं विनाशकम्।।
त्यागं कृत्वा यतेद् यस्तु तदर्थार्थैकमानसः।।६।।
लभते सुदृढां भक्तिं सर्वतोऽप्यधिकां पराम्।।

सन्धिविच्छेद :

तादृशस्य + अपि = तादृशस्यापि [दीर्घ.]

यतेत् + सः = यतेद् यः [जश्त्व.]　　तदर्थार्थ + एक = तदर्थार्थैक [वृद्धि.]

यः + तु = यस्तु [स.]　　सर्वतः + अपि = सर्वतोऽपि [उ.पू.रू.]

तदर्थ + अर्थ = तदर्थार्थ [दीर्घ.]　　अपि + अधिकाम् = अप्यधिकाम् [यण.]

समासविग्रह :

- गेह एव स्थानम् इति गेहस्थानम् [कर्म]
- स (कृष्णः) अर्थो यस्याः सा तदर्था (भक्तिः) [बहु.]
  तस्याः अर्थः इति तदर्थार्थः [ष.तत्पु] (भगवान्)

तस्मिन् एकं मानसं यस्य सः तदर्थार्थैकमानसः [बहु.]

शव्दपरिचय :

तादृशस्य [ना.]	कृत्वा [स.आ.]	सु [उ.] दृढाम् [ना.]
अपि [नि.]	यतेद् [आ.]	भक्तिम् [ना.]
सततम् [नि.]	यः [ना.]	सर्वतः [नि.]
गेहस्थानम् [ना.]	तु [नि.]	अपि
वि [उ.] नाशकम् [ना.]	तदर्थार्थैकमानसः [ना.]	अधिकाम् [ना.]
त्यागम् [ना.]	लभते [आ.]	पराम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

तादृशस्य [तद्धि.]	विनाशकम् [कृद्+स.]	तदर्थाथैकमानसः [स.]	भक्तिम् [कृद्.]
गेहस्थानम् [स.]	कृत्वा [कृद्.]	सुदृढाम् [कृद्+स.]	सर्वतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

तादृशस्य = अ.अ.पुं.ष.ए.	तदर्थार्थैकमानसः = अ.अ.पुं.प्र.ए.
गेहस्थानम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सुदृढाम् = अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
विनाशकम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.	भक्तिम् = अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.
त्यागम् = अ.अ.पुं.द्वि.ए.	अधिकाम् = अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
यः = ह.द.पुं.प्र.ए.	पराम् = अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

यतेत् = भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.　　　　लभते = भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : तादृशस्यापि सततं गेहस्थानं विनाशकं (भवेत् तस्मात्) त्यागं कृत्वा तु यः तदर्थार्थैकमानसः (सन्) यतेत्, (सः) सुदृढां सर्वतोऽपि अधिकां परां भक्तिं लभते.

(गृहत्यागानुकल्पो=भगवत्सेवाकथापरैः भगवदीयैः सह निवासः तत्प्रकारश्च)

त्यागे बाधकभूयस्त्वं दुःसंसर्गात् तथान्नतः ।।७।।
अतः स्थेयं हरिस्थाने तदीयैः सह तत्परैः ।।
अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति ।।८।।

सन्धिविच्छेद : तथा + अन्नतः = तथान्नतः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- बाधकानाम् भूयस्त्वम् इति बाधकभूयस्त्वम् [ष.तत्पु.]
- हरेः स्थानम् इति हरिस्थानम् [ष.तत्पु.] तत्र हरिस्थाने
- तस्मिन् परः इति तत्परः [स.तत्पु.] तैः तत्परैः
- न दूरम् इति अदूरम् [न.तत्पु.] तस्मिन् अदूरे

शब्दपरिचय :

त्यागे [ना.]	स्थेयम् [ना.]	वि [उ.] प्र [उ.] कर्षे [ना.]
बाधकभूयस्त्वम् [ना.]	हरिस्थाने [ना.]	वा [नि.]
दुः [उ.] -सम् [उ.] सर्गात् [ना.]	तदीयैः [ना.]	यथा [नि.]
तथा [नि.]	सह [नि.]	चित्तम् [ना.]
अन्नतः [नि.]	तत्परैः [ना.]	न [नि.]
अतः [नि.]	अदूरे [ना.]	दुष्यति [आ.]

वृत्तिपरिचय :

बाधकभूयस्त्वम् [स.]	अतः [तद्धि.]	तत्परैः [स.]
दुःसंसर्गात् [स.]	स्थेयम् [कृद.]	अदूरे [स.]
तथा [स.]	हरिस्थाने [स.]	विप्रकर्षे [स.]
अन्नतः [तद्धि.]	तदीयैः [तद्धि.]	यथा [तद्धि.]

शव्दरूपपरिचय :

त्यागे = अ.अ.पुं.स.ए.	तदीयैः = अ.अ.पुं.तृ.व.
बाधकभूयस्त्वम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तत्परैः = अ.अ.पुं.तृ.व.
दुःसंसर्गात् = अ.अ.पुं.पं.ए.	अदूरे = अ.अ.नपुं.स.ए.
स्थेयम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.	विप्रकर्षे = अ.अ.पुं.स.ए.
हरिस्थाने = अ.अ.नपुं.स.ए.	चित्तम् = अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : दुष्यति = दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वय :

त्यागे दुःसंसर्गात् तथा अन्नतः बाधकभूयस्त्वं (भवति). अतः हरिस्थाने तत्परैः तदीयैः सह अदूरे विप्रकर्षे वा यथा चित्तं न दुष्यति (तथा) स्थेयम्॥८॥

(स्वगृहे स्वकीयस्य वा गृहेऽपि सेवाकथापरायणस्य कदापि नाशो न भवतीति सिद्धान्तसंक्षेपः)

सेवायां वा कथायां वा यस्यासक्तिर्दृढा भवेत्।।
यावज्जीवं तस्य नाशो न क्वापीति मतिर्मम॥९॥

सन्धिविच्छेद :

यस्य + आसक्तिः = यस्यासक्तिः = [दीर्घ.]

आसक्तिः + दृढा = आसक्तिर्दृढा [रेफ.]	क्व + अपि = क्वापि [दीर्घ.]
यावत् + जीवं = यावज्जीवम् [अन्त्य.,श्चु.]	अपि + इति = अपीति [दीर्घ.]
नाशः + न = नाशो न [उ.गुण.]	मतिः + मम = मतिर्मम [रेफ.]

समासविग्रह :

- (जीवनमेव जीवः) यावान् जीवः इति यावज्जीवम् [अव्य.]

शब्दपरिचय :

सेवायाम् [ना.]	आ [उ] सक्तिः [ना.]	तस्य [ना.]	अपि [नि.]
वा [नि.]	दृढाम् [ना.]	नाशः [ना.]	इति [नि.]
कथायाम् [ना.]	भवेत् [आ.]	न [नि.]	मतिः [ना.]
यस्य [ना.]	यावज्जीवम् [नि.]	क्व [नि.]	मम [ना.]

वृत्तिपरिचय :

आसक्तिः [कृद्+स.]	दृढा [कृद्.]	यावज्जीवम् [स.]
क्व [तद्धि.]	मतिः [कृद्.]	

शब्दरूपपरिचय :

सेवायाम् = अ.आ.स्त्री.स.ए.

कथायाम् = अ.आ.स्त्री.स.ए.

तस्य = ह.द.पुं.ष.ए.

यस्य = ह.द.पुं.ष.ए.

नाशः = अ.अ.पुं.प्र.ए.

आसक्तिः = अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

मतिः = अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

दृढा = अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

मम = ह.द.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय : भवेत् = भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय :

सेवायां कथायां (च) वा सेवायां वा कथायां यस्य आसक्तिः यावज्जीवं दृढा भवेत् तस्य नाशो क्वापि न (भवति) इति मम मतिः (अस्ति) ।।९।।

(भक्तिभावस्य बाधसम्भावनायाम् एकान्ते वासो न इष्टः)

बाधसम्भावनायान्तु नैकान्ते वास इष्यते।।
हरिस्तु सर्वतो रक्षां करिष्यति न संशयः ।।१०।।

सन्धिविच्छेद :

सम्भावनायाम् + तु = सम्भावनायान्तु [प.स.]

न + एकान्ते = नैकान्ते [वृद्धि]　　　हरिः + तु = हरिस्तु [स]

वासः + इष्यते = वास इष्यते [वि.लो.]　　　सर्वतः + रक्षां = सर्वतो रक्षाम् [उ.गुण.]

समास विग्रह :

- बाधस्य सम्भावना इति बाधसम्भावना [ष.तत्पु] तस्यां बाधसम्भावनायाम्

शब्दपरिचय :

बाध-सम् [उ.]-भावनायाम् [ना.]	वासः [ना.]	रक्षाम् [ना.]
तु [नि.]	इष्यते [आ.]	करिष्यति [आ.]
न [नि.]	हरिः [ना.]	न
एकान्ते [ना.]	सर्वतः [नि.]	सम् [उ.]शयः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

बाधसम्भावनायाम् [स.]　　इष्यते [सना.]　　सर्वतः [तद्धि.]　　संशयः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

बाधसम्भावनायाम् = अ.आ.स्त्री.स.ए.	हरिः = अ.इ.पुं.प्र.ए.
एकान्ते = अ.अ.पुं.स.ए.	रक्षाम् = अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
वासः = अ.अ.पुं.प्र.ए.	संशयः = अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

इष्यते = तुदा.लट्.प्र.ए. (यक्)　　　करिष्यति = तना.लृट्.प्र.ए.

अन्वय : बाधसम्भावनायां तु एकान्ते वासः न इष्यते. हरिः तु सर्वतः रक्षां करिष्यति (अत्र) संशयः न (अस्ति)

(ग्रन्थोपसंहारः एतद्ग्रन्थपाठफलञ्च)

इत्येवं भगवच्छास्त्रं गूढतत्त्वं निरूपितम्॥
य एतत् समधीयीत तस्यापि स्याद् दृढा रतिः ॥११॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचिता भक्तिवर्धिनी सम्पूर्णा।

सन्धिविच्छेद :

इति + एवम् = इत्येवम् [यण्.]
भगवत् + शास्त्रम् = भगवच्छास्त्रम् [श्चु.छ.]
यः + एतत् = य एतत् [वि.लो.]
तस्य + अपि = तस्यापि [दीर्घ.]
स्यात् + दृढा = स्याद् दृढा [जश्त्व.]

समासविग्रह :

- भगवतः शास्त्रम् इति भगवच्छास्त्रम् [ष.तत्पु.]
- गूढं तत्त्वं यस्य तत् गूढतत्त्वम् [बहु]

शब्दपरिचय :

इति [नि.]	नि [उ.] रूपितम् [ना.]	तस्य [ना.] अपि [नि.]
एवम् [नि.]	यः [ना.]	स्याद् [आ.]
भगवच्छास्त्रम् [ना.]	एतत् [ना.]	दृढा [ना.]
गूढतत्त्वम् [ना.]	सम् [उ.] अधीयीत [आ.]	रतिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

भगवच्छास्त्रम् [स.] गूढतत्त्वम् [स.] निरूपितम् [कृद.] दृढा [कृद.] रतिः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

(भगवच्छास्त्रम्, गूढतत्त्वम्, निरूपितम्) = अ.अ.नपुं.प्र.ए.
यः = ह.द.पुं.प्र.ए. एतद् = ह.द.नपुं.द्वि.ए. तस्य = ह.द.पुं.ष.ए.

दृढा = अ.आ.स्त्री.प्र.ए.　　रतिः = अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

समधीयीत = अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.　　स्याद् = अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : इति एवं गूढतत्त्वं भगवच्छास्त्रं निरूपितम्. यः एतत् समधीयीत तस्यापि दृढा रतिः स्यात्॥११॥

॥ जलभेदः ॥

(१७)

("कूप्याभ्यः स्वाहा...सर्वाभ्यः स्वाहा"इति श्रुति (तैत्ति.संहि.७।४।१२) - वचने निरूपिताः भगवत्कथाप्रवक्तृणां अप्रकीर्णभावाः [१-१९] विप्रकीर्णभावाः [२०] चेति भेदाभ्यां विंशतिविधजलभेदसदृशाः तत्र अप्रकीर्णभावाः-विषयासक्तप्रवक्तृणां भावाः [क/१-५] मुमुक्षुप्रवक्तृणां भावाः [ख/६-१८] विमुक्तप्रवक्तृणां भावाः [ग/१९] इति उपभेदैः त्रिविधाः. तत्र विप्रकीर्णभावानाम् [२०] उपभेदाः अपरिगणिताः)

नमस्कृत्य हरिं वक्ष्ये तद्गुणानां विभेदकान्॥
भावान् विंशतिधा भिन्नान् सर्व-सन्देह-वारकान्॥१॥
गुणभेदास्तु तावन्तो यावन्तोहि जले मताः॥

सन्धिविच्छेद :

नमः + कृत्य = नमस्कृत्य [स.]	तावन्तः + यावन्तः = तावन्तो
सम् + देह = सन्देह [प.स.]	यावन्तो [उ.गुण.]
गुणभेदाः + तु = गुणभेदास्तु [स.]	यावन्तः + हि = यावन्तो हि [उ.गुण.]

समासविग्रह :

- तस्य गुणः इति तद्गुणः [प.तत्पु.] तेषां तद्गुणानाम्
- सर्वे च ते सन्देहाश्च इति सर्वसन्देहाः [कर्म]
- सर्वसन्देहानाम् वारकः इति सर्वसन्देहवारकः [प.तत्पु.] तान् सर्वसन्देहवारकान्
- गुणानाम् भेदः इति गुणभेदः: [प.तत्पु.] ते गुणभेदाः

शब्दपरिचय :

नमस्कृत्य [स.आ.]	भावान् [ना]	तु [नि]
हरिम् [ना.]	विंशतिधा [नि.]	तावन्तः [ना]
वक्ष्ये [आ.]	भिन्नान् [ना.]	यावन्तः [ना.]
तद्गुणानाम् [ना.]	सर्व-सन्देह-वारकान् [ना.]	हि [नि.] जले [ना.]
वि [उ.]भेदकान् [ना.]	गुणभेदाः [ना.]	मताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

नमस्कृत्य [कृद.]	विंशतिधा [तद्धि.]	गुणभेदाः [स.]
तद्गुणानाम् [स.]	भिन्नान् [कृद.]	यावन्तः [तद्धि.]
विभेदकान् [कृद्+स.]	सर्वसन्देहवारकान् [स.]	तावन्तः [तद्धि.] मताः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

(भावान्, भिन्नान्, सर्व-सन्देह-वारकान्) - अ.अ.पुं.द्वि.ब.

हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.	तावन्तः - ह.त.पुं.प्र.ब.
तद्गुणानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.	यावन्तः - ह.त.पुं.प्र.ब.
विभेदकान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.	जले - अ.अ.नपुं.स.ए.
गुणभेदाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	मताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय : वक्ष्ये - अदा.लृट्.उ.ए.

अन्वय : हरिं नमस्कृत्य तद्गुणानां विभेदकान् विंशतिधा भिन्नान् सर्वसन्देहवारकान् भावान् (अहं) वक्ष्ये.(१). यावन्तः हि भेदाः जले मताः गुणभेदास्तु तावन्तः (सन्ति)

(''कूप्याभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः प्रथमो विषयासक्त-प्रवक्तुः अनिन्द्यो भावः [क-१])

गायकाः कूपसङ्काशा 'गन्धर्वा' इति विश्रुताः ॥२॥
कूपभेदास्तु यावन्तस्तावन्तस्तेपि सम्मताः ॥

सन्धिविच्छेद :

कूपसङ्काशाः + गन्धर्वाः + इति =	यावन्तः + तावन्तः + तेपि =
कूपसङ्काशा गन्धर्वा इति [वि.लो.]	यावन्तस्तावन्तस्तेपि [स.]
कूपभेदाः + तु = कूपभेदास्तु [स.]	ते + अपि = तेपि [पू.रू.]

समासविग्रह :

- कूपस्य सङ्काशः इति कूपसङ्काशः [ष.तत्पु.] ते कूपसङ्काशाः
- कूपानां भेदः इति कूपभेदः [ष.तत्पु.] ते कूपभेदाः

शब्दपरिचय :

गायकाः [ना.]	इति [नि.]	तु [नि.]	ते [ना.]
कूपसङ्काशाः [ना.]	वि [उ.]श्रुताः [ना.]	यावन्तः [ना.]	अपि [नि.]
गन्धर्वा [ना.]	कूपभेदाः [ना.]	तावन्तः [ना.]	सम् [उ.]मताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

गायकाः [कृद.]	विश्रुताः [कृद+स.]	सम्मताः [कृद+स.]
कूपसङ्काशाः [स.]	कूपभेदाः [स.]	यावन्तः [तद्धि.] तावन्तः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

(गायकाः, कूपसङ्काशाः, गन्धर्वाः, विश्रुताः, कूपभेदाः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

यावन्तः - ह.त.पुं.प्र.ब.	ते - ह.द.पुं.प्र.ब.
तावन्तः - ह.त.पुं.प्र.ब.	सम्मताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : गन्धर्वा इति विश्रुताः गायकाः कूपसङ्काशा (सन्ति). यावन्तः

तु कूपभेदाः तावन्तः तेऽपि सम्मताः

("कूल्याभ्यः स्वाहा"वचनोक्तजलसदृशः द्वितीयो विषयासक्त-प्रवक्तुः अनिन्द्यो भावः [क-२])

'कुल्याः' पौराणिकाः प्रोक्ताः पारम्पर्ययुता भुवि ।।३।।

सन्धिविच्छेद :

प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण]   युताः + भुवि = युता भुवि [वि.लो.]

समासविग्रह :

- परंपरायाः भावः पारंपर्यम् तेन युतः पारम्पर्ययुतः [तृ.तत्पु.] ते

शब्दपरिचय :

कुल्याः [ना.] पौराणिकाः [ना.] प्र [उ.] उक्ताः [ना.] पारम्पर्ययुताः [ना.] भुवि [ना.]

वृत्तिपरिचय :

पौराणिकाः [तद्धि.] प्रोक्ताः [कृद्+स.] पारम्पर्ययुताः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(कुल्याः, पौराणिकाः, प्रोक्ताः, पारम्पर्ययुताः) - अ.अ. पुं.प्र.ब.

भुवि - अ.उ.स्त्री.स.ए.

अन्वय : भुवि पारम्पर्ययुताः पौराणिकाः कुल्याः प्रोक्ताः ।।३।।

("विकर्याभ्यः स्वाहा"वचनोक्तजलसदृशः तृतीयो विषयासक्त-प्रवक्तुः निन्द्यो भावः [क-३])

क्षेत्रप्रविष्टास्ते चापि संसारोत्पत्तिहेतवः ।।

सन्धिविच्छेद :

क्षेत्रप्रविष्टाः + ते = क्षेत्रप्रविष्टास्ते [स.]

च + अपि = चापि [दीर्घ.] संसार + उत्पत्ति = संसारोत्पत्ति [गुण]

समासविग्रह :

- क्षेत्रे प्रविष्टः इति क्षेत्रप्रविष्टः [स.तत्पु.] ते क्षेत्रप्रविष्टाः
- संसारस्य उत्पत्तिः इति संसारोत्पत्तिः [ष.तत्पु.]
- संसारोत्पत्तेः हेतुः इति संसारोत्पत्तिहेतुः [ष.तत्पु.] ते संसारोत्पत्तिहेतवः

शब्दपरिचय :

क्षेत्र-प्र [उ.] विष्टाः [ना.] ते [ना.] च [नि.] अपि [नि.] सम् [उ.]-सार-उत् [उ.] पत्तिहेतवः [ना.]

वृत्तिपरिचय : क्षेत्रप्रविष्टाः [स.] संसारोत्पत्तिहेतवः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

क्षेत्रप्रविष्टाः - अ.अ.पुं.प्र.ब. ते - ह.द.पुं.प्र.ब. संसारोत्पत्तिहेतवः - अ.उ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : ते चापि (यदि) क्षेत्रप्रविष्टाः (तर्हि) संसारोत्पत्तिहेतवः (भवन्ति).

(''अवटाभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः चतुर्थो विषयासक्त-प्रवक्तुः निन्द्यो भावः [क-४])

वेश्यादिसहिता मत्ता गायका 'गर्त' सञ्ज्ञिता ।।४।।

सन्धिविच्छेद :

वेश्या + आदि = वेश्यादि [दीर्घ.] गायकाः + गर्त = गायका गर्त [वि.लो.]

सहिताः + मत्ताः = सहितामत्ता [वि.लो.] सम् + ज्ञिता = सञ्ज्ञिता [प.स.]

समासविग्रह :

- वेश्या आदिर्यासां ताः वेश्यादयः [बहु.] ताभिः सहितः इति वेश्यादिसहितः [तृ.तत्पु.] ते वेश्यादिसहिताः
- गर्तेन (गर्तपदेन) सञ्ज्ञितः इति गर्तसञ्ज्ञितः [तृ.तत्पु.] ते गर्तसञ्ज्ञिता

शब्दपरिचय :

वेश्यादिसहिताः [ना.] मत्ताः [ना.] गायकाः [ना.] गर्त-सम् [उ.]ज्ञिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

वेश्यादिसहिंताः [स.] गायकाः [कृद.] गर्तसञ्ज्ञिताः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(वेश्यादिसहिताः, मत्ताः, गायकाः, गर्तञ्ज्ञिताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : वेश्यादिसहिताः मत्ताः गायकाः गर्तसञ्ज्ञिताः (ज्ञेया).

(''खन्याभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः पञ्चमो विषयासक्त-प्रवक्तुः निन्द्यो भावः [क-५])

जलार्थमेव गर्तास्तु नीचा गानोपजीविनः।।

सन्धिविच्छेद :

जल + अर्थ = जलार्थ [दीर्घ.] नीचाः + गान = नीचा गान [वि.लो.]

गर्ताः + तु = गर्तास्तु [स.] गान + उपजीविनः = गानोपजीविनः [गुण.]

समासविग्रह :

- जलाय इति जलार्थम् [च.तत्पु.]
- गानस्य उपजीवी इति गानोपजीवी [प.तत्पु.] ते गानोपजीविनः

शब्दपरिचय :
जलार्थम् [ना.] एव [नि.] गर्ताः [ना.] तु [नि.] नीचा [ना.] गान-उप [उ] जीविनः [ना.]

वृत्तिपरिचय : जलार्थम् [स] गानोपजीविनः [स]

शब्दरूपपरिचय :

जलार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए
नीचाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
गर्ताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
गानोपजीविनः - ह.न.पुं.प.ब.

अन्वय : (किञ्च) नीचाः गानोपजीविनः तु जलार्थमेव (कृताः) गर्ताः (इव भवन्ति).

(''ह्द्याभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः षष्ठः कर्ममार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-६])

'ह्दा'स्तु पण्डिताः प्रोक्ता भगवच्छास्त्रतत्परा ॥५॥

·सन्धिविच्छेद :

ह्दाः + तु = ह्दास्तु [स.]
प्रोक्ताः + भगवत् = प्रोक्ता भगवत् [वि.लो.]
प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण]
भगवत् + शास्त्र = भगवच्छास्त्र [श्चु.छो.]

समासविग्रह :

- भगवतः शास्त्रं इति भगवच्छास्त्रम् [ष.तत्पु.]
- तस्मिन् परः इति तत्परः [स.तत्पु.]
- भगवच्छास्त्रे तत्परः इति भगवच्छास्त्रतत्परः [स.तत्पु] ते

शब्दपरिचय :
ह्दा [ना.] तु [नि.] पण्डिताः [ना] प्र [उ]-उक्ता [ना.] भगवच्छास्त्रतत्पराः [ना]

वृत्तिपरिचय :
पण्डिताः [तद्धि.] प्रोक्ताः [कृद्+स.] भगवच्छास्त्रतत्परा [स.]

शब्दरूपपरिचय :
(हृदाः, पण्डिताः, प्रोक्ताः, भगवच्छास्त्रतत्पराः) अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : भगवच्छास्त्रतत्पराः पण्डिताः तु हृदाः प्रोक्ताः ॥५॥

("सूद्याभ्यः स्वाहा"वचनोक्तजलसदृशः सप्तमः कर्ममार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-७])

सन्देह-वारकास्तत्र 'सूदा' गम्भीरमानसाः ॥

सन्धिविच्छेद :
सम् + देह = सन्देह [प.स.] वारकाः + तत्र = वारकास्तत्र [स.]
सूदाः + गम्भीर = सूदा गम्भीर [वि.लो.]

समासविग्रह :
- सन्देहानाम् वारकः इति सन्देहवारकः [प.तत्पु.] ते
- गम्भीरं मानसं येषां ते गम्भीरमानसाः [बहु.]

शब्दपरिचय :
सम् [उ.]-देह-वारकाः [ना.] तत्र [नि.] सूदाः [ना.] गम्भीरमानसाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :
सन्देहवारकाः [स.] तत्र [तद्धि.] गम्भीरमानसाः [स.]

शब्दरूपपरिचय : (सन्देहवारकाः, सूदा, गम्भीरमानसाः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : तत्र गम्भीरमानसाः सन्देहवारकाः सूदाः (इव ज्ञातव्याः)

(''सरस्याभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः अष्टमः कर्ममार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-८])

'सरःकमल-सम्पूर्णाः' प्रेमयुक्तास्तथा बुधाः ॥६॥

सन्धिविच्छेद : प्रेमयुक्ताः + तथा = प्रेमयुक्तास्तथा [स.]

समासविग्रह :
- सरसि कमलानि इति सरःकमलानि [स.तत्पु.]
- सरकमलैः सम्पूर्णः इति सरःकमलसम्पूर्णः [तृ.तत्पु.] ते सरःकमलसम्पूर्णाः
- प्रेम्णा युक्तः इति प्रेमयुक्तः [तृ.तत्पु.] ते प्रेमयुक्ताः

शब्दपरिचय : सरःकमल-सम् [उ.]पूर्णाः [ना.] प्रेमयुक्ताः [ना.] तथा [नि.] बुधाः [ना.]

वृत्तिपरिचय : सरःकमलसम्पूर्णाः [स.] प्रेमयुक्ताः [स.] तथा [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :
सरःकमल-सम्पूर्णाः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब.
प्रेमयुक्ताः - अ.अ.पुं.प्र.ब. बुधाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : प्रेमयुक्ताः तथा बुधाः सरःकमलसम्पूर्णाः (आप इव ज्ञातव्या) ॥६॥

(''वैशन्तीभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः नवमः कर्ममार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-९])

अल्पश्रुताः प्रेमयुक्ता 'वेशन्ताः' परिकीर्तिताः ॥

सन्धिविच्छेद : प्रेमयुक्ताः + वेशन्ताः = प्रेमयुक्ता वेशन्ता [वि.लो.]

समासविग्रह :
- अल्पं श्रुतं येषां ते अल्पश्रुताः [बहु.]
- प्रेम्णा युक्तः इति प्रेमयुक्तः [तृ.तत्पु.] ते प्रेमयुक्ताः

शब्दपरिचय : अल्पश्रुताः [ना.] प्रेमयुक्ताः [ना.] वेशन्ताः [ना.] परि [उ.]कीर्तिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय : अल्पश्रुताः [स.] प्रेमयुक्ताः [स.] परिकीर्तिताः [कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय : (अल्पश्रुताः, प्रेमयुक्ताः, वेशन्ताः, परिकीर्तिताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : प्रेमयुक्ताः अल्पश्रुताः वेशन्ताः परिकीर्तिताः ॥६॥

(''पल्वल्याभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः दशमः कर्ममार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१०])

कर्मशुद्धाः 'पल्वलानि' तथाल्पश्रुत-भक्तयः ॥७॥

सन्धिविच्छेद : तथा + अल्पश्रुत = तथाल्पश्रुत [दीर्घ.]

समासविग्रह :
- कर्मणा शुद्धः इति कर्मशुद्धः [तृ.तत्पु.] ते
- श्रुतं च भक्तिश्च श्रुतभक्ती [द्वन्द्व.]
- अल्पे श्रुतभक्ती येषां ते अल्पश्रुतभक्तयः [बहु.]

शब्दपरिचय :
कर्मशुद्धाः [ना.] पल्वलानि [ना.] तथा [नि.] अल्पश्रुत-भक्तयः [ना.]

वृत्तिपरिचय : कर्मशुद्धाः [स.] तथा [तद्धि.] अल्पश्रुतभक्तयः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

कर्मशुद्धाः - अ.अ.पुं.प्र.व. पल्वलानि - अ.अ.नपुं.प्र.व.

अल्पश्रुत-भक्तयः - अ.इ.पुं.प्र.व.

अन्वय : कर्मशुद्धाः तथा अल्पश्रुत-भक्तयः पल्वलानि (इव ज्ञेयाः) ॥७॥

(''वर्ष्याभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः एकादशो ज्ञानमार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-११])

योग-ध्यानादि-संयुक्ता गुणा 'वर्ष्याः' प्रकीर्तिताः ॥

सन्धिविच्छेद :

ध्यान + आदि = ध्यानादि [दीर्घ.] संयुक्ताः + गुणाः + वर्ष्याः = संयुक्ता गुणा वर्ष्याः [वि.लो.]

समासविग्रह :

- योगश्च ध्यानश्च इति योगध्याने [द्वन्द्व.]
- योगध्याने आदिः (आदी) (?) येषां ते योगध्यानादयः [बहु.]
  तैः संयुक्ताः इति योगध्यानादिसंयुक्ताः [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

योग-ध्यानादि-सं [उ.]युक्ताः [ना.] गुणाः [ना.] वर्ष्याः [ना.] प्र [उ.]कीर्तिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय : योगध्यानादिसंयुक्ताः [स.] वर्ष्याः [तद्धि.] प्रकीर्तिताः [कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

(योगध्यानादिसंयुक्ताः, गुणाः, वर्ष्याः, प्रकीर्तिताः) - अ.अ.पुं.प्र.व.

अन्वय : योगध्यानादिसंयुक्ताः गुणाः वर्ष्याः प्रकीर्तिताः.

("स्वेदजाभ्यः स्वाहा"वचनोक्तजलसदृशः द्वादशो ज्ञानमार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१३])

तपो-ज़ानादि-भावेन 'स्वेदजा'स्तु प्रकीर्तिताः ॥८॥

सन्धिविच्छेद :

तपः + ज्ञान = तपोज्ञान [उ.गुण.] ज्ञान + आदि = ज्ञानादि [दीर्घ.]

स्वेदजाः + तु = स्वेदजास्तु [स.]

समासविग्रह :

- तपश्च ज्ञानं च तपोज्ञाने [द्वन्द्व.]
- तपोज्ञाने आदिः येषां ते तपोज्ञानादयः [बहु.]
- तपोज्ञानादीनां भावः इति तपोज्ञानादिभावः [ष.तत्पु.] तेन तपोज्ञानादिभावेन
- स्वेदात् जायन्ते इति स्वेदजाः [उप.स.]

शब्दपरिचय :

तपोज्ञानादिभावेन [ना.] स्वेदजाः [ना.] तु [नि.] प्र [उ.] कीर्तिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

तपोज्ञानादिभावेन [स.] स्वेदजाः [स.] प्रकीर्तिताः [कृद्+म.]

शब्दरूपपरिचय :

तपोज्ञानादिभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए. स्वेदजाः - अ.अ.पुं.प्र.व.

प्रकीर्तिताः - अ.अ.पुं.प्र.व.

अन्वय : तपोज्ञानादिभावेन (संयुक्ताः गुणाः) तु स्वेदजाः प्रकीर्तिताः ॥८॥

(''ह्रादुनीभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः त्रयोदशो ज्ञानमार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१३])

अलौकिकेन ज्ञानेन ये तु प्रोक्ता हरेर्गुणाः ।।
कादाचित्काः शब्दगम्याः 'पतच्छब्दाः' प्रकीर्तिताः ।।१।।

सन्धिविच्छेद :

प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण] हरेः + गुणाः = हरेर्गुणाः [रेफ.]
प्रोक्ताः + हरेः = प्रोक्ता हरेः [वि.लो.] पतत् + शब्दाः = पतच्छब्दाः [श्चु.छो.]

समासविग्रह :

- न लौकिकम् इति अलौकिकम् [न.तत्पु.] तेन अलौकिकेन
- शब्देन गम्यः इति शब्दगम्यः [तृ.तत्पु.] ते शब्दगम्याः
- पतत् शब्दो यासां ता पतच्छब्दाः [बहु.]

शब्दपरिचय :

अलौकिकेन [ना]	प्र [उ.]उक्ताः [ना.]	शब्दगम्याः [ना.]
ज्ञानेन [ना.]	हरेः [ना.] गुणाः [ना.]	पतच्छब्दाः [ना.]
ये [ना.] तु [नि.]	कादाचित्काः [ना.]	प्र [उ.]कीर्तिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अलौकिकेन [स.]	कादाचित्काः [तद्धि.]	पतच्छब्दाः [स.]
ज्ञानेन [कृद.] प्रोक्ताः [कृद+स.]	शब्दगम्याः [स.]	प्रकीर्तिता [कृद+स.]

शब्दरूपपरिचय :

अलौकिकेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	प्रोक्ताः - अ.अ.पुं.प्र.व.
ज्ञानेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
ये - ह.द.पुं.प्र.व.	गुणाः - अ.अ.पुं.प्र.व.

कादाचित्काः - अ.अ.पुं.प्र.व.
पतच्छब्दाः - अ.आ.स्त्री.प्र.व.
शब्दगम्याः - अ.अ.पुं.प्र.व.
प्रकीर्तिताः - अ.अ.पुं.प्र.व.

अन्वय : अलौकिकेन ज्ञानेन (युक्ताः) कादाचित्काः तु शब्दगम्याः ये हरेः गुणाः प्रोक्ताः ते 'पतच्छब्दाः' (आप इव) प्रकीर्तिताः.(९)

(''पृष्वाभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः चतुर्दशः उपासनामार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१५])

देवाद्युपासनोद्भूताः 'पृष्वा' भूमेरिवोद्गताः ॥

सन्धिविच्छेद :

देव + आदि = देवादि [दीर्घ.]

देवादि + उपासना = देवाद्युपासना [यण.]

उप + आसना = उपासना [दीर्घ.]

उपासना + उद्भूताः = उपासनोद्भूताः [गुण.]

पृष्वाः + भूमेः = पृष्वा भूमेः [वि.लो.]

भूमेः + इव = भूमेरिव [रेफ.]

भूमेरिव + उद्गताः = भूमेरिवोद्गताः [गुण]

समासविग्रह :

- देवाः आदिः येषां ते देवादयः [बहु.]
- देवादीनाम् उपासना इति देवाद्युपासना [ष.तत्पु.]
- देवाद्युपासनया उद्भूतः देवाद्युपासनोद्भूतः [तृ.तत्पु.] ते

शब्दपरिचय :

देवादि-उप [उ.] आसन-उद् [उ.] भूताः [ना.]
पृष्वाः [ना.]
भूमेः [ना.]
इव [नि.]
उद् [उ.] गताः [ना.]

वृत्तिपरिचय : देवाद्युपासनोद्भूताः [स.] उद्गताः [कृद+स.]

शब्दरूपपरिचय : देवाद्युपासनोद्भूताः - अ.अ.पुं.प्र.व.

(पृष्वाः, उद्गताः) - अ.अ.पुं.प्र.व.　　　　　भूमेः - अ.इ.स्त्री.ष.ए.

अन्वय : देवाद्युपासनोद्भूताः (गुणाः) भूमेः उद्गताः पृष्वा इव (ज्ञेयाः)

(''स्यन्दमानाभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः पञ्चदशः उपासनामार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१५])

साधनादिप्रकारेण　　नवधाभक्तिमार्गतः ॥१०॥
प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः 'स्यन्दमानाः' प्रकीर्तिताः ॥

सन्धिविच्छेद : साधन + आदि = साधनादि [दीर्घ.]

समासविग्रह :
- साधनानि आदयो यस्य सः साधनादि [बहु.]
- साधनादेः प्रकारः साधनादिप्रकारः [ष.तत्पु.] तेन साधनादिप्रकारेण
- नवधा (नवप्रकारिका) या भक्तिः सा नवधाभक्तिः [कर्म.]
- नवधाभक्तिरेव मार्गः नवधाभक्तिमार्गः [कर्म] तस्मात् नवधाभक्तिमार्गतः [पं.तसि.]
- प्रेम्णः पूर्तिः इति प्रेमपूर्तिः [ष.तत्पु.] तया प्रेमपूर्त्या
- स्फुरन्तो धर्मा येषु ते स्फुरद्धर्माः [बहु.]

शव्दपरिचय :

साधनादि-प्र [उ.]कारेण [ना.]	स्फुरद्धर्माः [ना.]
नवधाभक्तिमार्गतः [नि.]	स्यन्दमानाः [ना.]
प्रेमपूर्त्या [ना.]	प्र [उ.]कीर्तिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

साधनादि-प्रकारेण [स.]	प्रेमपूर्त्या [स.]	स्यन्दमानाः [कृद.]
नवधाभक्तिमार्गतः [तद्धि.]	स्फुरद्धर्माः [स.]	प्रकीर्तिताः [कृद+स.]

शब्दरूपपरिचय :

साधनादिप्रकोरेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.

प्रेमपूर्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए. स्यन्दमानाः - अ.आ.स्त्री.प्र.व.

स्फुरद्धर्माः - अ.अ.पुं.प्र.व. प्रकीर्तिताः - अ.अ.पुं.प्र.व.

अन्वय : साधनादिप्रकोरेण नवधाभक्तिमार्गतः प्रेमपूर्त्या स्फुरद्धर्माः स्यन्दमानाः (आप इव) प्रकीर्तिताः

("स्थावराभ्यः स्वाहा"वचनोक्तजलसदृशः षोडशः उपासनामार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१६])

यादृशास्तादृशाः प्रोक्ता वृद्धि-क्षय-विवर्जिताः ॥११॥
'स्थावरास्' ते समाख्याता मर्यादैक-प्रतिष्ठिताः ॥

सन्धिविच्छेद :

यादृशाः + तादृशाः =
यादृशास्तादृशाः [स.]
प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण]
प्रोक्ताः + वृद्धि.. =
प्रोक्ता वृद्धि.. [वि.लो.]

स्थावराः + ते = स्थावरास्ते [स.]
समाख्याताः + मर्यादैक =
समाख्याता मर्यादैक [वि.लो.]
मर्यादा + एक = मर्यादैक [वृद्धि.]

समासविग्रह :

- वृद्धिश्च क्षयश्च इति वृद्धिक्षयौ [द्वन्द्व.]
- वृद्धिक्षयाभ्यां विवर्जितः वृद्धिक्षयविवर्जितः [पं.तत्पु.] ते
- एके च ते प्रतिष्ठिताश्च एकप्रतिष्ठिताः [कर्म.]
- मर्यादायां एकप्रतिष्ठिताः मर्यादैकप्रतिष्ठिताः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय : यादृशाः [ना.] तादृशाः [ना.] प्र [उ.]-उक्ताः [ना]

वृद्धिक्षयवि [उ.] वर्जिताः [ना.] स्थावराः [ना] ते [ना.] सम् [उ.] आ [उ.] ख्याता [ना.]
मर्यादैक-प्र [उ.] तिष्ठिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

यादृशाः [तद्धि.]	प्रोक्ताः [कृद्+स.]	समाख्याताः [कृद्+स.]
तादृशाः [तद्धि.]	वृद्धिक्षयविवर्जिताः [स.]	मर्यादैकप्रतिष्ठिताः [स.]

शब्दरूपपरिचय :
(यादृशाः, तादृशाः प्रोक्ताः, वृद्धिक्षयविवर्जिताः, समाख्याताः, मर्यादैक-प्रतिष्ठिताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब. स्थावराः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब. ते - ह.द.पुं.प्र.ब.

अन्वय : यादृशाः (उपरि) प्रोक्ताः तादृशाः (यदि) वृद्धिक्षयविवर्जिताः मर्यादैकप्रतिष्ठिताः (भवेयु तर्हि) ते स्थावराः (आप इव) समाख्याताः

(''नादेयीभ्यः स्वाहाः''वचनोक्तजलसदृशः सप्तदशः उपासनामार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१७])

अनेक-जन्म-संसिद्धा जन्म-प्रभृति सर्वदा ॥१२॥
सङ्गादि-गुण-दोषाभ्यां वृद्धि-क्षय-युता भुवि ॥
निरन्तरोद्गमयुता 'नद्यस्' ते परिकीर्तिताः ॥१३॥

सन्धिविच्छेद :
सिद्धाः + जन्म.. = सिद्धा [वि.लो.]
सङ्ग + आदि = सङ्गादि [दीर्घ.] उत् + गमः = उद्गमः [जश्त्व.]
क्षययुताः + भुवि = क्षययुता भुवि [वि.लो.] युताः + नद्यः = युता नद्यः [वि.लो.]
निरन्तर + उद्गम = निरन्तरोद्गम [गुण.] नद्यः + ते = नद्यस्ते [स.]

समासविग्रह : न एकः इति अनेकः [न.तत्पु.]

- अनेकानि च तानि जन्मानि इति अनेकजन्मानि [कर्म.]
- अनेकजन्मभिः संसिद्धः इति अनेकजन्मसंसिद्धः [तृ.तत्पु.] ते
- सङ्ग आदिः येषां ते सङ्गादयः [बहु.] - गुणश्च दोषश्च गुणदोषौ [द्वन्द्व.]
- सङ्गादिभिः कृतौ यौ गुणदोषौ इति सङ्गादिगुणदोषौ [म.प.लो.] ताभ्यां सङ्गादिगुणदोषाभ्यां - वृद्धिश्च क्षयश्च इति वृद्धिक्षयौ [द्वन्द्व.]
- वृद्धिक्षयाभ्यां युतः इति वृद्धिक्षययुतः [तृ.तत्पु.] ते
- निरन्तरः यः उद्गमः इति निरन्तरोद्गम [कर्म.]
- निरन्तरोद्गमेन युतः निरन्तरोद्गमेनयुतः [तृ.तत्पु.] ते

शब्दपरिचय :

अनेकजन्म-सम् [उ.] सिद्धा [ना.]	वृद्धिक्षययुताः [ना.]	नद्यः [ना.] ते [ना.]
सङ्गादिगुणदोषाभ्याम् [ना.]	जन्म-प्रभृति [नि.]	सर्वदा [नि.]
निर् [उ.] अन्तर-उद् [उ.] गमयुताः [ना.]	भुवि [ना.]	परि [उ.] कीर्तिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अनेकजन्मसंसिद्धाः [स.]	सङ्गादिगुणदोषाभ्याम् [स.]	निरन्तरोद्गमयुताः [स.]
जन्मप्रभृति [स.]	वृद्धिक्षययुताः [स.]	परिकीर्तिता [कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

अनेकजन्मसंसिद्धाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	निरन्तरोद्गमयुताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
सङ्गादिगुणदोषाभ्याम् - अ.अ.पुं.तृ.द्वि.	नद्यः - अ.ई.स्त्री.प्र.ब.
वृद्धिक्षययुताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	ते - ह.द.पुं.प्र.ब.
भुवि - अ.उ.स्त्री.स.ए.	परिकीर्तिताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : अनेकजन्मसंसिद्धा जन्मप्रभृति सर्वदा भुवि सङ्गादि गुणदोषाभ्यां वृद्धिक्षययुताः (किञ्च) निरन्तरोद्गमयुताः (व्याख्यातृगुणाः) ते नद्यः (इव) परिकीर्तिताः ॥१३॥

(''सैन्धवीभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशो अष्टादशो भक्तिमार्गीय-मुमुक्षु-प्रवक्तुः भावः [ख-१८])

एतादृशाः स्वतन्त्राश्चेत् 'सिन्धवः' परिकीर्तिताः ॥

सन्धिविच्छेद : स्वतन्त्राः + चेत् = स्वतन्त्राश्चेत् [श्चु.]

समास विग्रह : स्वस्य तन्त्रं इति स्वतन्त्रम् [ष.तत्पु.] ते स्वतन्त्राः

शब्दपरिचय :
एतादृशाः [ना.] स्वतन्त्राः [ना.] चेत् [नि.] सिन्धवः [ना.] परि [उ.]कीर्तिताः [ना.]

वृत्तिपरिचय : एतादृशाः [तद्धि.] स्वतन्त्राः [स.] परिकीर्तिता [कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :
(एतादृशाः, स्वतन्त्राः, परिकीर्तिताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.
सिन्धवः - अ.उ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : एतादृशाः स्वतन्त्राः चेत् सिन्धवः (इव) परिकीर्तिताः.

(''समुद्रीयाभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशः एकोनविंशतितमो विमुक्त-प्रवक्तृणां भावाः भगवतः लोकवेदप्रसिद्धाप्रसिद्धमिश्रगुणानां वर्णनेन क्षारादिपञ्चसमुद्रजलसदृशाः पञ्चविधाः [ग-१९] विमुक्तेषु हि भगवतः सच्चिदानन्दात्मकाप्राकृतगुणवर्णनकर्तृणाम् प्रवक्तृणां अमृतोदधिजलसदृशो भावश्च [ग-१९])

पूर्णा भगवदीया ये शेष-व्यासाग्नि-मारुताः ॥१४॥
जड-नारद-मैत्राद्यास्ते 'समुद्राः' प्रकीर्तिताः ॥
लोक-वेद-गुणैर्मिश्र-भावेनैके हरेर्गुणान् ॥१५॥

वर्णयन्ति समुद्रास्ते 'क्षाराद्याः षट्' प्रकीर्तिताः ।।
गुणातीततया शुद्धान् सच्चिदानन्दरूपिणः ।।१६।।
सर्वानेव गुणान् विष्णोर्वर्णयन्ति विचक्षणाः ।।
ते'ऽमृतोदाः' समाख्यातास्तद्-वाक्पानं सुदुर्लभम्।।१-
७।।तादृशानां क्वचिद् वाक्यं दूतानामिव वर्णितम्।।

सन्धिविच्छेद :

पूर्णाः + भगवदीयाः + ये =
पूर्णा भगवदीया ये [वि.लो.]
व्यास + अग्नि = व्यासाग्नि [दीर्घ.]
मैत्र + आद्याः = मैत्राद्याः [दीर्घ.]
मैत्राद्याः + ते = मैत्राद्यास्ते [स.]
गुणैः + मिश्र = गुणैर्मिश्र [रेफ.]
भावेन + एके = भावेनैके [वृद्धि.]
हरेः + गुणान् = हरेर्गुणान् [रेफ.]
समुद्राः + ते = समुद्रास्ते [स.]
क्षार + आद्याः = क्षाराद्याः [दीर्घ.]
गुण + अति + इत = गुणातीत [दीर्घ.]

सत् + चित् = सच्चित् [श्चु.]
सच्चित् + आनन्द = सच्चिदानन्द [जश्त्व.]
विष्णोः + वर्णयन्ति =
विष्णोर्वर्णयन्ति [रेफ.]
अमृत + उदाः = अमृतोदाः [गुण]
ते + अमृतोदाः = तेऽमृतोदाः [पू.रू.]
समाख्याताः + तद् =
समाख्यातास्तद् [स.]
क्वचित् + वाक्यम् =
क्वचिद् वाक्यम् [जश्त्व.]
वाच् + पानं = वाक्पानम् [कुत्व.]

समास विग्रह :

- शेषश्च व्यासश्च अग्निश्च मारुतश्च इति शेषव्यासाग्निमारुताः [द्वन्द्व.]
- जडश्च नारदश्च मैत्रश्च जडनारदमैत्राः [द्वन्द्व.]
- जडनारदमैत्राः आद्याः येषां ते जडनारदमैत्राद्याः [बहु.]
- लोकश्च वेदश्च लोकवेदौ [द्वन्द्व.] - लोकवेदयोः गुणाः लोकवेदगुणाः [ष.तत्पु.]
- मिश्रश्च असौ भावश्च मिश्रभावः [कर्म] तेन मिश्रभावेन
- क्षारः(समुद्रः) आद्यः येषां ते क्षाराद्याः [बहु.]
- गुणान् अतीतः इति गुणातीतः [द्वि.तत्पु.] तत्ता गुणातीतता तया गुणातीततया

- सच्च चिच्च आनंदश्च सच्चिदानन्दम्[द्वन्द्व]
- सच्चिदानन्द एव रूपम् इति सच्चिदानन्दरूपम्[कर्म.]
  सच्चिदानन्दरूपम् अस्य इति सच्चिदानन्दरूपी (तद्धित् इन् प्रत्ययः)
  तस्य सच्चिदानन्दरूपिणः
- अमृतम् उदकं (उदकस्थानीयं) यस्य स अमृतोदः[बहु.] ते अमृतोदाः
- तेषां वाचः इति तद्वाचः[ष.तत्पु.] - तासां पानम् इति तद्वाक्पानम्[ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

पूर्णाः[ना.]	वर्णयन्ति[आ.]	विचक्षणाः[ना.]
भगवदीयाः[ना.] ये[ना.]	समुद्राः[ना.] ते[ना.]	ते[ना.] अमृतोदाः[ना.]
शेषव्यासाग्निमारुताः[ना.]	क्षाराद्याः[ना.] षट्[ना.]	सम्[उ.]आ[उ.]ख्याताः[ना.]
जडनारदमैत्राद्याः[ना.]	प्र[उ.]कीर्तिताः	तद्-वाक्-पानम्[ना.]
ते[ना.] समुद्राः[ना.]	गुण-अति[उ.]-इततया[ना.]	सु[उ.]दुर्[उ.]लभम्[ना.]
प्र[उ.]कीर्तिताः[ना.]	शुद्धान्[ना.]	तादृशानाम्[ना.]
लोकवेदगुणैः[ना.]	सच्चिद्-आ[उ.]नन्दरूपिणः[ना.]	क्वचिद्[नि.]
मिश्रभावेन[ना.]	सर्वान्[ना.] एव[नि.]	वाक्यम्[ना.]
एके[ना.]	गुणान्[ना.]	दूतानाम्[ना.]
हरेः[ना.]	विष्णोः[ना.]	इव[नि.]
गुणान्[ना.]	वर्णयन्ति[आ.]	वर्णितम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

भगवदीयाः[तद्धि.]	क्षाराद्याः[स.]	समाख्याताः[कृद्+स.]
शेषव्यासाग्निमारुताः[स]	गुणातीततया[तद्धि.]	तद्वाक्पानम्[स.]
जडनारदमैत्राद्याः[स.]	शुद्धान्[कृद्.]	सुदुर्लभम्[स.]
प्रकीर्तिताः[कृद्+स.]	सच्चिदानन्दरूपिणः[स+तद्धि.]	तादृशानाम्[तद्धि.]
लोकवेदगुणैः[स]	विचक्षणाः[कृद्+स.]	वर्णितम्[कृद्.]
मिश्रभावेन[स.]	अमृतोदाः[स.]	

शब्दरूपपरिचय :

(पूर्णाः, भगवदीयाः, शेष-व्यासाग्नि-मारुताः, जड-नारद-मैत्राद्याः, समुद्राः, प्रकीर्तिताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

(विचक्षणाः, अमृतोदाः, समाख्याताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

(समुद्राः, क्षाराद्याः, प्रकीर्तिताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

ये- ह.द.पुं.प्र.ब.	सच्चिदानन्दरूपिणः - ह.न्.पुं.ष.ए.
ते- ह.द.पुं.प्र.ब.	सर्वान्- अ.अ.पुं.द्वि.ब.
लोक-वेद-गुणैः- अ.अ.पुं.तृ.ब.	गुणान्- अ.अ.पुं.द्वि.ब.
मिश्र-भावेन- अ.अ.पुं.तृ.ए.	विष्णोः - अ.उ.पुं.ष.ए.
एके- अ.अ.पुं.प्र.ब.	तद्-वाक्-पानम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.
हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.	सुदुर्लभम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.
गुणान्- अ.अ.पुं.द्वि.ब.	तादृशानाम्- अ.अ.पुं.ष.ब.
षट्- ह.ष.पुं.प्र.ब.	वाक्यम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.
गुणातीततया- अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	दूतानाम्- अ.अ.पुं.ष.ब.
शुद्धान्- अ.अ.पुं.द्वि.ब.	वर्णितम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : वर्णयन्ति- चुरा.लट्.प्र.ब.

अन्वय : शेषव्यासाग्निमारुताः जडनारदमैत्राद्याः ये पूर्णाः भगवदीयाः ते समुद्राः प्रकीर्तिताः. एके लोकवेदगुणैः मिश्रभावेन हरेः गुणान् वर्णयन्ति ते क्षाराद्याः षट् समुद्राः प्रकीर्तिताः. ये विचक्षणाः सच्चिदानन्दरूपिणः विष्णोः शुद्धान् सर्वान् एव गुणान् गुणातीततया वर्णयन्ति ते अमृतोदाः समाख्याताः, तद्वाक्पानं सुदुर्लभम् (अस्ति).

(अमृतोदधिसमानां भगवद्गुणप्रवक्तृणां कथायां कश्चन विशेषेण ज्ञातव्यो विषयः - [व-२०])

अजामिलाकर्णनवद् बिन्दुपानं प्रकीर्तितम् ।।१८।।

रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं यदा।।
तदा लेहनमित्युक्तं स्वानन्दोद्गम-कारणम्।।१९।।

सन्धिविच्छेद :

अजामिल + आकर्णन = अजामिलाकर्णन[दीर्घ.]
वत् + बिन्दु = वद्बिन्दु[जश्त्व.]
राग + अज्ञान + आदि = रागाज्ञानादि[दीर्घ.]

इति + उक्तम् = इत्युक्तम्[यण.]
स्व + आनन्द = स्वानन्द[दीर्घ.]
उत् + गम = उद्गम[जश्त्व.]
स्वानन्द + उद्गम = स्वानन्दोद्गम[गुण]

समास विग्रह :

- अजामिलस्य आकर्णनम् इति अजामिलाकर्णनम्[ष.तत्पु.] तेन तुल्यम् अजामिलाकर्णनवत्
- बिन्दोः पानम् इति बिन्दुपानम्[ष.तत्पु.] - न ज्ञानम् इति अज्ञानम्[न.तत्पु.]
- रागश्च अज्ञानं च रागाज्ञाने[द्वन्द्व.]
  ते आदिर्येषां ते रागाज्ञानादयः[बहु.]
  रागाज्ञानादयः ये भावा ते रागाज्ञानादिभावाः[कर्म]
  तेषां रागाज्ञानादिभावानाम्
- स्वस्य आनन्दः इति स्वानन्दः[ष.तत्पु.]
- स्वानन्दस्य उद्गमः इति स्वानन्दोद्गमः[ष.तत्पु.]
- स्वानन्दोद्गमस्य कारणम् इति स्वानन्दोद्गमकारणम्[ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

अजामिल-आ[उ.]कर्णनवद्[नि.]	सर्वथा[नि.]	इति[नि.]
बिन्दुपानम्[ना.]	नाशनम्[ना.]	उक्तम्[ना.]
प्र[उ.]कीर्तितम्[ना.]	यदा[नि.] तदा[नि.]	स्व-आ[उ.]नन्द-उद्[उ.]
रागाज्ञानादिभावानाम्[ना.]	लेहनम्[ना.]	गम-कारणम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

अजामिलाकर्णनवद्[तद्धि.]	सर्वथा[तद्धि.]	लेहनम्[कृद.]
बिन्दुपानम्[स.]	नाशनम्[कृद.]	उक्तम्[कृद]
प्रकीर्तितम्[कृद+स]	यदा[तद्धि.]	स्व-आ[उ]नन्द-उद्[उ]गम
रागाज्ञानादिभावानाम्[स.]	तदा[तद्धि.]	कारणम्[स.]

शब्दरूपपरिचय :

बिन्दुपानम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.	
प्रकीर्तितम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.	लेहनम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.
रागाज्ञानादिभावानाम्- अ.अ.पुं.ष.ब.	उक्तम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.
नाशनम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.	स्वानन्दोद्गमकारणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

अन्वय : (तथा) अजामिलाकर्णनवत् (तादृशं श्रवणं) बिंदुपानं प्रकीर्तितम् यदा रागाज्ञानादिभावानां सर्वथा नाशनं (भवति) तदा (तद्वाक्यपानं) स्वानन्दोद्गमकारणं भवति (इति) लेहनम् इत्युक्तम्।।१९।।

(''सर्वाभ्यः स्वाहा''वचनोक्तजलसदृशो विंशतितमो विप्रकीर्णो भावः)

उद्धृतोदकवत् 'सर्वे' पतितोदकवत् तथा।।
उक्तातिरिक्तवाक्यानि फलं चापि तथा ततः ।।२०।।

सन्धिविच्छेद :

उद् + हृत = उद्धृत[पू.स.]

उद्धृत+उदक = उद्धृतोदक[गुण]	उक्त + अतिरिक्त = उक्तातिरिक्त[दीर्घ.]
पतित+उदक = पतितोदक[गुण]	च + अपि = चापि[दीर्घ.]

समासविग्रह :

- उद्धृतं च तद् उदकम् च उद्धृतोदकम्[कर्म] तद्वत्

- पतितं च तद् उदकं च पतितोदकम्[कर्म.] तद्वत्
- उक्तात् अतिरिक्तानि उक्तातिरिक्तानि[प.तत्पु.]
- उक्तातिरिक्तानि च तानि वाक्यानि उक्तातिरिक्तवाक्यानि[कर्म.]

शब्दपरिचय :

उद्[उ.] -हृतोदकवत्[नि.]	तथा[नि.]	च[नि.]
सर्वे[ना.]	उक्त-अति[उ.]रिक्तवाक्यानि[ना.]	अपि[नि.]
पतितोदकवत्[नि.]	फलम्[ना.]	ततः[नि.]

वृत्तिपरिचय :

उद्धृतोदकवत्[तद्धि.]	उक्तातिरिक्तवाक्यानि[स.]
पतितोदकवत्[तद्धि.]	तथा[तद्धि.] ततः[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

सर्वे- अ.अ.पुं.प्र.ब. उक्तातिरिक्तवाक्यानि- अ.अ.नपुं.प्र.ब. फलम्- अ.अ.नपुं.प्र.ए.

अन्वय : सर्वे उक्तातिरिक्तवाक्यानि उद्धृतोदकवत् तथा पतितोदकवत् (ज्ञेयानि) (तेषां) फलं च अपि ततः तथा (भवति)।।२०।।

(ग्रन्थोपसंहारः)

इति जीवेन्द्रियगता नाना-भावं गता भुवि।।
रूपतः फलतश्चैव गुणा विष्णोर्निरूपिताः।।२१।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितो जलभेदः समपूर्णः ।।

सन्धिविच्छेद :

जीव + इन्द्रिय = जीवेन्द्रिय[गुण]   गताः + नाना = गता नाना[वि.लो.]

गताः + भुवि = गता भुवि[वि.लो.] च + एव = चैव[वृद्धि.]
फलतः + च = फलतश्च[स.श्चु.] गुणाः + विष्णोः = गुणा विष्णोः[वि.लो.]
विष्णोः + निरूपिताः = विष्णोर्निरूपिताः[रेफ]

समासविग्रह :

- जीवाश्च इन्द्रियाणि च जीवेन्द्रियाणि[द्वन्द्व.]
- जीवेन्द्रियान् गताः (प्राप्ताः) इति जीवेन्द्रियगताः[द्वि.तत्पु.]
- नाना (प्रकारकः) भावः (अत्र जात्यापेक्षया एकवचनम्) इति नानाभावः[कर्म] तं नानाभावं

शब्दपरिचय :

इति[नि.]	गता[ना.] भुवि[ना.]	**च**[नि.] एव[नि.]
जीवेन्द्रियगता[ना.]	रूपतः[नि.]	गुणाः[ना.] विष्णोः[ना.]
नाना-भावम्[ना.]	फलतः[नि.]	नि[उ.]रूपिताः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

जीवेन्द्रियगताः[स.]	गता[कृद्.]	फलतः[तद्धि.]
नानाभावम्[स.]	रूपतः[तद्धि.]	निरूपिताः[कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

जीवेन्द्रियगताः- अ.अ.पुं.प्र.ब.	गुणाः- अ.अ.पुं.प्र.ब.
नाना-भावम्- अ.अ.पुं.द्वि.ए.	विष्णोः- अ.उ.पुं.ष.ए.
भुवि- अ.ऊ.स्त्री.स.ए.	निरूपिताः- अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : इति रूपतः फलतः चैव भुवि नानाभावं गताः जीवेन्द्रियगताः विष्णोः गुणाः निरूपिताः ॥२१॥

|| पञ्चपद्यानि ||

(१८)

[भक्ति [क]प्रपत्ति [ख]मार्गाधिकारभेदाभ्यां भगवत्कथाश्रोतृणां भेदद्वयम्. तत्र भक्तिमार्गे उत्तमाधिकारः [क-१] मध्यमाधिकारः [क-२] कनिष्ठाधिकारः [क-३] इति त्रैविध्यम्]

(भक्तिमार्गे [क] उत्तमाधिकारिणः श्रोतुः स्वरूपम् [क-१])

श्रीकृष्ण - रस - विक्षिप्त-मानसारति - वर्जिताः ।।
अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः ।।१।।

सन्धिविच्छेद :

मानसा + अरति = मानसारति [दीर्घ.]

श्रवण + उत्सुकाः = श्रवणोत्सुका [गुण.] अनिर्वृताः + लोक = अनिर्वृता लोक [वि.लो.]

समासविग्रह :

(१)श्रीहरिरायचरणानुसारी (श्लोकार्ध = समस्तपद)

- श्रीकृष्णस्य रसः (भजनानन्दरूपः) इति श्रीकृष्णरसः [ष.तत्पु.] वा श्रीकृष्णः एव रसः (स्थायिभावात्मा) श्रीकृष्णरसः [कर्म.]
- विक्षिप्तं यत् मानसं तत् विक्षिप्तमानसं [कर्म.]
- न रति इति अरति [न.तत्पु.]
- श्रीकृष्णरसेन विक्षिप्तमानसं इति श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसं [तृ.तत्पु.] तत्र अरति इति श्रीकृष्ण...मानसारति [स.तत्पु.] तया वर्जितः इति श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसारतिवर्जितः [तृ.तत्पु.] ते

(२)श्रीपुरुषोत्तमचरणानुसारी

- श्रीकृष्णस्य रसः (भजनानन्दात्मकः) इति श्रीकृष्णरसः [ष.तत्पु.]
  तेन विक्षिप्तं मानसं यस्य स श्रीकृष्णरसविक्षिप्त-मानसाः [बहु.] ते
- रतिः (रमणं) तया वर्जितः (रहितः) इति रतिवर्जितः [तृ.तत्पु.] ते
- न निर्वृतः इति अनिर्वृतः [न.तत्पु.] ते
- श्रवणे उत्सुकः इति श्रवणोत्सुकः [स.तत्पु.]
- लोकवेदयोः सामहारः इति लोकवेदम् [द्वन्द्व.] तस्मिन् लोकवेदे

शब्दपरिचय :

श्रीकृष्णरस-वि [उ.]क्षिप्त-मानसाः [ना.]	अ-निर् [उ.]वृताः [ना.]
रतिवर्जिताः [ना.]	लोकवेदे [ना.]
(वा श्रीकृष्ण...वर्जिताः [ना.])	ते [ना.] मुख्याः [ना.]
	श्रवण-उत् [उ.]सुकाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

श्रीकृष्णरसविक्षिप्त-मानसा [स.] (श्रीकृष्ण...वर्जिताः [स.]) लोकवेदे [स.]
रतिवर्जिताः [स.] अनिर्वृता [स.] श्रवणोत्सुकाः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीकृष्णरसविक्षिप्त-मानसा - अ.अ.पुं.प्र.ब.	लोकवेदे - अ.अ.पुं.स.ए.
रतिवर्जिताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	ते - ह.द्.पुं.प्र.ब.
(वा श्रीकृष्ण...वर्जिताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.)	मुख्याः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
अनिर्वृताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	श्रवणोत्सुकाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसाः रतिवर्जिताः (वा श्रीकृष्णरसविक्षिप्तमानसारतिवर्जिता) अनिर्वृता लोकवेदे ते मुख्याः श्रवणोत्सुकाः (परिकीर्तिताः) ॥१॥

(भक्तिमार्गे [क] मध्यमाधिकारिणः श्रोतुः स्वरूपम् [क-२])

विक्लिन्नमनसो येतु भगवत्-स्मृति-विह्वलाः ।।
अर्थैकनिष्ठास्ते चापि मध्यमा श्रवणोत्सुकाः ।।२।।

सन्धिविच्छेद :

मनसः + ये = मनसो ये [उ.गुण.] च + अपि = चापि [दीर्घ.]
अर्थ + एक = अर्थैक [वृद्धि.] मध्यमाः + श्रव.. = मध्यमा श्रव.. [वि.लो.]
निष्ठाः + ते = निष्ठास्ते [स.] श्रवण + उत्सुकाः = श्रवणोत्सुकाः [गुण]

समास विग्रह :

- विक्लिन्नं मनो येषाम् ते विक्लिन्नमनसः [बहु.]
- भगवतः स्मृतिः इति भगवत्-स्मृतिः [ष.तत्पु.]
  तया विह्वलाः इति भगवत्-स्मृति-विह्वलाः [तृ.तत्पु.]
- अर्थे एका (मुख्या) निष्ठा येषां ते अर्थैकनिष्ठाः [बहु.]
- श्रवणे उत्सुकः इति श्रवणोत्सुकः [स.तत्पु.] ते

शब्दपरिचय :

वि [उ.]क्लिन्नमनसः [ना.] अर्थैक-निष्ठाः [ना.] अपि [नि.]
ये [ना.] तु [नि.] ते [ना.] मध्यमाः [ना.]
भगवत्-स्मृति-विह्वलाः [ना.] च [नि.] श्रवण-उत् [उ.]सुकाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

विक्लिन्नमनसः [स.] अर्थैकनिष्ठाः [स.]
भगवत्-स्मृति-विह्वलाः [स.] मध्यमाः [तद्धि.] श्रवणोत्सुकाः [स.]

शव्दरूपपरिचय :

विक्लिन्नमनसः - ह.स.नपुं.प्र.ब. ये - ह.द.पुं.प्र.ब. ते - ह.द.पुं.प्र.ब.

भगवत्स्मृतिविह्वलाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.   मध्यमाः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अर्थैकनिष्ठाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.   श्रवणोत्सुकाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

अन्वय : ये तु विक्लिन्नमनसः भगवत्-स्मृति-विह्वलाः अर्थैकनिष्ठाः चापि ते मध्यमाः श्रवणोत्सुकाः (ज्ञेया) ॥२॥

(भक्तिमार्गे[क] कनिष्ठाधिकारिणः श्रोतुः स्वरूपम्[क-३])

निःसन्दिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ॥
ते त्वावेशात्तु विकला निरोधाद् वा नचान्यथा ॥३॥
पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचित् न तु सर्वदा ॥
अन्यासक्तास्तु ये केचिद् अधमाः परिकीर्तिताः ॥४॥

सन्धिविच्छेद :

तु + आवेशात् = त्वावेशात्[यण्.]   पूर्ण + अर्था = पूर्णार्थाः[दीर्घ.]
विकलाः + निरोधात् = विकला निरोधात्[वि.लो.]   अन्य + आसक्ताः = अन्यासक्ताः[दीर्घ.]
निरोधात् + वा = निरोधाद् वा[जश्त्व.]   सक्ताः + तु = सक्तास्तु[स.]
च + अन्यथा = चान्यथा[दीर्घ.]   केचित् + अधमाः = केचिदधमाः[जश्त्व.]

समास विग्रह :

- कृष्ण एव तत्त्वम् इति कृष्णतत्त्वम्[कर्म]
- सर्वो यः भावः स सर्वभावः[कर्म.] तेन सर्वभावेन
- पूर्णः च असौ भावः इति पूर्णभावः[कर्म.] तेन पूर्णभावेन
- पूर्णः अर्थः येषां ते पूर्णार्थाः[बहु.]
- अन्येषु आसक्तः इति अन्यासक्तः[स.तत्पु.] ते

शब्दपरिचय :

निः[उ] सम्[उ.] दिग्धम्[ना.]   कृष्णतत्त्वम्[ना.]   सर्वभावेन[ना.]   ये[ना.]

विदुः[आ.]	नि[उ.]रोधाद्[ना.]	कदाचित्[नि.]
ते[ना.]	वा[नि.] न[नि.] च[नि.]	सर्वदा[नि.]
तु[नि.]	अन्यथा[नि.]	अन्य-आ[उ.]सक्ताः[ना.]
आ[उ.]वेशात्[ना.]	पूर्णभावेन[ना.]	ये[ना.] केचिद्[नि.] अधमाः[ना.]
वि[उ.]कलाः[ना.]	पूर्णार्थाः[ना.]	परि[उ.]कीर्तिताः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

निःसंदिग्धम्[स.]	विकलाः[कृद्+स.]	पूर्णार्थाः[स.]
कृष्णतत्त्वम्[स.]	निरोधात्[कृद्+स.]	सर्वदा[तद्धि.]
सर्वभावेन[स.]	अन्यथा[तद्धि.]	अन्यासक्ताः[स.]
आवेशात्[स.]	पूर्णभावेन[स.]	परिकीर्तिता[कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

निःसन्दिग्धम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	विकलाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
कृष्णतत्त्वम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	निरोधात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
सर्वभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	पूर्णभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
ये - ह.द.पुं.प्र.ब. ते - ह.द.पुं.प्र.ए.	(पूर्णार्थाः, अन्यासक्ताः, अधमाः,
आवेशात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	परिकीर्तिताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय : विदुः - अदादि.लट्.प्र.ब.

अन्वय :

निसन्दिग्धं कृष्णतत्त्वं सर्वभावेन ये विदुः ते तु आवेशात् (भगवदावेशात्) निरोधात् वा विकलाः (भवन्ति) न च अन्यथा (३). पूर्णभावेन पूर्णार्थाः कदाचित् (एव भवन्ति) न तु सर्वदा, (कथानन्तरं च पुनः) ये केचित् अन्यासक्ताः (भवन्ति ते) अधमाः परिकीर्तिता ॥४॥

(प्रपत्तिमार्गे - [ख] उत्तमाधिकारिणः श्रोतुः स्वरूपम् [ख])
अनन्यमनसो मर्त्या उत्तमाः श्रवणादिषु।।
देश - काल - द्रव्य - कर्तृ - मन्त्र - कर्म-प्रकारतः ।।५।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितानि पञ्चपद्यानि ।।

सन्धिविच्छेद :

मनसः + मर्त्याः = मनसो मर्त्याः [उ.गुण.]
मर्त्याः + उत्तमाः = मर्त्या उत्तमाः [वि.लो.]
श्रवण + आदिषु = श्रवणादिषु [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- न विद्यते अन्यः (भगवदतिरिक्तः) यस्मै यस्य वा तत् अनन्यम् [बहु.]
- अनन्यं मनः येषां ते अनन्यमनसः [बहु.]
- श्रवणः आदिः येषां ते श्रवणादयः [बहु.] तेषु श्रवणादिषु
- देशश्च कालश्च द्रव्यश्च कर्तृश्च मन्त्रश्च कर्मश्च इति देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्माणि [द्वन्द्व.]
  तेषां प्रकारः इति देश-काल-द्रव्य-कर्तृ-मन्त्र-कर्म-प्रकारः [ष.तत्पु.]
  तस्मात् देश-काल-द्रव्य-मन्त्र-कर्म-प्रकारतः [पं.तसि.]

शब्दपरिचय :

अनन्यमनसः [ना.] मर्त्याः [ना.] उत् [उ.] तमाः [ना.] श्रवणादिषु [ना.]
देश-काल-द्रव्य-कर्तृ-मन्त्र-कर्म-प्र [उ.] कारतः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

अनन्यमनसः [म.] उत्तमाः [स.] श्रवणादिषु [स.]
देश-काल-द्रव्य-कर्तृ-मन्त्र-कर्म-प्र [उ] कारतः [तद्धि]

शब्दरूपपरिचय :

अनन्यमनसः - ह.स.पुं.प्र.ब.

उत्तमाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

मर्त्याः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

श्रवणादिषु - अ.इ.पुं.स.ब.

अन्वय : देशकालद्रव्यकर्तृमन्त्रकर्मप्रकारतः ये मर्त्याः अनन्यमनसः ते श्रवणादिषु उत्तमाः ॥५॥

।। सन्न्यासनिर्णय ।।

(१९)

(कर्म[श] भक्ति[प] ज्ञान[स] मार्गभेदैः सन्न्यासो द्विविधः-कर्मफलत्यागरूपः[श/१] चतुर्थाश्रमरूपः[श/२] च. भक्तिमार्गीयसन्न्यासस्य द्वौ उपभेदौ : भक्त्यर्थसन्न्यासः[प/१] भक्त्युत्तरसन्न्यासः च. तथैव ज्ञानमार्गीयसन्न्यासस्यापि ज्ञानार्थसन्न्यासः[स/१] ज्ञानोत्तरसन्न्यासः[स/२] इति द्वौ उपभेदौ. एतेषु कतमः कर्तव्यः कतमश्च न कर्तव्यः इति विचारणा)

पश्चात्ताप-निवृत्त्यर्थं परित्यागो विचार्यते ।।
स मार्गद्वितये प्रोक्तो भक्तौ ज्ञाने विशेषतः ।।१।।

सन्धिविच्छेद :

निवृत्ति + अर्थम् = निवृत्त्यर्थम्[यण्.]
त्यागः + विचार्यते =
त्यागो विचार्यते[उ.गुण.]

सः + मार्गः = स मार्गः[वि.लो.]
प्र + उक्तः = प्रोक्तः[गुण.]
प्रोक्तः + भक्तौ = प्रोक्तो भक्तौ[उ.गुण.]

समासविग्रह :

- पश्चात्तापस्य निवृत्तिः इति पश्चात्तापनिवृत्तिः[प.तत्पु.]
- पश्चात्तापनिवृत्तये इति पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थम्[च.तत्पु.]
- मार्गस्य द्वितयम् इति मार्गद्वितयम्[प.तत्पु.] तस्मिन् मार्गद्वितये

शब्दपरिचय :

पश्चात्ताप-नि[उ.]वृत्त्यर्थम्[ना] सः[ना] मार्गद्वितये[ना] भक्तौ[ना.] ज्ञाने[ना.]
परि[उ.]त्यागः[ना] वि[उ.]चार्यते[आ.] प्र[उ.]उक्तः[ना.] वि[उ]शेषतः[नि.]

वृत्तिपरिचय :

पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थम् [स.] विचार्यते [सना.] प्रोक्तः [कृद्+स] भक्तौ [कृद्.]
परित्यागः [कृद्+स.] मार्गद्वितये [स.] ज्ञाने [कृद्.] विशेषतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

पश्चात्ताप-निवृत्त्यर्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
परित्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए. सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
मार्गद्वितये - अ.अ.नपुं.स.ए.
प्रोक्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भक्तौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.
ज्ञाने - अ.अ.नपुं.स.ए.

धातुरूपपरिचय : विचार्यते - चुरा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय : पश्चात्तापनिवृत्त्यर्थं परित्यागः विचार्यते. सः भक्तौ ज्ञाने (च इति) विशेषतः मार्गद्वितये प्रोक्तः ॥१॥

(तत्र बाह्यत्यागापेक्षाभावात् कर्मफलत्यागरूपस्य सन्न्यासस्य अविचारणीयत्वेनैव कर्ममार्गीयो द्वितीयः [श/२] सन्न्यासः कलिकाले सुशको नास्तीति विचारणा)

कर्ममार्गे न कर्तव्यः सुतरां कलिकालतः ॥

समासविग्रह :

- कर्म एव मार्गः इति कर्ममार्गः [कर्म] तस्मिन् कर्ममार्गे
- कलेः कालः इति कलिकालः [ष.तत्पु.] तस्मात् कलिकालतः [पं.तसि.]

शब्दपरिचय :

कर्ममार्गे [ना.] न [नि.] कर्तव्यः [ना.] सुतराम् [नि.] कलिकालतः [नि.]

वृत्तिपरिचय : कर्ममार्गे [स.] कर्तव्यः [कृद्.] कलिकालतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय : कर्ममार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.कर्तव्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : कर्ममार्गे कलिकालतः सुतरां न कर्तव्यः

(भक्तिमार्गीययोः संन्यासयोः भक्तिसाधकश्रवणादिनिर्वाहार्थं प्रथमप्रकार-कस्संन्यासो[प/१] अनुष्ठेयो न भवति तत्र हेतवः - १,२,३,४)

अत आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वाद् विचारणा॥२॥
श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं कर्तव्यश्चेत् स नेष्यते॥
सहायसङ्गसाध्यत्वात्[१] साधनानां च रक्षणात्[२]॥३॥
अभिमानात् नियोगात्[३] च तद्-धर्मैश्च विरोधतः[४]॥

सन्धिविच्छेद :

अतः + आदौ = अत आदौ [वि.लो.]

कर्तव्यत्वात् + विचारणा = कर्तव्यत्वाद् विचारणा [जश्त्व.]	कर्तव्यः + चेत् = कर्तव्यश्चेत् [स.श्चु.]
	सः + नेष्यते = स नेष्यते [वि.लो.]
श्रवण + आदि = श्रवणादि [दीर्घ.]	न + इष्यते = नेष्यते [गुण.]
प्रसिद्धि + अर्थं = प्रसिद्ध्यर्थम् [यण्.]	धर्मैः + च = धर्मैश्च [स.श्चु.]

समासविग्रह :

- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म] तस्मिन् भक्तिमार्गे
- श्रवणम् आदिः येषां तानि श्रवणादीनिः [बहु.]
- प्रसिद्धये इति प्रसिद्ध्यर्थम् [च.तत्पु.]
- श्रवणादीनां प्रसिद्ध्यर्थम् इति श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थम् [ष.तत्पु.]
- सहायस्य सङ्गः इति सहायसङ्गः [ष.तत्पु.]
- सहायसङ्गेन साध्यम् इति सहायसङ्गसाध्यम् [तृ.तत्पु]
  तस्य भावः सहायसङ्गसाध्यत्वं, तस्मात् सहायसङ्गसाध्यत्वात्.
- तस्य धर्मः इति तद्धर्मः [ष.तत्पु.] तैः तद्धर्मैः

शब्दपरिचय :

अतः[नि.]	चेत्[नि.]	रक्षणात्[ना.]
आदौ[ना]	सः[ना.]	अभि[उ] मानात्[ना.]
भक्तिमार्गे[ना.]	न[नि.]	नि[उ] योगात्[ना.]
कर्तव्यत्वाद्[ना.]	इष्यते[आ.]	च[नि.]
वि[उ] चारणा[ना.]	सहायसङ्गसाध्यत्वात्[ना.]	तद्-धर्मैः[ना.]
श्रवणादि-प्र[उ.] सिद्ध्यर्थम्[ना.]	साधनानाम्[ना.]	च[नि.]
कर्तव्यः[ना.]	च[नि.]	वि[उ.]रोधतः[नि.]

वृत्तिपरिचय :

अतः[तद्धि.]	श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थम्[स.]	रक्षणात्[कृद्]
भक्तिमार्गे[स.]	कर्तव्यः[कृद्] इष्यते[सना.]	अभिमानात्[कृद्+स.]
कर्तव्यत्वाद्[तद्धि.]	सहायसङ्गसाध्यत्वात्[तद्धि.]	नियोगात्[स.]
विचारणा[कृद्+स.]	साधनानाम्[कृद्]	तद्धर्मैः[स.] विरोधतः[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :	सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
आदौ - अ.इ.पुं.स.ए.	सहायसङ्गसाध्यत्वात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
भक्तिमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.	साधनानाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब.
कर्तव्यत्वाद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	रक्षणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
विचारणा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	अभिमानात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	नियोगात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
कर्तव्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तद्-धर्मैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

धातुरूपपरिचय :

इष्यते - तुदा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त) भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए. स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : अतः आदौ भक्तिमार्गे कर्तव्यत्वात् विचारणा (क्रियते),

श्रवणादिप्रसिद्ध्यर्थं सः कर्तव्यः (इति) चेत् न इष्यते, सहायसङ्गसाध्यत्वात् साधनानां रक्षणात् च अभिमानात् नियोगात् च तद्धर्मैश्च विरोधतः (च स न कर्तव्यः)॥३-४॥

(भक्तिमार्गीयियोः संन्यासयोः भक्तिबाधकगृहादित्यागार्थमपि प्रथमप्रकार-कस्संन्यासो[५/१] अनुष्ठेयो न भवति तत्र हेतुद्वयम्[१,२])

गृहादेः बाधकत्वेन साधनार्थं तथा यदि॥४॥
अग्रेऽपि तादृशैरेव सङ्गो भवति नान्यथा[१]॥
स्वयञ्च विषयाक्रान्तः पाषण्डी स्यात्तु कालतः[२]॥५॥
विषयाक्रान्तदेहानां नावेशः सर्वदा हरेः॥
अतोऽत्र साधने भक्तौ नैव त्यागः सुखावहः॥६॥

सन्धिविच्छेद :

साधन + अर्थम् = साधनार्थम्[दीर्घ.]

अग्रे + अपि = अग्रेऽपि[पू.रू.]

तादृशैः + एव =-तादृशैरेव[रेफ.]

सङ्गः + भवति = सङ्गो भवति[उ.गुण.]

न + अन्यथा = नान्यथा[दीर्घ.]

स्वयम् + च = स्वयञ्च[प.स.]

विषय + आक्रान्तः = विषयाक्रान्तः[दीर्घ.]

न + आवेशः = नावेशः[दीर्घ.]

अतः + अत्र = अतोऽत्र[उ.पू.रू.]

न + एव = नैव[वृद्धि.]

सुख + आवहः = सुखावहः[दीर्घ.]

समासविग्रह :

- गृहम् आदिः यस्य स गृहादिः[बहु.] तस्य गृहादेः
- साधनाय इति साधनार्थम्[च.तत्पु.]
- विषयैः आक्रान्तः इति विषयाक्रान्तः[तृ.तत्पु.]
- विषयाक्रान्तः देहः यस्य सः विषयाक्रान्तदेहः[बहु.] तेषां विषयाक्रान्तदेहानाम्
- सुखम् आवहति इति सुखावहः[उप.स.]

शब्दपरिचय :

गृहादेः [ना.]	न [नि.]	न [नि.]
बाधकत्वेन [ना.]	अन्यथा [नि.]	आ [उ.]वेशः [ना.]
साधनार्थम् [ना.]	स्वयम् [नि.]	सर्वदा [नि.]
तथा [नि.]	च [नि.]	हरेः [ना.] अतः [नि.]
यदि [नि.]	विषय-आ [उ.]क्रान्तः [ना.]	अत्र [नि.]
अग्रे [नि.]	पाषण्डी [ना.]	साधने [ना.]
अपि [नि.]	स्यात् [आ.] तु [नि.]	भक्तौ [ना.]
तादृशैः [ना.]	कालतः [नि.]	न [नि.] एव [नि.]
एव [नि.] सङ्गः [ना.]	विषय-आ [उ.]-	त्यागः [ना.]
भवति [आ.]	क्रान्तदेहानाम् [ना.]	सुख-आ [उ.]वहः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

गृहादेः [स.]	अन्यथा [तद्धि.]	आवेशः [स.]
बाधकत्वेन [तद्धि.]	विषयाक्रान्तः [स.]	सर्वदा [तद्धि.]
साधनार्थम् [स.]	पाषण्डी [तद्धि.]	अतः [तद्धि.] अत्र [तद्धि.]
तथा [तद्धि.]	कालतः [तद्धि.]	साधने [कृद.] भक्तौ [कृद.]
तादृशैः [तद्धि.]	विषयाक्रान्तदेहानाम् [स.]	सुखावहः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

गृहादेः - अ.इ.पुं.ष.ए.	विषयाक्रान्तदेहानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
बाधकत्वेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	आवेशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
साधनार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
तादृशैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	साधने - अ.अ.नपुं.स.ए.
सङ्गः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भक्तौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.
विषयाक्रान्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	त्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
पाषण्डी - ह.न.पुं.प्र.ए.	सुखावहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए. स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : गृहादेः बाधकत्वेन यदि साधनार्थं (सः परित्यागः तर्हि) तथा (न कर्तव्यः यतः) अग्रेऽपि तादृशैरेव सङ्गो भवति न तु अन्यथा (भवति) स्वयं च विषयाक्रान्तः (सन्) कालतः पाषण्डी स्यात्. विषयाक्रान्तदेहानां हरेः आवेश सर्वदा न (भवति), अतः अत्र भक्तौ साधने त्यागः नैव सुखावहः (अस्ति) ॥६॥

(भक्तिमार्गीययोः संन्यासयोः विरहानुभवार्थं द्वितीयप्रकारकस्संन्यासो [प/२] भक्तिभावदाढर्चाय प्रशस्तो भवति, व्रजभक्तानामिव प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वक-भगवदासक्तिरूपे निरोधे सिद्धे बाह्यत्यागस्य आवश्यकतैव नास्ति, त्यागनिर्वाहकवैराग्यस्य उत्कृष्टभक्तिस्वभावसिद्धत्वादेवेति, तस्य कर्तव्य-त्वाकर्तव्यत्वयोः निरूपणमपि अनावश्यकमेव)

विरहानुभवार्थन्तु परित्यागः प्रशस्यते ।।

सन्धिविच्छेद :

विरह + अनुभवार्थम् = विरहानुभवार्थम् [दीर्घ.]

अनुभव + अर्थं = अनुभवार्थं [दीर्घ.] **अनुभवार्थम् + तु = अनुभवार्थन्तु** [प.स.]

समासविग्रह :

- विरहस्य अनुभवः इति विरहानुभवः [प.तत्पु.]
  तस्मै इति विरहानुभवार्थम् [च.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

विरह-अनु [उ] भवार्थम् [ना.] तु [नि.] परि [उ.] त्यागः [ना.] प्र [उ.] शस्यते [आ.]

वृत्तिपरिचय : विरहानुभवार्थम् [स] परित्यागः [स.] प्रशस्यते [सना.]

शब्दरूपपरिचय : विरहानुभवार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए. परित्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : प्रशस्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय : विरहानुभवार्थं तु परित्यागः प्रशस्यते

(भक्तिमार्गीययोः संन्यासयोः भगवद्विरहानुभवार्थे द्वितीयप्रकारके संन्यासे वेश[१] गुरु[२] साधक भावोद्बोधनोपाय[३] बाधकानाञ्च[४] निरूपणम्)

स्वीय-बन्ध-निवृत्त्यर्थं वेशः सोऽत्र न चान्यथा[१]॥७॥
कौण्डिन्यो गोपिकाः प्रोक्ताः गुरवः[२] साधनं च तत्॥
भावो भावनया सिद्धः साधनं नान्यदिष्यते[३]॥८॥
विकलत्वं तथास्वास्थ्यं प्रकृतिः प्राकृतं नहि॥
ज्ञानं गुणाश्च तस्यैवं वर्तमानस्य बाधकाः[४]॥९॥

सन्धिविच्छेद :

निवृत्ति + अर्थम् = निवृत्त्यर्थम् [यण्.]	भावः + भावनया = भावो भावनया [उ.गुण.]
सः + अत्र = सोऽत्र [उ.पू.रू.]	न + अन्यद् + नान्यद् [दीर्घ.]
च + अन्यथा = चान्यथा [दीर्घ.]	नान्यत् + इष्यते = नान्यद् इश्यते [जश्त्व.]
कौण्डिन्यः + गोपिकाः = कौण्डिन्यो गोपिकाः [उ.गुण.]	तथा + अस्वास्थ्यं = तथास्वास्थ्यं [दीर्घ.]
प्र + उक्ताः = प्रोक्ताः [गुण]	गुणाः + च = गुणाश्च [स.श्चु.]
	तस्य + एवम् = तस्यैवम् [वृद्धि.]

समास विग्रह :

- स्वीयैः बन्धः इति स्वीयबन्धः [तृ.तत्पु.]
- स्वीयबन्धस्य निवृत्तिः इति स्वीयबन्धनिवृत्तिः [ष.तत्पु.]
- स्वीयबन्धनिवृत्तेः अर्थम् इति स्वीयबन्धनिवृत्त्यर्थम् [ष.तत्पु.]
- न स्वास्थ्यम् इति अस्वास्थ्यम् [न.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

स्वीय-बन्ध-नि[उ.]वृत्त्यर्थम्[ना.]	साधनम्[ना.]	प्र[उ.]कृतिः[ना.]
वेशः[ना] सः[ना.]	च[नि.] तत्[ना.]	प्राकृतम्[ना.]
अत्र[नि] न[नि] च[नि]	भावः[ना.] भावनया[ना.]	न[नि.] हि[नि.]
अन्यथा[ना.]	सिद्धः[ना] न[नि.]	ज्ञानम्[ना.]
कौण्डिन्यः[ना.]	अन्यद्[ना.] इष्यते[आ.]	गुणाः[ना.] तस्य[ना.]
गोपिकाः[ना.]	वि[उ.]कलत्वम्[ना.]	एवम्[नि.]
प्र[उ.]उक्ताः[ना.]	तथा[नि.]	वर्तमानस्य[ना.]
गुरवः[ना.]	अस्वास्थ्यम्[ना.]	बाधकाः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

स्वीयबन्धनिवृत्त्यर्थम्[स.]	साधनम्[कृद्.]	प्रकृतिः[कृद्+स.]
अत्र[तद्धि.]	भावनया[कृद्.]	प्राकृतम्[तद्धि.]
अन्यथा[तद्धि.]	सिद्धः[कृद्.] इष्यते[सना.]	ज्ञानम्[कृद्.]
गोपिकाः[तद्धि.]	विकलत्वम्[तद्धि.]	वर्तमानस्य[कृद्.]
प्रोक्ताः[कृद्+स.]	अस्वास्थ्यम्[स.]	बाधकाः[कृद्.]

शब्दरूपपरिचय :

स्वीयबन्धनिवृत्त्यर्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वेशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
कौण्डिन्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
गोपिकाः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब.
प्रोक्ताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
गुरवः - अ.उ.पुं.प्र.ब.
साधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तत् - ह.द्.नपुं.प्र.ए.

भावः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भावनया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
सिद्धः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अन्यत् - ह.द्.नपुं.प्र.ए.
(विकलत्वम्, अस्वास्थ्यम्, प्राकृ-तम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
प्रकृतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
ज्ञानम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
गुणाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.   वर्तमानस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.   बाधकाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय : इष्यते - तुदा.लट्.प्र.ए. (यक्)

अन्वय : अत्र स्वीयबन्धनिवृत्त्यर्थं वेषः (अस्ति) न च स अन्यथा (अस्ति).(७). कौण्डिन्यः गोपिकाः च गुरवः प्रोक्ताः साधनं च तद् (एव यः तेषां भावः). भावनया (स) भावः सिद्धः (भवति) अन्यत् साधनं न इष्यते.(८). विकलत्वं तथा अस्वास्थ्यं हि (तस्य) प्रकृतिः (भवति) न (तु) प्राकृतं, एवंवर्तमानस्य तस्य ज्ञानं गुणाश्च बाधकाः (भवन्ति)।।९।।

(पूर्वोक्तस्य सन्न्यासस्य फलावस्थायाः निरूपणम्)

सत्यलोके स्थितिर्ज्ञानात् सन्न्यासेन विशेषितात्।।
भावना साधनं यत्र फलं चापि तथा भवेत्।।१०।।
तादृशाः सत्यलोकादौ तिष्ठन्त्येव न संशयः।।
बहिश्चेत् प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् प्रविशेद् यदि।।११।।
तदैव सकलो बन्धो नाशमेति न चान्यथा।।
गुणास्तु सङ्गराहित्याद् जीवनार्थं भवन्ति हि।।१२।।
भगवान् फलरूपत्वात् नात्र बाधक इष्यते।।
स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं दयालुर्न विरुध्यते।।१३।।
दुर्लभोऽयं परित्यागः प्रेम्णा सिध्यति नान्यथा।।

सन्धिविच्छेद :

स्थितिः + ज्ञानात् = स्थितिर्ज्ञानात् [रेफ.]
नि + आसेन = न्यासेन [यण्.]
सम् + न्यासेन = सन्न्यासेन [प.स.]
च + अपि = चापि [दीर्घ.]

लोक + आदौ = लोकादौ [दीर्घ.]
तिष्ठन्ति + एव = तिष्ठन्त्येव [यण्.]
बहिः + चेत् = बहिश्चेत् [स.श्चु.]
स्व + आत्मा = स्वात्मा [दीर्घ]

प्रविशेत् + यदि = प्रविशेद् यदि [जश्त्व.]	जीवन + अर्थं = जीवनार्थम् [दीर्घ.]
तदा + एव = तदैव [वृद्धि.]	न + अत्र = नात्र [दीर्घ.]
सकलः + बन्धः + नाशम् =	बाधकः + इष्यते = बाधक इष्यते [वि.लो.]
सकलो बन्धो नाशम् [उ.गुण.]	दयालुः + न = दयालुर्न [रेफ.]
च + अन्यथा = चान्यथा [दीर्घ.]	दुर्लभः + अयम् = दुर्लभोऽयम् [उ.पू.रू.]
गुणाः + तु = गुणास्तु [स.]	न + अन्यथा = नान्यथा [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- सत्यः यः लोकः स सत्यलोकः [कर्म.]
- सत्यलोकः आदिः येषां ते सत्यलोकादिः [बहु.] तस्मिन् सत्यलोकादौ
- स्वस्य आत्मा इति स्वात्मा [ष.तत्पु.] - कलया सहितः इति सकलः [बहु.]
- सङ्गस्य राहित्यम् इति सङ्गराहित्यम् [ष.तत्पु.] तस्मात् सङ्गराहित्याद्
- जीवनाय इति जीवनार्थम् [च.तत्पु.]
- फलस्य रूपम् इति फलरूपम् [ष.तत्पु.]
  तस्य भावः फलरूपता तस्मात् फलरूपत्वात्
- स्वास्थ्य जनकं वाक्यम् इति स्वास्थ्यवाक्यम् [म.प.लो.]

शब्दपरिचय :

सत्यलोके [ना.]	तथा [नि.] भवेत् [आ.]	वह्निवत् [नि.]
स्थितिः [ना.]	तादृशाः [ना.]	प्र [उ.]विशेद् [आ.]
ज्ञानात् [ना.]	सत्यलोकादौ [ना.]	यदि [नि.] तदा [नि.]
सं [उ.]नि [उ.]आसेन [ना.]	तिष्ठन्ति [आ.]	सकलः [ना.] बन्धः [ना.]
वि [उ.]शेषितात् [ना.]	एव [नि.] न [नि.]	नाशम् [ना.]
भावना [ना.]	सम् [उ.]शयः [ना.]	एति [आ.]
साधनम् [ना.]	बहिः [नि.] चेत् [नि.]	अन्यथा [नि.]
यत्र [नि.] फलम् [ना.]	प्र [उ.]कटः [ना.]	गुणाः [ना.] तु [नि.]
च [नि.] अपि [नि.]	स्वात्मा [ना.]	सङ्गराहित्याद् [ना.]

जीवनार्थम्[ना.]	इष्यते[आ]	दुर्[उ.]लभः[ना.]
भवन्ति[आ.] हि[नि.]	स्वास्थ्यवाक्यम्[ना]	अयम्[ना.]
भगवान्[ना.]	कर्तव्यम्[ना.]	परि[उ.]त्यागः[ना.]
फलरूपत्वात्[ना.]	दयालुः[ना]	प्रेम्णा[ना.]
अत्र[नि.] बाधक[ना.]	वि[उ.]रुध्यते[आ.]	सिध्यति[आ.]

वृत्तिपरिचय :

सत्यलोके[स.]	प्रकटः[स.]	फलरूपत्वात्[तद्धि.]
स्थितिः[कृद.]	स्वात्मा[स.]	अत्र[तद्धि.] बाधकः[कृद.]
ज्ञानात्[कृद.]	वह्निवत्[तद्धि.]	इष्यते[सना.]
सन्न्यासेन[स.]	तदा[तद्धि.]	स्वास्थ्यवाक्यम्[स.]
विशेषितात्[कृद्+स.]	सकलः[स.]	कर्तव्यम्[कृद.]
भावना[कृद.]	अन्यथा[तद्धि.]	दयालुः[तद्धि.]
साधनम्[कृद.]	सङ्गराहित्याद्[स.]	विरुध्यते[सना.]
यत्र[तद्धि.] तथा[तद्धि.]	जीवनार्थम्[स.]	दुर्लभः[स.]
सत्यलोकादौ[स.]	भगवान्[तद्धि.]	परित्यागः[स.]

शब्दरूपपरिचय :

सत्यलोके - अ.अ.पुं.स.ए.	सत्यलोकादौ - अ.इ.पुं.स.ए.
स्थितिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	संशयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
ज्ञानात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	प्रकटः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सन्न्यासेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	स्वात्मा - ह.न.पुं.प्र.ए.
विशेषितात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	सकलः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भावना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	बन्धः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
साधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	नाशम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
फलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	गुणाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
तादृशाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.	सङ्गराहित्याद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.

जीवनार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कर्तव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
भगवान् - ह.त.पु.प्र.ए.	दयालुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
फलरूपत्वात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	दुर्लभः - अ.अ.पुं.प्र.ए. अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए.
बाधकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	परित्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्वास्थ्यवाक्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	प्रेम्णा - ह.न.नपुं.तृ.ए.

धातुरूपपरिचय :

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	भवन्ति - भ्वा.लट्.प्र.ब.
तिष्ठन्ति - भ्वा.लट्.प्र.ब.	इष्यते - तुदा.लट्.प्र.ए. (यक्)
प्रविशेद् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	विरुध्यते - रुधा.लट्.प्र.ए. (यक्)
एति - अदा.लट्.प्र.ए.	सिध्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : सन्यासेन विशेषितात् ज्ञानात् सत्यलोके स्थितिः (भवति) च यत्र भावना साधनं (तत्र) फलमपि तथा भवेत्.(१०). तादृशाः सत्यलोकादावेव तिष्ठन्ति (अत्र) संशयः न (अस्ति). (भक्तौ तु) चेत् बहिः प्रकटः स्वात्मा वह्निवत् यदि (पुनः अन्तः) प्रविशेत् तदैव सकलः बन्धः नाशम् च एति अन्यथा न. गुणास्तु संगराहित्याद् हि जीवनार्थं भवन्ति.(११-१२). फलरूपत्वात् भगवान् अत्र बाधकः (बाधकत्वेन) न इष्यते. (भगवता) स्वास्थ्यवाक्यं न कर्तव्यं (यतः) दयालुः (अस्ति अतः) न विरुध्यते.(१३). अयं दुर्लभः परित्यागः प्रेम्णा सिध्यति अन्यथा न (सिध्यति)

(ज्ञानमार्गीयसन्न्यासे ज्ञानार्थसन्न्यासः[स/१] ज्ञानोत्तरसन्न्यासः[स/२] इति प्रकारद्वैविध्ये द्वितीयस्य कलौ दुर्लभत्वमेवेति उपपादनम् प्रथमस्य अकर्तव्यत्वनिरूपणे हेतवः[१,२,३,४])

ज्ञानमार्गेतु सन्न्यासो द्विविधोऽपि विचारितः ।।१४।।
ज्ञानार्थम्[स/१] उत्तराङ्गं[स/२] च सिद्धिः जन्मशतैः परम्[१]।।

ज्ञानं च साधनापेक्षं यज्ञादिश्रवणान्मतम्[२]।।१५।।
अतः कलौ स संन्यासः पश्चात्तापाय नान्यथा[३]।।
पाषण्डित्वं भवेत् चापि तस्मात् ज्ञाने न संन्यसेत्।।१६।।
सुतरां कलिदोषाणां प्रबलत्वाद् इति स्थितिः[४]।।

सन्धिविच्छेद :

नि + आसः = न्यासः [यण्.]
सम् + न्यासः = सन्न्यासः [प.स.]
न्यासः + द्विविधः = न्यासो द्विविधः [उ.गुण.]
द्विविधः + अपि = द्विविधोऽपि [उ.पू.रू.]
ज्ञान + अर्थं= ज्ञानार्थम् [दीर्घ.]
उत्तर + अङ्गं = उत्तराङ्गम् [दीर्घ.]
साधन + अपेक्षं = साधनापेक्षम् [दीर्घ.]
यज्ञ + आदि = यज्ञादि [दीर्घ.]
श्रवणात् + मतम् = श्रवणान्मतम् [अनुना.]
सः + संन्यास = स संन्यासः [वि.लो.]
न + अन्यथा = नान्यथा [दीर्घ.]
च + अपि = चापि [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- ज्ञान एव मार्गः इति ज्ञानमार्गः [कर्म]
- द्वौ विधौ (विधः=प्रकारः) यस्य स द्विविधः [बहु.]
- ज्ञानाय इति ज्ञानार्थम् [च.तत्पु.]
- उत्तरं च तद अङ्गम् इति उत्तराङ्गम् [कर्म]
- जन्मनां शतम् इति जन्मशतम् [ष.तत्पु.] तैः जन्मशतैः
- साधनस्य अपेक्षा यत्र तत् साधनापेक्षम् [बहु.]
- यज्ञः आदि यस्य स यज्ञादि [बहु.]
- यज्ञादेः श्रवणम् इति यज्ञादिश्रवणम् [ष.तत्पु.] तस्मात्
- कलेः दोषाः इति कलिदोषाः [ष.तत्पु.] तेषां कलिदोषाणाम्
- पश्चात् यः तापः स पश्चात्तापः [कर्म.] तस्मै

शब्दपरिचय :

ज्ञानमार्गे [ना.] तु [नि.] सं [उ.]नि [उ.]आसः [ना.] द्विविधः [ना.]

अपि [नि.]
वि [उ.] चारितः [ना.]
ज्ञानार्थम् [ना.]
उत्तराङ्गम् [ना.]
च [नि.] सिद्धिः [ना.]
जन्मशतैः [ना.]
परम् [नि.]
ज्ञानम् [ना.] च [नि.]

साधनापेक्षम् [ना.]
यज्ञादिश्रवणात् [ना.]
मतम् [ना.] अतः [नि.]
कलौ [ना.] सः [ना.]
पश्चात्तापाय [ना.]
न [नि.] अन्यथा [नि.]
पाषण्डित्वम् [ना.]
भवेत् [आ.]

च [नि.] अपि [नि.]
तस्मात् [ना.]
ज्ञाने [ना.]
सं [उ.] नि [उ.] असेत् [आ.]
सुतराम् [नि.]
कलिदोषाणाम् [ना.]
प्र [उ.] बलत्वाद् [ना.]
इति [नि.] स्थितिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

ज्ञानमार्गे [स.]
सन्न्यासः [स.]
द्विविधः [स.]
विचारितः [कृद्+स.]
ज्ञानार्थम् [स.]
उत्तराङ्गम् [स.]

सिद्धिः [कृद्]
जन्मशतैः [स.]
ज्ञानम् [कृद्]
साधनापेक्षम् [स.]
यज्ञादिश्रवणात् [स.]
मतम् [कृद्] **अतः** [तद्धि.]

अन्यथा [तद्धि.]
पाषण्डित्वम् [तद्धि.]
ज्ञाने [कृद्]
कलिदोषाणाम् [स.]
प्रबलत्वाद् [तद्धि.]
स्थितिः [कृद्]

शब्दरूपपरिचय :

ज्ञानमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.
(सन्न्यासः, द्विविधः, विचारितः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.
ज्ञानार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
उत्तराङ्गम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सिद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
जन्मशतैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
(ज्ञानम्, साधनापेक्षम्, मतम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

यज्ञादिश्रवणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
कलौ - अ.इ.पुं.स.ए. सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
सन्न्यासः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
पश्चात्तापाय - अ.अ.पुं.च.ए.
पाषण्डित्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए. ज्ञाने - अ.अ.नपुं.स.ए.
कलिदोषाणाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
प्रबलत्वाद् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
स्थितिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. सन्न्यसेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : ज्ञानमार्गे संन्यासस्तु ज्ञानार्थं उत्तराङ्ग च (इति) द्विविधोऽपि विचारितः, परं जन्मशतैः सिद्धिः (स्यात्)
यज्ञादिश्रवणात् ज्ञानं च साधनापेक्षं मतम् .(१५). अतः कलौ स सन्न्यासः पश्चात्तापाय (भवति) अन्यथा न, पाषण्डित्वं चापि भवेत्, तस्मात् कलिदोषाणां सुतरां प्रबलत्वात् ज्ञाने न संन्यसेत् इति स्थितिः ॥

(''कलिकालजदोषाः भक्तिमार्गीयसंन्यासे सम्भवन्ति न वे ?''ति शङ्कायां समाधानानि [१,२,३,४,५])

भक्तिमार्गेऽपि चेद् दोषः तदा किं कार्यमुच्यते ॥१७॥
अत्रारम्भे न नाशः स्याद्[१] दृष्टान्तस्याप्यभावतः[२]॥
स्वास्थ्यहेतोः परित्यागाद् बाधः केनास्य सम्भवेत् ?[३]॥१८॥
हरिरत्र न शक्नोति कर्तुं बाधां कुतोऽपरे ! ॥
अन्यथा मातरो बालान् न स्तन्यैः पुपुषुः क्वचित्[४]॥१९॥
ज्ञानिनामपि वाक्येन न भक्तं मोहयिष्यति ॥
आत्मप्रदः प्रियश्चापि किमर्थं मोहयिष्यति ?[५]॥२०॥
तस्मादुक्तप्रकारेण परित्यागो विधीयताम् ॥
अन्यथा भ्रश्यते स्वार्थाद् इति मे निश्चिता मतिः ॥२१॥

सन्धिविच्छेद :

मार्गे + अपि = मार्गेऽपि [पू.रू.]
चेत् + दोषः = चेद्दोषः [जश्त्व.]
अत्र + आरम्भे = अत्रारम्भे [दीर्घ.]
दृष्टान्तस्य + अपि = दृष्टान्तस्यापि [दीर्घ]
त्यागात् + बाध = त्यागाद् बाधः [जश्त्व]
अपि + अभावतः = अप्यभावतः [यण्.]
केन + अस्य = केनास्य [दीर्घ.]
हरिः + अत्र = हरिरत्र [रेफ.]
कुतः + अपरे = कुतोऽपरे [उ.पू.रु.]
मातरः + बालान् = मातरो बालान् [उ.गुण]
तस्मात् + उक्त = तस्मादुक्त [जश्त्व]

प्रियः + च = प्रियश्च [स.श्चु.] त्यागः + विधीयतां = त्यागो विधीयतां [उ.गुण.]
प्रियश्च + अपि = प्रियश्चापि [दीर्घ] स्व + अर्थात् = स्वार्थात् [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म] तस्मिन् भक्तिमार्गे
- न भावः इति अभावः [न.तत्पु.] तस्मात् अभावतः
- स्वास्थ्यस्य हेतुः इति स्वास्थ्यहेतुः [ष.तत्पु.] तस्मात्
- प्रकर्षेण ददाति इति प्रदः [उप.स.] आत्मनः प्रदः इति आत्मप्रदः [ष.तत्पु.]
- कस्मै इति किमर्थम् [च.तत्पु.]
- उक्तः यः प्रकारः स उक्तप्रकारः [कर्म] तेन उक्तप्रकारेण
- स्वस्य अर्थः इति स्वार्थः [ष.तत्पु.] तस्मात्

शब्दपरिचय :

भक्तिमार्गे [ना.]	अपि [नि.]	अपरे [ना.]	
अपि [नि.]	अभावतः [नि.]	अन्यथा [नि.]	
चेद् [नि.]	स्वास्थ्यहेतोः [ना.]	मातरः [ना.]	
दोषः [ना.]	परि [उ.]त्यागात् [ना.]	बालान् [ना.]	
तदा [नि.]	बाधः [ना.]	स्तन्यैः [ना.]	तस्माद् [ना.]
किम् [ना.]	केन [ना.]	पुपुषुः [आ.]	उक्त-प्र [उ.]कारेण [ना.]
कार्यम् [ना.]	अस्य [ना.]	क्वचित् [नि.]	परि [उ.]त्यागः [ना.]
उच्यते [आ.]	सम् [उ.]भवेत् [आ.]	ज्ञानिनाम् [ना.]	वि [उ.]धीयताम् [आ.]
अत्र [नि.]	हरिः [ना.]	वाक्येन [ना.]	भ्रश्यते [आ.]
आ [उ] रम्भे [ना.]	अत्र [नि.]	भक्तम् [ना.]	स्वार्थाद् [ना.]
न [नि.]	शक्नोति [आ.]	मोहयिष्यति [आ.]	इति [नि.]
नाशः [ना.]	कर्तुम् [नि.]	आत्म-प्र [उ.]दः [ना.]	मे [ना.]
स्याद् [आ.]	बाधाम् [ना]	प्रियः [ना.]	निस् [उ.]चिता [ना.]
दृष्टान्तस्य [ना.]	कुतः [नि.]	किमर्थम् [ना.]	मतिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

भक्तिमार्गे [स.]	परित्यागात् [कृद्+स.]	आत्मप्रदः [स.]
तदा [तद्धि.]	कुतः [तद्धि.] अन्यथा [तद्धि.]	किमर्थम् [स.]
कार्यम् [कृद्]	कर्तुम् [कृद्]	उक्तप्रकारेण [स.]
उच्यते [सना.] अत्र [तद्धि.]	स्तन्यैः [तद्धि.]	विधियताम् [सना.]
आरम्भे [स.]	ज्ञानिनाम् [तद्धि.]	स्वार्थात् [स.]
अभावतः [तद्धि.]	भक्तम् [कृद्]	निश्चिता [कृद्+स.]
स्वास्थ्यहेतोः [स.]	मोहयिष्यति [सना.]	मतिः [कृद्]

शब्दरूपपरिचय :

भक्तिमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.
दोषः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
किम् - ह.म.नपुं.प्र.ए.
कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
आरम्भे - अ.अ.पुं.स.ए.
नाशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
दृष्टान्तस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
स्वास्थ्यहेतोः - अ.उ.पुं.ष.ए.
परित्यागाद् - अ.अ.पुं.पं.ए.
बाधः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
केन - ह.म.पु.तृ.ए.
अस्य - ह.म.पुं.ष.ए.
हरिः - अ.इ.पु.प्र.ए.
बाधाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
अपरे - अ.अ.पुं.प्र.ब.
मातरः - अ.ऋ.स्त्री.प्र.ब.

बालान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
स्तन्यैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
ज्ञानिनाम् - ह.न.पुं.ष.ब.
वाक्येन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.
भक्तम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
आत्मप्रदः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
प्रियः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
किमर्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.
उक्तप्रकारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
परित्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्वार्थाद् - अ.अ.पुं.पं.ए.
मे - ह.द.ष.ए.
निश्चिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
मतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

उच्यते - अदा.लट्.प्र.ए.(यक्)
स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.
सम्भवेत् - भ्वा.लिङ्.प्र.ए.
शक्नोति - स्वा.लट्.प्र.ए.
पुपुषुः - दिवा.लिट्.प्र.ब.
मोहयिष्यति - दिवा.लृट्.प्र.ए.(णिच्)
विधीयताम् - जुहो.लोट्.प्र.ए.(यक्)
भ्रश्यते - दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वय :

भक्तिमार्गेऽपि चेत् दोषः (उत्पद्यते) तदा किं कार्यम्? उच्यते— आरम्भे दृष्टान्तस्यापि अभावतः अत्र नाशः न स्यात्. स्वास्थ्यहेतोः परित्यागात् अस्य बाधः केन सम्भवेत्?(१७-१८). अत्र हरिः (अपि) बाधां कर्तुं न शक्नोति अपरे कुतः? अन्यथा मातरः बालान् (यत्) स्तन्यैः (पुष्णन्ति तत्) क्वचिदपि न पुपुषुः.(१९). (हरिः) ज्ञानिनामपि वाक्येन भक्तं न मोहयिष्यति (यतो हि स) आत्मप्रदः प्रियः चापि (अस्ति अतः तं) किमर्थं मोहयिष्यति?(२०). तस्मात् उक्तप्रकारेण परित्यागः विधीयताम् अन्यथा (स भक्तः) स्वार्थात् भ्रश्यते इति मे मतिः (अस्ति)॥२१॥

(ग्रन्थोपसंहारः)

इति कृष्णप्रसादेन वल्लभेन विनिश्चितम्।।
सन्न्यासवरणं भक्तावन्यथा पतितो भवेत्॥२२॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितः संन्यासनिर्णयः सम्पूर्णः ॥

सन्धिविच्छेद :

विनिस् + चितम् = विनिश्चितम् [श्चु.]
नि + आस = न्यास [यण्]
सम् + न्यास = सन्न्यास [प.स.]
भक्तौ + अन्यथा = भक्तावन्यथा [एच.]
पतितः + भवेत् = पतितो भवेत् [उ.गुण.]

समास विग्रह :

- कृष्णस्य प्रसादः इति कृष्णप्रसादः [ष.तत्पु.] तेन कृष्णप्रसादेन
- सन्न्यासस्य वरणम् इति संन्यासवरणम् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

इति [नि.]	वि [उ.] निस् [उ.] चितम् [ना.]	अन्यथा [नि.]
कृष्ण-प्र [उ.] सादेन [ना.]	सं [उ.] नि [स.] आसवरणम् [ना.]	पतितः [ना.]
वल्लभेन [ना.]	भक्तौ [ना.]	भवेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

कृष्णप्रसादेन [स.]	सन्न्यासवरणम् [स.]	अन्यथा [तद्धि.]
विनिश्चितम् [कृद्+स.]	भक्तौ [कृद्]	पतितः [कृद्]

शब्दरूपपरिचय :

कृष्णप्रसादेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	सन्न्यासवरणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वल्लभेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	भक्तौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.
विनिश्चितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	पतितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : इति वल्लभेन कृष्णप्रसादेन भक्तौ संन्यासवरणं विनिश्चितम्, अन्यथा (करणे) पतितः भवेत्॥२२॥

।। निरोधलक्षणम् ।।

(२०)

(भक्तेः प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभगवदासक्तिरूपनिरोधावस्थापरिपाकार्थं भगवत्सेवाकथोभयपरायणैः पुष्टिभक्तैः सेवानवसरे कथाकाले भगवतः गोचारणकालिवृन्दावनलीलानुसन्धानेन स्वहृदये वियोगभावना कार्या[१], सेवासमये गोकुलस्थितभगवतः संयोगभावना कार्या[२])

यच्च दुःखं यशोदाया नन्दादीनां च गोकुले।।
गोपिकानान्तु यद् दुःखं तद् दुःखं स्यान्मम क्वचित्[१]।।१।।
गोकुले गोपिकानां च सर्वेषां व्रजवासिनाम्।।
यत् सुखं समभूत् तन्मे भगवान् किं विधास्यति[२]।।२।।

सन्धिविच्छेद :

यत् + च = यच्च [श्चु.]

यशोदायाः + नन्दादीनां =
यशोदाया नन्दादीनाम् [वि.लो.]

नन्द + आदीनाम् = नन्दादीनाम् [दीर्घ]

गोपिकानाम् + तु = गोपिकानान्तु [प.स.]

स्यात् + मम = स्यान्मम [अनुना.]

तत् + मे = तन्मे [अनुना.]

समासविग्रह :

- नन्दः आदिः येषां ते नन्दादयः [बहु.] तेषां नन्दादीनाम्
- व्रजस्य वासी इति व्रजवासी [ष.तत्पु.] तेषां व्रजवासिनाम्

शब्दपरिचय :

यत् [ना.] च [नि.] दुःखम् [ना.] यशोदायाः [ना.] नन्दादीनाम् [ना.] गोकुले [ना.]

गोपिकानाम्[ना]	क्वचित्[नि.]	सुखम्[ना] सम्[उ.]अभूत्[आ.]
तु[नि.] तद्[ना.]	सर्वेषाम्[ना.]	मे[ना.] भगवान्[ना]
स्यात्[आ] मम[ना.]	व्रजवासिनाम्[ना.]	किम्[नि.] वि[उ.]धास्यति[आ.]

वृत्तिपरिचय :
यशोदाया[स.] नन्दादीनाम्[स.] गोपिकानाम्[तद्धि] व्रजवासिनाम्[स]भगवान्[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय. :

यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.	मम - ह.द.ष.ए.
दुःखम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
यशोदायाः - अ.आ.स्त्री.ष.ए.	व्रजवासिनाम् - ह.न.पुं.ष.ब.
नन्दादीनाम् - अ.इ.पु.ष.ब.	सुखम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
गोकुले - अ.अ.नपुं.स.ए.	तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.मे - ह.द.ष.ए.
गोपिकानाम् - अ.आ.स्त्री.ष.ब.	भगवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :
स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए. समभूत् - भ्वा.लुङ्.प्र.ए. विधास्यति - जुहो.लृट्.प्र.ए.

अन्वय : गोकुले यशोदायाः नन्दादीनां च यत् दुःखं (अभूत्) च गोपिकानां तु यत् दुःखं (अभूत्) तत् दुःखं क्वचित् मम स्यात्!! (१). गोकुले गोपिकानां सर्वेषां व्रजवासिनां च यत् सुखं समभूत् तत् (सुखं) मे भगवान् किं विधास्यति!! ॥२॥

(गोकुलवृन्दावनस्थितयोः व्रजभक्तयोः यथायथं स्वस्वनिकटे समागतेन भगवत्प्रेषितेन उद्धवेन सह भगवद्वार्तामहोत्सवेनेव भगवत्सेवां कर्तुम् असमर्थानां भगवत्कथापरायणानां भगवद्गुणगानेनापि भक्तिः उक्तां निरोधावस्थां प्राप्तुं शक्नोतीति तन्माहात्म्यनिरूपणम्)

उद्धवागमने जात उत्सवः सुमहान् यथा।।
वृन्दावने गोकुले वा तथा मे मनसि क्वचित्।।३।।
महतां कृपया यावद् भगवान् दययिष्यति।।
तावदानन्दसन्दोहः कीर्त्यमानः सुखाय हि।।४।।
महतां कृपया यद्वत् कीर्तनं सुखदं सदा।।
न तथा लौकिकानां तु स्निग्धभोजनरूक्षवत्।।५।।
गुणगाने सुखावाप्तिः गोविन्दस्य प्रजायते।।
यथा तथा शुकादीनाम् नैवात्मनि कुतोऽन्यतः।।६।।
क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा कृपायुक्तो यदा भवेत्।।
तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं निर्गतं बहिः।।७।।
सर्वानन्दमयस्यापि कृपानन्दः सुदुर्लभः।।
हृद्गतः स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः प्लावयते जनान्।।८।।
तस्मात् सर्वं परित्यज्य निरुद्धैः सर्वदा गुणाः।।
सदानन्दपरैर् गेयाः सच्चिदानन्दता ततः।।९।।

सन्धिविच्छेद :

उद्धव + आगमने = उद्धवागमने [दीर्घ]
जातः + उत्सवः = जात उत्सवः [वि.लो.]
यावत् + भगवान् = यावद् भगवान् [जश्त्व.]
तावत् + आनन्द = तावदानन्द [जश्त्व.]
सुख + अव + आप्तिः =
सुखावाप्तिः [दीर्घ] न + एव = नैव [वृद्धि.]
शुक + आदीनाम् = शुकादीनाम् [दीर्घ.]
नैव +आत्मनि = नैवात्मनि [दीर्घ]
कुतः + अन्यतः = कुतोऽन्यतः [उ.पू.रू.]
कृपायुक्तः + यदा =
कृपायुक्तो यदा [उ.गुण.]
सत् + आनन्दं = सदानन्दम् [जश्त्व.]
सर्व + आनन्दमयस्य + अपि =
सर्वानन्दमयस्यापि [दीर्घ.]
कृपा + आनन्दः = कृपानन्दः [दीर्घ.]
परैः + गेयाः = परैर्गेयाः [रेफ.]
सत् + चित् = सच्चित् [श्चु.]
सच्चित् + आनन्दता =
सच्चिदानन्दता [जश्त्व.]

समास विग्रह : उद्धवस्य आगमनम् इति उद्धवागमनम् [प.तत्पु.] तस्मिन्

- आनन्दस्य सन्दोहः इति आनन्दसन्दोहः [ष.तत्पु.]
- सुखं ददाति इति सुखदः [उप.स.] तं सुखदम्
- स्निग्धं च तत् भोजनं च इति स्निग्धभोजनम् [कर्म]
  तच्च रूक्षं च (रूक्षभोजनं च) स्निग्धभोजनरूक्षम् [द्वन्द्व.]
  तयोरिव स्निग्धभोजनरूक्षवत्
- गुणानां गानम् इति गुणगानम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् गुणगाने
- सुखस्य अवाप्तिः इति सुखावाप्तिः [ष.तत्पु.]
- शुकः आदिः येषां ते शुकादयः [बहु.] तेषां शुकादीनाम्
- कृपया युक्तः इति कृपायुक्तः [तृ.तत्पु.]
- सन्श्चासौ आनन्दश्च इति सदानन्दः [कर्म.] तम्
- हृदि स्थितं इति हृदिस्थम् [अलुक.]
- सर्वश्च असौ आनन्दश्च सर्वानन्दः [कर्म]
  तन्मयः इति सर्वानन्दमयः, तस्य कृपायाः आनन्दः इति कृपानन्दः [पं.तत्पु.]
- हृत् गतः इति हृद्गतः [द्वि.तत्पु.]
- स्वस्य गुणाः स्वगुणाः [ष.तत्पु.] तान् स्वगुणान्
- सदानन्दे परः इति सदानन्दपरः [स.तत्पु.] तैः
- सत् च चित् च आनन्दश्च तेषां समाहारः सच्चिदानन्दम् [द्वन्द्व.]
  सच्चिदानन्दस्य भावः सच्चिदानन्दता

शब्दपरिचय :

उद् [उ.]-धव-	गोकुले [ना.]	यावद् [नि.]	सुखाय [ना.]
आ [उ.]गमने [ना.]	वा [नि.]	भगवान् [ना.]	हि [नि.]
जातः [ना.]	तथा [नि.] मे [ना.]	दययिष्यति [आ.]	यद्वत् [नि.]
उत् [उ.]सवः [ना.]	मनसि [ना.]	तावद् [नि.]	कीर्तनम् [ना.]
सु [उ.]महान् [ना.]	क्वचित् [नि.]	आ [उ.]नन्द-	सुखदम् [ना.]
यथा [नि.]	महताम् [ना.]	सम् [उ.]दोहः [ना.]	सदा [नि.]
वृन्दावने [ना.]	कृपया [ना.]	कीर्त्यमानः [ना.]	न [नि.] तथा [नि.]

लौकिकानाम्[ना.] तु[नि.]	जनान्[ना.] दृष्ट्वा[स.आ.]	हृद्गतः[ना.] स्वगुणान्[ना.]
स्निग्धभोजनरूक्षवत्[नि.]	कृपायुक्तः[ना.] यदा[नि]	श्रुत्वा[स.आ.] पूर्णः[ना.]
गुणगाने[ना.]	भवेत्[आ.]	प्लावयते[आ.] जनान्[ना.]
सुख-अव[उ.]आप्तिः[ना.]	तदा[नि.] सर्वम्[ना.]	तस्मात्[ना.]
गोविन्दस्य[ना.]	सद्-आ[उ.]नन्दम्[ना.]	परि[उ.]त्यज्य[स.आ.]
प्र[उ.]जायते[आ.]	हृदिस्थम्[ना.]	नि[उ.]रुद्धैः[ना.]
शुकादीनाम्[ना.]	निर्[उ.]गतम्[ना.] बहिः[नि.]	सर्वदा[नि.] गुणाः[ना.]
एव[नि.] आत्मनि[ना.]	सर्व-आ[उ.]नन्दमयस्य[ना.]	सदा-आ[उ.]नन्दपरैः[ना.]
कुतः[नि.] अन्यतः[नि.]	अपि[नि.] कृपा-आ[उ.]नन्दः[ना.]	गेयाः[ना.] ततः[नि.]
क्लिश्यमानान्[ना.]	सु[उ.]दुर्[उ.]लभः[ना.]	सच्चिदानन्दता[ना.]

वृत्तिपरिचय :

उद्भवागमने[स.]	सुखावाप्तिः[स.]	कृपानन्दः[स.]
जातः[कृद.] उत्सवः[स.]	शुकादीनाम्[स.]	सुदुर्लभः[स.] हृद्गतः[स.]
सुमहान्[स.]	कुतः[तद्धि.]	स्वगुणान्[स.]
(यथा, तथा, यावत्,	अन्यतः[तद्धि.]	श्रुत्वा[कृद.]
तावत्, भगवान्)[तद्धि.]	क्लिश्यमानान्[कृद.]	प्लावयते[सना.]
दययिष्यति[सना.]	दृष्ट्वा[कृद.]	परित्यज्य[कृद+स.]
आनन्दसन्दोहः[स.]	कृपायुक्तः[स.]	निरुद्धैः[कृद+स.]
कीर्त्यमानः[कृद.]	यदा[तद्धि.] तदा[तद्धि.]	सर्वदा[तद्धि.]
कीर्तनम्[कृद.] सुखदम्[स.]	सदानन्दम्[स.]	सदानन्दपरैः[स.]
लौकिकानाम्[तद्धि.]	हृदिस्थम्[स.]	गेयाः[कृद.]
स्निग्धभोजनरूक्षवत्[तद्धि.]	निर्गतम्[कृद+स.]	सच्चिदानन्दता[तद्धि.]
गुणगाने[स.]	सर्वानन्दमयस्य[तद्धि.]	ततः[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय. :

उद्भवागमने - अ.अ.नपुं.स.ए. जातः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

उत्सवः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	शुकादीनाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
सुमहान् - ह.त.पुं.प्र.ए.	आत्मनि - ह.न.पुं.स.ए.
वृन्दावने - अ.अ.नपुं.स.ए.	क्लिश्यमानान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
गोकुले - अ.अ.नपुं.स.ए.	जनान् - अ.अ.पुं.द्वि.व.
मे - ह.द.ष.ए.	कृपायुक्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
मनसि - ह.स.नपु.स.ए.	(सर्वम्, सदानन्दम्, हृदिस्थम्,
महताम् - ह.त्.पुं.ष.ब.	निर्गतम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कृपया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.	सर्वानन्दमयस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
भगवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.	(कृपानन्दः, सुदुर्लभः, हृद्गतः,
आनन्दसन्दोहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	पूर्णः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कीर्त्यमानः - अ.अ.पुं.प्र.ए	स्वगुणान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
सुखाय - अ.अ.नपुं.च.ए.	जनान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
कीर्तनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तस्मात् - ह.द्.नपुं.पं.ए.
सुखदम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सर्वैं, निरुद्धैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
लौकिकानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.	गुणाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
गुणगाने - अ.अ.नपुं.स.ए.	सदानन्दपरैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
सुखावाप्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	गेयाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
गोविन्दस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	सच्चिदानन्दता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय. :

दययिष्यति - भ्वा.लृट्.प्र.ए.(णिच् प्रत्ययान्त)	भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
प्लावयते - भ्वा.लट्.प्र.ए.(णिच् प्रत्ययान्त)	प्रजायते - दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : उद्धवागमने वृन्दावने वा गोकुले यथा सुमहान् उत्सवो जातः तथा मे मनसि क्वचित् (स्यात्)! (३). महतां कृपया यावत् भगवान् दययिष्यति तावत् कीर्त्यमानः आनन्दसन्दोहो सुखाय ही (भवति) (४). महतां कृपया यद्वत् कीर्तनं सदा सुखदं भवति

तथा लौकिकानां (कीर्तनं) तु न (भवति) स्निग्धभोजनरूक्षवत् (तयोः तारतम्यं अस्ति) (५). गोविन्दस्य गुणगाने यथा सुखावाप्तिः (निरुद्धानां) प्रजायते तथा शुकादीनां आत्मनि (अपि) नैव (भवति) (तदा) अन्यतः (=अन्यसाधनेभ्यः) कुतः (भवेत्) वा गोविन्दस्य गुणगाने यथा सुखावाप्तिः शुकादीनां प्रजायते तथा (तेषां) आत्मनि (अपि) नैव (प्रजायते तर्हि) अन्यतः कुतः (स्यात्) (६). क्लिश्यमानान् जनान् दृष्ट्वा (प्रभुः) यदा कृपायुक्तो भवेत् तदा सर्वं सदानन्दं हृदिस्थं (स्वरूपं) बहिः निर्गतं (करोति) (७). सर्वानन्दमयस्य अपि कृपानन्दः सुदुर्लभः (अस्ति). हृद्गतः (स) स्वगुणान् श्रुत्वा पूर्णः (सन्) जनान् प्लावयते (८). तस्मात् सदानन्दपरैः निरुद्धैः सर्वं परित्यज्य सर्वदा गुणाः गेयाः (वा निरुद्धैः सर्वं परित्यज्य सदानन्दपरैः (=भगवदीयैः) (सह) सर्वदा गुणाः गेयाः) ततः सच्चिदानन्दता (भवति) ॥९॥

(प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभगवदासक्तिरूपायाः भक्तेः सर्वातिशायितायां स्वानुभवप्रामाण्यनिरूपणपूर्विका स्वमार्गे तदुपदेशावश्यकता)

अहं निरुद्धो रोधेन निरोधपदवीं गतः ।।
निरुद्धानान्तु रोधाय निरोधं वर्णयामि ते।।१०।।
हरिणा ये विनिर्मुक्ताः ते मग्ना भवसागरे।।
ये निरुद्धास्तएवात्र मोदमायान्त्यहर्निशम्।।११।।

सन्धिविच्छेद :

निरुद्धः + रोधेन = निरुद्धो रोधेन [उ.गुण.]	ते + एव = तएव [अय्.यलोप.]
निरुद्धानाम् + तु = निरुद्धानान्तु [प.स.]	एव + अत्र = एवात्र [दीर्घ.]
मग्नाः + भवसागरे = मग्ना भवसागरे [वि.लो.]	आयान्ति + अहर्निशं = आयान्त्यहर्निशं [यण्]
निरुद्धाः + ते = निरुद्धास्ते [स.]	अहः + निशम् = अहर्निशम् [रेफ.]

समास विग्रह :

- निरोधस्य पदवी इति निरोधपदवी[ष.तत्पु.] तां निरोधपदवीम्
- भव एव सागरः इति भवसागरः[कर्म] तस्मिन् भवसागरे

शब्दपरिचय :

अहम्[ना.]	नि[उ.]रोधम्[ना.]	ते[ना.] मग्ना[ना.]
नि[उ.]रुद्धः[ना.]	वर्णयामि[आ.]	भवसागरे[ना.]
रोधेन[ना.]	ते[ना.]	ये[ना.] नि[उ.]रुद्धाः[ना.]
नि[उ.]रोधपदवीं[ना.]	हरिणा[ना.]	ते[ना.] एव[नि.]
गतः[ना.]	ये[ना.]	अत्र[नि.] मोदम्[ना.]
नि[उ.]रुद्धानाम्[ना.]	वि[उ.]निर्[उ.]	आ[उ.]यान्ति[आ.]
तु[नि.] रोधाय[ना.]	मुक्ताः[ना.]	अहर्निशम्[नि.]

वृत्तिपरिचय :

निरुद्धः[कृद्+स.]	निरोधम्[कृद+स.]	
निरोधपदवीम्[स.]	विनिर्मुक्ताः[कृद्+स.]	निरुद्धाः[कृद्+स.]
गतः[कृद्.]	मग्नाः[कृद्.]	अत्र[तद्धि.]
निरुद्धानाम्[कृद्+स.]	भवसागरे[स.]	अहर्निशम्[स.]

शब्दरूपपरिचय. :

अहम् - ह.द.पुं.प्र.ए. निरोधम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
निरुद्धः - अ.अ.पुं.प्र.ए. ते - ह.द.पुं.च./ष.ए. हरिणा - अ.इ.पुं.तृ.ए.
रोधेन - अ.अ.पुं.तृ.ए. ये - ह.द.पुं.प्र.ब.
निरोधपदवीम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए. विनिर्मुक्ताः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
गतः - अ.अ.पुं.प्र.ए. मग्नाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
निरुद्धानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब. भवसागरे - अ.अ.पुं.स.ए.
रोधाय - अ.अ.पुं.च.ए. निरुद्धाः - अ.अ.पुं.प्र.ब. मोदम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

वर्णयामि - चुरा.लट्.उ.ए. आयान्ति - अदा.लट्.प्र.व.

अन्वय : अहं निरुद्धः (निरुद्धानां मार्गोऽङ्गीकृतः). रोधेन निरोधपदवीं गतः निरुद्धानां (आधुनिक-निरोधमार्गीयाणां) तु रोधाय ते निरोधं वर्णयामि (१०). हरिणा ये विनिर्मुक्ताः ते भवसागरे मग्नाः (किञ्च) ये निरुद्धाः ते एव अत्र अहर्निशं मोदम् आयान्ति ॥११॥

(प्रपञ्चविस्मृतिपूर्वकभगवदासक्तिसिद्ध्यर्थं देहेन्द्रियादीनां सकलानां भगवति विनियोगः करणीयः, तेनैव च भक्तेः निरोधावस्थायां परिपाको भवतीति निरूपणम्)

संसारावेशदुष्टानाम् इन्द्रियाणां हिताय वै।
कृष्णस्य सर्ववस्तूनि भूम्न ईशस्य योजयेत् ॥१२॥
गुणेष्वाविष्ट-चित्तानां सर्वदा मुरवैरिणः ॥
संसार-विरह-क्लेशौ न स्यातां हरिवत् सुखम् ॥१३॥
तदा भवेद् दयालुत्वम् अन्यथा क्रूरता मता ॥
बाधशङ्कापि नास्त्यत्र तदध्यासोऽपि सिध्यति ॥१४॥
भगवद्धर्मसामर्थ्याद् विरागो विषये स्थिरः ॥
गुणैर् हरि-सुख-स्पर्शात् न दुःखं भाति कर्हिचित् ॥१५॥
एवं ज्ञात्वा ज्ञानमार्गाद् उत्कर्षो गुणवर्णने ॥
अमत्सरैः अलुब्धैश्च वर्णनीयाः सदा गुणाः ॥१६॥

सन्धिविच्छेद :

संसार + आवेश = संसारावेश दीर्घ.	न + अस्ति = नास्ति दीर्घ.
भूम्नः + ईशस्य = भूम्न ईशस्य वि.लो.	नास्ति + अत्र = नास्त्यत्र यण.
गुणेषु + आविष्ट = गुणेष्वाविष्ट यण.	अध्यासः + अपि = अध्यासोऽपि उ.पू.रू.
बाधशङ्का + अपि = बाधशङ्कापि दीर्घ.	भगवत् + धर्म = भगवद्धर्म जश्त्व.

सामर्थ्यात् + विरागः =	गुणैः + हरि.. = गुणैर्हरि.. [रेफ.]
सामर्थ्याद् विरागः [जश्त्व.]	मार्गात् + उत्कर्षः = मार्गादुत्कर्षः [जश्त्व.]
विरागः + विषये =	उत्कर्षः + गुण = उत्कर्षो गुण [उ.गुण.]
विरागो विषये [उ.गुण.]	अलुब्धैः + च = अलुब्धैश्च [स.श्चु.]

समास विग्रह :

- संसारस्य आवेशः इति संसारावेशः [प.तत्पु.]
- संसारावेशेन दुष्टम् इति संसारावेशदुष्टम् [तृ.तत्पु.] तेषां संसारावेशदुष्टानाम्
- सर्वाणि च तानि वस्तूनि इति सर्ववस्तूनि [कर्म]
- आविष्टं चित्तम् यस्य स आविष्टचित्तः [बहु.] तेषां आविष्टचित्तानाम्
- मुरस्य वैरी इति मुरवैरी [प.तत्पु.] तस्य मुरवैरिणः
- विरहस्य क्लेशः इति विरहक्लेशः [प.तत्पु.]
- संसारश्च विरहक्लेशश्च इति संसारविरहक्लेशौ [द्वन्द्व.]
- बाधस्य शङ्का इति बाधशङ्का [प.तत्पु.]
- तस्य अध्यासः इति तदध्यासः [प.तत्पु.]
- भगवतः धर्मः इति भगवद्धर्मः [प.तत्पु.]
- भगवद्धर्मस्य सामर्थ्यम् इति भगवद्धर्मसामर्थ्यम् [प.तत्पु.] तस्मात् भगवद्धर्मसामर्थ्याद्
- हरेः सुखम् इति हरिसुखम् [प.तत्पु.]
  तस्य स्पर्शः इति हरिसुखस्पर्शः [प.तत्पु.] तस्मात् हरि-सुख-स्पर्शात्
- ज्ञानमेव मार्गः इति ज्ञानमार्गः [कर्म] तस्मात् ज्ञानमार्गात्
- गुणस्य वर्णनम् इति गुणवर्णनम् [प.तत्पु.] तस्मिन् गुणवर्णने
- नास्ति मत्सरो यस्मिन् स अमत्सरः [बहु.] तैः अमत्सरैः
- न लुब्धः इति अलुब्धः [न.तत्पु.] तैः अलुब्धैः

शब्दपरिचय :

सम्[उ.]सार-आ[उ.]वेशदुष्टानाम्[ना.] इन्द्रियाणाम्[ना.] हिताय[ना.] वै[नि.]

कृष्णस्य [ना.]	सुखम् [ना.] तदा [नि.]	गुणैः [ना.]
सर्ववस्तूनि [ना.]	भवेद् [आ.]	हरिसुखस्पर्शात् [ना.]
भूम्नः [ना.] ईशस्य [ना.]	दयालुत्वम् [ना.]	दुःखम् [ना.] भाति [आ.]
योजयेत् [आ.]	अन्यथा [नि.]	कर्हिचित् [नि.]
गुणेषु [ना.]	क्रूरता [ना.] मता [ना.]	एवम् [नि.] ज्ञात्वा [स.आ.]
आ [उ.] विष्टचित्तानां [ना.]	बाधशङ्का [ना.] अपि [नि.]	ज्ञानमार्गाद् [ना.]
सर्वदा [नि.]	अस्ति [आ.] अत्र [नि.]	उत् [उ.] कर्षः [ना.]
मुरवैरिणः [ना.]	तदध्यासः [ना.]	गुणवर्णने [ना.]
सम् [उ.] सार-	अपि [नि.] सिध्यति [आ.]	अमत्सरैः [ना.]
विरहक्लेशौ [ना.]	भगवद्धर्मसामर्थ्याद् [ना.]	अलुब्धैः [ना.] च [नि.]
न [नि.] स्याताम् [आ.]	वि [उ.] रागः [ना.]	वर्णनीयाः [ना.]
हरिवत् [नि.]	विषये [ना.] स्थिरः [ना.]	सदा [नि.] गुणाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

संसारावेशदुष्टानाम् [स.]	तदा [तद्धि.]	विषये [स.]
हिताय [कृद्.]	दयालुत्वम् [तद्धि.]	हरिसुखस्पर्शात् [स.]
सर्ववस्तूनि [स.]	अन्यथा [तद्धि.]	ज्ञात्वा [कृद्.]
योजयेत् [सना.]	क्रूरता [तद्धि.] मता [कृद्.]	ज्ञानमार्गात् [स.]
आविष्टचित्तानाम् [स.]	बाधशङ्का [स.]	उत्कर्षः [स.]
सर्वदा [तद्धि.]	अत्र [तद्धि.]	गुणवर्णने [स.]
मुरवैरिणः [स.]	तदध्यासः [स.]	अमत्सरैः [स.]
संसारविरहक्लेशौ [स.]	भगवद्धर्मसामर्थ्याद् [स.]	अलुब्धैः [स.]
हरिवत् [तद्धि.]	विरागः [स.]	वर्णनीयाः [कृद्.]

शब्दरूपपरिचय :

संसारावेशदुष्टानाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब	हिताय - अ.अ.पुं.च.ए.
इन्द्रियाणाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब.	कृष्णस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

सर्ववस्तूनि - अ.उ.नपुं.द्वि.ब.	विरागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भूम्नः - ह.न.पुं.ष.ए.	विषये - अ.अ.पुं.स.ए.
ईशस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	स्थिरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
गुणेषु - अ.अ.पुं.स.ब.	गुणैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
आविष्टचित्तानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.	हरिसुखस्पर्शात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
मुरवैरिणः - ह.न.पुं.ष.ए.	दुःखम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
संसारविरहक्लेशौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.	ज्ञानमार्गात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
सुखम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	उत्कर्षः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
दयालुत्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	गुणवर्णने - अ.अ.नपुं.स.ए.
(क्रूरता, मता, बाधशङ्का) - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	अमत्सरैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
	अलुब्धैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
तदध्यासः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	वर्णनीयाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
भगवद्धर्मसामर्थ्यात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	गुणाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय. :

योजयेत् - रुधा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच् प्रत्ययान्त)	अस्ति - अदा.लट्.प्र.ए.
स्याताम् - अदा.वि.लिङ्.प्र.द्वि.	सिध्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.
भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	भाति - अदा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : संसारावेशदुष्टानाम् इन्द्रियाणां हिताय सर्ववस्तूनि भूम्नः ईशस्य कृष्णस्य वै योजयेत्.(१२). सर्वदा मुरवैरिणः गुणेषु आविष्टचित्तानां संसारविरहक्लेशौ न स्याताम् हरिवत् सुखं (भवति).(१३). तदा (हरेः) दयालुत्वं भवेत्. अन्यथा क्रूरता मता. अत्र बाधशङ्काऽपि न अस्ति तदध्यासोऽपि सिध्यति.(१४). भगवद्धर्मसामर्थ्यात् विषये स्थिरो विरागः (भवति). हरेः गुणैः सुखस्पर्शात् (भक्तस्य) कर्हिचित् दुःखं न भाति.(१५). एवं ज्ञानमार्गात् गुणवर्णने उत्कर्षो ज्ञात्वा अमत्सरैः च अलुब्धैः सदा गुणाः वर्णनीयाः ॥१६॥

(देहेन्द्रियादीनां सकलानां भगवति विनियोगेनैव तेषु भगवद्-व्यसनं सिध्यति येन च प्रापञ्चिकविषयेषु संसारासक्तिः च क्षीणा भवत्येव)

हरिमूर्तिः सदा ध्येया सङ्कल्पादपि तत्रहि।।
दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टं तथा कृतिगती सदा।।१७।।
श्रवणं कीर्तनं स्पष्टं पुत्रे कृष्णप्रिये रतिः।
पायोर्मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत्।।१८।।
यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते।।
तदा विनिग्रहस्तस्य कर्तव्य इति निश्चयः।।१९।।

सन्धिविच्छेद :

सम् + कल्पात् = सङ्कल्पात् [प.स.]
सङ्कल्पात् + अपि = सङ्कल्पादपि [जश्त्व.]
पायोः + मलांश = पार्योमलांश [रेफ.]
मल + अंश = मलांश [दीर्घ.]
निस् + चयः = निश्चयः [श्चु.]
ग्रहः + तस्य = ग्रहस्तस्य [स.]
कर्तव्यः + इति = कर्तव्य इति [वि.लो.]

समास विग्रह :

- हरेः मूर्तिः इति हरिमूर्तिः [प.तत्पु.] - कृतिश्च गतिश्च इति कृतिगती [द्वन्द्व.]
- कृष्णस्य प्रियः इति कृष्णप्रियः [प.तत्पु.] वा
 कृष्णः प्रियः यस्य सः कृष्णप्रियः [बहु.] - मलरूपः अंशः इति मलांशः [कर्म.]
- मलांशस्य त्यागः इति मलांशत्यागः [प.तत्पु.] तेन मलांशत्यागेन
- शेषः यः भागः स शेषभागः [कर्म] तम्
- भगवतः कार्यम् इति भगवत्कार्यम् [प.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

हरिमूर्तिः [ना.]	अपि [नि.] तत्र [नि.]	स्पष्टम् [ना.]
सदा [नि.] ध्येया [ना.]	हि [नि.] दर्शनम् [ना.]	तथा [नि.]
सम् [उ.] कल्पाद् [ना.]	स्पर्शनम् [ना.]	कृतिगती [ना.]

सदा [नि.] श्रवणम् [ना.]	मलांशत्यागेन [ना.]	यदा [नि.] स्पष्टम् [ना.]
कीर्तनम् [ना.]	शेषभागम् [ना.]	न [नि.] दृश्यते [आ.]
स्पष्टम् [ना.] पुत्रे [ना.]	तनौ [ना.] नयेत् [आ.]	तदा [नि.] वि [उ.] नि [उ.] ग्रहः [ना.]
कृष्णप्रिये [ना.]	यस्य [ना.] वा [नि.]	तस्य [ना.] कर्तव्यः [ना.]
रतिः [ना.] पायोः [ना.]	भगवत्कार्यम् [ना.]	इति [नि.] निस् [उ.] चयः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

हरिमूर्तिः [स.]	तथा [तद्धि.]	शेषभागम् [स.]
ध्येया [कृद्.]	कृतिगती [स.]	भगवत्कार्यम् [स.]
सङ्कल्पाद् [स.]	श्रवणम् [कृद्.]	यदा [तद्धि.]
तत्र [तद्धि.]	कीर्तनम् [कृद्.]	दृश्यते [सना.] तदा [तद्धि.]
दर्शनम् [कृद्.]	कृष्णप्रिये [स.]	विनिग्रहः [कृद्+स.]
स्पर्शनम् [कृद्.]	रतिः [कृद्.]	कर्तव्य [कृद्.]
स्पष्टम् [कृद्.]	मलांशत्यागेन [स.]	निश्चयः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

हरिमूर्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
ध्येया - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
सङ्कल्पाद् - अ.अ.पुं.पं.ए.
(दर्शनम्, स्पर्शनम्, स्पष्टम्)
- अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कृतिगती - अ.इ.स्त्री.प्र.द्वि.
(श्रवणम्, कीर्तनम्, स्पष्टम्)
- अ.अ.नपुं.प्र.ए.
पुत्रे - अ.अ.पुं.स.ए.
कृष्णप्रिये - अ.अ.पुं.स.ए.
रतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

पायोः - अ.उ.पुं.ष.ए.
मलांशत्यागेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
शेषभागम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
तनौ - अ.उ.पुं.स.ए.
यस्य - ह.द्.पुं.ष.ए.
भगवत्कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
स्पष्टम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
विनिग्रहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तस्य - ह.द्.पुं.ष.ए.
कर्तव्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
निश्चयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :
नयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. दृश्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए. (यक्)

अन्वय : हरिमूर्तिः सदा ध्येया सङ्कल्पात् हि तत्र (मूर्तौ) सदा दर्शनं स्पर्शनं स्पष्टम् (अनुष्ठातुं शक्यं) तथा कृतिगती श्रवणं कीर्तनमपि स्पष्टम् (अनुष्ठातुं शक्यं). कृष्णप्रिये पुत्रे रतिः (करणीया) वा कृष्णप्रिये पुत्रे (=पुत्ररूप भक्ते तेषां भगवदीयानां) रतिः (स्वाभाविकी भवत्येव). पायोः मलांशत्यागेन शेषभागं तनौ नयेत् (१७-१८). यस्य वा भगवत्कार्यं यदा स्पष्टं न दृश्यते तदा तस्य विनिग्रहः कर्तव्यः इति निश्चयः ॥१९॥

(भक्तेः निरोधावस्थायां परिपाकाद् उत्कृष्टतरं पुष्टिमार्गे न किमपि सम्भवति)

नातः परतरो मन्त्रो नातः परतरः स्तवः ।
नातः परतरा विद्या तीर्थं नातः परात्परम् ॥२०॥

॥ इति श्रीवल्लभाचार्यप्रकटितं निरोधलक्षणम् सम्पूर्णम् ॥

सन्धिविच्छेद :
न + अतः = नातः दीर्घ. परतरः + मन्त्रः + नातः = परतरो मन्त्रो नातः उ.गुण.

शब्दपरिचय :

न नि.	परतरः ना.	स्तवः ना.	विद्या ना.	परात् ना.
अतः नि.	मन्त्रः ना.	परतरा ना.	तीर्थम् ना.	परम् ना.

वृत्तिपरिचय : अतः तद्धि.

शब्दरूपपरिचय : परतरः - अ.अ.पुं.प्र.ए. मन्त्रः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

स्तवः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तीर्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
परतरा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	परात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
विद्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	परम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

अन्वय : अतः (निरोधात्) परतरः मन्त्रो न (अस्ति), अतः (=अस्मात्) परतरः स्तवः न (अस्ति), अतः (=अस्मात्) परतरा विद्या न (अस्ति), अतः (=अस्मात्) परात्परं तीर्थं न (अस्ति) ॥२०॥

॥ सेवाफलम् ॥

(२१)

(सेवायां फलत्रयं : अलौकिकसामर्थ्यं[क] सायुज्यं[ख] सेवोपयोगिदेहो वैकुण्ठादिषु[ग])

> यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलमुच्यते॥
> अलौकिकस्य[क] दानेहि चाद्यः सिध्येन्मनोरथः ॥१॥
> फलं[ग] वा ह्यधिकारो[ख] वा न कालोऽत्र नियामकः।

सन्धिविच्छेद :

प्र + उक्ता = प्रोक्ता [गुण.]	हि + अधिकारः = ह्यधिकारः [यण्.]
च + आद्यः = चाद्यः [दीर्घ.]	ह्यधिकारः + वा =
मनः + रथः = मनोरथः [उ.गुण.]	ह्यधिकारो वा [उ.गुण.]
सिध्येत् + मनो = सिध्येन्मनो [अनु.]	कालः + अत्र = कालोत्र [उ.पू.रू.]

समासविग्रह :

- न लौकिकः इति अलौकिकः [न.तत्पु.] तस्य
- तस्य सिद्धिः इति तत्सिद्धिः [ष.तत्पु.] तस्मिन् तत्सिद्धौ
- मनः रथ इव इति मनोरथः [कर्म]

शब्दपरिचय :

यादृशी [ना.]	तत्सिद्धौ [ना.]	दाने [ना.] हि [नि.]
सेवना [ना.]	फलम् [ना.] उच्यते [आ.]	च [नि.] आद्यः [ना.]
प्र [उ.] उक्ता [ना.]	अलौकिकस्य [ना.]	सिध्येत् [आ.]

मनोरथः[ना.]	अधि[उ.]कारः[ना.]	अत्र[नि.]
वा[नि.] हि[नि.]	न[नि.] कालः[ना.]	नि[उ.]यामकः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

यादृशी[तद्धि.]	तत्सिद्धौ[स.]	दाने[कृद्+स.]	अधिकारः[स.]
सेवना[कृद्.]	उच्यते[सना.]	आद्यः[तद्धि.]	अत्र[तद्धि.]
प्रोक्ता[कृद्+स.]	अलौकिकस्य[स.]	मनोरथः[स.]	नियामकः[कृद्.]

शब्दरूपपरिचय :

यादृशी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.

सेवना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए. फलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

प्रोक्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए. अलौकिकस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

तत्सिद्धौ - अ.इ.स्त्री.स.ए. दाने - अ.अ.नपुं.स.ए.

(आद्यः, मनोरथः, अधिकारः, कालः, नियामकः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

उच्यते - अदा.लट्.प्र.ए. (यक् प्रत्ययान्त) सिध्येत् - दिवा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : यादृशी सेवना प्रोक्ता तत्सिद्धौ फलम् उच्यते. हि अलौकिकस्य दाने च आद्यः मनोरथः सिध्येत्.(१). (अदाने तु) फलं वा हि अधिकारः वा (सिध्येत) अत्र कालः नियामकः न (अस्ति)

(सेवायां प्रतिबन्धत्रयं : उद्वेगः[च] प्रतिबन्धो[छ] भोगो[ज] वा, त्रयाणां साधनपरित्यागः कर्तव्यः. भोगो द्विविधः-लौकिकः[ज/१] अलौकिकः[ज/२] च. तत्र लौकिकः त्याज्यएव; अलौकिकस्तु फलानां मध्ये प्रथमे प्रविशति. प्रतिबन्धोऽपि द्विविधः-साधारणो[छ/१] भगवत्कृतः[छ/२] च. तत्र आद्यो[छ/१] बुद्ध्या त्याज्यः भगवत्कृतः चेत् प्रतिबन्धः[छ/२] तदा

भगवान् फलं न दास्यतीति मन्तव्यम्. तदा अन्यसेवापि व्यर्था. तदा ज्ञानमार्गेण स्थातव्यं शोकाभावाय इति विवेकः. उद्वेगनिवारणोपायाः नवरत्नएवोपदिष्टाइति नात्र पुनरुच्यन्ते)

उद्वेगः [च] प्रतिबन्धो [छ/१-२] वा भोगो [ज/१]वा स्यात्तु बाधकम्॥२॥
अकर्तव्यं भगवतः [छ/२] सर्वथा चेद् गतिर्नहि॥
यथा वा तत्त्वनिर्धारो विवेकः साधनं मतम्॥३॥
बाधकानां परित्यागो भोगे [ज/१]ऽप्येकं तथा परम्॥
निष्प्रत्यूहं महान् भोगः [ज/२] प्रथमे विशते सदा॥४॥

सन्धिविच्छेद :

प्रतिबन्धः + वा = प्रतिबन्धो वा [उ.गुण.]	त्यागः + भोगे = त्यागो भोगे [उ.गुण.]
भोगः + वा = भोगो वा [उ.गुण.]	भोगे + अपि = भोगेऽपि [पू.रू.]
चेत् + गतिः - चेद् गतिः [जश्त्व.]	अपि + एकम् = अप्येकम् [यण.]
गतिः + न = गतिर्न [रेफ.]	निस् + प्रति = निष्प्रति [षत्व.]
निर्धारः + विवेकः = निर्धारो विवेकः [उ.गुण.]	प्रति + ऊहम् = प्रत्यूहम् [यण.]

समासविग्रह :

न कर्तव्यम् इति अकर्तव्यम् [न.तत्पु.] - तत्त्वस्य निर्धारः इति तत्त्वनिर्धारः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

उद् [उ.] -वेगः [ना.]	सर्वथा [नि.]	भोगे [ना.] अपि [नि.]
प्रति [उ.] बन्धः [ना.]	चेद् [नि.] गतिः [ना.]	एकम् [ना.] तथा [नि.]
वा [नि.] भोगः [ना.]	न [नि.] हि [नि.] यथा [नि.]	परम् [ना.]
स्यात् [आ.] तु [नि.]	तत्त्व-निर् [उ.] धारः [ना.]	निस् [उ.] प्रति [उ.] ऊहं [ना.]
बाधकम् [ना.]	विवेकः [ना.] साधनम् [ना.]	महान् [ना.]
अकर्तव्यम् [ना.]	मतम् [ना.] बाधकानाम् [ना.]	भोगः [ना.] प्रथमे [ना.]
भगवतः [ना.]	परि [उ.] त्यागः [ना.]	विशते [आ.] सदा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

उद्वेगः [स.]	भगवतः [तद्धि.] सर्वथा [तद्धि.]	मतम् [कृद.]
प्रतिबन्धः [स.]	गतिः [कृद.] यथा [तद्धि.]	बाधकानाम् [कृद.]
बाधकम् [कृद.]	तत्त्वनिर्धारः [स.]	परित्यागः [कृद्+स.]
अकर्तव्यम् [स.]	साधनम् [कृद.]	निष्प्रत्युहम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(उद्वेगः, प्रतिबन्धः, भोगः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

(एकम्, परम्, निष्प्रत्यूहम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

बाधकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	मतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
अकर्तव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	बाधकानाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब.
भगवतः - ह.त.पुं.ष.ए.	परित्यागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
गतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	भोगे - अ.अ.पुं.स.ए.
तत्त्वनिर्धारः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	महान् - ह.त.पुं.प्र.ए.
विवेकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भोगः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
साधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	प्रथमे - अ.अ.नपुं.स.ए.

धातुरूपपरिचय : विशते - तुदा.लट्.प्र.ए. स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय :

(सेवायां) बाधकं तु उद्वेगः प्रतिबन्धः वा भोगो वा स्यात्.(२). भगवतः चेद् अकर्तव्यं (यदा भगवत्कृतप्रतिबंधः तदा) सर्वथा हि गतिः न (अस्ति) यथा वा तत्त्वनिर्धारः (आसुरोऽयं जीव इति) विवेकः (तदा ज्ञानमार्गेण स्थातव्यम् इति, अन्यथा) बाधकानां परित्यागः (कर्तव्यः), भोगे अपि एकं बाधकानां परित्यागः एकं साधनम् मतम् तथा भोगे परं निष्प्रत्यूहं साधनं अपि मतम् (यतः) महान् (अलौकिकस्तु) भोगः (फलानां मध्ये) प्रथमे सदा विशते (प्रविशति) ॥४॥

(तत्र साधारणो भोगः सविघ्नत्वाद् अल्पत्वाद्[घ/१] त्याज्यः. अल्पभोगः सविघ्नभोगः चेति एतौ प्रतिबन्धकौ भवतएव. द्वितीयो भगवत्कृतप्रतिबन्धो [छ/२] भवति चेत् तदा तस्मिंश्च जाते ज्ञानावस्थितिरपि न भविष्यतीति उत्कृष्टफल[क/ख/ग]विषयिणी चिन्तैव त्यक्तव्या)

सविघ्नोऽल्पो[ज/१] घातकः स्याद् बलाद् एतौ सदा मतौ।।
द्वितीये[छ/२] सर्वथा चिन्ता त्याज्या संसारनिश्चयात्।।५।।

सन्धिविच्छेद :

सविघ्नः + अल्पः =	स्यात् + बलात् + एतौ =
सविघ्नोऽल्पः[उ.पू.रू.]	स्याद् बलाद् एतौ[जश्त्व.]
अल्पः + घातकः = अल्पो घातकः[उ.गुण.]	निस् + चयात् = निश्चयात्[श्चु.]

समासविग्रह :

- विघ्नेन सहित इति सविघ्नः[बहु.]
- संसारस्य निश्चयः इति संसारनिश्चयः[ष.तत्पु.] तस्मात् संसारनिश्चयात्

शब्दपरिचय :

सविघ्नः[ना.]	स्याद्[आ.]	सदा[नि.]	सर्वथा[नि.]
अल्पः[ना.]	बलाद्[ना.]	मतौ[ना.]	चिन्ता[ना.] त्याज्या[ना.]
घातकः[ना.]	एतौ[ना.]	द्वितीये[ना.]	सं[उ.]सार-निस्[उ.]चयात्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

सविघ्नः[स.]	मतौ[कृद.]	सर्वथा[तद्धि.] त्याज्या[कृद.]
घातकः[कृद.]	द्वितीये[तद्धि.]	संसारनिश्चयात्[स.]

शब्दरूपपरिचय :

(सविघ्नः, अल्पः, घातकः) - अ.अ.पुं.प्र.ए. बलाद् - अ.अ.पुं.पं.ए.

एतौ - ह.द.पुं.प्र.द्वि.
मतौ - अ.अ.पुं.प्र.द्वि.
द्वितीये - अ.अ.पुं.स.ए.
चिन्ता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
त्याज्या - अ.आ.पुं.प्र.ए.
संसारनिश्चयात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

धातुरूपपरिचय : स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : सविघ्नः अल्पो (भोगः) बलात् घातकः स्यात्. (बलात्) एतौ (प्रतिबन्धकौ) सदा मतौ. द्वितीये (भगवत्कृतप्रतिबन्धे ज्ञानस्थित्यभावे च) संसारनिश्चयात् चिन्ता सर्वथा त्याज्या॥

(आद्यफलाभावे भगवतो दातृत्वं नास्ति. तदा ''सेवा नाधिदैविकी''इत्युक्तं भवति. भोगाभावः तदैव सिध्यति यदा गृहपरित्यागः इति निरूपणम्)

नत्वाद्ये दातृता नास्ति तृतीये बाधकं गृहम्॥

सन्धिविच्छेद : तु + आद्ये = त्वाद्ये [यण्.] न + अस्ति = नास्ति [दीर्घ.]

शब्दपरिचय :

न [नि.]	आद्ये [ना.]	अस्ति [आ.]	बाधकम् [ना.]
तु [नि.]	दातृता [ना.]	तृतीये [ना.]	गृहम् [ना.]

वृत्तिपरिचय : आद्ये [तद्धि.] दातृता [तद्धि.] तृतीये [तद्धि.] बाधकम् [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :
आद्ये - अ.अ.पुं.स.ए. दातृता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए. तृतीये - अ.अ.पुं.स.ए.
बाधकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए. गृहम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : अस्ति - अदा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : न तु आद्ये (आद्यफलाभावे भगवतः) दातृता नास्ति तृतीये (तु भोगाभावसिद्ध्यभावे) गृहं बाधकं (भवति)॥

(ग्रन्थोपसंहारः)

अवश्येयं सदा भाव्या सर्वम् अन्यन् मनोभ्रमः ॥६॥
तदीयैरपि तत्कार्यं पुष्टौ नैव विलम्बयेत्॥
गुणक्षोभेऽपि द्रष्टव्यम् एतदेवेति मे मतिः ॥७॥
कुसृष्टिरत्र वा काचिद् उत्पद्येत स वै भ्रमः॥

॥इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितं सेवाफलं सम्पूर्णम्॥

सन्धिविच्छेद :

अवश्या + इयम् = अवश्येयम् [गुण.]	गुणक्षोभे + अपि = गुणक्षोभेऽपि [पू.रू.]
मनः + भ्रमः = मनो भ्रमः [उ.गुण.]	एतत् + एव = एतदेव [जश्त्व.]
अन्यत् + मनो = अन्यन्मनो [अनुना.]	एव + इति = एवेति [गुण.]
तदीयैः + अपि = तदीयैरपि [रेफ.]	कुसृष्टिः + अत्र = कुसृष्टिरत्र [रेफ.]
न + एव = नैव [वृद्धि.]	सः + वै = स वै [वि.लो.]

समासविग्रह :

- न वश्या इति अवश्या [न.तत्पु.]
- मनसः भ्रमः इति मनोभ्रमः [ष.तत्पु.]
- गुणैः क्षोभः इति गुणक्षोभः [तृ.तत्पु.] तस्मिन् गुणक्षोभे

शब्दपरिचय :

अवश्या [ना.]	भाव्या [ना.]	मनोभ्रमः [ना.]	तत् [ना.]	
इयम् [ना.]	सर्वम् [ना.]	तदीयैः [ना.]	कार्यम् [ना.]	
सदा [नि.]	अन्यत् [ना.]	अपि [नि.]	पुष्टौ [ना.]	न [नि.]

एव [नि.]	एतद् [ना.]	कुसृष्टिः [ना.]	उत् [उ.]-पद्येत [आ.]
वि [उ.]लम्बयेत् [आ.]	इति [नि.]	अत्र [नि.]	सः [ना.]
गुणक्षोभे [ना.]	मे [ना.]	वा [नि.]	वै [नि.]
द्रष्टव्यम् [ना.]	मतिः [ना.]	काचिद् [नि.]	भ्रमः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अवश्या [स.]	तदीयैः [तद्धि.]	गुणक्षोभे [स.]	कुसृष्टिः [कृद्+स.]
भाव्या [कृद्.]	कार्यम् [कृद्.]	द्रष्टव्यम् [कृद्.]	अत्र [तद्धि.]
मनोभ्रमः [स.]	पुष्टौ [कृद्.]	मतिः [कृद्.]	विलम्बयेत् [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

अवश्या, भाव्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	पुष्टौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.
इयम् - ह.म.स्त्री.प्र.ए.	गुणक्षोभे - अ.अ.पुं.स.ए.
सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कार्यम्, द्रष्टव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
अन्यत् - ह.त्.नपुं.प्र.ए.	एतद् - ह.न्.नपुं.प्र.ए. मे - ह.द्.ष.ए.
मनोभ्रमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	मतिः, कुसृष्टिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
तदीयैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	सः - ह.द्.पुं.प्र.ए.
तत् - ह.द्.नपुं.प्र.ए.	भ्रमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

विलम्बयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. (णिच प्रत्ययान्त)

उत्पद्येत् - दिवा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : इयं (भगवतः दातृता) अवश्या सदा भाव्या, अन्यत्सर्वं मनोभ्रमः (अस्ति). तदीयैरपि तत् (दातृत्वभावनं) कार्यं, (यतो भगवान्) पुष्टौ नैव विलम्बयेत्. गुणक्षोभे अपि एतदेव दृष्टव्यम् इति मे मतिः (अस्ति). अत्र कुसृष्टि वा काचित् उत्पद्येत सवै भ्रमः (अस्ति)॥

।। पञ्चश्लोकी ।।

(२२)

[पुष्टिभक्तिमार्गे भक्तिवर्धिन्युक्तदिशया दृढबीजभावानाम्[क] अदृढबीज-भावेषु अव्यावृत्तानां[ख/१] व्यावृत्तानां[ख/२] च, अथच पुष्टिप्रपत्तिमार्गेऽपि त्याज्यग्राह्ययोः इतिकर्तव्यतायाः उपदेशः]

(स्वगृहे भगवत्सेवां कर्तुम् असमर्थानां भगवत्कथाप्रणालिकया जातदृढबीजभावानां[क] कृते गृहत्यागानुज्ञा. अदृढबीजभावेषु अव्यावृत्तानां[ख/१]कृते च गृहस्य भगवत्सेवायां विनियोगाज्ञा)

गृहं सर्वात्मना त्याज्यं[क] तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते।।
कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत कृष्णोऽनर्थस्य मोचकः[ख/१]।।१।।

सन्धिविच्छेद :

सर्व + आत्मना = सर्वात्मना[दीर्घ.] कृष्ण + अर्थम् = कृष्णार्थम्[दीर्घ.]
तत् + चेत् = तच्चेत्[श्चु.] कृष्णः + अनर्थस्य = कृष्णोऽनर्थस्य[उ.पू.रू.]

समासविग्रह :

- सर्वो यः आत्मा सः सर्वात्मा[कर्म] तेन सर्वात्मना
- कृष्णाय इति कृष्णार्थः[च.तत्पु.] तं कृष्णार्थम्
- न अर्थः इति अनर्थः[न.तत्पु.] तस्य

शब्दपरिचय :

गृहम्[ना.] सर्वात्मना[ना.] त्याज्यम्[ना.] तत्[ना.] चेत्[नि.]

त्यक्तुम्[स.आ.]	कृष्णार्थम्[ना.]	प्र[उ.] युञ्जीत[आ.]	अनर्थस्य[ना.]
न[नि.] शक्यते[आ]	तत्[ना.]	कृष्णः[ना.]	मोचकः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वात्मना[स.]	त्याज्यम्[कृद.]	त्यक्तुम्[कृद.]	शक्यते[सना.]
कृष्णार्थम्[स.]	अनर्थस्य[स.]	मोचकः[कृद.]	

शब्दरूपपरिचय :

गृहम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कृष्णार्थम् - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सर्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए.	कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
त्याज्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	अनर्थस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.	मोचकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

शक्यते - स्वा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त)   प्रयुञ्जीत - रुधा.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : गृहं सर्वात्मना त्याज्यं, तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते, कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत कृष्णः अनर्थस्य मोचकः (अस्ति).

(अदृढबीजभावेषु व्यावृत्तानां[ख/२] स्वगृहाद् अन्यत्र भगवत्सेवाकथापरैः भगवदीयैः सह भगवत्परिचर्या-भगवत्कथाश्रवणयोः परायणानां कृते सत्सङ्गः कथं करणीयः इति तदितिकर्तव्यतायाः उपदेशः)

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते।।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम्।।२।।

सन्धिविच्छेद :

सर्व + आत्मना = सर्वात्मना[दीर्घ.]

सः + चेत् = स चेत्[वि.लो]

सः + सद्भिः = स सद्भिः[वि.लो.]

समासविग्रह : सर्वो यः आत्मा स सर्वात्मा [कर्म.] तेन सर्वात्मना

शव्दपरिचय :

सङ्गः [ना.]	चेत् [नि.]	सः [ना.] सद्भिः [ना.]	सन्तः [ना.]
सर्वात्मना [ना.]	त्यक्तुम् [स.आ.] न [नि.]	सह [नि.]	सङ्गस्य [ना.]
त्याज्यः [ना.] सः [ना.]	शक्यते [आ.]	कर्तव्यः [ना.]	भेषजम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वात्मना [स.] त्याज्यः [कृद.] त्यक्तुम् [कृद.] शक्यते [सना.] कर्तव्यः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :	सद्भिः - ह.त.पुं.तृ.ब.
सङ्गः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	कर्तव्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सर्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए.	सन्तः - ह.त.पुं.प्र.ब.
त्याज्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	सङ्गस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
स - ह.द.पुं.प्र.ए.	भेषजम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : शक्यते - स्वा.लट्.प्र.ए. (यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय : सङ्ग सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्यक्तुं न शक्यते, स सद्भिः सह कर्तव्यः (यतः) सन्तः सङ्गस्य भेषजम् (सन्ति).

(अदृढबीजभावेषु अव्यावृत्तानां[ख/१]कृते च उपदिष्टस्य गृहादेः यो भगवत्सेवायां विनियोगः उक्तः स कथं करणीयः इति तदितिकर्तव्यतायाः उपदेशः)

अनुकूले कलत्रादौ विष्णोः कार्याणि कारयेत्।।
उदासीने स्वयं कुर्यात् प्रतिकूले गृहं त्यजेत्।।३।।
तत्-त्यागे दूषणं नास्ति यतः कृष्णबहिर्मुखाः।।

सन्धिविच्छेद :

कलत्र + आदौ = कलत्रादौ [दीर्घ]

न + आस्ति = नास्ति [दीर्घ]

बहिः + मुखाः = बहिर्मुखाः [रेफ]

समास विग्रह :

- कलत्रम् आदि यस्य (सम्बन्धिसमुदायस्य) स कलत्रादिः [बहु.] तस्मिन्
- तस्य त्यागः इति तत्-त्यागः [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- कृष्णात् बहिर्मुखः इति कृष्णबहिर्मुखः [पं.तत्पु.] ते कृष्णबहिर्मुखाः

शब्दपरिचय :

अनु [उ.] कूले [ना.]	कारयेत् [आ.]	प्रति [उ.] कूले [ना.]	दूषणम् [ना.]
कलत्रादौ [ना.]	उत् [उ.] आसीने [ना.]	गृहम् [ना.]	न [नि.] अस्ति [आ.]
विष्णोः [ना.]	स्वयम् [नि.]	त्यजेत् [आ.]	यतः [नि.]
कार्याणि [ना.]	कुर्यात् [आ.]	तत्-त्यागे [ना.]	कृष्णबहिर्मुखाः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अनुकूले [स.]	कारयेत् [सना.]	तत्त्यागे [स.]
कलत्रादौ [स.]	उदाँसीने [कृद्+स.]	दूषणम् [कृद्.] यतः [तद्धि.]
कार्याणि [कृद्.]	प्रतिकूले [स.]	कृष्णबहिर्मुखाः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अनुकूले - अ.अ.पुं.स.ए.	प्रतिकूले - अ.अ.पुं.स.ए.
कलत्रादौ - अ.इ.पुं.स.ए.	गृहम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
विष्णोः - अ.उ.पुं.ष.ए.	तत्-त्यागे - अ.अ.पुं.स.ए.
कार्याणि - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.	दूषणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
उदासीने - अ.अ.पुं.स.ए.	कृष्णबहिर्मुखाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :

कारयेत् - तना.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच्) त्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
कुर्यात् - तना.वि.लिङ्.प्र.ए. अस्ति - अदा.लट्.प्र.ए.

अन्वय :

कलत्रादौ अनुकूले (सति) विष्णोः कार्याणि कारयेत्, उदासीने (सति) स्वयं कुर्यात्, प्रतिकूले (च) गृहं त्यजेत्(३). तत्-त्यागे दूषणं नास्ति यतः (ते) कृष्णबहिर्मुखाः (सन्ति).

(पुष्टिप्रपत्तिमार्गे त्याज्यग्राह्यविवेकविषयिण्याः षड्विधायाः इतिकर्तव्यतायाः उपदेशः)

अनुकूलस्य सङ्कल्पः [१] प्रतिकूलविसर्जनम् [२]।।४।।
करिष्यतीति विश्वासो [३] भर्तृत्वे वरणं तथा [४]।।
आत्मनैवेद्य-कार्पण्ये [५-६] षड्विधा शरणागतिः ।।५।।

॥ इति श्रीमद्-वल्लभाचार्यकृता पञ्चश्लोकी समाप्ता ॥

सन्धिविच्छेद :

सम् + कल्पः = सङ्कल्पः [प.स.]
करिष्यति + इति = करिष्यतीति [दीर्घ.]
विश्वासः + भर्तृत्वे = विश्वासो भर्तृत्वे [उ.गुण.]
शरण + आगतिः = शरणागतिः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- प्रतिकूलस्य विसर्जनम् इति प्रतिकूलविसर्जनम् [ष.तत्पु.]
- आत्मनैवेद्यं च कार्पण्यं च आत्मनैवेद्य-कार्पण्ये [द्वन्द्व.]
- षड् विधा यस्याः सा षड्विधा [बहु.]
- शरणं आगतिः इति शरणागतिः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

अनु [उ] कूलस्य [ना.]	इति [नि.]	तथा [नि.]
सम् [उ] कल्पः [ना.]	वि [उ] श्वासः [ना.]	आत्मनैवेद्य-कार्पण्ये [ना.]
प्रति [उ] कूल-वि [उ] सर्जनम् [ना.]	भर्तृत्वे [ना.]	षड्विधा [ना.]
करिष्यति [आ.]	वरणम् [ना.]	शरण-आ [उ] गतिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अनुकूलस्य [स.]	विश्वासः [स.]	आत्मनैवेद्य-कार्पण्ये [स.]
सङ्कल्पः [स.]	भतृत्वे [तद्धि.] वरणम् [कृद.]	षड्विधा [स.]
प्रतिकूलविसर्जनम् [स.]	तथा [तद्धि.]	शरणागतिः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अनुकूलस्य - अ.अ.नपुं.ष.ए.	वरणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सङ्कल्पः, विश्वासः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	आत्मनैवैद्य-कार्पण्ये - अ.अ.नपुं.प्र.द्वि.
प्रतिकूलविसर्जनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	षड्विधा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
भर्तृत्वे - अ.अ.नपुं.स.ए.	शरणागतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : करिष्यति - तना.लृट्.प्र.ए.

अन्वय : (भगवतः) अनुकूलस्य (कार्यस्य) संकल्पः (भगवतः) प्रतिकूलविसर्जनम् (च) (सर्वं प्रभुः) करिष्यति इति विश्वासः तथा (भगवतः) भतृत्वेन वरण, आत्मनैवैद्यकार्पण्ये (इति) षड्विधा शरणागतिः (अस्ति) ॥

॥ साधनप्रकरणम् ॥

(२३)

(तत्त्वार्थदीपनिबन्धस्य सर्वनिर्णयान्तर्गतम्)

(पाषण्डमतप्रचारप्रचुरे कलियुगेऽस्मिन् धर्ममार्गं परित्यज्य छलेन अधर्मवर्तिनामेव बाहुल्यं जातमिति स्वाध्यायाचारादिषु वैधप्रकारवैगुण्याद् देशकालद्रव्यमन्त्रकर्मकर्तृणाम् अशुद्धेश्च धर्मजननासम्भवेऽपि पाषण्डमतानुसरणपूर्वकेन भागवतमार्गेण श्रीकृष्णभजनपरायणाः कलिदोषैः न अभिभूयन्ते इति साधनप्रकरणोपक्रमः)

अधुनातु कलौ सर्वे विरुद्धाचार-तत्पराः ॥
स्वाध्यायादि-क्रिया-हीनाः तथाचार-पराङ्मुखाः ॥१॥
क्रियमाणं तथाचारं विधिहीनं प्रकुर्वते ॥
विक्षिप्तमनसो भ्रान्ता जिह्वोपस्थ-परायणाः ॥२॥
व्रात्यप्रायाः स्वतो दुष्टाः तत्र धर्मः कथं भवेत् ॥
षड्भिः सम्पद्यते धर्मस्ते दुर्लभतराः कलौ ॥३॥
अथापि धर्ममार्गेण स्थित्वा कृष्णं भजेत् सदा ॥
श्रीभागवतमार्गेण स कथञ्चित् तरिष्यति ॥४॥

सन्धिविच्छेद :

विरुद्ध + आचार = विरुद्धाचार [दीर्घ.]	तथा + आचार = तथाचार [दीर्घ.]
सु + आ = स्वा [यण्.]	मनसः + भ्रान्ताः = मनसो भ्रान्ताः [उ.गुण.]
स्वा + अधि = स्वाधि [दीर्घ.]	भ्रान्ताः + जिव्हा = भ्रान्ता जिव्हा [वि.लो.]
स्वाधि + आय = स्वाध्याय [यण्]	जिह्वा + उपस्थ = जिह्वोपस्थ [गुण]
स्वाध्याय + आदि = स्वाध्यायादि [दीर्घ.]	स्वतः + दुष्टाः = स्वतो दुष्टाः [उ गुण.]

धर्मः + ते = धर्मस्ते [स.]
अथ + अपि = अथापि [दीर्घ.]
सः + कथञ्चित् = स कथञ्चित् [वि.लो.]
कथम् + चित् = कथञ्चित् [प.स.]

समासविग्रह :

- विरुद्धः यः आचारः स विरुद्धाचारः [कर्म] तस्मिन् परः इति तत्परः [स.तत्पु.]
  विरुद्धाचारे तत्परः इति विरुद्धाचार-तत्परः [स.तत्पु.] ते
- स्वाध्यायः आदिः यासां ता स्वाध्यायादयः [बहु.]
- स्वाध्यायादयः याः क्रियाः ताः स्वाध्यायादिक्रियाः [कर्म]
  ताभ्यः हीनः इति स्वाध्यायादि-क्रिया-हीनः [पं.तत्पु.] ते
- पराङ् मुखं यस्य स पराङ्मुखः [बहु.]
- आचारात् पराङ्मुखः इति आचार-पराङ्मुखः [पं.तत्पु.] ते
- विधेः हीनम् इति विधिहीनम् [पं.तत्पु.]
- विक्षिप्तं मनो यस्य स विक्षिप्तमनाः [बहु] ते
- जिह्वा च उपस्थश्च इति जिह्वोपस्थौ [द्वन्द्व.]
  तयोः परायणः इति जिह्वोपस्थ-परायणः [स.तत्पु.] ते जिह्वोपस्थपरायणाः
- व्रात्यं प्रायः यस्य स व्रात्यप्रायः [बहु.] ते व्रात्यप्रायाः
- धर्मः एव मार्गः इति धर्ममार्गः [कर्म] तेन धर्ममार्गेण
- श्रीभागवतस्य मार्गः इति श्रीभागवतमार्गः [ष.तत्पु.] तेन श्रीभागवतमार्गेण

शब्दपरिचय :

अधुना [नि.] तु [नि.]
कलौ [ना.] सर्वे [ना.]
वि[उ.]रुद्ध-आ[उ.]चार-तत्पराः [ना.]
सु[उ.]आ[उ.]-अधि[उ.]
आयादिक्रियाहीनाः [ना.]
तथा [नि.]

आ[उ.]चार-पराङ्मुखाः [ना.]
क्रियमाणम् [ना.]
तथा [नि.]
आचारम् [ना.]
वि[उ.]धिहीनम् [ना.]
प्र[उ.]कुर्वते [आ.]
वि[उ.]क्षिप्तमनसः [ना.]

भ्रान्ताः [ना.]
जिह्वा-उप[उ.]स्थ-परायणाः [ना.]
व्रात्यप्रायाः [ना.]
स्वतः [नि.]
दुष्टाः [ना.]
तत्र [नि.]

धर्मः [ना.]	धर्मः [ना.]	अपि [नि.]	सदा [नि.]
कथम् [नि.]	ते [ना.]	धर्ममार्गेण [ना.]	श्रीभागवतमार्गेण [ना.]
भवेत् [आ.]	दुर् [उ.] लभतराः [ना.]	स्थित्वा [ना.,आ.]	सः [ना.]
षड्भिः [ना.]	कलौ [ना.]	कृष्णम् [ना.]	कथञ्चित् [नि.]
सम् [उ.] पद्यते [आ.]	अथ [नि.]	भजेत् [आ.]	तरिष्यति [आ.]

वृत्तिपरिचय :

विरुद्धाचार-	आचारम् [स.]	दुष्टाः [कृद.]
तत्पराः [स.]	विधिहीनम् [स.]	तत्र [तद्धि.]
स्वाध्यायादि-	विक्षिप्तमनसः [स.]	कथम् [तद्धि.]
क्रिया-हीनाः [स.]	भ्रान्ताः [कृद.]	दुर्लभतराः [तद्धि.]
तथा [तद्धि.]	जिह्वोपस्थ-परायणाः [स.]	धर्ममार्गेण [स.]
आचार-पराङ्मुखाः [स.]	व्रात्यप्रायाः [स.]	स्थित्वा [कृद.]
क्रियमाणम् [कृद.]	स्वतः [तद्धि.]	श्रीभागवतमार्गेण [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(विरुद्धाचारतत्पराः, स्वाध्यायादिक्रियाहीनाः, आचारपराङ्मुखाः, भ्रान्ताः, जिह्वोपस्थपरायणाः, व्रात्यप्रायाः, दुष्टाः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

(क्रियमाणम्, आचारम्,	ते - ह.द.पुं.प्र.ब.
विधिहीनम्) - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	दुर्लभतराः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
कलौ - अ.इ.पुं.स.ए.	कलौ - अ.इ.पुं.स.ए.
सर्वे - अ.अ.पुं.प्र.ब.	धर्ममार्गेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
विक्षिप्तमनसः - ह.स्.पुं.प्र.ब.	कृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
धर्मः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	श्रीभागवतमार्गेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
षड्भिः - ह.ष.पुं.तृ.ब.	सः - ह.द.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : प्रकुर्वते - तनादि.लट्.प्र.ब.

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
सम्पद्यते - दिवा.लट्.प्र.ए. तरिष्यति - भ्वा.लृट्.प्र.ए.

अन्वय : अधुना कलौ तु सर्वे विरुद्धाचार-तत्पराः स्वाध्यायादि-क्रिया-हीनाः तथा आचार-पराङ्मुखाः (सञ्जाताः सन्ति) तथा क्रियमाणम् आचारम् (अपि) विधिहीनं प्रकुर्वते, (किञ्च ते) विक्षिप्तमनसो भ्रान्ताः जिह्वोपस्थ-परायणाः व्रात्यप्रायाः स्वतो दुष्टाः चापि (संजाताः सन्ति) तत्र (एतादृशैः अनधिकारिभिः क्रियमाणेषु कर्मसु) धर्मः कथं भवेत्! धर्मः षड्भिः (देशकालादिभिः) सम्पद्यते ते कलौ दुर्लभतराः (सन्ति). अथापि धर्ममार्गेण स्थित्वा (यः) श्रीभागवतमार्गेण कृष्णं सदा भजेत् स कथञ्चित् तरिष्यति॥

(वेदनिन्दायाम् अधर्माचरणात्तु वा हीनयोनावपि जातानां पूर्वसंस्कारतः भगवद्भजने प्रवृत्तौ मुक्तिः संसाराभिनिवेशेतु पुनःजन्ममरणचक्रे पातः तस्माद् वेदनिन्दाभावे भक्तिमार्गः समीचीनः)

अत्रापि वेदनिन्दायाम् अधर्मकरणात् तथा॥
नरके न भवेत् पातः किन्तु हीनेषु जायते॥५॥
पूर्वसंस्कारतस्तत्र भजन् मुच्येत जन्मभिः॥
अत्यन्ताभिनिवेशश्चेत् संसारे न भवेत् तदा॥६॥
एतावन्मात्रताप्यस्ति मार्गेऽस्मिन् मुरवैरिणः॥

सन्धिविच्छेद :

अत्र + अपि = अत्रापि [दीर्घ.]
सम् + कार = संस्कार [रु.अनु.]
संस्कारतः + तत्र = संस्कारतस्तत्र [स.]
अति + अन्त = अत्यन्त [यण्.]
अत्यन्त + अभि = अत्यन्ताभि [दीर्घ.]
निवेशः + चेत् = निवेशश्चेत् [स.श्चु.]
एतावत् + मात्र = एतावन्मात्र [अनु.]
मात्रता + अपि = मात्रतापि [दीर्घ.]
मात्रतापि + अस्ति = मात्रताप्यस्ति [यण्.]
मार्गे + अस्मिन् = मार्गेऽस्मिन् [पू.रू.]

समास विग्रह :

- वेदस्य निन्दा इति वेदनिन्दा [ष.तत्पु.] तस्यां वेदनिन्दायाम्
- न धर्मः इति अधर्मः [न.तत्पु.]
- अधर्मस्य करणम् इति अधर्मकरणम् [ष.तत्पु.] तस्मात् अधर्मकरणात्
- पूर्वस्य संस्कारः इति पूर्वसंस्कारः [ष.तत्पु.] तस्मात् पूर्वसंस्कारतः
- अत्यन्तः यः अभिनिवेशः स अत्यन्ताभिनिवेशः [कर्म.]
- मुरस्य वैरी इति मुरवैरी [ष.तत्पु.] तस्य मुरवैरिणः

शब्दपरिचय :

अत्र [नि.] अपि [नि.]	हीनेषु [ना.]	चेत् [नि.]
वेदनिन्दायाम् [ना.]	जायते [आ.]	सं [उ.] सारे [ना.]
अधर्मकरणात् [ना.]	पूर्व-सम् [उ.] -कारतः [नि.]	तदा [नि.]
तथा [नि.]	तत्र [नि.]	एतावन्मात्रता [ना.]
नरके [ना.]	भजन् [ना.]	अपि [नि.]
न [नि.]	मुच्येत [आ.]	अस्ति [आ.]
भवेत् [आ.]	जन्मभिः [ना.]	मार्गे [ना.]
पातः [ना.]	अति [उ.] -अन्त-	अस्मिन् [ना.]
किन्तु [नि.]	अभि [उ.] नि [उ.] वेशः [ना.]	मुरवैरिणः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अत्र [तद्धि.]	हीनेषु [कृद.]	अत्यन्ताभिनिवेशः [स.]
वेदनिन्दायाम् [स.]	पूर्वसंस्कारतः [तद्धि.]	संसारे [कृद+स.] तदा [तद्धि.]
अधर्मकरणात् [स.]	तत्र [तद्धि.] भजन् [कृद.]	एतावन्मात्रता [तद्धि.]
तथा [तद्धि] पातः [कृद.]	मुच्येत [सना.]	मार्गे [तद्धि.] मुरवैरिणः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

वेदनिन्दायाम् - अ.आ.स्त्री.स.ए. अधर्मकरणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.

नरके - अ.अ.पुं.स.ए.	अत्यन्ताभिनिवेशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
पातः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	संसारे - अ.अ.पुं.स.ए.
हीनेषु - अ.अ.पुं.स.व.	एतावन्मात्रता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
भजन् - ह.त.पुं.प्र.ए.	मार्गे - अ.अ.पुं.स.ए. अस्मिन् - ह.म.पुं.स.ए.
जन्मभिः - ह.न.नपुं.तृ.ब.	मुरवैरिणः - ह.न्.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	मुच्येत - तुदा.लिङ्.प्र.ए. (यक्)
जायते - दिवादि.लट्.प्र.ए.	अस्ति - अदादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : अत्र वेदनिन्दायां तथा अधर्मकरणादपि नरके पातो न भवेत् किन्तु हीनेषु जायते तदा पूर्वसंस्कारतः भजन् (अनैकैः) जन्मभिः मुच्येत. तत्र संसारे अत्यन्ताभिनिवेशः चेत् (मुक्तिः) न भवेत् (६). अस्मिन् मुरवैरिणः मार्गे एतावन्मात्रताऽपि अस्ति॥

(अनन्यदास्यभावनया श्रीकृष्णे मनोनिवेशनस्य फलं सायुज्यं, दारागारपुत्राप्तादीनां सर्वेषां श्रीकृष्णाय समर्पणं कृत्वा माहात्म्यज्ञानसहितप्रेम-युक्तस्य भक्तस्य इतरेभ्यो वैशिष्ट्यं दुर्लभत्वञ्च)

सर्वत्यागेऽनन्यभावे कृष्णमात्रैकमानसे ॥७॥
सायुज्यं कृष्णदेवेन शीघ्रमेव ध्रुवं फलम्॥
एतादृशस्तु पुरुषः कोटिष्वपि सुदुर्लभः ॥८॥
यो दारागार-पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तमिमं परम्॥
हित्वा कृष्णे परं भावं गतः प्रेमप्लुतः सदा॥९॥

सन्धिविच्छेद :

त्यागे + अनन्य = त्यागेऽनन्य [पू.रू.]	एतादृशः + तु = एतादृशस्तु [स.]
मात्र + एक = मात्रैक [वृद्धि.]	कोटिषु + अपि = कोटिष्वपि [यण्.]

यः + दाग = यो दारा [उ गुण]	दारागार-पुत्राप्त [दीर्घ.]
दारा + आगार-पुत्र + आप्त =	प्र + अणान् = प्राणान् [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- सर्वस्य त्यागः इति सर्वत्यागः [ष.तत्पु.] तस्मिन् सर्वत्यागे
- न अन्यः इति अनन्यः [न.तत्पु.] अनन्यः च असौ भावः च इति अनन्यभावः [कर्म] तस्मिन् अनन्यभावे
- कृष्णमात्रे एकं मानसं यस्य सः कृष्णमात्रैकमानसः [बहु.] तस्मिन् कृष्णमात्रैकमानसे
- कृष्ण एव देवः इति कृष्णदेवः [कर्म] तेन कृष्णदेवेन
- दारा च आगारं च पुत्रः च आप्तः च ते दारागारपुत्राप्ताः [द्वन्द्व.] तान् दारागारपुत्राप्तान्
- प्रेम्णा प्लुतः इति प्रेमप्लुतः [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

सर्वत्यागे [ना.]	एतादृशः [ना.]	वित्तम् [ना.]
अनन्यभावे [ना.]	तु [नि.]	इमम् [ना.]
कृष्णमात्रैकमानसे [ना.]	पुरुषः [ना.]	परम् [ना.]
सायुज्यम् [ना.]	कोटिषु [ना.]	हित्वा [स.आ.]
कृष्णदेवेन [ना.]	अपि [नि.]	कृष्णे [ना.]
शीघ्रम् [नि.]	सु [उ.] दुर् [उ.] लभः [ना.]	भावम् [ना.]
एव [नि.]	यः [ना.]	गतः [ना.]
ध्रुवम् [ना.]	दारा-आ [उ.] गार-पुत्राप्तान् [ना.]	प्रेमप्लुतः [ना.]
फलम् [ना.]	प्र [स.] -अणान् [ना.]	सदा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वत्यागे [स.] अनन्यभावे [स.] कृष्णमात्रैकमानसे [स.] सायुज्यम् [तद्धि.]

कृष्णदेवेन [स.]	सुदुर्लभः [स.]	दारागारपुत्राप्तान् [स.]	गतः [कृद.]
एतादृशः [तद्धि.]	प्राणान् [स.]	हित्वा [कृद.]	प्रेमप्लुतः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

सर्वत्यागे - अ.अ.पुं.स.ए.	सुदुर्लभः - अ.अ.पुं.प्र.ए. यः - ह.द.पुं.प्र.ए.
अनन्यभावे - अ.अ.पुं.स.ए.	दारागार-पुत्राप्तान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
कृष्णमात्रैकमानसे - अ.अ.पुं.स.ए.	प्राणान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
सायुज्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	वित्तम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
कृष्णदेवेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	इमम् - ह.म्.पुं.द्वि.ए.
ध्रुवम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	परम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
फलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कृष्णे - अ.अ.पुं.स.ए.
एतादृशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भावम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
पुरुषः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	गतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कोटिषु - अ.इ.स्त्री.स.ब.	प्रेमप्लुतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : सर्वत्यागे (कृते) अनन्यभावे कृष्णमात्रैकमानसे (च) (जाते तस्य भक्तस्य) कृष्णदेवेन (दत्तं) ध्रुवं फलं सायुज्यं शीघ्रमेव (भवति). एतादृशस्तु पुरुषः कोटिषु अपि सुदुर्लभः (अस्ति) यो दारागार-पुत्राप्तान् प्राणान् वित्तं इमं परं हित्वा कृष्णे परं भावं गतः सदा प्रेमप्लुतः (च भवति)॥

(प्रमेय [१]फल [२]साधन [३]प्रमाण [४]भेदोत्कर्षात् "भक्तिमार्गस्य सर्वोत्तमत्वम्")

विशिष्टरूपं वेदार्थः [१] फलं [२] प्रेम च साधनम् ॥
तत्साधनं नवविधा भक्तिस् [३] तत्प्रतिपादिका॥१०॥
गीता सङ्क्षेपतस्तस्या वक्ता स्वयम् अभूद्धरिः॥
तद्विस्तारो भागवतं सर्वनिर्णयपूर्वकम्॥११॥
व्यासः समाधिना सर्वम् आह कृष्णोक्तमादितः [४]॥

मार्गोऽयं सर्वमार्गाणाम् उत्तमः परिकीर्तितः ।।१२।।
यस्मिन् पातभयं नास्ति मोचकः सर्वथा यतः ।।

सन्धिविच्छेद :

वेद + अर्थः = वेदार्थः [दीर्घ.]	विस्तारः + भागवतम् = विस्तारो भागवतम् [उ.गुण.]
भक्तिः + तत् = भक्तिस्तत् [स.]	वि + आसः = व्यासः [यण्.]
सम् + क्षेप = सङ्क्षेप [प.स.]	कृष्ण + उक्तम् = कृष्णोक्तम् [गुण]
सङ्क्षेपतः + तस्याः = सङ्क्षेपतस्तस्याः [स.]	मार्गः + अयम् = मार्गोऽयम् [उ.पू.रू.]
तस्याः + वक्ता = तस्या वक्ता [वि.लो.]	न + अस्ति = नास्ति [दीर्घ.]
अभूत् + हरिः = अभूद्धरिः [जश्त्व.पू.स.]	

समास विग्रह :

- विशिष्टं रूपं यस्य तत् विशिष्टरूपम् [बहु.]
- वेदस्य अर्थः इति वेदार्थः [ष.तत्पु.] - तस्य साधनम् इति तत्साधनम् [ष.तत्पु.]
- नव विधाः यस्या सा नवविधा [बहु.]
- तस्याः प्रतिपादिका इति तत्प्रतिपादिका [ष.तत्पु.]
- तस्याः विस्तारः इति तद्विस्तारः [ष.तत्पु.]
- सर्वे च ते निर्णयाश्च सर्वनिर्णयाः [कर्म] वा
- सर्वेषां (विषयानां) निर्णयः इति सर्वनिर्णयः [ष.तत्पु.]
- सर्वनिर्णयाः पूर्वं यस्य तत् सर्वनिर्णयपूर्वकम् [बहु.] तत् सर्वनिर्णयपूर्वकम्
- कृष्णेन उक्तं इति कृष्णोक्तम् [तृ.तत्पु.]
- सर्वे ये मार्गाः ते सर्वमार्गाः [कर्म] तेषां सर्वमार्गाणाम्
- पातस्य भयम् इति पातभयम् [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

वि [उ.]शिष्टरूपम् [ना.]	फलम् [ना.]	च [नि.]	तत्साधनम् [ना.]
वेदार्थः [ना.]	प्रेम [ना]	साधनम् [ना.]	नवविधा [ना.]

भक्तिः [ना.]	भागवतम् [ना.]	सर्वमार्गाणाम् [ना.]
तत्-प्रति [उ.] पादिका [ना.]	सर्व-निर् [स.] णयपूर्वकम् [ना.]	उत् [उ] तमः [ना.]
गीता [ना.]	वि [उ.] -आसः [ना.]	परि [उ.] कीर्तितः [ना.]
सम् [उ.] -क्षेपतः [नि.]	सम् [उ.] आधिना [ना.]	यस्मिन् [ना.]
तस्याः [ना.]	सर्वम् [ना.]	पातभयम् [ना.]
वक्ता [ना.]	आह [आ.]	न [नि.]
स्वयम् [नि.]	कृष्णोक्तम् [ना.]	अस्ति [आ.]
अभूद् [आ.]	आदितः [नि.]	मोचकः [ना.]
हरिः [ना.]	मार्गः [ना.]	सर्वथा [नि.]
तद्-विस्तारः [ना.]	अयम् [ना.]	यतः [नि.].

वृत्तिपरिचय :

विशिष्टरूपम् [स.]	सङ्क्षेपतः [तद्धि.]	आदितः [तद्धि.]
वेदार्थः [स.]	वक्ता [कृद्.]	मार्गः [तद्धि.]
साधनम् [कृद्.]	तद्विस्तारः [स.]	सर्वमार्गाणाम् [स.]
तत्साधनम् [स.]	भागवतम् [तद्धि.]	उत्तमः [स.]
नवविधा [स.]	सर्वनिर्णयपूर्वकम् [स.]	परिकीर्तितः [कृद्+स.]
भक्तिः [कृद्.]	व्यासः [स.]	पातभयम् [स.]
तत्प्रतिपादिका [स.]	समाधिना [स.]	मोचकः [कृद्.]
गीता [कृद्.]	कृष्णोक्तम् [स.]	सर्वथा[तद्धि.] यतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

विशिष्टरूपम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	नवविधा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
वेदार्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
फलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तत्प्रतिपादिका - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
प्रेम - ह.न.पुं.प्र.ए.	गीता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
साधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तस्या - ह.द.स्त्री.ष.ए.

वक्ता - अ.ऋ.पुं.प्र.ए.	
हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	मार्गः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तद्विस्तारः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए.
भागवतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सर्वमार्गाणाम् - अ.अ.पुं.ष.व.
सर्वनिर्णयपूर्वकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	उत्तमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
व्यासः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	परिकीर्तितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
समाधिना - अ.इ.पुं.तृ.ए.	यस्मिन् - ह.द.पुं.स.ए.
सर्वम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	पातभयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कृष्णोक्तम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	मोचकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

अभूद् - भ्वा.लुङ्.प्र.ए. आह - अदा.लट्.प्र.ए. अस्ति - अदादि.लट्.प्र.ए.

अन्वय : विशिष्टरूपं वेदार्थः फलं (अस्ति) प्रेम च (तत्फलप्राप्तौ) साधनम् (अस्ति). तत्साधनं (प्रेमसाधनं) नवविधा भक्तिः (अस्ति) तत्प्रतिपादिका (भक्तिप्रतिपादिका) गीता (अस्ति) तस्याः (गीतायाः) सङ्क्षेपतः वक्ता स्वयं हरिः अभूत्, सर्वनिर्णयपूर्वकं तद्विस्तारो (गीताविस्तारो) भागवतम् (अस्ति) आदितः कृष्णोक्तं सर्वं व्यासः समाधिना आह. अयं मार्गः सर्वमार्गाणाम् उत्तमः परिकीर्तितः यस्मिन् (मार्गे) पातभयं नास्ति यतः (अयं) सर्वथा मोचकः (अस्ति)॥

(कलिदोषवशाद् अन्येषाम् उपायानाम् असाधकत्वेऽपि भक्तिमार्गस्यतु कलावपि ध्रुवं फलप्रदत्वं इति निरूपणम्)

वर्णाश्रमवतां धर्मे मुख्ये नष्टे छलेनतु॥१३॥
क्रियमाणे न धर्मः स्याद् अतस्तस्मान्न मोचनम्॥
बुद्धिमानादरं तस्मिन् छले साध्येऽपि दुःखतः ॥१४॥
त्यक्त्वा मार्गे ध्रुवफले भक्तिमार्गे समाविशेत्॥

सन्धिविच्छेद :

वर्ण + आश्रम = वर्णाश्रम [दीर्घ]

स्यात् + अतः = स्याद् अतः [जश्त्व.]

अतः + तस्मात् = अतस्तस्मात् [स.]

तस्मात् + न = तस्मान्न [अनुना]

साध्ये + अपि = साध्येऽपि [पू.रू.]

समास विग्रह :

- वर्णाश्च आश्रमाश्च इति वर्णाश्रमाः [द्वन्द्व.] तद्वतां वर्णाश्रमवताम्
- ध्रुवं फलं यस्मिन् स ध्रुवफलः [बहु.] तस्मिन् ध्रुवफले
- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म] तस्मिन् भक्तिमार्गे

शब्दपरिचय :

वर्ण-आ [उ.]श्रमवताम् [ना.]	तस्मात् [ना.]	साध्ये [ना.] अपि [नि.]
धर्मे [ना.] मुख्ये [ना.]	न [नि.]	दुःखतः [नि.]
नष्टे [ना.]	मोचनम् [ना.]	त्यक्त्वा [स.आ.]
छलेन [ना.] तु [नि.]	बुद्धिमान् [ना.]	मार्गे [ना.]
क्रियमाणे [ना.]	आ [उ.]दरम् [ना.]	ध्रुवफले [ना.]
न [नि.] धर्मः [ना.]	तस्मिन् [ना.]	भक्तिमार्गे [ना.]
स्याद् [आ.] अतः [नि.]	छले [ना.]	सम् [उ.] आ [उ.] विशेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

वर्णाश्रमवताम् [तद्धि.]	मोचनम् [कृद.]	दुःखतः [तद्धि.]
नष्टे [कृद.]	बुद्धिमान् [तद्धि.]	त्यक्त्वा [कृद.]
क्रियमाणे [कृद.]	आदरम् [स.]	मार्गे [तद्धि.] ध्रुवफले [स.]
अतः [तद्धि.]	साध्ये [कृद.]	भक्तिमार्गे [स.]

शब्दरूपपरिचय :

वर्णाश्रमवताम् - ह.त.पुं.ष.व.

(धर्मे, मुख्ये, नष्टे) - अ.अ.पुं.स.ए.

छलेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

क्रियमाणे - अ.अ.पुं.स.ए.

धर्मः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	तस्मिन् - ह.द.पुं.स.ए.
तस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.	छले - अ.अ.पुं.स.ए.
मोचनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	साध्ये - अ.अ.पुं.स.ए.
बुद्धिमान् - ह.त्.पुं.प्र.ए.	ध्रुवफले - अ.अ.पुं.स.ए.
आदरम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	भक्तिमार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.

धातुरूपपरिचय :

स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए. समाविशेत् - तुदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : वर्णाश्रमवतां मुख्ये धर्मे नष्टे (सति) छलेन तु क्रियमाणे (=तदनुष्ठाने) धर्म (एव) न स्यात् अतः तस्मात् मोचनं न (भवति). दुःखतः साध्ये अपि तस्मिन् छले मार्गे आदरं त्यक्त्वा ध्रुवफले भक्तिमार्गे समाविशेत्.

(भक्तिमार्गे श्रुतिस्मृतिविरुद्धाचारो नास्ति, प्रमेयमपि वेदविरुद्धं नास्त्येव. यद्यपि मायावादिनां भक्तौ निगूढद्वेषो वर्तते तथापि मायावादस्यैव अप्रमाणिकत्वं न पुनः भक्तिमार्गस्य भगवत्कृपैकमूलत्वाच्च तस्य. तत्र भगवत्कृपाविशिष्टानामेव फलमुखाधिकारः न सर्वेषाम्. कृपापरिज्ञानमपि भक्तिमार्गरुच्यैव निश्चीयते नान्यथा इति निरूपणम्)

विरुद्धकरणं नास्ति प्रक्रिया न विरुध्यते।।१५।।
कल्पितैरेव बाधः स्याद् अवोचाम प्रमाणताम्।।
सर्वथा चेद् हरिकृपा न भविष्यति यस्य हि।।१६।।
तस्य सर्वमशक्यं स्यान्मार्गेऽस्मिन् सुतरामपि।।
कृपायुक्तस्यतु यथा सिध्येत् कारणमुच्यते।।१७।।

सन्धिविच्छेद :

न + अस्ति = नास्ति दीर्घ. कल्पितैः + एव = कल्पितैरेव रेफ.

30

स्यात् + अवोचाम = स्याद् अवोचाम [जश्त्व.] स्यात् + मार्गे = स्यान्मार्गे [अनुना]
चेत् + हरि = चेद् हरि [जश्त्व.] मार्गे + अस्मिन् = मार्गेऽस्मिन् [पू.रू.]

समास विग्रह :

- विरुद्धस्य करणम् इति विरुद्धकरणम् [ष.तत्पुं.]
- हरेः कृपा इति हरिकृपा [ष.तत्पु.] - न शक्यम् इति अशक्यम् [न.तत्पु.] तत्
- कृपया युक्तः इति कृपायुक्तः [तृ.तत्पु.] तस्य कृपायुक्तस्य

शब्दपरिचय :

वि [उ.] रुद्धकरणम् [ना.]	सर्वथा [नि.]	मार्गे [ना.]
न [नि.] अस्ति [आ.]	चेद् [नि.]	अस्मिन् [ना.]
प्र [उ.] क्रिया [ना.]	हरिकृपा [ना.]	सुतराम् [नि.]
वि [उ.] रुध्यते [आ.]	भविष्यति [आ.]	अपि [नि.]
कल्पितैः [ना.]	यस्य [ना.] हि [नि.]	कृपायुक्तस्य [ना.]
एव [नि.] बाधः [ना.]	तस्य [ना.]	तु [नि.] यथा [नि.]
स्याद् [आ.]	सर्वम् [ना.]	सिध्येत् [आ.]
अवोचाम [आ.]	अशक्यम् [ना.]	कारणम् [ना.]
प्र [उ.] माणताम् [ना.]	स्यात् [आ.]	उच्यते [आ.]

वृत्तिपरिचय :

विरुद्धकरणम् [स.]	प्रमाणताम् [तद्धि.]	मार्गे [तद्धि.]
प्रक्रिया [स.]	सर्वथा [तद्धि.]	कृपायुक्तस्य [स.]
विरुध्यते [सना.]	हरिकृपा [स.]	यथा [तद्धि.] कारणम् [कृद.]
कल्पितैः [कृद्]	अशक्यम् [स.]	उच्यते [सना.]

शब्दरूपपरिचय :

विरुद्धकरणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए. प्रक्रिया - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

कल्पितैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.	सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
बाधः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	अशक्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
प्रमाणताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	मार्गे - अ.अ.पुं.स.ए.
हरिकृपा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	अस्मिन् - ह.म.पुं.स.ए.
यस्य - ह.द.पुं.ष.ए.	कृपायुक्तस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.	कारणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

अस्ति - अदादि.लट्.प्र.ए.

विरुध्यते - रुधा.लट्.प्र.ए. (यक्)	भविष्यति - भ्वा.लृट्.प्र.ए.
स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.	सिध्येत् - दिवादि.लिङ्.प्र.ए.
अवोचाम - अदा.लुङ्.उ.ब.	उच्यते - अदा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : (अस्मिन् मार्गे) विरुद्धकरणं न अस्ति (च) प्रक्रिया (अपि) न विरुध्यते. (शास्त्रप्रामाण्यस्य) बाधः कल्पितैः (वाक्यैः) एव स्यात्. (अत्र) प्रमाणताम् अवोचाम. यस्य चेत् हि हरिकृपा सर्वथा न भविष्यति तस्य अस्मिन् मार्गे सुतराम् अपि सर्वम् अशक्यं स्यात्. कृपायुक्तस्य तु यथा सिध्येत् (तथा) कारणम् उच्यते॥१७॥

(भक्तिमार्गीयसाधनेषु आदिमं साधनं : दम्भादिरहितस्य श्रीकृष्णसेवापरायणस्य श्रीभागवततत्त्वज्ञस्यैव पुरुषस्य गुरुबुद्ध्या अनुसरणम्)

कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरम्॥
श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेत् जिज्ञासुरादरात्॥१८॥

सन्धिविच्छेद :

वि + ईक्ष्य = वीक्ष्य दीर्घ.

दम्भ + आदि = दम्भादि दीर्घ.

जिज्ञासुः + आदरात् = जिज्ञासुरादरात् रेफ.

समास विग्रह :

- कृष्णस्य सेवा इति कृष्णसेवा [ष.तत्पु.]
  तस्यां परः इति कृष्णसेवापरः [स.तत्पु.] तं कृष्णसेवापरम्
- दम्भः आदि येषां ते दम्भादयः [बहु.]
  तैः रहितः दम्भादिरहितः [तृ.तत्पु.] तं दम्भादिरहितम्
- श्रीभागवतस्य तत्त्वम् इति श्रीभागवततत्त्वम् [ष.तत्पु.]
  तं जानाति इति श्रीभागवततत्त्वज्ञः [उप.स.] तम्

शब्दपरिचय :

कृष्णसेवापरम् [ना.] दम्भादिरहितम् [ना.] श्रीभागवततत्त्वज्ञम् [ना.] जिज्ञासुः [ना.]
वि [उ.] -ईक्ष्य [स.आ.] नरम् [ना.] भजेत् [आ.] आ [उ.] दरात् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

कृष्णसेवापरम् [स.] दम्भादिरहितम् [स.] जिज्ञासुः [कृद.]
वीक्ष्य [कृद.] श्रीभागवततत्त्वज्ञम् [स.] आदरात् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(कृष्णसेवापरम्, दम्भादिरहितम्, श्रीभागवततत्त्वज्ञम्) - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
नरम् - अ.ऋ.पुं.द्वि.ए. जिज्ञासुः - अ.उ.पुं.प्र.ए. आदरात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

धातुरूपपरिचय : भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : जिज्ञासुः कृष्णसेवापरं दम्भादिरहितं श्रीभागवततत्त्वज्ञं नरं वीक्ष्य आदरात् (तं गुरुत्वेन) भजेत्॥१८॥

(एतादृग्गुरोः दुर्लभत्वे पूर्वोक्तानुकल्पतया भगवत्सेवायां स्वतोऽपि आरब्धायां श्रीकृष्णमूर्तेः साक्षाद् भगवत्त्वं ध्रुवमेव इति प्रतिपादनम्)

तदभावे स्वयं वापि मूर्तिं कृत्वा हरेः क्वचित्।।
परिचर्यां सदा कुर्यात् तद्रूपं तत्र च स्थितम्[क]।।१९।।
साकारव्यापकत्वाच्च[ख] मन्त्रस्यापि विधानतः[ग]।।

सन्धिविच्छेद :

वा + अपि = वापि [दीर्घ.]	त्वात् + च = त्वाच्च [श्चु.]
वि + आपक = व्यापक [यण्.]	मन्त्रस्य + अपि = मन्त्रस्यापि [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- तस्य अभावः इति तदभावः [प.तत्पु.] तस्मिन् तदभावे
- तस्य रूपम् इति तद्रूपम् [प.तत्पु.]- आकारेण सह इति साकारः [बहु.]
- साकारं च असौ व्यापकं च इति साकारव्यापकम् [कर्म.] तस्य भावः साकारव्यापकत्व तस्मात् साकारव्यापकत्वात्

शब्दपरिचय :

तदभावे [ना.]	कृत्वा [स.आ.]	कुर्यात् [आ.]	साकार-वि [उ.]-
स्वयम् [नि.]	हरेः [ना.]	तद्रूपम् [ना.]	आपकत्वात् [ना.]
वा [नि.]	क्वचित् [नि.]	तत्र [नि.]	च [नि]
अपि [नि.]	परि [उ.]चर्याम् [ना.]	च [नि.]	मन्त्रस्य [ना.]
मूर्तिम् [ना.]	सदा [नि.]	स्थितम् [ना.]	वि [उ.]धानतः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

तदभावे [स.]	कृत्वा [कृद.]	तद्रूपम् [स.] तत्र [तद्धि.]	साकारव्यापकत्वात् [स.]
मूर्तिम् [कृद.]	परिचर्याम् [कृद+म.]	स्थितम् [कृद.]	विधानतः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

तदभावे - अ.अ.पुं.स.ए.	मूर्तिम् - अं.इ.स्त्री.द्वि.ए.

हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
परिचर्याम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
तद्रूपम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
स्थितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
साकारव्यापकत्वात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
मन्त्रस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय : कुर्यात् - तनादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय :

तदभावे स्वयं वाऽपि क्वचित् हरेः मूर्तिं कृत्वा सदा परिचर्यां कुर्यात्. साकारव्यापकत्वात् मन्त्रस्य चापि विधानतः तद्रूपं, तत्र च स्थितम् (अस्ति)

(श्रीकृष्णस्यैव भक्तिमार्गानुसारणैव च यथालब्धोपचारैः प्रेम्णा पूजनं कर्तव्यं[१], तत्र भार्यादीनां आनुकूल्ये भगवत्सेवायां विनियोगानुज्ञा[२], औदासीन्ये विनियोगनिषेधः[३], प्रातिकूल्ये परित्यागाज्ञा[४])

श्रीकृष्णं पूजयेद् भक्त्या यथालब्धोपचारकैः ।।२०।।
यथा सुन्दरतां याति वस्त्रैराभरणैरपि ।।
अलङ्कुर्वीत सप्रेम तथा स्थानपुरःसरम्[१] ।।२१।।
भार्यादिरनुकूलश्चेत् कारयेद् भगवत्-क्रियाम्[२] ।।
उदासीने स्वयं कुर्यात्[३] प्रतिकूले गृहं त्यजेत् ।।२२।।
तत्-त्यागे दूषणं नास्ति यतो विष्णु-पराङ्-मुखाः[४] ।।

सन्धिविच्छेद :

पूजयेत् + भक्त्या = पूजयेद् भक्त्या [जश्त्व.]
लब्ध + उप = लब्धोप [गुण.]
वस्त्रैः + आभरणैः + अपि = वस्त्रैराभरणैरपि [रेफ.]
भार्या + आदिः = भार्यादिः [दीर्घ.]
दिः + अनुकूलः = दिरनुकूलः [रेफ.]
अनुकूलः + चेत् = अनुकूलश्चेत् [स.श्चु.]
कारयेत् + भग = कारयेद् भग [जश्त्व.]
न + अस्ति = नास्ति [दीर्घ.]
यतः + विष्णुः = यतो विष्णुः [उ.गुण]

समासविग्रह :

- लब्धम् अनतिक्रम्य इति यथालब्धम् [अव्य.]
- यथालब्धं च असौ उपचारकश्च यथालब्धोपचारकः [कर्म] तैः यथालब्धोपचारकैः
- प्रेम्णा सह इति सप्रेम [बहु.]
- स्थानेन पुरःसरमिति स्थानपुरःसरम् [तृ.तत्पु.]
- भार्या आदिः यस्य (पुत्रादेः) स भार्यादिः [बहु.]
- भगवतः क्रिया इति भगवत्-क्रिया [ष.तत्पु.] तां भगवत्-क्रियाम्
- तस्य त्यागः इति तत्-त्यागः [ष.तत्पु.] तस्मिन्
- पराक् मुखं यस्य सः पराङ्-मुखः [बहु.]
- विष्णोः पराङ्-मुखः इति विष्णु-पराङ्-मुखः [पं.तत्पु.] ते विष्णुपराङ्मुखाः

शब्दपरिचय :

श्रीकृष्णम्[ना.]	वस्त्रैः[ना.]	अनु[उ.]कूलः[ना.]	गृहम्[ना.]
पूजयेद्[आ.]	आ[उ.]भरणैः[ना.]	चेत्[नि.]	त्यजेत्[आ.]
भक्त्या[ना.]	अपि[नि.]	कारयेद्[आ.]	तत्त्यागे[ना.]
यथालब्ध-	अलङ्कुर्वीत[आ.]	भगवत्क्रियाम्[ना.]	दूषणम्[ना.]
उप[उ.]चारकैः[ना.]	सप्रेम[ना.]	उत्[उ.]-आसीने[ना.]	न[नि.]
यथा[नि.]	तथा[नि.]	स्वयम्[नि.]	अस्ति[आ.]
सुन्दरताम्[ना.]	स्थानपुरःसरम्[ना.]	कुर्यात्[आ.]	यतः[नि.]
याति[आ.]	भार्यादिः[ना.]	प्रति[उ.]कूले[ना.]	विष्णुपराङ्मुखाः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

श्रीकृष्णम्[स.]	सुन्दरताम्[तद्धि.]	स्थानपुरःसरम्[स.]
भक्त्या[कृद्.]	आभरणैः[कृद्+स.]	भार्यादिः[स.]
यथालब्धोपचारकैः[स.]	सप्रेम[स.]	अनुकूल[स.]
यथा[तद्धि.]	तथा[तद्धि.]	कारयेत्[सना]

भगवत्-क्रियाम् [स.]	प्रतिकूले [स.]	दूषणम् [कृद.] यतः [तद्धि.]
उदासीने [कृद+स]	तत्-त्यागे [स.]	विष्णु-पराङ्-मुखाः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

श्रीकृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	अनुकूलः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.	भगवत्-क्रियाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
यथालब्धोपचारकैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	उदासीने - अ.अ.पुं.स.ए.
सुन्दरताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	प्रतिकूले - अ.अ.पुं.स.ए.
(वस्त्रैः, आभरणैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.	गृहम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
सप्रेम - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तत्-त्यागे - अ.अ.पुं.स.ए.
स्थानपुरःसरम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	दूषणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
भार्यादिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	विष्णु-पराङ्-मुखाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :

पूजयेत् - चुरा.वि.लिङ्.प्र.ए.	
याति - अदा.लट्.प्र.ए.	कुर्यात् - तना.वि.लिङ्.प्र.ए.
अलङ्कुर्वीत - तनादि.वि.लिङ्.प्र.ए.	त्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
कारयेद् - तना.वि.लिङ्.प्र.ए.(ण्यन्त प्रत्यय)	अस्ति - अदा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : यथालब्धोपचारकैः भक्त्या श्रीकृष्णं पूजयेत्. वस्त्रैः आभरणैरपि यथा (भगवन्मूर्तिः) सुन्दरतां याति तथा स्थानपुरःसरं सप्रेम अलङ्कुर्वीत. भार्यादिः अनुकूलः चेत् (तदा) भगवत्-क्रियां कारयेत्, उदासीने स्वयं कुर्यात्, प्रतिकूले गृहं त्यजेत्, तत्-त्यागे दूषणं न अस्ति यतः (ते) विष्णु-पराङ्-मुखाः (सन्ति)॥

(भक्तिमार्गे प्रवृत्तस्य आजीविकाविषये नियमाः, आजीविकाव्यापृतस्य चित्तस्य भगवति योजनायै उपायस्तु नियमतो भागवतपाठः

(सत्यधिकारे) एव [१]. भागवतपाठोऽपि आन्तरं कृष्णभजनमेव. अतो अत्रापि प्रतिकूलत्यागनियमवर्णने कृष्णभावनया सर्वं परुषं सहेत; वैराग्यं परितोषञ्च सर्वथा न परित्यजेद् [२] इति निरूपणम्)

सर्वथा वृत्तिहीनश्चेद् एकं यामं हरौ नयेत्।।२३।।
पठेच्च नियमं कृत्वा श्रीभागवतमादरात् [१]।।
सर्वं सहेत परुषं सर्वेषां कृष्णभावनात्।।२४।।
वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजेत् [२]।।
एतद्-देहावसानेतु कृतार्थः स्यान्न संशयः।।२५।।
इति निश्चित्य मनसा कृष्णं परिचरेत् सदा।।

सन्धिविच्छेद :

वृत्तिहीनः + चेद् = वृत्तिहीनश्चेद् [स.श्चु.]	
चेत् + एकम् = चेद् एकम् [जश्त्व.]	स्याम् + न = स्यान्न [प.स.]
पठेत् + च = पठेच्च [श्चु.]	कृत + अर्थः = कृतार्थः [दीर्घ.]
देह + अवसाने = देहावसाने [दीर्घ.]	निस् + चित्य = निश्चित्य [श्चु.]

समासविग्रह :

- वृत्त्याः हीनः इति वृत्तिहीनः [पं.तत्पु.]
- कृष्णस्य भावनम् इति कृष्णभावनम् [ष.तत्पु.] तस्मात् कृष्णभावनात्
- एषः देहः इति एतद्-देहः [कर्म]
- एतद्-देहस्य अवसानम् इति एतद्-देहावसानम् [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् एतद्-देहावसाने
- कृतः (सम्पादितः) अर्थः येन सः कृतार्थः [बहु.]

शव्दपरिचय :

सर्वथा [नि.]	चेद् [नि.]	यामम् [ना.]	नयेत् [आ.]	च [नि.]
वृत्तिहीनः [ना.]	एकम् [ना.]	हरौ [ना.]	पठेत् [आ.]	नि [उ.]यमम् [ना.]

कृत्वा [स.आ.]	सर्वेषाम् [ना.]	एतद्देह-अव [उ.] -	इति [नि.]
श्रीभागवतम् [ना.]	कृष्णभावनात् [ना.]	साने [ना.]	निस् [स.] -चित्य [स.आ.]
आ [उ.] दरात् [ना.]	वैराग्यम् [ना.]	तु [नि.]	मनसा [ना.]
सर्वम् [ना.]	परि [उ.] तोषम् [ना.]	कृतार्थः [ना.]	कृष्णम् [ना.]
सहेत [आ.]	न [नि.]	स्याम् [आ.]	परि [उ.] चरेत् [आ.]
परुषम् [ना.]	परि [उ.] त्यजेत् [आ.]	सं [उ.] शयः [ना.]	सदा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वथा [तद्धि.]	श्रीभागवतम् [स.]	परितोषम् [स.]
वृत्तिहीनः [स.]	आदरात् [स.]	एतद्-देहावसाने [स.]
नियमम् [कृद्+स.]	कृष्णभावनात् [स.]	कृतार्थः [स.] संशयः [स.]
कृत्वा [कृद्.]	वैराग्यम् [तद्धि.]	निश्चित्य [कृद्.]

शब्दरूपपरिचय :

वृत्तिहीनः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
एकम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	कृष्णभावनात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.
यामम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	वैराग्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
हरौ - अ.इ.पुं.स.ए.	परितोषम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
नियमम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	एतद्-देहावसाने - अ.अ.नपुं.स.ए.
श्रीभागवतम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	कृतार्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
आदरात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	संशयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सर्वम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	मनसा - ह.स.नपुं.तृ.ए.
परुषम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	कृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

नयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	सहेत - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	स्याम् - अदा.वि.लिङ्.उ.ए.
पठेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	परित्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	परिचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : सर्वथा वृत्तिहीनः चेद् एकं यामं हरौ नयेत्, श्रीभागवतं च आदरात् नियमं कृत्वा पठेत्, सर्वेषां कृष्णभावनात् सर्वं परुषं सहेत, वैराग्यं परितोषं च सर्वथा न परित्यजेत्. एतद्-देहावसाने तु (अहं) कृतार्थः स्याम् (अत्र) संशयः न (अस्ति) इति मनसा निश्चित्य सदा कृष्णं परिचरेत्॥

(भजनप्रकारस्य [१-क-ख-ग-घ] भजनोपयोगिसामग्र्याः [२] भजनकर्तुः [३] भजनकालस्य [४] च स्वरूपाणि)

सर्वापेक्षां परित्यज्य [१-क] दृढं कृत्वा मनः स्थिरम् [१-ख]॥२६॥
दृढविश्वासतो युक्त्या यथा सिध्येत तथाऽऽचरेत् [१-ग]॥
वृथालापक्रियाध्यानं सर्वथैव परित्यजेत् [१-घ]॥२७॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चातिप्रियम् आत्मनः॥
येन स्यान्निर्वृतिश्चित्ते तत् कृष्णे साधयेद् ध्रुवम् [२]॥२८॥
स्वयं परिचरेद् भक्त्या वस्त्रप्रक्षालनादिभिः [३]॥
एककालं द्विकालं वा त्रिकालं वापि पूजयेत् [४]॥२९॥

सन्धिविच्छेद :

सर्वा + अपेक्षाम् = सर्वापेक्षाम् [दीर्घ.]	यच्च + अति = यच्चाति [दीर्घ.]
अप + ईक्षा = अपेक्षा [गुण.]	स्यात् + निर्वृतिः = स्यान्निर्वृतिः [अनु.]
विश्वासतः + युक्त्या = विश्वासतो युक्त्या [उ.गुण.]	निर्वृतिः + चित्ते = निर्वृतिश्चित्ते [स.श्चु.]
तथा + आचरेत् = तथाऽऽचरेत् [दीर्घ.]	साधयेत् + ध्रुवं = साधयेद् ध्रुवं [जश्त्व.]
वृथा + आलाप = वृथालाप [दीर्घ.]	परिचरेत् + भक्त्या = परिचरेद् भक्त्या [जश्त्व.]
सर्वथा + एव = सर्वथैव [वृद्धि.]	प्रक्षालन + आदि = प्रक्षालनादि [दीर्घ.]
यत् + च = यच्च [श्चु.]	वा + अपि = वापि [दीर्घ.]

समासविग्रह : सर्वा च असौ अपेक्षा इति सर्वापेक्षा[कर्म] तां सर्वापेक्षाम्

- दृढश्च असौ विश्वासश्च दृढविश्वासः [कर्म] तस्मात् दृढविश्वासतः [पं.तगि.]
- आलापश्च क्रिया च ध्यानं च आलापक्रियाध्यानम् [द्वन्द्व]
- वृथा च तद् आलापक्रियाध्यानं च तेषां समाहारः इति वृथालापक्रियाध्यानम् [कर्म]
- वस्त्रस्य प्रक्षालनं इति वस्त्रप्रक्षालनम् [ष.तत्पु.]
- वस्त्रप्रक्षालनम् आदिः येषां तानि वस्त्रप्रक्षालनादीनिः [बहु.] तैः वस्त्रप्रक्षालनादिभिः
- एकं यत् कालं तत् एककालम् [कर्म.]
- द्वयोः कालयोः समाहारः द्विकालम् [द्विगु.]
- त्रयाणां कालानां समाहारः त्रिकालम् [द्विगु.]

शब्दपरिचय :

सर्व-अप [उ.] ईक्षाम् [ना.]	आ [उ.] चरेत् [आ.]	अति [उ.] प्रियं [ना.]	स्वयम् [नि.]
परि [उ.] त्यज्य [स.आ.]	वृथा-आ [उ.] लाप-	आत्मनः [ना.]	परि [उ.] चरेद् [आ.]
दृढम् [ना.]	क्रियाध्यानम् [ना.]	येन [ना.]	भक्त्या [ना.]
कृत्वा [स.आ.] मनः [ना.]	सर्वथा [नि.]	स्यात् [आ.]	वस्त्र-प्र [उ.] क्षा-
स्थिरम् [ना.]	एव [नि.]	निर् [उ.] -वृतिः [ना.]	लनादिभिः [ना.]
दृढ-वि [उ.] श्वासतः [नि.]	परि [उ.] त्यजेत् [आ.]	चित्ते [ना.]	एककालम् [ना.]
युक्त्या [ना.]	यद् [ना.]	तत् [ना.]	द्विकालं [ना.] वा [नि.]
यथा [नि.]	इष्टतमम् [ना.]	कृष्णे [ना.]	त्रिकालम् [उ.]
सिध्येत् [आ.]	लोके [ना.]	साधयेद् [आ.]	अपि [नि.]
तथा [नि.]	यत् [ना.] च [नि.]	ध्रुवम् [ना.]	पूजयेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वापेक्षाम् [स.]	कृत्वा [कृद्.]	यथा [तद्धि.] तथा [तद्धि.]	इष्टतमम् [तद्धि.]
परित्यज्य [कृद्+स.]	दृढविश्वासतः [तद्धि.]	वृथालापक्रियाध्यानम् [स.]	अतिप्रयम् [स.]
दृढम् [कृद्.]	युक्त्या [कृद्.]	सर्वथा [तद्धि.]	निर्वृतिः [कृद्+स.]

साधयेत् [सना]	वस्त्रप्रक्षालनादिभिः [स.]	द्विकालम् [स.]
भक्त्या [कृद.]	एककालम् [स]	त्रिकालम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

सवपिक्षाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
मनः - ह.स.नपुं.द्वि.ए.
युक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
वृथालापक्रियाध्यानम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
यद् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
लोके - अ.अ.पुं.स.ए.
आत्मनः - ह.न.पुं.ष.ए.
येन - ह.द.नपुं.तृ.ए.
निर्वृतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
चित्ते - अ.अ.नपुं.स.ए.
तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
कृष्णे - अ.अ.पुं.स.ए.
भक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
वस्त्रप्रक्षालनादिभिः - अ.इ.नपुं.तृ.ब.
(स्थिरम्, दृढम्, इष्टतमम्, अतिप्रियम्, एककालम्, ध्रुवम्, द्विकालम्, त्रिकालम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

सिध्येत् - दिवा.वि.लिङ्.प्र.ए.
आचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
परित्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.
साधयेत् - दिवा.वि.लिङ्.प्र.ए.(ण्यन्त)
परिचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
पूजयेत् - चुरा.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय :

सर्वापेक्षां परित्यज्य मनः दृढं स्थिरं (च) कृत्वा, दृढविश्वासतः युक्त्या यथा (पूजा) सिध्येत् तथा आचरेत्. वृथालापक्रियाध्यानं सर्वथैव परित्यजेत्.(२७). लोके यद् यद् इष्टतमं यत् च आत्मनः अतिप्रियं, चित्ते येन निर्वृति स्यात्, तद् ध्रुवं कृष्णे साधयेत्. वस्त्रप्रक्षालनादिभिः स्वयं भक्त्या (भगवन्तं) परिचरेत्. एककालं द्विकालं त्रिकालं वापि पूजयेत्॥

(शास्त्रविहितनित्यकर्मरूपधर्मे प्रवृत्तेः[1] निषिद्धकर्मरूपाधर्माद् निवृत्तेश्च[2] इन्द्रियविनिग्रहस्य[3] चापि भगवद्भजनाङ्गत्वम्, दुष्टसङ्गः स्वधर्माचरणनिषिद्धत्यागेन्द्रियनिग्रहाणां बाधकइति तत्त्यागस्य आवश्यकता. भक्तिविरोधित्वेतु धर्माणामपि त्यागः कर्तव्यः[4]. परोपकारादिधर्माअपि न कर्तव्याः, यदि भगवदर्चनविरोधिनो भवन्ति[5])

स्वधर्माचरणं शक्त्या[1] विधर्माच्च निर्वतनम्[2]॥
इन्द्रियाश्वविनिग्राहः[3] सर्वथा न त्यजेत् त्रयम्॥३०॥
एतद्-विरोधि यत् किञ्चित् तत्तु शीघ्रं परित्यजेत्[4]॥
धर्मादीनां तथा चास्य तारतम्यं विचारयन्[5]॥३१॥

सन्धिविच्छेद :

स्वधर्म + आचरणम् = स्वधर्माचरणम्[दीर्घ.]
विधर्मात् + च = विधर्माच्च[श्चु.]
इन्द्रिय + अश्व = इन्द्रियाश्व[दीर्घ.]
धर्म + आदीनाम् = धर्मादीनाम्[दीर्घ.]
च + अस्य = चास्य[दीर्घ.]

समासविग्रह :

- स्वस्य धर्मः इति स्वधर्मः[प.तत्पु.]
- स्वधर्मस्य आचरणम् इति स्वधर्माचरणम्[प.तत्पु.]
- इन्द्रियाणि अश्वाः इव इति इन्द्रियाश्वाः[कर्म]
- इन्द्रियाश्वाणां विनिग्राहः इति इन्द्रियाश्वविनिग्राहः[प.तत्पु.]
- एतस्य विरोधि इति एतद्-विरोधि[प.तत्पु.]
- धर्मः आदिः येषां ते धर्मादयः[बहु.] तेषां धर्मादीनाम्

शब्दपरिचय :

स्वधर्म-आ[उ.]चरणम्[ना.]	च[नि]	सर्वथा[नि.]
शक्त्या[ना.]	नि[उ.]र्वतनम्[ना.]	न[नि.]
वि[उ.]धर्मात्[ना.]	इन्द्रियाश्व-वि[उ.]नि[उ.]ग्राहः[ना.]	त्यजेत्[आ.]

त्रयम्[ना.]	तत्[ना.] तु[नि.]	तथा[नि.] च[नि.]
एतद्-वि[उ.]रोधि[ना.]	शीघ्रम्[ना.]	अस्य[ना.]
यत्[ना.]	परि[उ.] त्यजेत्[आ.]	तारतम्यम्[ना.]
किञ्चित्[नि.]	धर्मादीनाम्[ना.]	वि[उ.] चारयन्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

स्वधर्माचरणम्[स.]	इन्द्रियाश्वविनिग्राहः[स.]	
शक्त्या[कृद्.]	सर्वथा[तद्धि.]	तथा[तद्धि.]
विधर्मात्[स.]	एतद्-विरोधि[स.]	तारतम्यम्[तद्धि.]
निवर्तनम्[कृद्+स.]	धर्मादीनाम्[स.]	विचारयन्[कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

स्वधर्माचरणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
शक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.	तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
विधर्मात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	शीघ्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
निर्वतनम् - अ.अ.पुं.प्र.ए.	धर्मादीनाम् - अ.इ.पुं.ष.ब.
इन्द्रियाश्वविनिग्राहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	अस्य - ह.म.नपुं.ष.ए.
त्रयम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	तारतम्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
एतद्-विरोधि - ह.न.नपुं.प्र.ए.	विचारयन् - ह.त.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : त्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. परित्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : शक्त्या स्वधर्माचरणं, विधर्मात् निवर्तनम् इन्द्रियाश्वविनिग्राहः च (एतत्) त्रयं सर्वथा न त्यजेत्. यत् किञ्चित् एतद्-विरोधि (भवेत्) तत्तु शीघ्रं परित्यजेत् तथा च धर्मादीनां अस्य (भगवद्भजनस्य) च तारतम्यं विचारयन् (एतद्भगवद्भजनविरोधि धर्मादिकमपि शीघ्रं परित्यजेत्) ॥३१॥

(भक्तिमार्गे पूजासाधनानुवृत्तौ यथा यथा भक्तमनसि भगवदावेशः तथा तथा भक्तिसाधनेषु निष्ठाप्रवृद्धिः [१]. इह दैन्यस्य आवश्यकता अहंकारस्य च भक्तिबाधकता [२]. भक्तिसिद्ध्यर्थं भगवद्गुणगानं नामोच्चारणं च निर्भयतया निस्पृहतया च कर्तव्यं भवति [३]. सर्वहेतुविवर्जितस्यैव भागवतपाठस्य भगवति भावजनकत्वम् [४])

यथा यथा हरिः कृष्णो मनस्याविशते निजे।।
तथा तथा साधनेषु परिनिष्ठा विवर्धते।।३२।।
कृष्णे सर्वात्मके नित्यं सर्वथा दीनभावना।।
अहङ्कारं न कुर्वीत मानापेक्षां विवर्जयेत्।।३३।।
सर्वथा तद्गुणालापं नामोच्चारणमेव वा।।
सभायामपि कुर्वीत निर्भयो निःस्पृहस्ततः।।३४।।
साधनं परमेतद्धि श्रीभागवतमादरात्।।
पठनीयं प्रयत्नेन निर्हेतुकमदम्भतः।।३५।।

सन्धिविच्छेद :

कृष्णः + मनसि = कृष्णो मनसि [उ.गुण.]	गुण + आलापम् = गुणालापम् [दीर्घ.]
मनसि + आविशते = मनस्याविशते [यण्.]	नाम + उच्चारणम् = नामोच्चारणम् [गुण]
सर्व + आत्मके = सर्वात्मके [दीर्घ.]	उत् + चारणम् = उच्चारणम् [श्चु.]
अहम् + कारम् = अहङ्कारम् [प.स.]	निर्भयः + निःस्पृहः = निर्भयो निःस्पृहः [उ.गुण.]
मान + अपेक्षाम् = मानापेक्षाम् [दीर्घ.]	निःस्पृहः + ततः = निःस्पृहस्ततः [स.]
अप + ईक्षा = अपेक्षा [गुण.]	एतत् + हि = एतद्धि [जश्त्व.पू.स.]

समास विग्रह :

- सर्वेषु आत्मा (व्याप्तिः) यस्य स सर्वात्मकः [बहु.] तस्मिन् सर्वात्मके (कन् प्रत्ययः)
- दीनस्य भावना इति दीनभावना [ष.तत्पु.]
- मानस्य अपेक्षा इति मानापेक्षा [ष.तत्पु.] ताम्

- तस्य गुणाः इति तद्गुणाः [ष.तत्पु.]
- तद्गुणानाम् आलापः इति तद्गुणालापः [ष.तत्पु.] तम्
- नाम्नाम् उच्चारणम् इति नामोच्चारणम् [ष.तत्पु.]
- निर्गतः भयः यस्मात् सः निर्भयः [बहु.] - निर्गता स्पृहा यस्मात् सः निःस्पृहः [बहु.]
- निर्गतो हेतुः यस्मात् तत् निर्हेतुकम् [बहु.]
- न दम्भः इति अदम्भः [न.तत्पु.] तस्मात् अदम्भतः [पं.तसि.]

शब्दपरिचय :

यथा [नि.]	सर्वथा [नि.]	निर् [उ.] भयः [ना.]
हरिः [ना.]	दीनभावना [ना.]	निस् [उ.] स्पृहः [ना.]
कृष्णः [ना.]	अहङ्कारम् [ना.]	ततः [नि.]
मनसि [ना.]	न [नि.] कुर्वीत [आ.]	साधनम् [ना.]
आ [उ.] विशते [आ.]	मान-अप [उ.] ईक्षाम् [ना.]	परम् [ना.]
निजे [ना.] तथा [नि.]	वि [उ.] वर्जयेत् [आ.]	एतत् [ना.] हि [नि.]
साधनेषु [ना.]	तद्गुण-आ [उ.] लापम् [ना.]	श्रीभागवतम् [ना.]
परि [उ.] निष्ठा [ना.]	नाम-उत् [उ.] चारणम् [ना.]	आ [उ.] दरात् [ना.]
वि [उ.] वर्धते [आ.]	एव [नि.] वा [नि.]	पठनीयम् [ना.]
कृष्णे [ना.]	सभायाम् [ना.]	प्र [उ.] यत्नेन [ना.]
सर्वात्मके [ना.]	अपि [नि.]	निर् [उ.] हेतुकम् [नि.]
नित्यम् [नि.]	कुर्वीत [आ.]	अदम्भतः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

यथा [तद्धि.]	सर्वात्मके [स.]	तद्गुणालापम् [स.]	निर्भयः [स.]
तथा [तद्धि.]	सर्वथा [तद्धि.]	नामोच्चारणम् [स.]	निस्पृहः [स.]
साधनेषु [कृद.]	दीनभावना [स.]	पठनीयम् [कृद.]	साधनम् [कृद.]
परिनिष्ठा [कृद+स.]	मानापेक्षाम् [स.]	प्रयत्नेन [स.]	श्रीभागवतम् [स.]
आदरात् [स.]	निर्हेतुकम् [स.]	अदम्भतः [तद्धि]	

शब्दरूपपरिचय :

हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
मनसि - ह.स.नपुं.स.ए.
निजे - अ.अ.नपुं.स.ए.
साधनेषु - अ.अ.नपुं.स.ब.
परिनिष्ठा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
कृष्णे - अ.अ.पुं.स.ए.
सर्वात्मके - अ.अ.पुं.स.ए.
दीनभावना - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
अहङ्कारम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
मानापेक्षाम • आ.स्त्री.द्वि.ए.
तद्गुणालापम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
नामोच्चारणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
सभायाम् - अ.आ.स्त्री.स.ए.
निर्भयः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
निःस्पृहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
साधनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
परम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
श्रीभागवतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
आदरात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
पठनीयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
प्रयत्नेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
निर्हेतुकम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

आविशते - तुदा.लट्.प्र.ए.
विवर्धते - भ्वा.लट्.प्र.ए.
विवर्जयेत् - चुरा.वि.लिङ्.प्र.ए.
कुर्वीत - तना.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : हरिः कृष्णः यथा यथा निजे मनसि आविशते तथा तथा साधनेषु परिनिष्ठा विवर्धते. सर्वात्मके कृष्णे नित्यं सर्वथा दीनभावना (कर्तव्या), अहङ्कारं न कुर्वीत, मानापेक्षां च विवर्जयेत्. ततः सर्वथा निर्भयो निस्पृहो (भूत्वा) सभायामपि तद्गुणालापं नामोच्चारणम् एव वा कुर्वीत. एतद् हि परं साधनं (यत्) अदम्भतः आदरात् श्रीभागवतं प्रयत्नेन निर्हेतुकम् पठनीयम्॥३५॥

(भक्तिमार्गे शंखचक्रमुद्रा-तुलसीकाष्ठजमाला-उर्ध्वपुण्ड्रादीनां धारणस्य आवश्यकता)

शङ्खचक्रादिकं धार्यं मृदा पूजाङ्गमेव तत्।।
तुलसीकाष्ठजा माला तिलकं लिङ्गमेव तत्।।३६।।

सन्धिविच्छेद :

चक्र + आदि = चक्रादि [दीर्घ.] पूजा + अङ्गम् = पूजाङ्गम् [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- शङ्खश्च चक्रश्च शङ्खचक्रौ [द्वन्द्व.]
- शङ्खचक्रौ आदिः यस्य तत् शङ्खचक्रादिकम् [बहु.]
- पूजायाः अङ्गम् इति पूजाङ्गम् [ष.तत्पु.]
- तुलस्याः काष्ठं इति तुलसीकाष्ठम् [ष.तत्पु.] तेन जाता इति तुलसीकाष्ठजा [उप.स.]

शब्दपरिचय :

शङ्खचक्रादिकम् [ना.]	एव [नि.] तत् [ना.]	तिलकम् [ना.]
धार्यम् [ना.] मृदा [ना.]	तुलसीकाष्ठजा [ना.]	लिङ्गम् [ना.]
पूजाङ्गम् [ना.]	माला [ना.]	तत्. [ना.]

वृत्तिपरिचय :

शङ्खचक्रादिकम् [स.] धार्यम् [कृद.] पूजाङ्गम् [स.] तुलसीकाष्ठजा [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(शङ्खचक्रादिकम्, धार्यम्, पूजाङ्गम्, तिलकम्, लिङ्गम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

मृदा - ह.द.स्त्री.तृ.ए. तुलसीकाष्ठजा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

तत् - ह.द.नपुं.प्र.ए. माला - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

अन्वय : शङ्खचक्रादिकं मृदा धार्यं तत् पूजाङ्गमेव (अस्ति).

तुलसीकाष्ठजा माला तिलकं (च) तत् लिङ्गमेव (भवति)॥३६॥

(दशमीवेधवर्जितः एकादश्युपवासः [१], सप्तमीवेधवर्जितं जन्माष्टमीव्रतम् [२], तथैव राम-नृसिंह-वामनजयन्त्युत्सवेष्वपि उत्सवोपवासौ कर्तव्यावेव [३])

एकादश्युपवासादि कर्तव्यं वेधवर्जितम् [१]।।
तथा कृष्णाष्टमी चापि सप्तमीवेधवर्जिता [२]।।३७।।
अन्यान्यपि तथा कुर्याद् उत्सवो यत्र वै हरेः [३]।।

सन्धिविच्छेद :

एकादशी + उपवास = एकादश्युपवास [यण्.]
उपवास + आदि = उपवासादि [दीर्घ.] अन्यानि + अपि = अन्यान्यपि [यण्.]
कृष्ण + अष्टमी = कृष्णाष्टमी [दीर्घ.] कुर्यात् + उत्सवः = कुर्याद् उत्सवः [जश्त्व.]
च + अपि = चापि [दीर्घ.] उत्सवः + यत्र = उत्सवो यत्र [उ.गुण.]

समासविग्रह :

- एकादश्याः उपवासः इति एकादश्युपवासः [ष.तत्पु.]
- एकादश्युपवासः आदि यस्य तत् एकादश्युपवासादि [बहु.]
- वेधेन वर्जित इति वेधवर्जिता [तृ.तत्पु.]
- सप्तम्याः वेधः इति सप्तमीवेधः [ष.तत्पु.]
  तेन वर्जिता इति सप्तमीवेधवर्जिता [तृ.तत्पु.]
- कृष्णस्य अष्टमी इति कृष्णाष्टमी [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

एकादश्युपवासादि [ना.]	कृष्णाष्टमी [ना.]	कुर्याद् [आ.]
कर्तव्यम् [ना.]	च [नि.] अपि [नि.]	उत् [उ.]-सवः [ना.]
वेधवर्जितम् [ना.]	सप्तमी-वेधवर्जिता [ना.]	यत्र [नि.] वै [नि.]
तथा [नि.]	अन्यानि [ना]	हरेः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

एकादश्युपवासादि [स.]	वेधवर्जितम् [स.]	कृष्णाष्टमी [स.]	उत्सवः [स.]
कर्तव्यम् [कृद्.]	तथा [तद्धि.]	सप्तमी-वेधवर्जिता [स.]	यत्र [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

एकादश्युपवासादि - अ.इ.नपुं.प्र.ए.	सप्तमी-वेधवर्जिता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
कर्तव्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	अन्यानि - अ.अ.नपुं.प्र.ब.
वेधवर्जितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	उत्सवः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कृष्णाष्टमी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.	हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय : कुर्यात् - तना.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : वेधवर्जितम् एकादश्युपवासादि कर्तव्यं तथा सप्तमी-वेधवर्जिता कृष्णाष्टमी चापि (कर्तव्या) तथा अन्यानि (व्रतानि) अपि कुर्याद् यत्र वै हरेः उत्सवो (भवति)।।

(गृहस्थस्यतु एतत् सर्वं मुख्यं कर्तव्यं [१], ब्रह्मचारीप्रभृतीनामपि सेवकसाधनसम्पत्तौ एतदेव कर्तव्यं न अन्यथा [२], संन्यासिनस्तु निरन्तरं पर्यटनमेव मुख्यं नैतद् [३])

एतत् सर्वं प्रयत्नेन गृहस्थस्य प्रकीर्तितम् [१]।।
अन्येषां सम्भवेत्तु स्याद् [२] यतेः पर्यटनं वरम् [३]।।३८।।

सन्धिविच्छेद :

स्यात् + यतेः = स्याद् यते [जश्त्व.] परि + अटनम् = पर्यटनम् [यण्.]

समास विग्रह :

गृहे स्थितः इति गृहस्थः [उप.स.] तस्य गृहस्थस्य

शब्दपरिचय :

एतत्[ना.]	प्र[उ.]कीर्तितम्[ना.]	स्याद्[आ.]
सर्वम्[ना.]	अन्येषाम्[ना.]	यतेः[ना.]
प्र[उ]यत्नेन[ना.]	सम्[उ.]-भवेत्[आ]	परि[उ]-अटनम्[ना.]
गृहस्थस्य[ना.]	तु[नि.]	वरम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

प्रयत्नेन[स.] गृहस्थस्य[स.] प्रकीर्तितम्[कृद्+स.] पर्यटनम्[कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
सर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
प्रयत्नेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
गृहस्थस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
प्रकीर्तितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
अन्येषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
यतेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
पर्यटनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वरम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

सम्भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : एतत् सर्वं गृहस्थस्य प्रयत्नेन प्रकीर्तितम् अन्येषां तु (यदि) सम्भवेत् (तर्हि तेषां इदमेव साधनम्) स्यात्. यतेः पर्यटनं वरं स्यात्॥३८॥

(गृहस्थानामपि मानसिक[1]शारीरिक[2] पारिवारिक[3]आहङ्कारिक[4]मामकारिक[5]- दोषाणां सम्भवे पूजापरित्यागेन पर्यटनं वा दोषरहितपूजानुकूलदेशे स्थितिः वा इति विकल्पः)

> विक्षेपाद[1]थवाशक्त्या[2] प्रतिबन्धाद[3]पि क्वचित्॥३९॥
> अत्याग्रहप्रवेशे[4] वा परपीडा[5]दिसम्भवे॥

तीर्थपर्यटनं श्रेष्ठं सर्वेषां वर्णिनां तथा ॥४०॥

सन्धिविच्छेद :

विक्षेपात् + अथवा = विक्षेपादथवा [जश्त्व]	अति + आग्रह = अत्याग्रह [यण्.]
अथवा + अशक्त्या = अथवाशक्त्या [दीर्घ.]	परपीडा + आदि = परपीडादि [दीर्घ.]
बन्धात् + अपि = बन्धादपि [जश्त्व.]	परि + अटनम् = पर्यटनम् [यण्.]

समास विग्रह :

- न शक्तिः इति अशक्तिः [न.तत्पु.] तया अशक्त्या
- अत्याग्रहस्य प्रवेशः इति अत्याग्रहप्रवेशः [ष.तत्पु.] तस्मिन् अत्याग्रहप्रवेशे
- परस्य पीडा इति परपीडा [ष.तत्पु.]
- परपीडा आदिर्येषां ते परपीडादय [बहु.]
  तस्य सम्भवः इति परपीडादिसम्भवः [ष.तत्पु.]
  तस्मिन् परपीडादिसम्भवे
- तीर्थेषु पर्यटनं इति तीर्थपर्यटनम् [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

वि [उ.] क्षेपाद् [ना.]	क्वचित् [नि.]	तीर्थपरि [उ.] -अटनम् [ना.]
अथवा [नि.]	अति [उ.] आग्रह [उ.] प्र [उ.] वेशे [ना.]	श्रेष्ठम् [ना.]
अशक्त्या [ना.]	वा [नि.]	सर्वेषाम् [ना.]
प्रति [उ.] बन्धाद् [ना.]	परपीडादि [ना.]	वर्णिनाम् [ना.]
अपि [नि.]	सम् [उ.] भवे [ना.]	तथा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

विक्षेपात् [स.]	अत्याग्रहप्रवेशे [स.]	
अशक्त्या [स]	परपीडादिसम्भवे [स]	वर्णिनाम् [तद्धि.]
प्रतिबन्धात् [स.]	तीर्थपर्यटनम् [कृद्+स.]	तथा [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

(विक्षेपाद्, प्रतिबन्धाद् - अ.अ.पुं.पं.ए.
अशक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
अत्याग्रहप्रवेशे - अ.अ.पुं.स.ए.
परपीडादिसम्भवे - अ.अ.पुं.स.ए.
तीर्थपर्यटनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
श्रेष्ठम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सर्वेषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
वर्णिनाम् - ह.न.पुं.ष.ब.

अन्वय :

तथा विक्षेपाद् अशक्त्या अथवा क्वचिद् प्रतिबन्धात् अपि अत्याग्रहप्रवेशे वा परपीडादि सम्भवे सर्वेषां वर्णिनां (अपि) तीर्थपर्यटनं श्रेष्ठं (भवति) ॥४०॥

(यज्ञतीर्थयोः तुल्यत्वेन वर्णाश्रमस्थितानामपि वर्णाश्रमधर्मैः तीर्थानां विकल्पः [१], तीर्थाटननियमाः [२] च तीर्थयात्रायाः उत्तमोत्तमत्वोक्तिश्च)

यज्ञास्तीर्थानि च पुनः समानि हरिणा कृताः [१]॥
अतस्तेष्वप्रतिग्राही तद्दिनान्नाधिकस्यहि॥४१॥
हतत्रपः पठेन्नित्यं नामानि च कृतानि च॥
एकाकी निःस्पृहः शान्तः पर्यटेत् कृष्णतत्परः॥४२॥
देहपातनपर्यन्तम् अव्यग्रात्मा सदागतिः [२]॥
उत्तमोत्तममेतद्धि पूर्वमुत्तममीरितम्॥४३॥

सन्धिविच्छेद :

यज्ञाः + तीर्था = यज्ञास्तीर्था [स.]
अतः + तेषु = अतस्तेषु [स.]
अतस्तेषु + अप्रतिग्राही = अतस्तेष्वप्रतिग्राही [यण्.]
तद्दिन + अन्न + अधिकस्य = तद्दिनान्नाधिकस्य [दीर्घ.]
पठेत् + नित्यं = पठेन्नित्यं [अनुना.]
परि + अटेत् = पर्यटेत् [यण्.]
अव्यग्र + आत्मा = अव्यग्रात्मा [दीर्घ.]
उत्तम + उत्तम = उत्तमोत्तम [गुण]
एतत् + हि = एतद्धि [जश्त्व.पू.स.]

समास विग्रह :

- न प्रतिग्राही इति अप्रतिग्राही [न.तत्पु.]
- तद् यद् दिनम् इति तद्दिनम् [कर्म]
- तद्दिनस्य अन्नम् इति तदिनान्नम् [ष.तत्पु.]
  तस्मात् अधिकम् इति तद्दिनान्नाधिकम् [पं.तत्पु.] तस्य तद्दिनान्नाधिकस्य
- हता त्रपा येन सः हतत्रपः [बहु.]
- निर्गता स्पृहा यस्मात् सः निःस्पृहः [बहु.]
- तस्मिन् परः इति तत्परः [स.तत्पु.]- कृष्णे तत्परः इति कृष्णतत्परः [स.तत्पु.]
- देहस्य पातनम् इति देहपातनम् [ष.तत्पु.]
- देहपातनस्य पर्यन्तम् इति देहपातनपर्यन्तम् [ष.तत्पु.]
- न व्यग्रः इति अव्यग्रः [प.तत्पु.]- अव्यग्रः आत्मा यस्य स अव्यग्रात्मा [बहु.]
- सदा गतिः यस्य स सदागतिः [बहु.]
- उत्तमेषु उत्तमम् इति उत्तमोत्तमम् [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

यज्ञाः [ना.]	तद्दिनान्नाधिकस्य [ना.]	कृष्णतत्परः [ना.]
तीर्थानि [ना.]	हि [नि.] हतत्रपः [नि.]	देहपातनपर्यन्तम् [ना.]
च [नि.] पुनः [नि.]	पठेत् [ना.] नित्यम् [नि.]	अव्यग्रात्मा [ना.]
समानि [ना.]	नामानि [ना.]	सदागतिः [ना.]
हरिणा [ना.]	कृतानि [ना.] एकाकी [ना.]	उत् [उ.]-तम-उत् [उ.]-तमं [ना.]
कृताः [ना.] अतः [नि.]	निर् [उ.] स्पृहः [ना.]	एतत् [ना.] हि [नि.]
तेषु [ना.]	शान्तः [ना.]	पूर्वम् [ना.] उत्तमम् [ना.]
अप्रति [उ.] ग्राही [ना.]	परि [उ.] अटेत् [आ.]	ईरितम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

कृताः [कृद्.]	अप्रतिग्राही [स.]	हतत्रपः [स.]	एकाकी [तद्धि.]
अतः [तद्धि.]	तद्दिनान्नाधिकस्य [स.]	कृतानि [कृद्.]	निस्पृहः [स.]

शान्तः [कृद्]	देहपातनपर्यन्तम् [स]	सदागतिः [स]	उत्तमम् [स.]
कृष्णतत्परः [स]	अव्यग्रात्मा [स.]	उत्तमोत्तमम् [स]	ईरितम् [कृद्]

शब्ददरूपपरिचय :

(यज्ञाः, कृताः) - अ.अ.पुं.प्र.ब. नामानि - ह.न.नपुं.प्र.ब.
(तीर्थानि, समानि) - अ.अ.नपुं.प्र.ब. कृतानि - अ.अ.नपुं.प्र.ब.
हरिणा - अ.इ.पुं.तृ.ए. एकाकी - ह.न.पुं.प्र.ए.
तेषु - ह.द.पुं.स.ब. अव्यग्रात्मा - ह.न.पुं.प्र.ए.
अप्रतिग्राही - ह.न.पुं.प्र.ए. सदागतिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
तद्दिनान्नाधिकस्य - अ.अ.पुं.ष.ए. एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
(देहपातनपर्यन्तम्, उत्तमोत्तमम्, पूर्वम्, उत्तमम्, ईरितम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
(हतत्रपः, निःस्पृहः, शान्तः, कृष्णतत्परः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : पठेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. पर्यटेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : हरिणा यज्ञाः कृताः समानि च पुनः तीर्थानि (कृतानि). अतः तेषु हि तद्दिनान्नाधिकस्य अप्रतिग्राही (भवेत्). (हरेः) नामानि कृतानि च नित्यं हतत्रपः पठेत्. एकाकी निःस्पृहः शान्तः अव्यग्रात्मा सदागतिः कृष्णतत्परः (सन्) देहपातनपर्यन्तं पर्यटेत्. पूर्वम् ईरितम् (साधनम्) उत्तमम्. एतत् हि उत्तमोत्तमम्

(दृढबीजभावानां भगवद्विरहानुभावार्थं गृहधनादेः त्यागानुज्ञा [क] अदृढबीजभावानान्तु भगवद्भक्त्यर्थं तत्संग्रहाज्ञा [ख] इति कल्पद्वयम्)

गृहं सर्वात्मना त्याज्यं [क] तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते।।
कृष्णार्थं तन्नियुञ्जीत [ख] कृष्णः संसारमोचकः ।।४४।।
धनं सर्वात्मना त्याज्यं [क] तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते।।
कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत [ख] कृष्णोऽनर्थस्य वारकः ।।४५।।

सन्धिविच्छेद :

सर्व + आत्मना = सर्वात्मना [दीर्घ]

तत् + चेत् = तच्चेत् [श्चु.]   तत् + नियुञ्जीत = तन्नियुञ्जीत [अनुना.]

कृष्ण + अर्थम् = कृष्णार्थम् [दीर्घ.]   कृष्णः + अनर्थस्य = कृष्णोऽनर्थस्य [उ.प.रू.]

समासविग्रह :

- सर्वो य आत्मा स सर्वात्मा [कर्म] तेन सर्वात्मना
- कृष्णस्य अर्थं इति कृष्णार्थम् [ष.तत्पु.]
- संसारात् मोचकः इति संसारमोचकः [पं.तत्पु.] - न अर्थः इति अनर्थः [न.तत्पु.] तस्य

शब्दपरिचय :

गृहम् [ना.]	न [नि.] शक्यते [आ.]	धनम् [ना.]
सर्वात्मना [ना.]	कृष्णार्थम् [ना.]	सर्वात्मना [ना.]
त्याज्यम् [ना.]	नि [उ.]युञ्जीत [आ.]	प्र [उ.]युञ्जीत [आ.]
तत् [ना.] चेत् [नि.]	कृष्णः [ना.]	अनर्थस्य [ना.]
त्यक्तुम् [स.आ.]	सं [उ.]सारमोचकः [ना.]	वारकः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वात्मना [स.]	त्यक्तुम् [कृद.]	कृष्णार्थम् [स.]	अनर्थस्य [स.]
त्याज्यम् [कृद.]	शक्यते [सना.]	संसारमोचकः [स.]	वारकः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

गृहम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सर्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए.	संसारमोचकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
त्याज्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	धनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तत् - ह.द्.नपुं.प्र.ए.	अनर्थस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
कृष्णार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	वारकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

शक्यते - स्वा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त)

नियुञ्जीत - रुधादि.लिङ्.प्र.ए.

प्रयुञ्जीत - रुधा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : गृहं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते कृष्णार्थं तत् नियुञ्जीत (यतः) कृष्णः संसारमोचकः (अस्ति). धनं सर्वात्मना त्याज्यं तच्चेत् त्यक्तुं न शक्यते कृष्णार्थं तत् प्रयुञ्जीत (यतः) कृष्णः अनर्थस्य वारकः (अस्ति) ॥४५॥

(पूर्वोक्तकल्पयोः असामर्थ्ये तृतीयोऽनुकल्पः सर्वहेतुविवर्जितो भागवतपाठः [१] प्राणसङ्कटेऽपि अर्थोपार्जने तद्विनियोगो निषिद्धः [२] एतेषु एकस्यापि कस्यचन मार्गस्य अनुसरणे श्रीकृष्णसायुज्यं फलं ध्रुवमेव [३])

अथवा सर्वदा शास्त्रं श्रीभागवतमादरात् ॥
पठनीयं प्रयत्नेन सर्व-हेतु-विवर्जितम् [१] ॥४६॥
वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत प्राणैः कण्ठगतैरपि ॥
तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहमाचरेत् [२] ॥४७॥
त्रयाणां येन केनापि भजन् कृष्णमवाप्नुयात् [३] ॥

सन्धिविच्छेद :

वृत्ति + अर्थम् = वृत्त्यर्थम् [यण.]

न + एव = नैव [वृद्धि.]

यथा + एव = यथैव [वृद्धि.]

प्र + आनैः = प्राणैः [दीर्घ.]

केन + अपि = केनापि [दीर्घ.]

कण्ठगतैः + अपि = कण्ठगतैरपि [रेफ.]

अव + आप्नुयात् = अवाप्नुयात् [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- सर्वे च ते हेतवः इति सर्वहेतवः [कर्म]
- सर्वहेतुभ्यः विवर्जितम् इति सर्व-हेतु-विवर्जितम् [पं.तत्पु.] तत्
- वृत्तेः अर्थम् इति वृत्त्यर्थम् [ष.तत्पु.]

- कण्ठे गतः इति कण्ठगतः [स.तत्पु.] तैः कण्ठगतैः
- तस्य अभावः इति तदभावः [ष.तत्पु.] तस्मिन् तदभावे

शब्दपरिचय :

अथवा [नि.]	न [नि.] एव [नि.]	निर् [उ.] वाहम् [ना.]
सर्वदा [नि.]	युञ्जीत [आ.]	आ [उ.] चरेत् [आ.]
शास्त्रम् [ना.]	प्र [उ.] -आणैः [ना.]	त्रयाणाम् [ना.]
श्रीभागवतम् [ना.]	कण्ठगतैः [ना.]	येन [ना.]
आ [उ.] दरात् [ना.]	अपि [नि.]	केन [ना.]
पठनीयम् [ना.]	तदभावे [ना.]	अपि [नि.]
प्र [उ.] यत्नेन [ना.]	यथा [नि.]	भजन् [ना.]
सर्वहेतु-वि [उ.] वर्जितम् [ना.]	स्यात् [आ.]	कृष्णम् [ना.]
वृत्त्यर्थम् [ना.]	तथा [नि.]	अव [उ.] आप्नुयात् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वदा [तद्धि.]	प्रयत्नेन [स.]	तदभावे [स.]
श्रीभागवतम् [स.]	सर्वहेतुविवर्जितम् [स.]	यथा [तद्धि.] तथा [तद्धि.]
आदरात् [स.]	वृत्त्यर्थम् [स.]	निर्वाहम् [कृद्+स.]
पठनीयम् [कृद्.]	प्राणैः [स.] कण्ठगतैः [स.]	भजन् [कृद्.]

शब्ददरूपपरिचय :

शास्त्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	वृत्त्यर्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
श्रीभागवतम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	प्राणैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
आदरात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	कण्ठगतैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
पठनीयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तदभावे - अ.अ.पुं.स.ए.
प्रयत्नेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	निर्वाहम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
सर्वहेतुविवर्जितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	त्रयाणाम् - अ.इ.पुं.ष.ब.

येन - ह.द.पुं.तृ.ए.	भजन् - ह.द.पुं.प्र.ए.
केन - ह.म.पुं.तृ.ए.	कृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

युञ्जीत - रुधा.वि.लिङ्.प्र.ए.	आचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.	अवाप्नुयात् - स्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : अथवा श्रीभागवतं शास्त्रम् आदरात् सर्वदा सर्व-हेतु-विवर्जितं प्रयत्नेन पठनीयम्. कण्ठगतैरपि प्राणैः (भागवतं) वृत्त्यर्थं नैव युञ्जीत . तदभावे यथैव स्यात् तथा निर्वाहम् आचरेत्. त्रयाणां (प्रकाराणां) येन केनापि (प्रकारेण) भजन् कृष्णम् अवाप्नुयात्.

(भागवतपाठेऽपि सामर्थ्याभावे चतुर्थो ह्यनुकल्पः प्रपत्तिमार्गानुसरणम्)

जगन्नाथे विठ्ठले च श्रीरङ्गे वेङ्कटे तथा।।(४८)।।
यत्र पूजाप्रवाहः स्यात् तत्र तिष्ठेत तत्परः।।

सन्धिविच्छेद :

जगत् + नाथे = जगन्नाथे [अनु.]   विट् + ठले = विठ्ठले [ष्टुत्व,चर्त्व.]

समास विग्रह :

- जगतः नाथः इति जगन्नाथः [ष.तत्पु.] तत्र जगन्नाथे
- पूजायाः प्रवाहः इति पूजाप्रवाहः [ष.तत्पु.] तस्मिन् परः इति तत्परः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

जगन्नाथे [ना.]	वेङ्कटे [ना.]	पूजा-प्र [उ.]वाहः [ना.]	तिष्ठेत [आ.]
विठ्ठले [ना.]	तथा [नि.]	स्यात् [आ.]	तत्परः [ना.]
श्रीरङ्गे [ना.]	यत्र [नि.]	तत्र [नि.]	च [नि.]

वृत्तिपरिचय :

जगन्नाथे [स.]	श्रीरङ्गे [स.]	यत्र [तद्धि.]	तत्र [तद्धि.]
विट्ठले [स.]	तथा [तद्धि.]	पूजाप्रवाहः [स.]	तत्परः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(जगन्नाथे, विट्ठले, श्रीरङ्गे, वेङ्कटे) - अ.अ.पुं.स.ए.

(पूजाप्रवाहः, तत्परः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए. तिष्ठेत - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : जगन्नाथे विट्ठले श्रीरङ्गे च तथा वेङ्कटे यत्र पूजाप्रवाहः स्यात् तत्र तत्परः तिष्ठेत्

(भागवतोक्त-भक्तिमार्गीय-फलसाधननिर्धारणोपसंहारः)

एतन्मार्गद्वयं प्रोक्तं गतिसाधनसंयुतम् ॥

॥ इति श्रीमद्वल्लभाचार्यविरचिते श्रीभागवततत्त्वदीपे सर्वनिर्णयान्तर्गते साधनप्रकरणम् सम्पूर्णम् ॥

सन्धिविच्छेद :

एतत् + मार्ग = एतन्मार्ग [अनुना.] प्र + उक्तम् = प्रोक्तम् [गुण.]

समासविग्रह :

- द्वयोः मार्गयोः समाहार इति मार्गद्वयम् [द्विगु.]
- गतिश्च साधनं च गतिसाधने [द्वन्द्व.]

ताभ्यां संयुतम् इति गतिसाधनसंयुतम् [तृ.तत्पु.] गतिसाधनसंयुतम्

शब्दपरिचय :

एतत्[ना] मार्गद्वयम्[ना.] प्र[उ.]-उक्तम्[ना] गतिसाधन-सम्[उ.]युतम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

मार्गद्वयम्[स.] प्रोक्तम्[कृद.] गतिसाधनसंयुतम्[स.]

शब्ददरूपपरिचय :

एतत् - ह.द.नपुं.प्र.ए. (मार्गद्वयम्, प्रोक्तम्, गतिसाधनसंयुतम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

अन्वय : एतद् मार्गद्वयं गतिसाधनसंयुतम् प्रोक्तम्

॥ शिक्षापद्यानि ॥

(२४)

(पुष्टिमार्गे बाहिर्मुख्यं=भगवद्-वैमुख्यं सर्वतो गरीयान् दोषः. भगवदभिमुखस्य पुष्टिजीवस्य फलादिदाने कालादेः नियामकत्वं नास्ति किन्तु भगवद्-विमुखस्य तस्यैव काल-कर्म-स्वभावादयः बाधकाः भवन्त्येवेति निरूपणम्)

यदा बहिर्मुखा यूयं भविष्यथ कथञ्चन॥
तदा कालप्रवाहस्था देहचित्तादयोप्युत॥१॥
सर्वथा भक्षयिष्यन्ति युष्मान् इति मतिर्मम॥

सन्धिविच्छेद :

बहिः + मुखा = बहिर्मुखा [रेफ.]
मुखाः + यूयं = मुखा यूयं [वि.लो.]
कथम् + चन = कथञ्चन [प.स.]
प्रवाहस्थाः + देह = प्रवाहस्था देह [वि.लो.]
आदयः + अपि = आदयोपि [उ.पू.रू.]
आदयोपि + उत = आदयोप्युत [यण्.]
मतिः + मम = मतिर्मम [रेफ.]

समासविग्रह :

- बहिः मुखं यस्य सः बहिर्मुखः [बहु.] ते
- कालस्य प्रवाहः इति कालप्रवाहः [ष.तत्पु.]
- कालप्रवाहे तिष्ठति इति कालप्रवाहस्थः [उप.स.]
- देहश्च चित्तं च इति देहचित्ते [द्वन्द्व.]
- देहचित्ताः आदिः येषां ते देहचित्तादयः [बहु.]

शब्दपरिचय :

यदा [नि.]	तदा [नि.]	भक्षयिष्यन्ति [आ.]
बहिर्मुखाः [ना]	काल-प्र[उ]वाहस्थाः [ना]	युष्मान् [ना]
यूयम् [ना.]	देहचित्तादयः [ना]	इति [नि.]
भविष्यथ [आ.]	अपि [नि.] उत [नि.]	मतिः [ना.]
कथञ्चन [नि.]	सर्वथा [नि]	मम [ना.]

वृत्तिपरिचय :

यदा [तद्धि.]	तदा [तद्धि.]	देहचित्तादयः [स.]
बर्हिमुखाः [स.]	कालप्रवाहस्थाः [स.]	सर्वथा [तद्धि.] मतिः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

बहिर्मुखाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
देहचित्तादयः - अ.इ.पुं.प्र.ब.
यूयम् - ह.द्.प्र.ब.
युष्मान् - ह.द्.द्वि.ब.
कालप्रवाहस्थाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
मतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए. मम - ह.द.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

भविष्यथ - भ्वा.लृट्.म.ब. भक्षयिष्यन्ति - चुरा.लृट्.प्र.ब.

अन्वय :

यदा यूयं कथञ्चन (भगवतः) बहिर्मुखा भविष्यथ तदा कालप्रवाहस्थाः देहचित्तादयोऽपि उत युष्मान् सर्वथा भक्षयिष्यन्ति इति मम मतिः (अस्ति).

(पुष्टिमार्गे लोकार्थितया क्रियमाणा भगवत्भक्तिः भगवत्प्रपत्तिरपिवा बार्हिमुख्यजनिका भवत्येव)

न लौकिकः प्रभुः कृष्णो मनुते नैव लौकिकम्।।२।।

सन्धिविच्छेद :

कृष्णः + मनुते = कृष्णो मनुते [उ.गुण.]   न + एव = नैव [वृद्धि.]

शब्दपरिचय :

न [नि.] लौकिकः [ना.]	कृष्णः [ना.]	एव [नि.]
प्र [उ.]भुः [ना.]	मनुते [आ.]	लौकिकम् [ना.]

वृत्तिपरिचय : लौकिकः [तद्धि.] प्रभुः [स.] लौकिकम् [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

लौकिकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
प्रभुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.	लौकिकम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : मनुते - तना.लट्.प्र.ए.

अन्वय : कृष्णो प्रभुः लौकिकः न (भवति अतः) लौकिकं (सेवनं) नैव मनुते

(पुष्टिमार्गीयजीवानां कृते इहलोके परलोके वा श्रीव्रजाधीपः पुष्टिप्रभुरेव सर्वस्वो भवति)

भावस्तत्राप्यस्मदीयः सर्वस्वश्चैहिकश्च सः ।।
परलोकश्च ... ...।।

सन्धिविच्छेद :

	सर्वस्वः + च = सर्वस्वश्च [स.श्चु.]
भावः + तत्र = भावस्तत्र [स.]	च + ऐहिकः = चैहिकः [वृद्धि.]
तत्र + अपि = तत्रापि [दीर्घ.]	चैहिकः + च = चैहिकश्च [स.श्चु.]
अपि + अस्मदीयः = अप्यस्मदीयः [यण्.]	लोकः + च = लोकश्च [स.श्चु.]

समासविग्रह :

- सर्वं च तत् स्वं इति सर्वस्वम् [कर्म] सः सर्वस्वः
- परश्च असौ लोकश्च परलोकः [कर्म]

शब्दपरिचय :

भावः [ना.]	अस्मदीयः [ना.]	ऐहिक [ना.]
तत्र [नि.]	सर्वस्वः [ना.]	सः [ना.]
अपि [नि.]	च [नि.]	परलोकः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

तत्र [तद्धि.] अस्मदीयः [तद्धि.] सर्वस्वः [स.] ऐहिकः [तद्धि.] परलोकः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(भावः, अस्मदीयः, सर्वस्व, ऐहिकः, परलोकः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.

अन्वय : तत्र अपि अस्मदीयो भावः स (श्रीकृष्णएव) सर्वस्वः ऐहिकः परलोकः च (इत्येवम्भूतो भवति).

(तस्मात् पुष्टिमार्गीयेन श्रीकृष्णार्थीतयैव सर्वभावेन श्रीकृष्णसेवा करणीया)

... ... तेनायं सर्वभावेन सर्वथा॥३॥
सेव्यः... ... ... ॥

सन्धिविच्छेद : तेन + अयं = तेनायम् [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- सर्वश्च असौ भावश्च सर्वभावः [कर्म] तेन सर्वभावेन

शब्दपरिचय : तेन [ना.] अयम् [ना.] सर्वभावेन [ना.] सर्वथा [नि.] सेव्यः [ना.]

वृत्तिपरिचय : सर्वभावेन [स.] सर्वथा [तद्धि.] सेव्यः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

तेन - ह.द.पुं.तृ.ए. सर्वभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए. सेव्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : तेन अयं (कृष्णः) सर्वथा सर्वभावेन सेव्यः.

(पुष्टिजीवहितं यथा भवति तथैव भगवान् करोतीति विश्वासो भगवति श्रीगोपीजनवल्लभे स्थापनीयो नतु कालकर्मस्वाभावादिषु)

... ... सएव गोपीशो विधास्यत्यखिलं हि नः ।।

।। इति श्रीवल्लभाचार्यविरचितानि शिक्षापद्यानि समाप्तानि ।।

सन्धिविच्छेद :

सः + एव = स एव [वि.लो.] गोपीशः + विधा.. = गोपीशो विधा.. [उ.गुण.]

गोपी + ईशः = गोपीशः [दीर्घ.] विधास्यति + अखिलं = विधास्यत्यखिलं [यण.]

समासविग्रह : गोपीनां ईशः इति गोपीशः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

सः [ना.] एव [नि.] गोपीशः [ना.] वि [उ.]धास्यति [आ.] अखिलम् [ना.] हि [नि.] नः [ना.]

शब्दरूपपरिचय :

सः - ह.द.पुं.प्र.ए. गोपीशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अखिलम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.		नः - ह.द्.ष.व.

धातुरूपपरिचय : विधास्यति - जुहो.लृट्.प्र.ए.

अन्वय : स एव गोपीशः नः अखिलं विधास्यति.

॥ साधनदीपिका ॥

(२५)

(मङ्गलाचरणम्)

ता न श्रीतात-पत्-पद्मरेणवः कामधेनवः ॥
नाकस्य तरवोऽन्येषां स्युः कल्पतरवो यथा ॥१॥
श्रुति - स्मृति - शिरोरत्न - नीराजित-पदाम्बुजम् ॥
यशोदोत्सङ्गललितं वन्दे श्रीनन्दनन्दनम् ॥२॥

सन्धिविच्छेद :

ताः + नः + श्रीतात = ता न श्रीतात [वि.लो.]
तरवः + अन्येषाम् = तरवोऽन्येषाम् [उ.पू.रू.] पद + अम्बुजम् = पदाम्बुजम् [दीर्घ.]
तरवः + यथा = तरवो यथा [उ.गुण.] यशोदा + उत्सङ्ग = यशोदोत्सङ्ग [गुण.]

समासविग्रह :

- पत् पद्म इव इति पत्पद्मः [कर्म.]
- श्रीतातानां पत्-पद्मौ इति श्रीतात-पत्-पद्मौ [ष.तत्पु.]
- श्रीतात-पत्-पद्मयोः रेणुः इति श्रीतात-पत्-पद्मरेणुः [ष.तत्पु.] ते
- श्रुतिश्च स्मृतिश्च इति श्रुति-स्मृती [द्वन्द्व.]
  तयोः शिरोरत्नानि श्रुति-स्मृति-शिरोरत्नानि [ष.तत्पु.]
- पद एव अम्बुजम् इति पदाम्बुजम् [कर्म.]
- श्रुति-स्मृति-शिरोरत्नैः नीराजितं इति श्रुतिस्मृतिशिरोरत्ननीराजितम् [तृ.तत्पु.]
- श्रुतिस्मृतिशिरोरत्ननीराजितम् पदाम्बुजं यस्य सः श्रुति-स्मृति-शिरोरत्न-नीराजित-पदाम्बुजः [बहु.] तम्

- यशोदायाः उत्सङ्गः इति यशोदोत्सङ्गः [प.तत्पु.]
- यशोदोत्सङ्गे ललितः (क्रीडासक्तः) इति यशोदोत्सङ्गललितः [स.तत्पु.] तम्
- श्रीनन्दस्य नन्दनः इति श्रीनन्दनन्दनः [प.तत्पु.] तं श्रीनन्दनन्दनम्

शब्दपरिचय :

ताः [ना.] नः [ना.]	तरवः [ना.] स्युः [आ.]	श्रुतिस्मृतिशिरोरत्न-
श्रीतातपत्पद्मरेणवः [ना.]	अन्येषाम् [ना.]	नीराजितपदाम्बुजम् [ना.]
कामधेनवः [ना.]	कल्पतरवः [ना.]	यशोदा-उत्[उ.]सङ्गललितम् [ना.]
नाकस्य [ना.]	यथा [नि.]	वन्दे [आ.] श्रीनन्दनन्दनम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

श्रीतातपत्पद्मरेणवः [स.]	यथा [नद्धि.]	
कामधेनवः [स.]	श्रुतिस्मृतिशिरोरत्न-	यशोदोत्सङ्गललितम् [स.]
कल्पतरवः [स.]	नीराजितपदाम्बुजम् [स.]	श्रीनन्दनन्दनम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

ताः - ह.द.स्त्री.प्र.ब.	अन्येषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
नः - ह.द.पुं.ष.ब	कल्पतरवः - अ.उ.पुं.प्र.ब.
श्रीतातपत्पद्मरेणवः - अ.उ.स्त्री.प्र.ब.	श्रुति-स्मृति-शिरोरत्न-नीराजित
कामधेनवः - अ.उ.स्त्री.प्र.ब.	-पदाम्बुजम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
नाकस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	यशोदोत्सङ्गललितम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
तरवः - अ.उ.पुं.प्र.ब.	श्रीनन्दनन्दनम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : स्युः - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ब. वन्दे - भ्वा.लट्.उ.ए.

अन्वय : यथा अन्येषां (इच्छापूरकाः) नाकस्य तरवः कामधेनवः (च सन्ति तथा) नः (तु) ताः श्रीतात-पत्-पद्मरेणवः (एव) कल्पतरवः

(कामधेनवः च) स्युः. श्रुति-स्मृति-शिरोरत्न-नीराजित-पदाम्बुजं यशोदोत्सङ्गललितं श्रीनन्दनन्दनम् (अहं) वन्दे॥२॥

(चिकीर्षितग्रन्थप्रामाण्यनिरूपणम्)

भक्तिमार्ग-वितानाय योऽवतीर्णो हुताशनः ॥
सएव नः परं मानं शेषमस्य प्रमान्तरम्॥३॥
वेदत्रयी - शिरोभाग - सूत्र - व्याख्यान - सम्मताम् ॥
भक्तिशास्त्रानुसारेण कुर्वे साधनदीपिकाम्॥४॥

सन्धिविच्छेद :

यः + अवतीर्णः = योऽवतीर्णो (उ.पू.रू.)	प्रमा + अन्तरम् = प्रमान्तरम् (दीर्घ.)
अवतीर्णः + हुताशनः = अवतीर्णो हुताशनः (उ.गुण.)	शिरः + भागः = शिरो भागः (उ.गुण.)
सः + एव = स एव (वि.लो.)	वि + आख्यान = व्याख्यान (यण्.)
	शास्त्र + अनुसारेण = शास्त्रानुसारेण (दीर्घ.)

समासविग्रह :

- भक्तिरेव मार्गः इति भक्तिमार्गः (कर्म.)
- भक्तिमार्गस्य वितानम् इति भक्तिमार्ग-वितानम् (ष.तत्पु.) तस्मै भक्तिमार्गवितानाय
- हुतम् अश्नाति इति हुताशनः (उप.स.)
- अन्या प्रमा इति प्रमान्तरम् (तत्पु.) (मयूरव्यंसकादि समास)
- त्रयाणां वेदानां समाहारः इति वेदत्रयी (द्विगु.)
- वेदत्रय्याः शिरोभागः इति वेदत्रयीशिरोभागः (ष.तत्पु.)
  स च सूत्रं च व्याख्यानं च इति वेदत्रयीशिरोभागसूत्रव्याख्यानानि (द्वन्द्व.)
  तैः सम्मता इति वेदत्रयीशिरोभागसूत्रव्याख्यानसम्मता (तृ.तत्पु.)
  तां वेदत्रयी-शिरोभाग-सूत्र-व्याख्यान-सम्मताम्
- भक्तेः शास्त्रम् इति भक्तिशास्त्रम् (ष.तत्पु.)

- भक्तिशास्त्रस्य अनुसारः इति भक्तिशास्त्रानुसारः [प.तत्पु] तेन
- साधनानां दीपिका इति साधनदीपिका [प.तत्पु] तां साधनदीपिकाम्

शब्दपरिचय :

भक्तिमार्ग-वि [उ.]तानाय [ना.]	मानम् [ना.] शेषम् [ना]	सम् [उ.]मताम् [ना.]
यः [ना.] अव [उ.]तीर्णः [ना.]	अस्य [ना.]	भक्तिशास्त्र-
हुताशनः [ना.] सः [ना.]	प्र [उ.]मान्तरम् [ना.]	अनु [उ.]सारेण [ना.]
एव [नि.] नः [ना.]	वेदत्रयी-शिरोभाग-	कुर्वे [आ.]
परम् [ना.]	सूत्र-वि [उ.]आ [उ.]ख्यान-	साधनदीपिकाम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

भक्तिमार्गवितानाय [स.]	मानम् [कृद.]	सूत्रव्याख्यानसम्मताम् [स.]
अवतीर्णः [कृद्+स.]	प्रमान्तरम् [स.]	भक्तिशास्त्रानुसारेण [स.]
हुताशनः [स.]	वेदत्रयी-शिरोभाग-	साधनदीपिकाम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(परम्, मानम्, शेषम्, प्रमान्तरम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

भक्तिमार्गवितानाय - अ.अ.नपुं.च.ए. नः - ह.द.ष.ब.

यः - ह.द.पुं.प्र.ए.

अवतीर्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

हुताशनः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

सः - ह.द.पुं.प्र.ए.

अस्य - ह.म.पुं.ष.ए.

वेदत्रयी...सम्मताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

भक्तिशास्त्रानुसारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.

साधनदीपिकाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : कुर्वे - तनादि.लट्.उ.ए.

अन्वय : यः हुताशनः भक्तिमार्ग-वितानाय अवतीर्णः स एव नः परं मानं (अस्ति) अस्य शेषम् प्रमान्तरम् (अस्ति) (वा प्रमान्तरं

अस्य शेषं (अस्ति)).(३). वेदत्रयी-शिरोभाग-सूत्र-व्याख्यान-सम्मताम् भक्तिशास्त्रानुसारेण साधनदीपिकाम् (अहं) कुर्वे॥४॥

(श्रीहरिभजनावश्यकतोपपादनेन ग्रन्थोपक्रमः)

''आत्मा वार'' इति श्रुत्या दर्शनैकफलो विधिः॥
श्रवणाद्यैः प्रतिज्ञातः ''तं भजेत्''-''तं रसेदि''ति॥५॥
''तस्माद् भारत सर्वात्मा भगवान् हरिरीश्वरः॥
श्रोतव्यः कीर्तितव्यश्च स्मर्तव्यश्चेच्छताभयम्''॥६॥
पुरुषस्याविशेषेण संसारं प्रजिहासतः॥
हरेराराधने मुक्तिः... ... ...॥

सन्धिविच्छेद :

वा + अरे = वारे [दीर्घ.]	सर्व + आत्मा = सर्वात्मा [दीर्घ.]
वारे + इति = वार इति [अयादेश.यलोप.]	हरिः + ईश्वरः = हरिरीश्वरः [रेफ.]
दर्शन + एक = दर्शनैक [वृद्धि.]	कीर्तितव्यः + च = कीर्तितव्यश्च [स.श्चु.]
फलः + विधिः = फलो विधिः [उ.गुण.]	स्मर्तव्यः + च = स्मर्तव्यश्च [स.श्चु.]
श्रवण + आद्यैः = श्रवणाद्यैः [दीर्घ.]	च + इच्छता = चेच्छता [गुण]
रसेत् + इति = रसेद् इति [जश्त्व.]	इच्छता + अभयम् = इच्छताभयम् [दीर्घ.]
तस्मात् + भारत = तस्माद् भारत [जश्त्व.]	पुरुषस्य + अविशेषेण = पुरुषस्याविशेषेण [दीर्घ.]
	हरेः + आराधने = हरेराराधने [रेफ.]

समासविग्रह :

- दर्शनम् एव एकं फलं यस्य स दर्शनैकफलः [बहु.]
- श्रवणम् आद्यं येषां तानि श्रवणाद्यानि [बहु.] तैः श्रवणाद्यैः
- सर्वेषाम् आत्मा इति सर्वात्मा [ष.तत्पु.]
- न भयम् इति अभयम् [न.तत्पु.]
- न विशेषः इति अविशेषः [न.तत्पु.] तेन

शब्दपरिचय :

आत्मा [ना.]	रसेत् [आ.]	स्मर्तव्यः [ना.]
वा [नि.] अरे [नि.]	तस्माद् [ना.]	इच्छता [ना.]
इति [नि.]	भारत [ना.]	अभयम् [ना.]
श्रुत्वा [ना.]	सर्वात्मा [ना.]	पुरुषस्य [ना.]
दर्शनैकफलः [ना.]	भगवान् [ना.]	अ-वि [उ.]शेषेण [ना.]
वि [उ.]धिः [ना.]	हरिः [ना.]	सम् [उ.]सारम् [ना.]
श्रवणाद्यैः [ना.]	ईश्वरः [ना.]	प्र [उ.]जिहासतः [ना.]
प्रति [उ.]ज्ञातः [ना.]	श्रोतव्यः [ना.]	हरेः [ना.]
तम् [ना.]	कीर्तितव्यः [ना.]	आ [उ.]राधने [ना.]
भजेत् [आ.]	च [नि.]	मुक्तिः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

श्रुत्वा [कृद.]	सर्वात्मा [स.]	अभयम् [स.]
दर्शनैकफलः [स.]	भगवान् [तद्धि.]	अविशेषेण [स.]
विधिः [स.]	श्रोतव्यः [कृद.]	संसारम् [स.]
श्रवणाद्यैः [स.]	कीर्तितव्यः [कृद.]	प्रजिहासतः [कृद+स.]
प्रतिज्ञातः [कृद+.]	स्मर्तव्यः [कृद.]	आराधने [कृद+स.]
भारत [तद्धि.]	इच्छता [कृद.]	मुक्तिः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

आत्मा - ह.न.पुं.प्र.ए.	तम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.
श्रुत्वा - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.	तस्माद् - ह.द.पुं.पं.ए.
दर्शनैकफलः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भारत - अ.अ.पुं.सं.ए.
विधिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	सर्वात्मा - ह.न.पुं.प्र.ए.
श्रवणाद्यैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.	भगवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.
प्रतिज्ञातः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

(ईश्वरः, श्रोतव्यः, कीर्तितव्यः, स्मर्तव्यः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

इच्छता - ह.त.पुं.तृ.ए.

अभयम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	प्रजिहासतः - ह.त.पुं.ष.ए.
पुरुषस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.	हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
अविशेषेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.	आराधने - अ.अ.नपुं.स.ए.
संसारम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	मुक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.   रसेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : "आत्मा वारे" इति श्रुत्या श्रवणाद्यैः दर्शनैकफलो विधिः प्रतिज्ञातः, "तं भजेत्"-"तं रसेत्" इति (अपि उक्तम्). "हे भारत! तस्मात् अभयम् इच्छता ईश्वरः सर्वात्मा भगवान् हरिः श्रोतव्यः कीर्तितव्यः स्मर्तव्यः च". संसारं प्रजिहासतः पुरुषस्य अविशेषेण हरेः आराधने मुक्तिः (भवति).

(तत्र कुतः[१] कीदृशो[२] गुरोः आवश्यकता इति निरूपणम्)

... ...तत्प्रकारो निरूप्यते।

"माहात्म्यज्ञानपूर्वोहि सुदृढः सर्वतोऽधिकः ॥
स्नेहो'भक्ति'रिति प्रोक्तः तया मुक्तिर्न चान्यथा"॥८॥
माहात्म्यज्ञापनायैव श्रवणं गुणकर्मणाम्॥
शास्त्राणामुपयोगोऽत्र तत्राकांक्षा गुरोर्भवेत्[१]॥९॥
"कृष्णसेवापरं वीक्ष्य दम्भादिरहितं नरम्॥
श्रीभागवततत्त्वज्ञं भजेत् जिज्ञासुरादरात्"[२]॥१०॥

सन्धिविच्छेद :

प्रकारः + निरूप्यते = प्रकारो निरूप्यते [उ.गुण.]

पूर्वः + हि = पूर्वो हि [उ.गुण.]

सर्वतः + अधिकः = सर्वतोऽधिकः [उ.पू.रू.]

स्नेहः + भक्तिः = स्नेहो भक्तिः [उ.गुण.]	उपयोगः + अत्र = उपयोगोऽत्र [उ.पू.रू.]
भक्तिः + इति = भक्तिरिति [रेफ.]	तत्र + आकांक्षा = तत्राकांक्षा [दीर्घ.]
प्र + उक्त = प्रोक्त [गुण.]	गुरोः + भवेत् = गुरोर्भवेत् [रेफ.]
मुक्तिः + न = मुक्तिर्न [रेफ.]	वि + ईक्ष्य = वीक्ष्य [दीर्घ]
च + अन्यथा = चान्यथा [दीर्घ.]	दम्भ + आदि = दम्भादि [दीर्घ.]
ज्ञापनाय + एव = ज्ञापनायैव [वृद्धि.]	जिज्ञासुः + आदरात् = जिज्ञासुरादरात् [रेफ.]

समासविग्रह :

- तस्या (मुक्तेः) प्रकारः इति तत्प्रकारः [ष.तत्पु.]
- माहात्म्यस्य ज्ञानम् इति माहात्म्यज्ञानम् [ष.तत्पु.] माहात्म्यज्ञानं पूर्वं यस्य स माहात्म्यज्ञानपूर्वः [बहु.]
- माहात्म्यस्य ज्ञापनम् इति माहात्म्यज्ञापनम् [ष.तत्पु.] तस्मैः माहात्म्यज्ञापनाय
- गुणाः च कर्माणि च गुणकर्माणि [द्वन्द्व.] तेषां गुणकर्मणाम्.
- कृष्णस्य सेवा इति कृष्णसेवा [ष.तत्पु.]
  कृष्णसेवायाम् परः इति कृष्णसेवापरः [स.तत्पु.] तं कृष्णसेवापरम्
- दम्भः आदिर्येषां ते दम्भादयः [बहु.]
  तैः रहितः इति दम्भादिरहितः [तृ.तत्पु.] तं दम्भादिरहितम्
- श्रीभागवतस्य तत्त्वम् इति श्रीभागवततत्त्वम् [ष.तत्पु.]
  तं जानाति इति श्रीभागवततत्त्वज्ञः [उप.स.] तम् श्रीभागवततत्त्वज्ञम्

शब्दपरिचय :

तत्-प्र [उ.]कारः [ना.]	स्नेहः [ना.]	न [नि.] च [नि.]
नि [उ.]रूप्यते [आ.]	भक्तिः [ना.]	अन्यथा [नि.]
माहात्म्यज्ञानपूर्वः [ना.]	इति [नि.]	माहात्म्यज्ञापनाय [ना.]
हि [नि.] सु [उ.]दृढः [ना.]	प्र [उ.]-उक्तः [ना.]	एव [नि.]
सर्वतः [नि.]	तया [ना.]	श्रवणम् [ना.]
अधिकः [ना.]	मुक्तिः [ना.]	गुणकर्मणाम् [ना.]

शास्त्राणाम् [ना.]	गुरोः [ना.]	नरम् [ना.]
उप [उ.] योगः [ना.]	भवेत् [आ.]	श्रीभागवततत्त्वज्ञम् [ना.]
अत्र [नि.]	कृष्णसेवापरम् [ना.]	भजेत् [आ.]
तत्र [नि.]	वि [उ.]-ईक्ष्य [स.आ.]	जिज्ञासुः [ना.]
आ [उ.] कांक्षा [ना.]	दम्भादिरहितम् [ना.]	आ [उ.] दरात् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

तत्प्रकारः [स.]	मुक्तिः [कृद.]	आकांक्षा [स.]
निरूप्यते [सना.]	अन्यथा [तद्धि.]	कृष्णसेवापरम् [स.]
माहात्म्यज्ञानपूर्वः [स.]	माहात्म्यज्ञापनाय [स.]	वीक्ष्य [कृद.]
सुदृढः [कृद+स.]	श्रवणम् [कृद.]	दम्भादिरहितम् [स.]
सर्वतः [तद्धि.]	गुणकर्मणाम् [स.]	श्रीभागवततत्त्वज्ञम् [स.]
भक्तिः [कृद.]	उपयोगः [स.]	जिज्ञासुः [कृद.]
प्रोक्तः [कृद+स.]	अत्र [तद्धि.] तत्र [तद्धि.]	आदरात् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(तत्प्रकारः, माहात्म्यज्ञानपूर्वः, सुदृढः, अधिकः, स्नेहः, प्रोक्तः)-अ.अ.पुं.प्र.ए.

(कृष्णसेवापरम्, दम्भादिरहितम्, नरम्, श्रीभागवततत्त्वज्ञम्) - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

भक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	शास्त्राणाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब.
तया - ह.द.स्त्री.तृ.ए.	उपयोगः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
मुक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	आकांक्षा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
माहात्म्यज्ञापनाय - अ.अ.नपुं.च.ए.	गुरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.
श्रवणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	जिज्ञासुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
गुणकर्मणाम् - ह.न.नपुं.ष.व.	आदरात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

धातुरूपपरिचय :

निरूप्यते - चुरा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त)	भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
	भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय. : (अतः परं) तत्प्रकारो निरूप्यते. "महात्म्यज्ञानपूर्वो हि सुदृढः सर्वतोधिकः स्नेहो भक्तिः इति प्रोक्तः तया मुक्तिः न च अन्यथा" (८). माहात्म्यज्ञापनाय गुणकर्मणाम् श्रवणम् एव (साधनम्). अत्र शास्त्राणाम् उपयोगः (अस्ति), तत्र गुरोः आकांक्षा भवेत् (९). जिज्ञासुः कृष्णसेवापरं दंभादिरहितं श्रीभागवततत्त्वज्ञं नरम् वीक्ष्य आदरात् भजेत् ॥१०॥

(स्वमार्गीयगुरोः आदिमं कर्तव्यं: भगवत्प्रपत्त्यर्थं दैवजीवानां प्रेरणम्)

देहद्रोण्या यियासूनां परं पारं भवाम्बुधेः ॥
गुरुणा कर्णधारेण ह्युत्तार्या स्वोपदेशतः ॥११॥
"यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥
तं ह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये" ॥१२॥
"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज " ॥
इति श्रुत्या तथा स्मृत्या प्रपत्त्यादेशमादितः ॥१३॥

सन्धिविच्छेद :

भव + अम्बुधेः = भवाम्बुधेः [दीर्घ.]	यः + ब्रह्माणं = यो ब्रह्माणम् [उ.गुण.]
हि + उत्तार्या = ह्युत्तार्या [यण्.]	यः + वै = यो वै [उ.गुण.]
ह्युत्तार्याः + स्वोपदेशतः =	वेदान् + च = वेदांश्च [नश्छ.श्चु.]
ह्युत्तार्या स्वोपदेशतः [वि.लो.]	मुमुक्षुः + वै = मुमुक्षुर्वै [रेफ.]
स्व + उपदेशतः = स्वोपदेशतः [गुण]	प्रपत्ति + आदेशम् = प्रपत्त्यादेशम् [यण्.]

समासविग्रह :

- देह एव द्रोणी इति देहद्रोणी [कर्म] तया देहद्रोण्या
- भव एव अम्बुधिः भवाम्बुधिः [कर्म] तस्य भवाम्बुधेः
- कर्णं धरति इति कर्णधारः [उप.स.] तेन कर्णधारेण
- स्वस्य उपदेशः इति स्वोपदेशः [ष.तत्पु.] तस्मात् स्वोपदेशतः

- आत्मा च बुद्धिश्च इति आत्मबुद्धी [द्वन्द्व.]
- आत्मबुद्ध्योः प्रकाशो येन स आत्मबुद्धिप्रकाशः [बहु.] तम्
- सर्वे च ते धर्माः सर्वधर्माः [कर्म.] तान् सर्वधर्मान्
- प्रपत्तेः आदेशः इति प्रपत्त्यादेशः [ष.तत्पु.] तम्

शब्दपरिचय :

देहद्रोण्या [ना.]	पूर्वम् [ना.]	प्र [उ.] पद्ये [आ.]
यियासूनाम् [ना.]	वै [नि.] वेदान् [ना.]	सर्वधर्मान् [ना.]
परम् [ना.] पारम् [ना.]	च [नि.]	परि [उ.] त्यज्य [स.आ.]
भवाम्बुधेः [ना.]	प्र [उ.] हिणोति [आ.]	माम् [ना.]
गुरुणा [ना.]	तस्मै [ना.]	एकम् [ना.]
कर्णधारेण [ना.]	तम् [ना.] ह [नि.]	शरणम् [ना.]
हि [नि.]	देवम् [ना.]	व्रज [आ.] इति [नि.]
उत् [उ.] -तार्या [ना.]	आत्मबुद्धि-प्र [उ.] काशम् [ना.]	श्रुत्या [ना.] तथा [नि.]
स्व-उप [उ.] देशतः [नि.]	मुमुक्षुः [ना.] वै [नि.]	स्मृत्या [ना.]
यः [ना.] ब्रह्माणम् [ना.]	शरणम् [ना.]	प्र [उ.] पत्ति-आ [उ.] देशम् [ना.]
वि [उ.] दधाति [आ.]	अहम् [ना.]	आदितः [नि.]

वृत्तिपरिचय :

देहद्रोण्या [स.]	स्वोपदेशतः [तद्धि.]	परित्यज्य [कृद.]
यियासूनाम् [कृद.]	आत्मबुद्धिप्रकाशम् [स.]	शरणम् [कृद.]
भवाम्बुधेः [स.]	मुमुक्षुः [कृद.]	श्रुत्या [कृद.] स्मृत्या [कृद+स.]
कर्णधारेण [स.]	शरणम् [कृद.]	प्रपत्त्यादेशम् [स.]
उत्तार्याः [कृद+स.]	सर्वधर्मान् [स.]	आदितः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

देहद्रोण्या - अ.ई.स्त्री.तृ.ए.　　यियासूनाम् - अ.उ.पुं.ष.ब.

परम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	देवम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
पारम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	आत्मबुद्धिप्रकाशम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
भवाम्बुधेः - अ.अ.पुं.ष.ए.	मुमुक्षुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
गुरुणा - अ.उ.पुं.तृ.ए.	शरणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
कर्णधारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.	अहम् - ह.द.प्र.ए.
उत्तार्याः - अ.अ.पुं.प्र.व.	सर्वधर्मान् - अ.अ.पुं.द्वि.व.
यः - ह.द.पुं.प्र.ए.	माम् - ह.द.द्वि.ए.
ब्रह्माणम् - ह.न.पुं.द्वि.ए.	एकम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
पूर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	शरणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
वेदान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.	श्रुत्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
तस्मै - ह.द.पुं.च.ए.	स्मृत्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
तम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.	प्रपत्त्यादेशम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

विदधाति - जुहो.लट्.प्र.ए.	प्रपद्ये - भ्वा.लट्.उ.ए.
प्रहिणोति - स्वा.लट्.प्र.ए.	व्रज - भ्वा.लोट्.म.ए.

अन्वय : देहद्रोण्या भवाम्बुधेः परं पारं यियासूनां कर्णधारेण गुरुणा स्वोपदेशतः (ते) हि उत्तार्याः. "यो पूर्वं ब्रह्माणं विदधाति यो वै तस्मै वेदान् च प्रहिणोति आत्मबुद्धिप्रकाशं तं ह देवम् मुमुक्षुः अहं शरणं प्रपद्ये" "सर्वधर्मान् परित्यज्य माम् एकं शरणं व्रज" इति श्रुत्या तथा स्मृत्या आदितः प्रपत्यादेशम् (करोति गुरुः इति शेष) ॥१३॥

(स्वमार्गे द्विजकुलोद्भूतानां शिष्याणां कर्तव्यस्य निरूपणम्)
प्रेम्णोपदेश-श्रवणात् प्रपत्तिः प्रेम-कारणम्।।
अतो मूलाभिषेको हि कार्यस्तेनास्य सेवने।।१४।।

नहि देहभृता शक्यं कर्म त्यक्तुमशेषतः ।।
अतः स्वधर्माचरणं भारद्वैगुण्यम् अन्यथा।।१५।।
स्वधर्माचरणं शक्त्या ह्यधर्मात्तु निवर्तनम्।।
इन्द्रिया-ऽश्व-विनिग्राहः सर्वथा न त्यजेत् त्रयं।।१६।।
इति भागवतो धर्मः श्रीमदाचार्यसम्मतः ।।
भक्तिशास्त्रानुकूल्येन स्वधर्माचरणं भवेत्।।१७।।

सन्धिविच्छेद :

प्रेम्णा + उपदेश = प्रेम्णोपदेश [गुण.]	स्वधर्म + आचरणं = स्वधर्माचरणं [दीर्घ.]
अतः + मूलाभिषेकः + हि = अतो मूलाभिषेको हि [उ.गुण.]	हि + अधर्मात् = ह्यधर्मात् [यण.]
मूल + अभिषेको = मूलाभिषेको [दीर्घ.]	इन्द्रिय + अश्व = इन्द्रियाश्व [दीर्घ.]
कार्यः + तेन = कार्यस्तेन [स.]	भागवतः + धर्मः = भागवतो धर्मः [उ.गुण]
तेन + अस्य = तेनास्य [दीर्घ.]	श्रीमत् + आचार्य = श्रीमदाचार्य [जश्त्व.]
	शास्त्र + आनु = शास्त्रानु [दीर्घ.]

समासविग्रह

- उपदेशस्य श्रवणम् इति उपदेशश्रवणम् [ष.तत्पु.] तस्मात् उपदेशश्रवणात्
- मूले अभिषेकः इति मूलाभिषेकः [स.तत्पु.]
- देहं बिभर्ति इति देहभृत् [उप.स.] तेन देहभृता
- न शेषः इति अशेषः [न.तत्पु.] तस्मात् अशेषतः [पं.तसि.]
- स्वस्य धर्मः इति स्वधर्मः [ष.तत्पु.]
  तस्य आचरणम् इति स्वधर्माचरणम् [ष.तत्पु.]
- भारस्य द्वैगुण्यम् इति भारद्वैगुण्यम् [ष.तत्पु.]
- न धर्मः इति अधर्मः [न.तत्पु.] तस्मात्
- इन्द्रियाणि एव अश्वाः इति इन्द्रियाश्वाः [कर्म]
  तेषां विनिग्राहः इति इन्द्रियाश्वविनिग्राहः [ष तत्पु]
- श्रीमान् चासौ आचार्यः इति श्रीमदाचार्यः [कर्म]

श्रीमदाचार्याणां सम्मतः इति श्रीमदाचार्यसम्मतः [प.तत्पु.]

- भक्तेः शास्त्रम् इति भक्तिशास्त्रम् [प.तत्पु.] तस्य आनुकूल्यम् इति भक्तिशास्त्रानुकूल्यम् [प तत्पु.] तेन भक्तिशास्त्रानुकूल्येन

शब्दपरिचय :

प्रेम्णा [ना.]	न [नि.]	नि [उ.] वर्तनम् [ना.]
उप [उ.] देशश्रवणात् [ना.]	देहभृता [ना.]	इन्द्रियाश्व-वि [उ.] नि [उ.] ग्राहः [ना.]
प्र [उ.] पत्तिः [ना.]	शक्यम् [ना.]	सर्वथा [नि.]
प्रेम [ना.]	कर्म [ना.]	त्यजेत् [आ.]
कारणम् [ना.]	त्यक्तुम् [स.आ.]	त्रयम् [ना.]
अतः [नि.]	अशेषतः [नि.]	इति [नि.]
मूल-अभि [उ.] षेकः [ना.]	स्वधर्माचरणम् [ना.]	भागवतः [ना.]
हि [नि.]	भारद्वैगुण्यम् [ना.]	धर्मः [ना.]
कार्यः [ना.]	अन्यथा [नि.]	श्रीमदाचार्य-सम् [उ.] मतः [ना.]
तेन [ना.]	स्वधर्म-आ [उ.] चरणम् [ना.]	भक्तिशास्त्रानुकूल्येन [ना.]
अस्य [ना.]	शक्त्या [ना.]	स्वधर्म-आ [उ.] चरणम् [ना.]
सेवने [ना.]	अधर्मात् [ना.] तु [नि.]	भवेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

उपदेशश्रवणात् [स.]	त्यक्तुम् [कृद.]	
प्रपत्तिः [कृद्+स.]	अशेषतः [तद्धि.]	
कारणम् [कृद.]	स्वधर्माचरणम् [स.]	इन्द्रियाश्व-
अतः [तद्धि.]	भारद्वैगुणम् [स.]	विनिग्राहः [स.]
मूलाभिषेकः [स.]	अन्यथा [तद्धि.]	सर्वथा [तद्धि.]
कार्यः [कृद]	शक्त्या [कृद.]	भागवतः [तद्धि.]
सेवने [कृद.]	निवर्तनम् [कृद्+स.]	श्रीमदाचार्यसम्मतः [स.]
देहभृता [स.]	अधर्मात् [स]	भक्तिशास्त्रानुकूल्येन [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(कार्यः, मूलाभिषेकः, इन्द्रियाश्वविनिग्राहः, भागवतः, धर्मः, श्रीमदाचार्यसम्मतः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

(कारणम्, शक्यम्, स्वधर्माचरणम्, भारद्वैगुण्यम्, निवर्तनम्, त्रयम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

प्रेम्णा - ह.न.नपुं.तृ.ए.	सेवने - अ.अ.नपुं.स.ए.
उपदेशश्रवणात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	देहभृता - ह.त.पुं.तृ.ए.
प्रपत्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	कर्म - ह.न.नपुं.प्र.ए.
प्रेम - ह.न.पुं.प्र.ए.	शक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
तेन - ह.द.पुं.तृ.ए.	अधर्मात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
अस्य - ह.म.पुं.ष.ए.	भक्तिशास्त्रानुकूल्येन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

धातुरूपपरिचय : त्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : उपदेशश्रवणात् प्रेम्णा प्रेम कारणम् प्रपत्तिः (भवति). अतः तेन (मुमुक्षुणां) अस्य (भगवतः) सेवने मूलाभिषेकः कार्य. देहभृता कर्मः अशेषतः त्यक्तुं न हि शक्यम् अतः स्वधर्माचरणम् (कार्यं) अन्यथा भारद्वैगुण्यम् (स्यात्) (१५). शक्त्या हि स्वधर्माचरणम्, अधर्मात् तु निवर्तनम्, इन्द्रियाश्वविनिग्राहः (एतत्) त्रयं सर्वथा न त्यजेत् (१६). इति श्रीमदाचार्यसम्मतः भागवतः धर्मः (अस्ति) स्वधर्माचरणं भक्तिशास्त्रानुकूल्येन भवेत् ॥१७॥

(तत्र स्वस्वशाखानुसारेण षोडशसंस्काराणां तन्मूलकाह्निकशौचाचारा[१-६]दीनां च भक्त्युपयोगितयैव द्विजशरीरधारिणा अनुष्ठानम्)

गर्भाधानादि-संस्कारैः द्विजैर्मौञ्ज्यन्त-सम्भवैः ।।
देहः संशोधनीयो हि हरिभावो न चान्यथा ।।१८।।
शौचाचार-विहीनस्य आसुरावेश-सम्भवात् ।।

ततः स्वाह्निक-धर्माणाम् आचारोऽपि प्रसज्यते ॥१९॥
स्नानं [१] सन्ध्याजपो [२] होमः [३] स्वाध्यायः [४] पितृतर्पणम् [५]॥
वैश्वदेवकदेवार्चा [६] इति षट्कर्मकृद् भवेत् ॥२०॥
यथा हि स्कन्ध-शाखानां तरोर्मूलाभिषेचनम् ॥
तथा सर्वार्हणं यस्मात् परिचर्याविधिर्हरेः ॥२१॥
अतस्तदनुरोधेन नित्यकर्मकृतिर्वरा ॥
अन्यथा तु कृतिर्व्यर्था त्रैवर्ग्यविषया यतः ॥२२॥
गर्भाधानादिसंस्कारैः स्वशाखोक्तैर् द्विजो युतः ॥
गुरुं प्रपद्येद् ... ...॥

सन्धिविच्छेद :

गर्भ + आधान + आदि =
गर्भाधानादि [दीर्घ.]
सम् + कारैः = संस्कारैः [रु.अनु.]
द्विजैः + मौञ्ज्यन्त =
द्विजैर्मौञ्ज्यन्त [रेफ.]
मौञ्जी + अन्त = मौञ्ज्यन्त [यण्.]
संशोधनीयः + हि हरिभावः + न=
संशोधनीयो हि हरिभावो न [उ.गुण.]
च + अन्यथा = चान्यथा [दीर्घ.]
शौच + आचार = शौचाचार [दीर्घ.]
आसुर + आवेश = आसुरावेश [दीर्घ.]
स्व + आह्निक = स्वाह्निक [दीर्घ.]
आचारः + अपि = आचारोऽपि [उ.पू.रू.]
जपः + होम = जपो होम [उ.गुण.]
सु + आ.. = स्वा [यण्.]
स्वा + अधि.. = स्वाधि [दीर्घ.]

स्वाधि + आय = स्वाध्याय [यण्.]
देव + अर्चा = देवार्चा [दीर्घ.]
कर्मकृत् + भवेत् =
कर्मकृद् भवेत् [जश्त्व.]
तरोः + मूल = तरोर्मूल [रेफ.]
मूल + अभि = मूलाभि [दीर्घ.]
सर्व + अर्हणं = सर्वार्हणम् [दीर्घ.]
विधिः + हरेः = विधिर्हरेः [रेफ.]
अतः + तद् = अतस्तद् [स.]
कृतिः + वरा = कृतिर्वरा [रेफ.]
कृतिः + व्यर्था = कृतिर्व्यर्था [रेफ.]
वि + अर्था = व्यर्था [यण्.]
शाखा + उक्तैः = शाखोक्तैः [गुण.]
उक्तैः + द्विजः = उक्तैर्द्विजः [रेफ.]
द्विजः + युतः = द्विजो युतः [उ.गुण.]

समासविग्रह :

- गर्भस्य आधानम् इति गर्भाधानम् [प.तत्पु.]
  गर्भाधानम् आदिर्येषां ते गर्भाधानादयः [बहु.]
  गर्भाधानादयः ये संस्काराः ते गर्भाधानादिसंस्काराः [कर्म.] तैः
- द्विः जायते इति द्विजः [उप.स.] तैः
- मौञ्ज्याः अन्तम् (पर्यन्तम्) इति मौञ्ज्यन्तम् [प.तत्पु.]
  मौञ्ज्यन्तं सम्भवो येषां ते मौञ्जन्यन्तसम्भवाः [बहु.] तैः
- हरौ भावः इति हरिभावः [स.तत्पु.]
- शौचं च आचारश्च इति शौचाचारौ [द्वन्द्व.]
  ताभ्यां विहीनः इति शौचाचारविहीनः [प.तत्पु.] तस्य
- आसुरः य आवेशः स आसुरावेशः [कर्म]
  तस्य सम्भव इति आसुरावेशसम्भवः [प.तत्पु.]
- स्वस्य आह्निकम् इति स्वाह्निकम् [प.तत्पु.]
  स्वाह्निकाः ये धर्माः ते स्वाह्निकधर्माः [कर्म] तेषां स्वाह्निकधर्माणाम्
- सन्ध्यासहितः जपः इति सन्ध्याजपः [म.प.लो.]
- पितृणां तर्पणम् इति पितृतर्पणम् [प.तत्पु.]
- देवस्य अर्चा इति देवार्चा [प.तत्पु.]
  वैश्वदेवकसहिता देवार्चा इति वैश्वदेवकदेवार्चा [म.प.लो.]
- षट् (संख्याकानि) च यानि कर्माणि च तानि षट्कर्माणि [कर्म.]
  षटकर्माणि करोति इति षटकर्मकृद् [उप.स.]
- स्कन्धाश्च शाखाश्च इति स्कन्धशाखाः [द्वन्द्व.] तासाम्
- मूले अभिषेचनम् इति मूलाभिषेचनम् [स.तत्पु.]
- सवेषाम् अर्हणम् इति सर्वार्हणम् [प.तत्पु.]
- परिचर्या एव विधि इति परिचर्याविधिः [कर्म.]
- तस्य अनुरोधः इति तदनुरोधः [प.तत्पु.] तेन
- नित्यं च इदं कर्म इति नित्यकर्म [कर्म] नित्यकर्मणां कृतिः इति नित्यकर्मकृतिः [प.तत्पु]

- त्रयाणां वर्गाणां समाहारः त्रिवर्गः[द्विगु] तस्य भावः त्रैवर्ग्यं
  त्रैवर्ग्यं विषयं यस्याः सा त्रैवर्ग्यविषया[बहु.]
- स्वस्य शाखा इति स्वशाखा[ष.तत्पु]
  स्वशाखायाम् उक्तः इति स्वशाखोक्तः[स.तत्पु.] तैः स्वशाखोक्तैः

शब्दपरिचय :

गर्भाधानादि-	आ[उ.]चारः[ना.]	यस्मात्[ना.]
सम्[उ.]स्कारैः[ना.]	अपि[नि.]	परि[उ.]चर्या-वि[उ.]धिः[ना.]
द्विजैः[ना.]	प्र[उ.]सज्यते[आ.]	हरेः[ना.] अतः[नि.]
मौञ्ज्यन्त-	स्नानम्[ना.]	तद्-अनु[उ.]रोधेन[ना.]
सम्[उ.]भवैः[ना.]	सन्ध्याजपः[ना.]	नित्यकर्मकृतिः[ना.]
देहः[ना.]	होमः[ना.]	वरा[ना.]
सम्[उ.]शोधनीयः[ना.]	सु[उ.]आ[उ.]अधि[उ.]अयः[ना.]	अन्यथा[नि.]
हि[नि.]	पितृतर्पणम्[ना.]	तु[नि.] कृतिः[ना.]
हरिभावः[ना.]	वैश्वदेवकदेवार्चा[ना.]	वि[उ.]अर्था[ना.]
न[नि.] च[नि.]	इति[नि.]	त्रैवर्ग्य-वि[उ.]षया[ना.]
अन्यथा[नि.]	षट्कर्मकृद्[ना.]	यतः[नि.]
शौचाचार-	भवेत्[आ.] यथा[नि.]	गर्भाधानादि-
वि[उ.]हीनस्य[ना.]	स्कन्धशाखानाम्[ना.]	सम्[उ.]स्कारैः[ना.]
आसुर-आ[उ.]वेश-	तरोः[ना.]	स्वशाखोक्तैः[ना.]
सम्[उ.]भवात्[ना.]	मूल-अभि[उ.]षेचनम्[ना.]	द्विजः[ना.] युतः[ना.]
ततः[नि.]	तथा[नि.]	गुरुम्[ना.]
स्वाह्निकधर्माणाम्[ना.]	सर्वार्हणम्[ना.]	प्र[उ.]पद्येद्[आ.]

वृत्तिपरिचय :

गर्भाधानादिसंस्कारैः[स.]	मौञ्ज्यन्तसम्भवैः[स.]	हरिभावः[स.]
द्विजैः[स.]	संशोधनीयः[कृद्+स.]	अन्यथा[तद्धि.]

शौचाचारविहीनस्य [स]	पितृतर्पणम् [स.]	अतः [तद्धि.]
आसुरावेशसम्भवात् [स]	वैश्वदेवकदेवार्चा [स.]	तदनुराधेन [स.]
ततः [तद्धि.]	षट्कर्मकृद् [स.]	नित्यकर्मकृतिः [स.]
स्वाह्निक-धर्माणाम् [स.]	यथा [तद्धि.]	कृतिः [कृद.] व्यर्था [स.]
आचारः [स.]	स्कन्ध-शाखानाम् [स.]	त्रैवर्ग्यविषया [स.]
प्रसज्यते [सना.]	मूलाभिषेचनम् [स.]	यतः [तद्धि.]
स्नानम् [कृद.]	तथा [तद्धि.]	गर्भाधानादिसंस्कारैः [स.]
सन्ध्याजपः [स.]	सर्वार्हणम् [स.]	स्वशाखोक्तैः [स.]
स्वाध्यायः [स.]	परिचर्याविधिः [स.]	द्विजः [स.] युतः [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

(गर्भाधानादिसंस्कारैः, द्विजैः, मौञ्ज्यन्तसम्भवैः, स्वशाखोक्तैः) - अ.अ.पुं.तृ.ब.

(देहः, संशोधनीयः, हरिभावः, आचारः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

(सन्ध्याजपः, होमः, स्वाध्यायः, द्विजः, युतः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

(वैश्वदेवकदेवार्चा, वरा, व्यर्था, त्रैवर्ग्यविषया) - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

(स्नानम्, मूलाभिषेचनम्, सर्वार्हणम्, पितृतर्पणम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

शौचाचारविहीनस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

आसुरावेशसम्भवात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

स्वाह्निक-धर्माणाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

षट्कर्मकृद् - ह.त.पुं.प्र.ए.

स्कन्धशाखानाम् - अ.आ.स्त्री.ष.ब.

तरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.

यस्मात् - ह.द.पुं.पं.ए.

परिचर्याविधिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

तदनुरोधेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

नित्यकर्मकृतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

गुरुम् - अ.उ.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

प्रसज्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए.(यक्)

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

प्रपद्येत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : मौञ्ज्यन्त-सम्भवैः गर्भाधानादि-संस्कारैः द्विजैः देहः हि

संशोधनीयः अन्यथा च हरिभावः न (भवति).(१८). शौचाचार-विहीनस्य आसुरावेश-सम्भवात् ततः स्वाह्निक-धर्माणाम् आचारः अपि प्रसज्यते.(१९). (सः) स्नानं सन्ध्याजपः होमः स्वाध्यायः पितृतर्पणम् वैश्वदेवकदेवार्चा इति षट्कर्मकृत् भवेत्.(२०). यथा तरोः मूलाभिषेचनं हि स्कन्ध-शाखानां (अपि भवति) तथा हरेः परिचर्याविधिः (अस्ति) यस्मात् सर्वार्हणम् (भवति).(२१). अतः तदनुरोधेन नित्यकर्मकृतिः वरा (स्यात्) अन्यथा तु कृतिः व्यर्था (स्यात्) यतः (सा) त्रैवर्ग्यविषया (भवेत्).(२२). अतः स्वशाखोक्तैः गर्भाधानादिसंस्कारैः युतः (द्विजः) गुरुं प्रपद्येत्.

(द्विजेतराणां शिष्याणां कर्तव्यस्य निरूपणम्)

... . अन्यस्तु सदाचारोऽस्य संश्रयात्।।२३।।

सन्धिविच्छेद :

अन्यः + तु = अन्यस्तु [स.]   सदाचारः + अस्य = सदाचारोऽस्य [उ.पू.रू.]

समासविग्रह : सत् आचारो यस्य स सदाचारः [बहु.]

शब्दपरिचय :

अन्यः [ना.] तु [नि.] सद्-आ [उ.]चारः [ना.] अस्य [ना.] सं [उ.]श्रयात् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सदाचारः [स.] संश्रयात् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

अन्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	अस्य - ह.म.पुं.ष.ए.
सदाचारः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	संश्रयात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

अन्वयः : अस्य (द्विजस्य) संश्रयात् अन्यस्तु (द्विजेतरस्तु) सदाचारः (सन्) अस्य संश्रयात् (गुरुं प्रपद्येत्)॥२३॥

(प्रपत्तौ दीक्षितानां [क] वैष्णवाचार [ख]परिपालनपराणां कृते सप्तविधभक्ति [ग/१-७]-वैष्णवव्रतोत्सव [घ]-पञ्चयज्ञ [ङ]तीर्थवास [च]-वैष्णवतिलकादि-बाह्याभ्यन्तर-चिह्न [छ-ज]धारणादेः उपदेशः)

लब्ध्वानुग्रहम् आचार्यात् श्रीकृष्णशरणं जनः [क]॥
धारयेत् तिलकं मालां वैष्णवाचारतत्परः॥२४॥
सर्वस्वं हरिसात्कार्यं त्यजेत् सर्वं अवैष्णवम्॥
हिंस्र-काम्या-ऽन्यदेवार्चा यदि नित्यं च लौकिकम्॥२५॥
पूर्वभाण्डादिकं सर्वं परित्यज्य विशुद्धितः [ख]॥
श्रवणादिपरो नित्यं हरेः प्रेमास्पदो भवेत्॥२६॥
हरेर्गुणानां श्रवणं ज्यायोभ्यः शृणुयात् सदा [ग/१]॥
जातशिक्षः यवीयोभ्यः कीर्तयेद् अन्यथैकलः [ग/२]॥२७॥
अतिसुन्दररूपाणि लीलाधामानि संस्मरेत् [ग/३]॥
पादसेवा हरेः कार्या सर्वसम्पन्निकेतनैः [ग/४]॥२८॥
अर्चनं प्रत्यहं तस्य विधिना नियमेन च [ग/५]॥
वन्दनं चरणाम्भोजे तस्य भावनयाखिले [ग/६]॥२९॥
दास्यं तदेकशरणं तत्प्रसादैकभोजनम् [ग/७]॥
एवं सप्तविधाभक्तिः प्रपन्नाधिकृता भवेत्॥३०॥

सन्धिविच्छेद :

लब्ध्वा + अनुग्रह = लब्ध्वानुग्रह [दीर्घ.]	भाण्ड + आदि = भाण्डादि [दीर्घ.]
वैष्णव + आचार = वैष्णवाचार [दीर्घ.]	श्रवण + आदि = श्रवणादि [दीर्घ.]
काम्य + अन्य = काम्याऽन्य [दीर्घ.]	परः + नित्यम् = परो नित्यम् [उ.गुण.]
देव + अर्चाः = देवार्चाः [दीर्घ.]	प्रेम + आस्पद = प्रेमास्पदः [दीर्घ.]
देवार्चाः + यदि = देवार्चा यदि [वि.लो.]	आस्पदः + भवेत् = आस्पदो भवेत् [उ गुण.]

हरेः + गुणानाम् = हरेर्गुणानाम् [रेफ.]
कीर्तयेत् + अन्यथा = कीर्तयेद् अन्यथा [जश्त्व] चरण + अम्भोजे = चरणाम्भोजे [दीर्घ.]
अन्यथा + एकलः = अन्यथैकलः [वृद्धि.] भावनया + अखिले = भावनयाखिले [दीर्घ.]
सम्पत् + निकेतनैः = सम्पन्निकेतनैः [अनुना] प्रसाद + एक = प्रसादैक [वृद्धि.]
प्रति + अहम् = प्रत्यहम् [यण.] प्रपन्न + अधि = प्रपन्नाधि [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- श्रीकृष्णस्य शरणम् इति श्रीकृष्णशरणम् [ष.तत्पु.] तत् श्रीकृष्णशरणम्
- अह्नि अह्नि प्रति इति प्रत्यहम् [अव्ययी.]
- वैष्णवस्य आचारः इति वैष्णवाचारः [ष.तत्पु.] तस्मिन् परः इति तत्परः [स.तत्पु.]
  वैष्णवाचारे तत्परः इति वैष्णवाचारतत्परः [स.तत्पु.]
- सर्वं यत् स्वं तत् सर्वस्वम् [कर्म] तत्
- न वैष्णवः इति अवैष्णवः [न.तत्पु.] तम् अवैष्णवम्
- अन्यश्च असौ देवश्च अन्यदेवः [कर्म]
  अन्यदेवस्य अर्चा इति अन्यदेवार्चा [ष.तत्पु.]
  हिंस्रश्च काम्यश्च अन्यदेवार्चा च इति हिंस्रकाम्याऽन्यदेवार्चा [द्वन्द्व.]
- पूर्वं यत् भाण्डं तत् पूर्वभाण्डम् [कर्म]
  पूर्वभाण्डम् आदि यस्य तत् पूर्वभाण्डादिकम् [बहु.] तत्
- श्रवणम् आदिः येषां तानि श्रवणादीनि [बहु.]
  तेषु परः इति श्रवणादिपरः [स.तत्पु.]
- प्रेम्णः आस्पदः इति प्रेमास्पदः [ष.तत्पु.]
- जाता शिक्षा यस्य स जातशिक्षः [बहु.]
- सुन्दराणि रूपाणि इति सुन्दररूपाणि [कर्म]
- लीलायाः धाम इति लीलाधाम [ष.तत्पु.] तानि लीलाधामानि
- पादयोः सेवा इति पादसेवा [ष.तत्पु.]
- संपदश्च निकेतनं च सम्पन्निकेतनानि [द्वन्द्व.]
  सर्वाणि च यानि सम्पन्निकेतनानि इति सर्वसम्पन्निकेतनानि [कर्म]

तैः सर्वसम्पन्निकेतनैः

- अम्भसि जायते इति अम्भोजः [उप.म.]
  चरणः अम्भोजं इव चरणाम्भोजम् [कर्म] तस्मिन् चरणाम्भोजे
- न खिलम् इति अखिलम् [न.तत्पु.] तस्मिन्
- एकस्य शरणम् इति एकशरणम् [ष.तत्पु.]
  तस्य एकशरणम् इति तदेकशरणम् [ष.तत्पु.]
- तस्य प्रसाद इति तत्प्रसादः [ष.तत्पु.]
  एकं यत् भोजनं इति एकभोजनम् [कर्म.]
  तत्प्रसादस्य एकभोजनं इति तत्प्रसादैकभोजनम् [ष.तत्पु.]
- सप्त विधा यस्या सा सप्तविधा [बहु.]
- प्रपन्नेन अधिकृता इति प्रपन्नाधिकृता [तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

लब्ध्वा [स.अ.]	हिंस्रकाम्या-	श्रवणम् [ना.]
अनु [उ.]ग्रहम् [ना.]	ऽन्यदेवार्चाः [ना.]	ज्यायोभ्यः [ना.]
आ [उ.]चार्यात् [ना.]	यदि [नि.]	शृणुयात् [आ.]
श्रीकृष्णशरणम् [ना.]	नित्यम् [ना.] च [नि.]	सदा [नि.]
जनः [ना.] धारयेत् [आ.]	लौकिकम् [ना.]	जातशिक्षः [ना.]
तिलकम् [ना.]	पूर्वभाण्डादिकम् [ना.]	यवीयोभ्यः [ना.]
मालाम् [ना.]	सर्वम् [ना.]	कीर्तयेद् [आ.]
वैष्णव-आ [उ.]चार-	परि [उ.]त्यज्य [स.अ.]	अन्यथा [नि.]
तत्परः [ना.]	वि [उ.]शुद्धितः [नि.]	एकलः [ना.]
सर्वस्वम् [ना.]	श्रवणादिपरः [ना.]	अति [उ.]सुन्दररूपाणि [ना.]
हरिसात्कार्यम् [ना.]	हरेः [ना.]	लीलाधामानि [ना.]
त्यजेत् [आ.]	प्रेमास्पदः [ना.]	सम् [उ.]स्मरेत् [आ.]
सर्वम् [ना.]	भवेत् [आ.]	पादसेवा [ना.]
अवैष्णवम् [ना.]	गुणानाम् [ना.]	कार्या [ना.]

सर्व-सम्[उ]पत्-	वन्दनम्[ना]	
नि[उ]केतनैः[ना.]	चरणाम्भोजे[ना.]	एवम्[नि]
अर्चनम्[ना]	भावनया[ना.]	सप्तविधा[ना.]
प्रति[उ]अहम्[नि]	अखिले[ना]	भक्तिः[ना.]
तस्य[ना]	दास्यम्[ना.]	प्र[उ]पन्न-
वि[उ]धिना[ना.]	तदेकशरणम्[ना.]	अधि[उ]कृता[ना.]
नि[उ]यमेन[ना.]	तत्-प्र[उ]सादैकभोजनम्[ना.]	भवेत्[आ.]

वृत्तिपरिचय :

लब्ध्वा[कृद्]	विशुद्धितः[तद्धि.]	
अनुग्रहम्[स.]	श्रवणादिपरः[स.]	विधिना[स.]
आचार्यात्[स]	प्रेमास्पदः[स.]	नियमेन[स.]
श्रीकृष्णशरणम्[स.]	श्रवणम्[कृद्]	वन्दनम्[कृद्]
धारयेत्[सना.]	जातशिक्षः[स.]	चरणाम्भोजे[स.]
वैष्णवाचारतत्परः[स.]	अन्यथा[तद्धि.]	भावनया[कृद्]
सर्वस्वम्[स.]	अतिसुन्दररूपाणि[स.]	अखिले[स.]
कार्यं[कृद्]	लीलाधामानि[स.]	दास्यम्[तद्धि.]
अवैष्णवम्[स.]	पादसेवा[स.]	तदेकशरणम्[स.]
हिंस्रकाम्यान्यदेवार्चा[स.]	कार्या[कृद्]	तत्प्रसादैकभोजनम्[स.]
लौकिकम्[तद्धि.]	सर्वसम्पन्निकेतनैः[स.]	सप्तविधा[स.]
पूर्वभाण्डादिकम्[स.]	अर्चनम्[कृद्]	भक्तिः[कृद्]
परित्यज्य[कृद्+स.]	प्रत्यहम्[स.]	प्रपन्नाधिकृता[स.]

शब्दरूपपरिचय :

अनुग्रहम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	जनः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
आचार्यात् - अ.अ.पुं.पं.ए.	तिलकम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
श्रीकृष्णशरणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	मालाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

(वैष्णवाचारतत्परः, श्रवणादिपरः, प्रेमास्पदः, जातशिक्षः, एकलः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.
(सर्वम्, अवैष्णवम्, नित्यम्, लौकिकम्, पूर्वभाण्डादिकम्, सर्वम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
(श्रवणम्, अर्चनम्, वन्दनम्, दास्यम्, तदेकशरणम्, तत्प्रसादैकभोजनम्)-अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
सर्वस्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	सर्वसम्पन्निकेतनैः - अ.अ.नपुं.तृ.व.
हिंस्रकाम्यान्यदेवार्चा - अ.आ.स्त्री.द्वि.व.	तस्य - ह.द.पुं.ष.ए.
हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.	विधिना - अ.इ.पुं.तृ.ए.
गुणानाम् - अ.अ.पुं.ष.व.	नियमेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
ज्यायोभ्यः - ह.स.पुं.पं.ब.	चरणाम्भोजे - अ.अ.नपुं.स.ए.
यवीयोभ्यः - ह.स्.पुं.पं.ब.	भावनया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
अतिसुन्दररूपाणि - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.	अखिले - अ.अ.नपुं.स.ए.
लीलाधामानि - ह.न.नपुं.द्वि.ब.	सप्तविधा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
पादसेवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	भक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
कार्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	प्रपन्नधिकृता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

धारयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.(ण्यन्त)	शृणुयात् - स्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
त्यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	कीर्तयेत् - चुरादि.वि.लिङ्.प्र.ए.(ण्यन्त)
भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	संस्मरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : जनः आचार्यात् अनुग्रहम् श्रीकृष्णशरणं च लब्ध्वा वैष्णवाचारतत्परः (सन्) तिलकं मालां च धारयेत्.(२४). (ततः तेन) सर्वस्वं हरिसात्कार्यम् (च सः) अवैष्णवम् सर्वं त्यजेत् हिंस्र-काम्या-ऽन्यदेवार्चाः त्यजेत्, नित्यं च यदि लौकिकं (चेत् तदपि) त्यजेत्.(२५). पूर्वभाण्डादिकं सर्वं परित्यज्य विशुद्धितः नित्यं श्रवणादिपरः (सन्) हरेः प्रेमास्पदो भवेत्.(२६). हरेः गुणानां श्रवणं (कुर्यात्) ज्यायोभ्यः (च) सदा शृणुयात्, जातशिक्षः (सन्) यवीयेभ्यः कीर्तयेत्

अन्यथा एकलः (कीर्तयेत्).(२७). (हरेः) अतिसुन्दररूपाणि लीलाधामानि च संस्मरेत्, हरेः सर्वसम्पन्निकेतनैः पादसेवा (अपि) कार्या.(२८). प्रत्यहं विधिना नियमेन च तस्य अर्चनं (कुर्यात्), अखिले जगति तस्य भावनया चरणाम्भोजे वन्दनं (कुर्यात्) .(२९). तदेकशरणं तत्प्रसादैकभोजनं दास्यं (कुर्यात्). एवं प्रपन्नाधिकृता भक्तिः सप्तविधाः भवेत्॥३०॥

(प्रपत्तौ दीक्षितानां - क वैष्णवाचार - [ख]परिपालनपराणां कृते वैष्णवव्रतोत्सव[घ]-पञ्चयज्ञ [ङ]तीर्थवास [च]-वैष्णवतिलकादि-बाह्याभ्यन्तरचिह्न[छ-ज] धारणादेः उपदेशः)

पूर्वविद्धं परित्याज्यं व्रतं तद्विष्णुपञ्चकम्॥
जयन्ती तूदयेऽन्येन दुष्टान्याप्यरुणोदयात्॥३१॥
वर्षाश्रितान्युत्सवानि स्वाश्रितान्यपि यान्युत[घ]॥
तानि सर्वाणि हरये ह्यनुकूलानि चार्पयेत्॥३२॥
श्राद्धानि चोत्तमान्येव वैश्वदेवं च दैवकम्॥
हरेः प्रसादतः कुर्यात् ततस्तृप्तिरनुत्तमा॥३३॥
प्रसादोऽपि बलिः कार्यः स्वात्मसंस्कारएव सः॥
अन्नस्य चात्मनश्चापि तत्संस्कारेण तत्परः॥३४॥
विप्रा गावो हरेर्भक्ताः सदा पूज्या हरेः प्रियाः॥
गृहस्थस्यातिथिर्यस्मात् पूज्यो दीनो दयास्पदः[ङ]॥३५॥
जगन्नाथे द्वारिकायां श्रीरंगे व्रजमण्डले॥
यत्र पूजाप्रवाहः स्यात् तत्र तिष्ठेच्च तत्परः॥३६॥
गंगादि-तीर्थ-वर्येषु यथा चित्तं न दुष्यति[च]॥
श्रवणाद्यैः भजेदेवं श्रीभागवततत्परः॥३७॥
ऊर्ध्वपुण्ड्राणि मृन्मुद्राः तुलसीकाष्ठजापि स्रक्॥
बाह्यङ्गान्यान्तराणि स्युः भक्ते शान्तिविरक्तयः॥३८॥
शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ॥

दया दानं च विज्ञानं श्रद्धा दैवात्मसम्पदः ॥३९॥
दैवात्मसम्पदः पुंसः भक्तिर्भवति नैष्ठिकी [छ-ज]॥

सन्धिविच्छेद :

तु + उदये = तूदये [दीर्घ.]
तूदये + अन्येन = तूदयेऽन्येन [पू.रू.]
दुष्टा + अन्या = दुष्टान्या [दीर्घ.]
दुष्टान्या + अपि = दुष्टान्यापि [दीर्घ.]
अपि + अरुण = अप्यरुण [यण्.]
अरुण + उदयात् = अरुणोदयात् [गुण]
वर्ष + आश्रिता = वर्षाश्रिता [दीर्घ.]
श्रितानि + उत्सवा = श्रितान्युत्सवा [यण्.]
स्व +आश्रितानि = स्वाश्रितानि [दीर्घ.]
श्रितानि + अपि = श्रितान्यपि [यण्.]
यानि + उत = यान्युत [यण्.]
हि + अनुकूलानि = ह्यनुकूलानि [यण्.]
च + अर्पयेत् = चार्पयेत् [दीर्घ.]
च + उत्तमानि = चोत्तमानि [गुण]
चोत्तमानि + एव = चोत्तमान्येव [यण्.]
ततः + तृप्तिः = ततस्तृप्तिः [स.]
तृप्तिः + अनुत्तमा = तृप्तिरनुत्तमा [रेफ.]
प्रसादः + अपि = प्रसादोऽपि [उ.पू.रू.]
स्व+ आत्म = स्वात्म [दीर्घ.]
सम् + कारः = संस्कारः [रु.अनु.]
संस्कारः + एव = संस्कार एव [वि.लो.]
च + आत्मनः = चात्मनः [दीर्घ]
चात्मनः + च = चात्मनश्च [स.श्चु]

च + अपि = चापि [दीर्घ.]
विप्राः + गावः = विप्रा गावः [वि.लो.]
गावः + हरेः = गावो हरेः [उ.गुण.]
हरेः + भक्ताः = हरेर्भक्ताः [रेफ.]
पूज्याः + हरेः = पूज्या हरेः [वि.लो.]
गृहस्थस्य + अतिथिः = गृहस्थस्यातिथिः [दीर्घ.]
अतिथिः + यस्मात् = अतिथिर्यस्मात् [रेफ.]
पूज्यः + दीनः + दयास्पदः =
पूज्यो दीनो दयास्पदः [उ.गुण.]
दया + आस्पदः = दयास्पद [दीर्घ.]
जगत् + नाथे = जगन्नाथे [अनुना.]
तिष्ठेत् + च = तिष्ठेच्च [श्चु.]
गंगा + आदि = गंगादि [दीर्घ.]
श्रवण + आद्यैः = श्रवणाद्यैः [दीर्घ.]
भजेत् + एवम् = भजेदेवम् [जश्त्व.]
मृत् + मृद्रा = मृन्मृद्रा [अनु.]
काष्ठजा + अपि = काष्ठजापि [दीर्घ.]
बाह्य + अङ्गानि = बाह्याङ्गानि [दीर्घ.]
अङ्गानि+आन्तरा = अङ्गान्यान्तरा [यण्.]
शमः + दमः = शमो दमः [उ.गुण.]
दमः + तपः = दमस्तपः [स.]
क्षान्तिः + आर्जवम् = क्षान्तिरार्जवम् [रेफ.]
दैव + आत्म = दैवात्म [दीर्घ.]
भक्तिः + भवति = भक्तिर्भवति [रेफ.]

समासविग्रह :

- पूर्वेण (तिथिना) विद्धम् इति पूर्वविद्धम् [तृ.तत्पु.] तत् पूर्वविद्धम्
- विष्णोः पञ्चकम् इति विष्णुपञ्चकम् [ष.तत्पु]
- अरुणस्य उदयः इति अरुणोदयः [ष.तत्पु.] तस्मात् अरुणोदयात्
- वर्षस्य आश्रितम् इति वर्षाश्रितम् [ष.तत्पु.] तानि
- स्वस्य आश्रितम् इति स्वाश्रितम् [ष.तत्पु.] तानि स्वाश्रितानि
- न विद्यते उत्तमो यस्याः सा अनुत्तमा [बहु.]
- स्वस्य आत्मा इति स्वात्मा [ष.तत्पु.]
- स्वात्मनः संस्कारः इति स्वात्मसंस्कारः [ष.तत्पु.]
- तस्य संस्कारः इति तत्संस्कारः [तत्पु.] तेन तत्संस्कारेण
- तस्मिन् परः (परायणः) इति तत्परः [स.तत्पु.]
- गृहे तिष्ठति इति गृहस्थः [उप.स.]
- दयायाः आस्पदः इति दयास्पदः [ष.तत्पु.] स
- व्रजस्य मण्डलम् इति व्रजमण्डलम् [ष.तत्पु.] तस्मिन् व्रजमण्डले
- पूजायाः प्रवाह इति पूजाप्रवाहः [ष.तत्पु.]
- गंगा आदिः येषां तानि गंगादीनि [बहु.] तीर्थेषु वर्य इति तीर्थवर्य [स.तत्पु.]
  गङ्गादीनि यानि तीर्थवर्याणि तानि गङ्गादितीर्थवर्याणि [कर्म.]
  तेषु गंगादितीर्थवर्येषु
- श्रवणं आद्यं येषां तानि श्रवणाद्यानि [बहु.] तैः श्रवणाद्यैः
- श्रीभागवते तत्परः इति श्रीभागवततत्परः [स.तत्पु.]
- ऊर्ध्वे पुण्ड्रम् इति ऊर्ध्वपुण्ड्रम् [स.तत्पु.] तानि ऊर्ध्वपुण्ड्राणि
- मृदः मुद्रा इति मृन्मुद्राः [ष.तत्पु.] सा
- तुलस्याः काष्ठम् इति तुलसीकाष्ठम् [ष.तत्पु.] तस्मात् जाता तुलसीकाष्ठजा [उप.स.]
- बाह्यं च तद् अङ्कं च बाह्याङ्कम् [कर्म.] तानि बाह्याङ्कानि
- शान्तिश्च विरक्तयश्च च शान्तिविरक्तयः [द्वन्द्व.]
- दैवश्चासौ आत्मा इति दैवात्मा [कर्म.]
  दैवात्मा सम्पत् यस्य स दैवात्मसम्पत् [बहु.] ताः दैवात्मसम्पदः

शब्दपरिचय :

पूर्वविद्धम्[ना.]
परि[उ.]त्याज्यम्[ना.]
व्रतं[ना.] तद्[ना.]
विष्णुपञ्चकम्[ना.]
जयन्ती[ना.] तु[नि.]
उत्[उ.]-अये[ना.]
अन्येन[ना.] दुष्टा[ना.]
अन्या[ना.] अपि[नि.]
अरुण-उत्[उ.]अयात्[ना.]
वर्ष-आ[उ.]श्रितानि[ना.]
उत्[उ.]सवानि[ना.]
स्व-आ[उ.]श्रितानि[ना.]
यानि[ना.] उत[नि.]
तानि[ना.]
सर्वाणि[ना.]
हरये[ना.] हि[नि.]
अनु[उ.]कूलानि[ना.]
च[नि.] अर्पयेत्[आ.]
श्राद्धानि[ना.]
उत्[उ.]तमानि[ना.]
एव[नि.]
वैश्वदेवम्[ना.]
दैवकम्[ना.]
हरेः[ना.]
प्र[उ.]सादतः[नि.]
कुर्यात्[आ.]
ततः[नि.] तृप्तिः[ना.]
अन्-उत्[उ.]तमा[ना.]
प्र[उ.]सादः[ना.]
बलिः[ना.] कार्यः[ना.]
स्वात्म-सम्[उ.]स्कारः[ना.]
सः[ना.] अन्नस्य[ना.]
आत्मनः[ना.]
तत्-सम्[उ.]स्कारेण[ना.]
तत्परः[ना.]
वि[उ.]प्राः[ना.]
गावः[ना.] हरेः[ना.]
भक्ताः[ना.] सदा[नि.]
पूज्याः[ना.] प्रियाः[ना.]
गृहस्थस्य[ना.]
अतिथिः[ना.]
यस्मात्[ना.]
पूज्यः[ना.] दीनः[ना.]
दयास्पदः[ना.]
जगन्नाथे[ना.]
द्वारिकायाम्[ना.]
श्रीरंगे[ना.]
व्रजमण्डले[ना.]
यत्र[नि.]
पूजा-प्र[उ.]वाहः[ना.]
स्यात्[आ.] तत्र[नि.]
तिष्ठेत्[आ.]
तत्परः[ना.]
गंगादितीर्थवर्येषु[ना.]
यथा[नि.]
चित्तम्[ना.] न[नि.]
दुष्यति[आ.]
श्रवणाद्यैः[ना.]
भजेद्[आ.] एवम्[नि.]
श्रीभागवततत्परः[ना.]
ऊर्ध्वपुण्ड्राणि[ना.]
मृन्मुद्राः[ना.]
तुलसीकाष्ठजा[ना.]
अपि[नि.] स्रक्[ना.]
बाह्यङ्गानि[ना.]
आन्तराणि[ना.]
स्युः[आ.] भक्तेः[ना.]
शान्ति-वि[उ.]रक्तयः[ना.]
शमः[ना.] दमः[ना.]
तपः[ना.] शौचं[ना.]
क्षान्तिः[ना.] आर्जवम्[ना.]
दया[ना.] दानं[ना.]
वि[उ.]ज्ञानम्[ना.]
श्रद्धा[ना.]
दैवात्म-सम्[उ.]पदः[ना.]
पुंसः[ना.] भक्तिः[ना.]
भवति[आ.]
नैष्ठिकी[ना.]

वृत्तिपरिचय :

पूर्वविद्धम् [स.]	कार्यः [कृद.]	यथा [तद्धि.]
परित्याज्यम् [कृद+स.]	स्वात्मसंस्कारः [स.]	चित्तम् [कृद.]
विष्णुपञ्चकम् [स.]	अन्नस्य [कृद.]	श्रवणाद्यैः [स.]
उदये [स.] दुष्टा [कृद.]	तत्संस्कारेण [स.]	श्रीभागवततत्परः [स.]
अरुणोदयात् [स.]	तत्परः [स.]	ऊर्ध्वपुण्ड्राणि [स.]
वर्षाश्रितानि [स.]	विप्राः [स.] भक्ताः [कृद.]	मृन्मुद्राः [स.]
उत्सवानि [स.]	पूज्याः [कृद.]	तुलसीकाष्ठजा [स.]
स्वाश्रितानि [स.]	गृहस्थस्य [स.]	बाह्याङ्गानि [स.]
अनुकूलानि [स.]	पूज्यः [कृद.] दीनः [कृद.]	आन्तराणि [तद्धि.]
अर्पयेत् [सना.]	दयास्पदः [स.]	भक्तेः [कृद.]
श्राद्धानि [तद्धि.]	जगन्नाथे [स.]	शान्तिविरक्तयः [स.]
उत्तमानि [स.]	द्वारिकायाम् [तद्धि.]	क्षान्तिः [कृद.]
वैश्वदेवम् [तद्धि.]	श्रीरङ्गे [स.]	आर्जवम् [तद्धि.]
दैवकम् [तद्धि.]	व्रजमण्डले [स.]	दानम् [कृद.]
प्रसादतः [तद्धि.]	यत्र [तद्धि.]	विज्ञानम् [कृद+स.]
ततः [तद्धि.] तृप्तिः [कृद.]	पूजाप्रवाहः [स.]	दैवात्मसम्पदः [स.]
अनुत्तमा [स.]	तत्र [तद्धि.] तत्परः [स.]	भक्तिः [कृद.]
प्रसादः [स.]	गंगादितीर्थवर्येषु [स.]	नैष्ठिकी [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

(पूर्वविद्धम्, परित्याज्यम्, व्रतम्, विष्णुपञ्चकम्, चित्तम्, शैचम्, आर्जवम्, दानम्, विज्ञानम्) अ.अ.नपुं.प्र.ए.

(वर्षाश्रितानि, उत्सवानि, स्वाश्रितानि, सर्वाणि, अनुकूलानि, यानि, तानि, श्राद्धानि, उत्तमानि) - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.

(विप्राः, भक्ताः, पूज्याः, प्रियाः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

(प्रसादः, कार्यः, स्वात्मसंस्कारः, तत्परः, पूज्यः, दीनः, दयास्पदः,

पूजाप्रवाहः, शमः, दमः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.
(दुष्टा, अन्या, अनुत्तमा, तुलसीकाष्ठजा, दया, श्रद्धा) - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
(ऊर्ध्वपुण्ड्राणि, बाह्याङ्गानि, आन्तराणि) - अ.अ.नपुं.प्र.ब.

तद् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
यस्मात् - ह.द्.पुं.पं.ए.
जयन्ती - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.
जगन्नाथे - अ.अ.पुं.स.ए.
उदये - अ.अ.पुं.स.ए.
द्वारिकायाम् - अ.आ.स्त्री.स.ए.
अन्येन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
श्रीरंगे - अ.अ.पुं.स.ए.
अरुणोदयात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
व्रजमण्डले - अ.अ.नपुं.स.ए.
हरये - अ.इ.पुं.च.ए.
गंगादितीर्थवर्येषु - अ.अ.नपुं.स.ब.
वैश्वदेवम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
श्रवणाद्यैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
दैवकम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
श्रीभागवततत्परः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
मृन्मुद्राः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब.
बलिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
स्रक् - ह.ज्.स्त्री.प्र.ए.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
भक्तेः - अ.इ.स्त्री.ष.ए.
अन्नस्य - अ.अ.नपुं.ष.ए.
शान्तिविरक्तयः - अ.इ.स्त्री.प्र.ब.
आत्मनः - ह.न.पुं.ष.ए.
तपः - ह.स्.नपुं.प्र.ए.
तत्संस्कारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
क्षान्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
गावः - अ.ओ.स्त्री.प्र.ब.
दैवात्मसम्पदः - ह.द.स्त्री.प्र.ब.
हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.
पुंसः - ह.न्.पुं.ष.ए.
गृहस्थस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
भक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
अतिथिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
नैष्ठिकी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

अर्पयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच्)
दुष्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.
कुर्यात् - तना.वि.लिङ्.प्र.ए.
भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
स्यात् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.
स्युः - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ब.
तिष्ठेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : विष्णुपञ्चकं व्रतं पूर्वविद्धं (चेत्) तत् परित्याज्यम्, जयन्ती तु उदये अन्येन दुष्टा (च) अन्या (एकादशी) अपि अरुणोदयात् (दुष्टा चेत्) त्याज्या (३१). यानि वर्षाश्रितानि उत्सवानि उत स्वाश्रितान्यपि हि अनुकूलानि (चेत्) तानि सर्वाणि हरये चार्पयेत् (३२). श्राद्धानि च उत्तमान्येव दैवकं च वैश्वदेवं हरेः प्रसादतः कुर्यात् ततः (पितृणां देवानां च) अनुत्तमा तृप्तिः (भवति) (३३). प्रसादोऽपि बलिः कार्यः सः स्वात्मसंस्कारएव भवति (अतः) अन्नस्य च आत्मनश्चापि तत्संस्कारेण तत्परः (भवेत्) (३४). विप्रा गावः हरेर्भक्ताः यस्मात् हरेः प्रियाः (तस्मात्) सदा पूज्या (भवन्ति), गृहस्थस्य (कृते) अतिथिः पूज्यो (भवति) दीनश्च दयास्पदो (भवति) (३५). जगन्नाथे द्वारिकायां श्रीरङ्गे व्रजमण्डले यत्र च पूजाप्रवाहः स्यात् तत्र तत्परः (सन्) तिष्ठेत् (३६). गङ्गादितीर्थवर्येषु यथा चित्तं न दुष्यति एवं श्रीभागवततत्परः (सन्) एवं श्रवणाद्यैः (प्रभुं) भजेत् (३७). ऊर्ध्वपुण्ड्राणि मृन्मुद्रा तुलसीकाष्टजा स्रक् अपि भक्तेः बाह्याङ्गानि शान्तिविरक्तयः (च) आन्तराणि स्युः (३८). शमो दमः तपः शौच क्षान्ति आर्जवं एव च दया दानं विज्ञानं श्रद्धा च दैवात्मसम्पदः (सन्ति) दैवात्मसम्पदः पुंसः भक्तिः नैष्ठिकी भवति ॥३९॥

(एतैः गुणैः भक्तिः सर्वात्मभावापन्ना [१] सती इहलोके प्रपञ्चविस्मृपूर्वकभगवदासक्तौ [२] वैकुण्ठादिभगवल्लोकेषु च सेवोपयोगिदेहप्राप्ता [३] वपि फलिता भवति)

यया 'सर्वात्मभावा'ख्या परा सिद्धिः स्वयं भवेत् [१]॥४०॥
सर्ववस्तुषु वैराग्यं दोषदृष्ट्या विभावयेत्॥
दमनाद् इन्द्रियाणां च सन्तुष्ट्यापि च सिध्यति॥४१॥
सर्वत्रैव विरक्तस्य रागः स्याद् नन्दनन्दने॥
तेनासक्तिश्च व्यसनं प्रपञ्चास्फुरणं [२] भवेत्॥४२॥
एवं निरुद्धचित्तस्यानुगृहीतस्य चेशितुः॥
लीलाप्रवेशो [३]ऽपीष्टश्च ''तस्मान्मच्छरणो''क्तितः॥

सन्धिविच्छेद :

सर्व + आत्म-भाव + आख्या =
सर्वात्मभावाख्या [दीर्घ.]
सम् + तुष्ट्या = सन्तुष्ट्या [प.स.]
तुष्ट्या + अपि = तुष्ट्यापि [दीर्घ.]
सर्वत्र + एव = सर्वत्रैव [वृद्धि.]
स्यात् + नन्द = स्याद् नन्द [जश्त्व.]
तेन + आसक्तिः = तेनासक्तिः [दीर्घ.]
वि + असनम् = व्यसनम् [यण्.]
प्रपञ्च + अस्फुरणं = प्रपञ्चास्फुरणं [दीर्घ.]

चित्तस्य + अनु = चित्तस्यानु [दीर्घ.]
च + ईशितुः = चेशितुः [गुण]
प्रवेशः + अपि = प्रवेशोऽपि [उ.पू.रू.]
अपि + इष्टः = अपीष्टः [दीर्घ.]
इष्टः + च = इष्टश्च [स.श्चु.]
तस्मात् + मत् = तस्मान्मत् [प.स.]
मत् + शरण = मच्छरण [श्चु.छ.]
शरण + उक्तितः = शरणोक्तितः [गुण.]

समासविग्रह :

- आत्मनः भाव इति आत्मभावः [प.तत्पु.]
  सर्वस्मिन् आत्मभाव इति सर्वात्मभावः [स.तत्पु.]
  सर्वात्मभावः इति आख्या यस्याः सा (सिद्धिः) सर्वात्मभावाख्या [बहु.]
- सर्वाणि च तानि वस्तूनि इति सर्ववस्तूनि तेषु सर्ववस्तुषु
- दोषस्य दृष्टिः इति दोषदृष्टिः [प.तत्पु.] तया दोषदृष्ट्या
- नन्दस्य नन्दनः इति नन्दनन्दनः [प.तत्पु.] तस्मिन् नन्दनन्दने
- न स्फुरणं इति अस्फुरणम् [प.तत्पु.]
  प्रपञ्चस्य अस्फुरणं इति प्रपञ्चास्फुरणम् [प.तत्पु.]
- निरुद्धं चित्तं यस्य सः निरुद्धचित्तः [बहु.] तस्य निरुद्धचित्तस्य
- लीलायाम् प्रवेशः इति लीलाप्रवेशः [स.तत्पु.]
- अहं शरणं यस्य स मच्छरणम् [बहु.] मच्छरणस्य (वाक्यस्य) उक्तिः इति मच्छरणोक्तिः [प.तत्पु.] तस्मात् मच्छरणोक्तितः [पं.तसि.]

शब्दपरिचय :

यया [ना.] 'सर्वात्मभावा'ख्या [ना.] परा [ना.] सिद्धिः [ना.] स्वयम् [नि.] भवेत् [आ.]

सर्ववस्तुषु[ना.]	सिध्यति[आ.]	भवेत्[आ.]
वैराग्यम्[ना.]	सर्वत्र[ना.] एव[नि.]	एवम्[नि.]
दोषदृष्ट्या[ना.]	वि[उ.]रक्तस्य[ना.]	नि[उ.]रुद्धचित्तस्य[ना.]
वि[उ.]भावयेत्[आ.]	रागः[ना.] स्याद्[आ.]	अनु[उ.]गृहीतस्य[ना.]
दमनाद्[ना.]	नन्दनन्दने[ना.]	ईशितुः[ना.]
इन्द्रियाणाम्[ना.]	तेन[ना.]	लीला-प्र[उ.]वेशः[ना.]
च[नि.]	आ[उ.]सक्तिः[ना.]	इष्टः[ना.]
सम्[उ.]तुष्ट्या[ना.]	वि[उ.]असनम्[ना.]	तस्मात्[ना.]
अपि[नि.]	प्र[ना.]पञ्चास्फुरणम्[ना.]	मच्छरणोक्तितः[नि.]

वृत्तिपरिचय :

'सर्वात्मभावा'ख्या[स.]	दमनात्[कृद्.]	प्रपञ्चास्फुरणम्[स.]
सिद्धिः[कृद्.]	सन्तुष्ट्या[कृद्+स.]	निरुद्धचित्तस्य[स.]
सर्ववस्तुषु[स.]	विरक्तस्य[कृद्.]	अनुगृहीतस्य[कृद्+स.]
वैराग्यम्[तद्धि.]	नन्दनन्दने[स.]	लीलाप्रवेशः[स.]
दोषदृष्ट्या[स.]	आसक्तिः[कृद्+स.]	इष्टः[स.]
विभावयेत्[सना.]	व्यसनम्[कृद्+स.]	''मच्छरणो''क्तितः[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

यया - ह.द्.स्त्री.तृ.ए.	इन्द्रियाणाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब.
सर्वात्मभावाख्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	सन्तुष्ट्या - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
परा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	विरक्तस्य - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
सिद्धि - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	रागः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सर्ववस्तुषु - अ.उ.नपुं.स.ब.	नन्दनन्दने - अ.अ.पुं.स.ए.
वैराग्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	तेन - ह.द्.पुं.तृ.ए.
दोषदृष्ट्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.	आसक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
दमनाद् - अ.अ.नपुं.ष.ए.	व्यसनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

प्रपञ्चास्फुरणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
निरुद्धचित्तस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
अनुगृहीतस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
ईशितुः - अ.ऋ.पुं.ष.ए.
लीलाप्रवेशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
इष्टः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तस्मात् - ह.द्.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
विभावयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच्.प्र)
सिध्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.
स्याद् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : यथा (नैष्ठिक्या भक्त्या) 'सर्वात्मभावा'ख्या परा सिद्धिः स्वयं भवेत् (४०). दोषदृष्ट्या सर्ववस्तुषु वैराग्यं विभावयेत्, इन्द्रियाणां दमनाद् च, सन्तुष्ट्या अपि च (तद्) सिध्यति (४१). सर्वत्र विरक्तस्य एव नन्दनन्दने रागः स्याद्. तेन आसक्तिः व्यसनं प्रपञ्चास्फुरणं च भवेत् (४२). एवं ईशितुः अनुगृहीतस्य निरुद्धचित्तस्य च ''तस्मान्मच्छरणो'क्तितः लीलाप्रवेशः अपि इष्टः च (भवति)॥४३॥

(एतादृशानां वैष्णवानां भूतलेऽस्मिन् स्थितिः नेतरसाधारणी भवति)

न पापं स करोत्येव प्रमादे त्वाशु निष्कृतिः ॥
अज्ञातस्खलितानां च हरिरेव परा गतिः ॥४४॥
हरिर्भक्तापराधेषु दययैव प्रसीदति ॥
दोषेषु न गतिस्तस्मात् दोषान् सम्परिवर्जयेत् ॥४५॥
अशून्या दिवसा यामाः मुहूर्त-घटिका-लवाः ॥
भगवद्भजनैः कार्याः संसारासक्तिरन्यथा ॥४६॥

सन्धिविच्छेद :

सः + करोति = स करोति [वि.लो.]
करोति + एव = करोत्येव [यण्.]
तु + आशु = त्वाशु [यण्.]
हरिः + एव = हरिरेव [रेफ.]

हरिः + एव = हरिरेव [वृद्धि]
हरिः + भक्त = हरिर्भक्त [रेफ.]
भक्त + अपराधे = भक्तापराधे [दीर्घ.]
दयया + एव = दययैव [वृद्धि.]
गतिः + तस्मात् = गतिस्तस्मात् [स.]

अशून्याः + दिवसाः + यामाः =
अशून्या दिवसा यामाः [वि.लो.]
संसार + आसक्तिः = संसारासक्तिः [दीर्घ.]
आसक्तिः + अन्यथा = आसक्तिरन्यथा [रेफ.]

समास विग्रह :

- न ज्ञातः इति अज्ञातः [न.तत्पु.]
  अज्ञातेन (अपराधेन) स्खलितः इति अज्ञातस्खलितः [तृ.तत्पु.]
  तेषां अज्ञातस्खलितानां
- भक्तानां अपराधः इति भक्तापराध इति भक्तापराधः [ष.तत्पु.] तेषु भक्तापराधेषु
- न शून्यः इति अशून्यः [न.तत्पु.] ते अशून्याः
- मुहूर्तश्च घटिका च लवश्च मुहूर्त-घटिका-लवाः [द्वन्द्व.]
- भगवतः भजनं इति भगवद्भजनम् [ष.तत्पु.] तैः भगवद्भजनैः
- संसारे आसक्तिः इति संसारासक्तिः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

न [नि.] पापम् [ना.]	हरिः [ना.]	
सः [ना.] करोति [आ.]	भक्तअपराधेषु [ना.]	दीवसाः [ना.]
एव [नि.] प्रमादे [ना.]	दयया [ना.]	यामाः [ना.]
तु [नि.] आशु [नि.]	प्र [उ.] सीदति [ना.]	मुहूर्तघटिकालवाः [ना.]
निस् [उ.] कृतिः [ना.]	दोषेषु [ना.]	भगवद्भजनैः [ना.]
अज्ञातस्खलितानाम् [ना.]	तस्मात् [ना.]	कार्याः [ना.]
च [नि.] हरिः [ना]	दोषान् [ना.]	सम् [उ] सार
परा [ना.]	सम् [उ.] परि [उ] वर्जयेत् [आ.]	-आ [उ.] सक्तिः [ना.]
गतिः [ना]	अशून्याः [ना.]	अन्यथा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

निष्कृतिः [कृद्+स.]	भक्तापराधेषु [स.]	भगवद्भजनैः [स.] कार्या [कृद]
अज्ञातस्खलितानाम् [स.]	अशून्याः [स.]	संसारासक्तिः [स.]
गतिः [कृद्]	मुहूर्त-घटिका-लवाः [स.] अन्यथा [तद्धि.]	

शब्दरूपपरिचय :

(अशून्याः, दिवसाः, यामाः, मुहूर्त-घटिका-लवाः, कार्याः) - अ.अ.पुं.प्र.ब.

पापम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	भक्तापराधेषु - अ.अ.पुं.स.ब.
सः - ह.द्.पुं.प्र.ए.	दयया - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
प्रमादे - अ.अ.पुं.स.ए.	दोषेषु - अ.अ.पुं.स.ब.
निष्कृतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	तस्मात् - ह.द्.पुं.पं.ए.
अज्ञातस्खलितानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.	दोषान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.	भगवद्भजनैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
गतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	संसारासक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : करोति - तनादि.लट्.प्र.ए.

प्रसीदति - भ्वा.लट्.प्र.ए. सम्परिवर्जयेत् - चुरा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : सः पापं न एव करोति, प्रमादे तु आशु निष्कृतिः (भवति). अज्ञातस्खलितानां च हरिः एव परा गतिः (अस्ति). (यस्मात्) भक्तापराधेषु दोषेषु हरिः दयया एव प्रसीदति अन्या गतिः न (अस्ति). तस्मात् दोषान् सम्परिवर्जयेत् (४५). दिवसाः यामाः मुहूर्त-घटिका-लवाः भगवद्भजनैः अशून्याः कार्याः अन्यथा संसारासक्तिः (भवति)॥४६॥

(श्रीहरिभजनवद् गुरोश्च वैष्णवभक्तानांश्चापि नमनार्चनप्रपत्तयः श्रीहरिभावनया कर्तव्याः)

गुरुसेवा गुरोराज्ञा गुरौ श्रीहरिभावना।।
गुरौ भयं गुरौ सिद्धिः प्रपन्नः परिभावयेत्।।४७।।
भक्तवृन्दान् नमेद् अर्चेद् दृष्ट्वा हृष्येत्(/हर्षं) समानयेत्।।
भक्तेष्वेवं हरिं साक्षात् प्रसादेन व्यवस्थितम्।।४८।।
विना भक्तप्रसङ्गेन सद्गुरोः कृपया विना।।
श्रीभागवतशास्त्रेण विना भक्तिः कथं भवेत्।।४९।।
विना गद्गदकण्ठेन द्रवता चेतसा विना।।
विना नृत्येन गानेन हरिप्रीतिः कथं भवेत्?।।५०।।
''दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते''।।५१।।

सन्धिविच्छेद :

गुरोः + आज्ञा = गुरोराज्ञा [रेफ.]

नमेत् + अर्चेत् + दृष्ट्वा = नमेद् अर्चेद् दृष्ट्वा [जश्त्व.]

भक्तेषु + एवं = भक्तेष्वेवम् [यण्.]

वि + अवस्थितम् = व्यवस्थितम् [यण्.]

हि + एषा = ह्येषा [यण्.]

दुरति + अया = दुरत्यया [यण्.]

समास विग्रह :

- गुरोः सेवा इति गुरुसेवा [प.तत्पु.]
- श्रीहरेः भावना इति श्रीहरिभावना [प.तत्पु.]
- भक्तानां वृन्दः इति भक्तवृन्दः [प.तत्पु.] तान् भक्तवृन्दान्
- भक्तस्य प्रसङ्गः इति भक्तप्रसङ्गः [प.तत्पु.] तेन
- सत् च असौ गुरुश्च सद्गुरुः [कर्म] तस्य सद्गुरोः
- श्रीभागवतं च तद् शास्त्रं च श्रीभागवतशास्त्रम् [कर्म] तेन श्रीभागवतशास्त्रेण
- गद् (अव्यक्तं) गदति इति गद्गदः [उप.स.] गद्गदः य कण्ठः स गद्गदकण्ठः [कर्म] तेन गद्गदकण्ठेन
- हरौ प्रीतिः इति हरिप्रीतिः [स.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

गुरुसेवा [ना.]	हरिम् [ना.]	गानेन [ना.]
गुरोः [ना.]	साक्षात् [नि.]	हरिप्रीतिः [ना.]
आ [उ.] ज्ञा [ना.]	प्र [उ.] सादेन [ना.]	दैवी [ना.]
श्रीहरिभावना [ना.]	वि [उ.] -अव [उ.] स्थितम् [ना.]	हि [नि.]
भयम् [ना.]	विना [नि.]	एषा [ना.]
सिद्धिः [ना.]	भक्त-प्र [उ.] सङ्गेन [ना.]	गुणमयी [ना.]
प्र [उ.] पन्नः [ना.]	सद्गुरोः [ना.]	मम [ना.]
परि [उ.] भावयेत् [आ.]	कृपया [ना.]	माया [ना.]
भक्तवृन्दान् [ना.]	श्रीभागवतशास्त्रेण [ना.]	दुर् [उ.] अति [उ.] अया [ना.]
नमेद् [आ.]	भक्तिः [ना.]	माम् [ना.]
अर्चेद् [आ.]	कथम् [नि.]	एव [नि.] ये [ना.]
दृष्ट्वा [ना.आ.]	भवेत् [आ.]	प्र [उ.] पद्यन्ते [आ.]
हृष्येत् [आ.]	गद्गद्कण्ठेन [ना.]	मायाम् [ना.]
सम् [उ.] आ [उ.] नयेत् [आ.]	द्रवता [ना.]	एताम् [ना.]
भक्तेषु [ना.]	चेतसा [ना.]	तरन्ति [आ.]
एवम् [नि.]	नृत्येन [ना.]	ते [ना.]

वृत्तिपरिचय :

गुरुसेवा [स.]	भक्तेषु [कृद.]	
आज्ञा [स.]	प्रसादेन [स.]	द्रवता [कृद.]
श्रीहरिभावना [स.]	व्यवस्थितम् [कृद+स.]	गानेन [कृद.]
सिद्धिः [कृद.]	भक्तप्रसङ्गेन [स.]	हरिप्रीतिः [स.]
प्रपन्नः [कृद+स.]	सदगुरोः [स.]	कथम् [तद्धि.]
परिभावयेत् [सना.]	श्रीभागवतशास्त्रेण [स.]	दैवी [तद्धि.]
भक्तवृन्दान् [स.]	भक्तिः [कृद.]	गुणमयी [तद्धि.]
दृष्ट्वा [कृद]	गदगदकण्ठेन [स.]	दुरत्यया [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(गुरुसेवा, आज्ञा, माया, दुरत्यया, श्रीहरिभावना) - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

गुरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.

गुरौ - अ.उ.पुं.स.ए.

भयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

सिद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

प्रपन्नः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

भक्तवृन्दान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.

(हर्षम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.)

भक्तेषु - अ.अ.पुं.स.ब.

हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.

प्रसादेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

व्यवस्थितम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

भक्तप्रसङ्गेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

सदगुरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.

कृपया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.

श्रीभागवतशास्त्रेण - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

भक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

गद्गदकण्ठेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

द्रवता - ह.त.नपुं.तृ.ए.

चेतसा - ह.स.नपुं.तृ.ए.

नृत्येन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

गानेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

हरिप्रीतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

दैवी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.

एषा - ह.द.स्त्री.प्र.ए.

गुणमयी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.

मम - ह.द.ष.ए.

माम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.

ये - ह.द.पुं.प्र.ब.

मायाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

एताम् - ह.द.स्त्री.द्वि.ए.

ते - ह.द.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :

परिभावयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच्)

नमेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अर्चेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

हृष्येत् - दिवा.वि.लिङ्.प्र.ए.

समानयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

प्रपद्यन्ते - दिवा.लट्.प्र.ब.

तरन्ति - भ्वा.लट्.प्र.ब.

अन्वय : (प्रपन्नेन) गुरुसेवा (कर्तव्या), गुरोः आज्ञा (पालनीया), गुरौ श्रीहरिभावना (कार्या), गुरौ भयं (स्थापनीयम् च) गुरौ सिद्धिः

(अस्ति इति) प्रपन्नः परिभावयेत् (४७). भक्तवृन्दान् नमेद्, अर्चेद्, (तान्) दृष्ट्वा हृष्येत्, (गृहं) समानयेत् (वा हर्षं समानयेत्), भक्तेषु एवं प्रसादेन व्यवस्थितम् साक्षात् हरिं (पश्येत्) (४८). भक्तप्रसङ्गेन विना, सद्गुरोः कृपया विना, श्रीभागवतशास्त्रेण विना भक्तिः कथं भवेत्?(४९). गद्गदकण्ठेन विना, द्रवता चेतसा विना, नृत्येन (च) गानेन विना हरिप्रीतिः कथं भवेत्? (५०). एषा हि गुणमयी दैवी मम माया दुरत्यया (अस्ति). (अतः) ये माम् एव प्रपद्यन्ते ते एतां मायां तरन्ति॥५१॥

(भगवदैककर्तृकायां भगवदात्मिकायां च अस्यां सृष्टौ पुष्टिजीवाः भजनानन्दानुभव-प्रदानार्थमेव सृष्टाः)

क्रीडार्थमसृजत् पूर्वं स्वात्मना स्वात्मकं जगत्॥
तत्र कायभवा पुष्टिः लीलासृष्टिरनुत्तमा॥५२॥
वामांश-सम्भवानान्तु भजनानन्दलब्धये॥
विसृष्टानां ततोऽन्येषां नान्या साधनपद्धतिः॥५३॥
''यस्यायमनुगृह्णाति भगवानात्मभावितः॥
स जहाति मतिं लोके वेदे च परिनिष्ठिताम्''॥५४॥
अनुग्रहे नियोज्योऽतः संग्रहः श्रुतिसम्मतः॥
महतां समयो मानं महान्तोऽत्र हरेः प्रियाः॥५५॥

सन्धिविच्छेद :

क्रीडा + अर्थं = क्रीडार्थम् [दीर्घ.]	भजन + आनन्द = भजनानन्द [दीर्घ.]
स्व + आत्मना = स्वात्मना [दीर्घ.]	ततः + अन्येषां = ततोऽन्येषां [उ.पू.रू.]
स्व + आत्मकं = स्वात्मकम् [दीर्घ.]	न + अन्या = नान्या [दीर्घ]
सृष्टिः + अनुत्तमा = सृष्टिरनुत्तमा [रेफ.]	यस्य + अयम् = यस्यायम् [दीर्घ.]
वाम + अंश = वामांश [दीर्घ.]	सः + जहाति = स जहाति [वि.लो.]
सम्भवानाम् + तु = सम्भवानान्तु [प.स.]	योज्यः + अतः = योज्योऽतः [उ.पू.रू.]

समयः + मानं = समयो मानम्[उ गुण.] महान्तः + अत्र = महान्तोऽत्र[उ.पू.रू.]

समास विग्रह :

- क्रीडायै इदं इति क्रीडार्थं[च.तत्पु.]
- स्वस्य आत्मा इति स्वात्मा[ष.तत्पु.] तेन स्वात्मना
- स्व आत्मा यस्य तत् स्वात्मकम्[बहु.]
- कायात् भवः इति कायभवः[पं.तत्पु.] सा
- लीलायै सृष्टिः इति लीलासृष्टिः[च.तत्पु.]
- न विद्यते उत्तमो यस्याः सा अनुत्तमा[बहु.]
- वामश्च असौ अंशश्च इति वामांशः[कर्म]
  तस्मात् सम्भवः येषां ते वामांश-सम्भवाः[बहु.] तेषां वामांश-सम्भावानाम्
- भजन एव आनन्दः इति भजनानन्दः[कर्म.] तस्य लब्धिः इति भजनानन्दलब्धिः[ष.तत्पु.] तस्यै भजनानन्दलब्धये
- साधनस्य पद्धतिः इति साधनपद्धतिः[तृ.तत्पु.]
- आत्मना भावित इति आत्मभावितः[ष.तत्पु.]
- श्रुत्या सम्मतः इति श्रुतिसम्मतः[तृ.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

क्रीडार्थम्[ना.]	लीलासृष्टिः[ना.]	यस्य[ना.] अयम्[ना.]
असृजत्[आ]	अन्[उ.]-उत्[उ.]-तमा[ना.]	अनु[उ.]गृह्णाति[आ.]
पूर्वम्[ना.]	वामांश-सम्[उ.]-भवानाम्[ना.]	भगवान्[ना.]
स्वात्मना[ना.]	तु[नि.]	आत्मभावितः[ना.]
स्वात्मकम्[ना.]	भजन-आ[उ.]नन्दलब्धये[ना.]	सः[ना.] जहाति[आ.]
जगत्[ना.]	वि[उ.]सृष्टानाम्[ना.]	मतिम्[ना.]
तत्र[नि.]	ततः[नि.] अन्येषाम्[ना.]	लोके[ना.]
कायभवा[ना.]	न[नि.] अन्या[ना.]	वेदे[ना.] च[नि.]
पुष्टिः[ना.]	साधनपद्धतिः[ना.]	परि[उ.]निष्ठिताम्[ना.]

अनु[उ.]ग्रहे[ना.]	श्रुति-सम्[उ.]मतः[ना.]	महान्तः[ना.]
नि[उ.]योज्यः[ना.]	महताम्[ना.]	अत्र[नि.]
अतः[नि.]	समयः[ना.]	हरेः[ना.]
सम्[उ.]ग्रहः[ना.]	मानम्[ना.]	प्रियाः[ना.]

वृत्तिपरिचय :

क्रीडार्थम्[स.]	वामांशसम्भवानाम्[स.]	परिनिष्ठिताम्[कृद्+स.]
स्वात्मना[स.]	भजनानन्दलब्धये[स.]	अनुग्रहे[स.]
स्वात्मकम्[स.]	विसृष्टानाम्[कृद्+स.]	नियोज्यः[कृद्+स.]
तत्र[तद्धि.]	ततः[तद्धि.]	अतः[तद्धि.]
कायभवा[स.]	साधनपद्धतिः[स.]	संग्रहः[स.]
पुष्टिः[कृद्.]	भगवान्[तद्धि.]	श्रुतिसम्मतः[स.]
लीलासृष्टिः[स.]	आत्मभावितः[स.]	मानम्[कृद्.]
अनुत्तमा[स.]	मतिम्[कृद्.]	अत्र[तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

क्रीडार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
पूर्वम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
स्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए.
स्वात्मकम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
जगत् - ह.त.नपुं.द्वि.ए.
कायभवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
पुष्टिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
लीलासृष्टिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
अनुत्तमा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
वामांश-सम्भवानाम् - अ.अ.पुं.ष.व.
भजनानन्दलब्धये - अ.इ.स्त्री.च.ए.
विसृष्टानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
अन्येषाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.
अन्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
साधनपद्धतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
यस्य - ह.द.पुं.ष.ए.
अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए.
भगवान् - ह.त.पुं.प्र.ए.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
मतिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.
लोके - अ.अ.पुं.स.ए.
वेदे - अ.अ.पुं.स.ए.

35

(आत्मभावितः, नियोज्यः, संग्रहः, श्रुतिसम्मतः, समयः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.
परिनिष्ठिताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

अनुग्रहे - अ.अ.पुं.स.ए.	महान्तः - ह.न.पुं.प्र.ब.
महताम् - ह.त.पुं.ष.ब.	हरेः - अ.इ.पुं.ष.ब.
मानम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	प्रियाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.

धातुरूपपरिचय :
असृजत् - तुदा.लङ्.प्र.ए. अनुगृह्णाति - क्र्या.लट्.प्र.ए. जहाति - जुहो.लट्.प्र.ए.

अन्वय : (भगवान्) पूर्वं स्वात्मना स्वात्मकं जगत् क्रीडार्थं असृजत्, तत्र कायभवा अनुत्तमा लीलासृष्टिः पुष्टिः (अस्ति) (५२). ततः भजनानन्दलब्धये विसृष्टानाम् वामांश-सम्भवानाम् अन्येषां तु अन्या साधनपद्धतिः न (अस्ति) (५३). ''अयं आत्मभावितः भगवान् यस्य अनुगृह्णाति सः लोके वेदे च परिनिष्ठिताम् मतिं जहाति'' (५४). अतः (एतादृशः) अनुग्रहे (सति) नियोज्यः (भवति) (तादृशं तु) संग्रहः श्रुतिसम्मतः (अस्ति). अत्र मानं महतां समयः (अस्ति). अत्र हरेः प्रियाः महान्तः (सन्ति)॥५५॥

(श्रीमद्भागवत ३।७।१८श्लोकोक्त-'रतिरासा'ख्यस्य भजनानन्दस्य उपलब्धये आत्मसमर्पणादिसाधनानां निरूपणम्)

अतस्तदनुरोधेन 'रतिरासो' यथा भवेत्॥
तदर्थं वरणं कार्यं श्रीगोपालमहामनोः॥५६॥
नायमात्मा प्रवचनैन धिया न बहुश्रुतैः॥
लभ्यते वरणं हित्वा वृतं संवृणुते श्रुतेः॥५७॥
स्मृत्वा स्वीयवियोगाग्निं तापदाहो भवाम्बुधौ॥
ततः सर्वं समर्प्यैव श्रीगोपालमनुं श्रयेत्॥५८॥
''इष्टं दत्तं तपो जप्तं वृत्तं यच्चात्मनः प्रियम् ॥

दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् यत् परस्मै निवेदनम्''।।५९।।
''इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् भक्त्या तदुत्थया।।
नारायणपरो मायाम् अञ्जस्तरति दुस्तराम्''।।६०।।
एवं योगीश्वरोक्तेन भक्तिमार्गेण यो यजेत्।।
सएवातीत्य कलिजान् दोषान् गच्छेत् परं पदम्।।६१।।

सन्धिविच्छेद :

अतः + तद् = अतस्तद् [स.]
रतिरासः + यथा =
रतिरासो यथा [उ.गुण.]
न + अयम् = नायम् [दीर्घ.]
प्रवचनैः + न = प्रवचनैर्न [रेफ.]
वियोग + अग्नि = वियोगाग्नि [दीर्घ.]
तापदाहः + भव =
तापदाहो भव [उ.गुण.]
भव + अम्बुधौ = भवाम्बुधौ [दीर्घ.]
समर्प्य + एव = समर्प्यैव [वृद्धि.]
तपः + जप्तं = तपो जप्तम् [उ.गुण.]
यत् + च = यच्च [श्चु.]

यच्च + आत्मनः = यच्चात्मनः [दीर्घ.]
प्र + आनान् = प्राणान् [दीर्घ.]
तदुद् + स्थया = तदुत्थया [पू.स,थलोप,चर्त.]
परः + मायाम् =
परो मायाम् [उ.गुण.]
अञ्जः + तरति = अञ्जस्तरति [स.]
योगि + इश्वरः = योगीश्वर [दीर्घ.]
ईश्वर + उक्तेन = ईश्वरोक्तेन [गुण.]
यः + यजेत् = यो यजेत् [उ.गुण.]
सः + एव = स एव [वि.लो.]
अति + इत्य = अतीत्य [दीर्घ.]
एव + अतीत्य = एवातीत्य [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- तस्य अनुरोधः इति तदनुरोधः [ष.तत्पु.] तेन
- तस्मै इदम् इति तदर्थं [च.तत्पु.]
- रत्या रास इति रतिरासः [तृ.तत्पु.]
- महांश्चासौ मनुश्च इति महामनु [कर्म.]
  महामनु च असौ श्रीगोपालश्च श्रीगोपालमहामनु [कर्म]
  तस्य श्रीगोपालमहामनोः

- बहु यत् श्रुतं तत् बहुश्रुतम् [कर्म] तैः बहुश्रुतैः
- वियोग एव अग्निः वियोगाग्निः [कर्म]
  स्वीयश्च असौ वियोगाग्निश्च स्वीयवियोगाग्निः [कर्म] तं स्वीयवियोगाग्निं
- तापस्य दाहः इति तापदाहः [ष.तत्पु.]
- भव एव अम्बुधि भवाम्बुधि [कर्म] तस्मिन् भवाम्बुधौ
- श्रीगोपालश्च असौ मनुश्च इति श्रीगोपालमनुः [कर्म.] तं
- तेभ्यः उत्था इति तदुत्था [पं.तत्पु.] तया तदुत्थया
- नारायणे परः इति नारायणपरः [स.तत्पु.]
- योगिनां ईश्वरः योगीश्वरः [ष.तत्पु.] तेन उक्तः इति योगीश्वरोक्तः [तृ.तत्पु.]
  तेन योगीश्वरोक्तेन
- भक्तिः एव मार्गः इति भक्तिमार्गः [कर्म] तेन
- कलौ जायते इति कलिजः [उप.स.] तान्

शब्दपरिचय :

अतः [नि.]	बहुश्रुतैः [ना.]	एव [नि.]
तद्-अनु [उ.]रोधेन [ना.]	लभ्यते [आ.]	श्रीगोपालमनुम् [ना.]
रतिरासः [ना.]	हित्वा [स.आ.]	श्रयेत् [आ.]
यथा [नि.]	वृत्तम् [ना.]	इष्टम् [ना.]
भवेत् [आ.]	सं [उ.]वृणुते [आ.]	दत्तम् [ना.] तपः [ना.]
तदर्थम् [ना.]	श्रुतेः [ना.]	जप्तम् [ना.]
वरणम् [ना.]	स्मृत्वा [स.आ.]	वृत्तम् [ना.]
कार्यम् [ना.]	स्वीयवियोगाग्निम् [ना.]	यत् [ना.] च [नि.]
श्रीगोपालमहामनोः [ना.]	तापदाहः [ना.]	आत्मनः [ना.]
न [नि.] अयम् [ना.]	भवाम्बुधौ [ना.]	प्रियम् [ना.]
आत्मा [ना.]	ततः [नि.]	दारान् [ना.]
प्र [उ.]वचनैः [ना.]	सर्वम् [ना.]	सुतान् [ना.]
धिया [ना.]	सम् [उ.] अर्प्य [स.आ.]	गृहान् [ना.]

प्र [उ.] अणान् [ना.]	तद्-उत् [उ] स्थया [ना.]	यः [ना.] यजेत् [आ.]
परस्मै [ना.]	नारायणपरः [ना.]	सः [ना.] एव [नि.]
नि [उ.] वेदनम् [ना.]	मायाम् [ना.]	अति [उ.] -इत्य [स.आ.]
इति [नि.]	अञ्जः [नि.] तरति [आ.]	कलिजान् [ना.]
भागवतान् [ना.]	दुस् [उ.] तराम् [ना.]	दोषान् [ना.]
धर्मान् [ना.]	एवम् [नि.]	गच्छेत् [आ.]
शिक्षन् [ना.]	योगीश्वरोक्तेन [ना.]	परम् [ना.]
भक्त्या [ना.]	भक्तिमार्गेण [ना.]	पदम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अतः [स.]	हित्वा [कृद.]	प्राणान् [स.]
तदनुरोधेन [स.]	वृत्तम् [कृद.]	निवेदनम् [स.]
रतिरासः [स.]	श्रुतेः [कृद.]	भागवतान् [तद्धि.]
यथा [तद्धि.]	स्मृत्वा [कृद.]	शिक्षन् [कृद.]
तदर्थम् [स.]	स्वीयवियोगाग्निम् [स.]	भक्त्या [कृद.]
वरणम् [कृद.]	तापदाहः [स.]	तदुत्थया [स.]
कार्यम् [कृद.]	भवाम्बुधौ [स.]	नारायणपरः [स.]
श्रीगोपालमहामनोः [स.]	ततः [तद्धि.]	दुस्तराम् [स.]
प्रवचनैः [कृद+स.]	समर्प्य [कृद+स.]	योगीश्वरोक्तेन [स.]
बहुश्रुतैः [स.]	श्रीगोपालमनुम् [स.]	भक्तिमार्गेण [स.]
लभ्यते [सना.]	(इष्टम्, दत्तम्,	अतीत्य [कृद.]
वरणम् [कृद.]	जप्तम्, वृत्तम्) [कृद.]	कलिजान् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(तदर्थम्, वरणम्, कार्यम्, इष्टम्, दत्तम्, जप्तम्, वृत्तम्, प्रियम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तदनुरोधेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
रतिरासः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
श्रीगोपालमहामनोः - अ.उ.पुं.ष.ए.

अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए.
आत्मा - ह.न.पुं.प्र.ए.
प्रवचनैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
धिया - अ.ई.स्त्री.तृ.ए.
बहुश्रुतैः - अ.अ.पुं.तृ.ए.
वृतम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
श्रुतेः - अ.इ.स्त्री.पं.ए.
स्वीयवियोगाग्निम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.
तापदाहः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भवाम्बुधौ - अ.इ.पुं.स.ए.
सर्वम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
श्रीगोपालमनुम् - अ.उ.पुं.द्वि.ए.
तपः - ह.स.नपुं.प्र.ए.
यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
आत्मनः - ह.न.पुं.ष.ए.
दारान् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ब.
सुतान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
गृहान् - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.
प्राणान् - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.

यत् - ह.द.नपुं.प्र.ए.
निवेदनम् - अ.अ.पुं.प्र.ए.
भागवतान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
धर्मान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
शिक्षन् - ह.त.पुं.प्र.ए.
भक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.
तदुत्थया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
नारायणपरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
मायाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
अञ्जः - ह.स.नपुं.प्र.ए.
दुस्तराम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
योगीश्वरोक्तेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
भक्तिमार्गेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
यः - ह.द.पुं.प्र.ए.
सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
कलिजान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
दोषान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
परम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
पदम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
लभ्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्य)
संवृणुते - स्वा.लट्.प्र.ए.
श्रयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
तरति - भ्वा.लट्.प्र.ए.
यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
गच्छेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : अतः तदनुरोधेन यथा 'रतिरासो' भवेत् तदर्थं श्रीगोपालमहामनोः

वरणं कार्यम् (५६), अयं आत्मा वरणं हित्वा न प्रवचनेन, न धिया, न बहुश्रुतैः लभ्यते वृतं च संवृणुते श्रुतेः (प्रामाण्यात्) (५७). भवाम्बुधौ तापदाहः (अस्ति इति) स्वीयवियोगाग्निं स्मृत्वा ततः सर्वं समर्प्य एव श्रीगोपालमनुं श्रयेत् (५८). "इष्टं, दत्तं, जप्तं, यत् आत्मनः प्रियं तपश्च वृत्तम्. (तत्) दारान् सुतान् गृहान् प्राणान् परस्मै यत् च निवेदनं (तत् कुर्यात्)" (५९). "इति भागवतान् धर्मान् शिक्षन् तदुत्थया भक्त्या नारायणपरः (सन्) दुस्तराम् मायाम् अञ्जः तरति" (६०). एवं योगीश्वरोक्तेन भक्तिमार्गेण यः यजेत् स एव कलिजान् दोषान् अतीत्य परं पदं गच्छेत्॥६१॥

(तत्र कानिचिद् निषिद्धानि निरूप्यन्ते)

नावैष्णवैः सह वसेन्न तैः संसर्गमाचरेत्।।
प्रसङ्गेषु हरिं ध्यायेत् स्नायात् कर्मणि मन्त्रतः।।६२।।
देहशुद्धिः सदा कार्या करशुद्धिर्विशेषतः।।
स्वपात्रं भगवत्पात्रं स्नानपात्रं न मेलयेत्।।६३।।
एवं वस्त्रेऽपि विज्ञेये शुद्ध्यशुद्धी स्ववैष्णवैः।।
गोपयेत् स्वागमाचारं पाकसेवां हरेरपि।।६४।।

सन्धिविच्छेद :

न + अवैष्णवैः = नावैष्णवैः [दीर्घ.]
वसेत् + न = वसेन्न [अनुना.]
शुद्धिः + विशेषतः = शुद्धिर्विशेषतः [रेफ.]
वस्त्रे + अपि = वस्त्रेऽपि [पू.रू.]
शुद्धि + अशुद्धी = शुद्ध्यशुद्धी [यण्.]
स्व + आगम + आचारं = स्वागमाचारम् [दीर्घ.]
हरेः + अपि = हरेरपि [रेफ.]

समासविग्रह :

- न वैष्णवः इति अवैष्णवः [न.तत्पु.] तैः अवैष्णवैः
- देहस्य शुद्धिः इति देहशुद्धिः [ष.तत्पु.]

- करयोः शुद्धिः इति करशुद्धिः [ष.तत्पु.]
- स्वस्य पात्रं इति स्वपात्रम् [ष.तत्पु.]
- भगवतः पात्रं इति भगवत्पात्रम् [ष.तत्पु.]
- स्नानस्य पात्रं इति स्नानपात्रम् [ष.तत्पु.]
- न शुद्धिः इति अशुद्धिः [न.तत्पु.] शुद्धिश्च अशुद्धिश्च इति शुद्धचशुद्धी [द्वन्द्व.]
- स्वस्य वैष्णवः इति स्ववैष्णवः [ष.तत्पु.] तैः
- आगमस्य आचारः इति आगमाचारः [ष.तत्पु.]
  स्वस्य आगमाचारः इति स्वागमाचारः [ष.तत्पु.] तम्
- पाकस्य सेवा इति पाकसेवा [ष.तत्पु.] तां पाकसेवाम्

शब्दपरिचय :

न [नि.]	कर्मणि [ना.]	एवम् [नि.]
अवैष्णवैः [ना.]	मन्त्रतः [नि.]	वस्त्रे [ना.]
सह [नि.]	देहशुद्धिः [ना.]	अपि [नि.]
वसेत् [आ.]	सदा [नि.]	वि [उ.]ज्ञेये [ना.]
तैः [ना.]	कार्या [ना.]	शुद्धचशुद्धी [ना.]
सं [उ.]सर्गम् [ना.]	करशुद्धिः [ना.]	स्ववैष्णवैः [ना.]
आ [उ.]चरेत् [आ.]	वि [उ.]शेषतः [नि.]	गोपयेत् [आ.]
प्र [उ.]सङ्गेषु [ना.]	स्वपात्रम् [ना.]	स्व-आ [उ.]गम-
हरिम् [ना.]	भगवत्पात्रम् [ना.]	आ [ना.]चारम् [ना.]
ध्यायेत् [आ.]	स्नानपात्रम् [ना.]	पाकसेवाम् [ना.]
स्नायात् [आ.]	मेलयेत् [आ.]	हरेः [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अवैष्णवैः [स.]	मन्त्रतः [तद्धि.]	करशुद्धिः [स.]
संसर्गम् [स.]	देहशुद्धिः [स.]	विशेषतः [तद्धि.]
प्रसङ्गेषु [स]	कार्या [कृद.]	स्वपात्रम् [स.]

भगवत्पात्रम् [स]	मेलयेत् [सनादि.]	शुद्ध्यशुद्धी [स.]	स्वागमाचारम् [स.]
स्नानपात्रम् [स.]	विज्ञेये [कृद्+स.]	स्ववैष्णवैः [स.]	पाकसेवाम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(स्वपात्रम्, भगवत्पात्रम्, स्नानपात्रम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

अवैष्णवैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	करशुद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
तैः - ह.द्.पुं.तृ.ब.	वस्त्रे - अ.अ.नपुं.स.ए.
संसर्गम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	विज्ञेये - अ.आ.स्त्री.प्र.द्वि.
प्रसङ्गेषु - अ.अ.पुं.स.ब.	शुद्ध्यशुद्धी - अ.इ.स्त्री.प्र.द्वि.
हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.	स्ववैष्णवैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
कर्मणि - ह.न्.नपुं.स.ए.	स्वागमाचारम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
देहशुद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	पाकसेवाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
कार्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

वसेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

आचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	स्नायात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.
ध्यायेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	मेलयेत् - तुदा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच्)

अन्वय : अवैष्णवैः सह न वसेत्

तैः संसर्गम् न आचरेत्, प्रसङ्गेषु हरिं ध्यायेत् कर्मणि मन्त्रतः स्नायात् (६२). सदा देहशुद्धिः कार्या विशेषतः करशुद्धिः कार्या (भवति). स्वपात्रं भगवत्पात्रं स्नानपात्रं न मेलयेत् (६३). एवं वस्त्रे अपि स्ववैष्णवैः शुद्ध्यशुद्धी विज्ञेये, स्वागमाचारं हरेः पाकसेवां अपि गोपयेत् ॥६४॥

(भगवत्सेवायां व्यवहार्याणां शुचीनां वस्तूनाम् उपदेशः)

सौवर्णैः राजतैस्ताम्रैः पात्रैर्व्यवहरेत् परैः ॥

पाके स्वीयान् सतीर्थ्यांश्च सवर्णान् संनियोजयेत् ।।६५।।
समर्घ्यैव शुचिः पूर्वं हरयेऽन्यत्र योजयेत् ।।
द्विमुखं शुचि पात्रं तु ह्यंशुकं लोमजं शुचि ।।६६।।
कार्पासमाहृतं शुद्धं नवकौसुम्भयुक् शुचि ।।
विप्रैर्व्यवहृतं तीर्थम् आरामं च गृहं शुचि ।।६७।।

सन्धिविच्छेद :

राजतैः + ताम्रैः = राजतैस्ताम्रैः [स.]

वि + अवहरेत् = व्यवहरेत् [यण्]	हरये + अन्यत्र = हरयेऽन्यत्र [पू.रू.]
पात्रैः + व्यवहरेत् = पात्रैर्व्यवहरेत् [रेफ.]	हि + अशुंकम् = ह्यंशुकम् [यण्]
सतीर्थ्यान् + च = सतीर्थ्यांश्च [रु.अनु.]	वि+अवहृतम् = व्यवहृतम् [यण्]
समर्घ्य + एव = समर्घ्यैव [वृद्धि.]	विप्रैः + व्यवहृतम् = विप्रैर्व्यवहृतम् [रेफ.]

समासविग्रह :

- समानः तीर्थो (गुरुः) येषां ते सतीर्थ्यः [स.] तान्
- समानः वर्णा येषां ते सवर्णाः [बहु.] तान्
- द्वौ मुखौ यस्य तत् द्विमुखम् [बहु.] - लोम्नः जायते इति लोमजम् [उप.स.]
- नव च असौ कौसुम्भयुक् च नवकौसुम्भयुक् [कर्म].

शब्दपरिचय :

सौवर्णैः [ना.]	सतीर्थ्यान् [ना.]	अन्यत्र [नि.]
राजतैः [ना.]	च [नि.] सवर्णान् [ना.]	द्विमुखम् [ना.]
ताम्रैः [ना.]	सम् [उ.] नि [उ.] योजयेत् [आ.]	पात्रम् [ना.] तु [नि.]
पात्रैः [ना.]	सम् [उ.] -र्घ्य [स.आ.]	हि [नि.]
वि [उ.] -अव [उ.] हरेत् [आ.]	एव [नि.] शुचिः [ना.]	अंशुकम् [ना.]
परैः [ना.] पाके [ना.]	पूर्वम् [ना.]	लोमजम् [ना.]
स्वीयान् [ना.]	हरये [ना.]	शुचिः [ना.]

कार्पासम् [ना]	नवकौसुम्भयुक् [ना.]	तीर्थम् [ना.]
आ [उ] हतम् [ना.]	वि [उ] प्रैः [ना.]	आ [उ] रामम् [ना]
शुद्धम् [ना.]	वि [उ.] -अव [उ.] हृतम् [ना.]	च [नि.] गृहम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

(सौवर्णैः, राजतैः, ताम्रैः, स्वीयान्, सतीर्थ्यान्, अंशुकम्, कार्पासम्) [तद्धि.]

सवर्णान् [स.]	द्विमुखम् [स.]	नवकौसुम्भयुक् [स.]
संनियोजयेत् [सना.]	लोमजम् [स.]	विप्रैः [स.]
समर्प्य [कृद्+स.]	आहतम् [कृद्+स.]	व्यवहृतम् [कृद्+स.]
योजयेत् [सना.]	शुद्धम् [कृद्.]	आरामम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(द्विमुखम्, पात्रम्, अंशुकम्, लोमजम्, कार्पासम्, आहतम्, शुद्धम्, व्यवहृतम्, तीर्थम्, आरामम्, गृहम्) - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
(सौवर्णैः, राजतैः, ताम्रैः, पात्रैः, परैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
(स्वीयान्, सतीर्थ्यान्, सवर्णान्) - अ.अ.पुं.द्वि.ब.
पाके - अ.अ.पुं.स.ए.

शुचि - अ.इ.नपुं.प्र.ए.	नवकौसुम्भयुक् - ह.ज्.नपुं.प्र.ए.
हरये - अ.इ.पुं.च.ए.	विप्रैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

धातुरूपपरिचय :

व्यवहरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
संनियोजयेत्, योजयेत् - रुधादि.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच्)

अन्वय : पाके सौवर्णैः राजतैः ताम्रैः परैः पात्रैः व्यवहरेत्. पाके स्वीयान् सवर्णान् सतीर्थ्यान् (च) सन्नियोजयेत् (६५), शुचिः पूर्वं हरये समर्प्य एव अन्यत्र योजयेत्. द्विमुखं पात्रं तु शुचि, लोमजं

हि अंशुकं शुचिः(६६), कार्पासम् आहतं शुद्धं, नवकौसुम्भयुक् शुचि, विप्रैः व्यवहृतं तीर्थम् (जलपात्रम्) आरामं च गृहं शुचि (कथ्यते) ॥६७॥

(भगवत्सेवापरायणानाम् अन्यदेवाश्रयस्य सर्वथा निषिद्धत्वेऽपि अन्यदेवानाम् अवमाननापि हि निषिद्धेति तत्र अनुष्ठेयः प्रकारः)

नान्यदेवं व्रजेद् नैव प्रसक्तौ ह्यपमानयेत्॥
तीर्थेषु तीर्थदेवानां भूदेवानां समर्चनम्॥६८॥

सन्धिविच्छेद :

न + अन्य = नान्य [दीर्घ.]	न + एव = नैव [वृद्धि.]
व्रजेत् + न = व्रजेद् न [जश्त्व.]	हि + अपमानयेत् = ह्यपमानयेत् [यण्.]

समासविग्रह :

- अन्यश्च असौ देवश्च अन्यदेवः [कर्म] तम्
- तीर्थस्य देवः इति तीर्थदेवः [ष.तत्पु.] तेषां तीर्थदेवानाम्
- भुवः देवः इति भूदेवः [ष.तत्पु.] तेषां भूदेवानाम्

शब्दपरिचय :

न [नि.]	प्र [उ.]सक्तौ [ना.]	
अन्यदेवम् [ना.]	हि [नि.]	तीर्थदेवानाम् [ना.]
व्रजेद् [आ.]	अप [उ.]मानयेत् [आ.]	भूदेवानाम् [ना.]
एव [नि.]	तीर्थेषु [ना.]	सम् [उ.]अर्चनम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

अन्यदेवम् [स.]	अपमानयेत् [सना.]	भूदेवानाम् [स.]
प्रसक्तौ [कृद+स.]	तीर्थदेवानाम् [स.]	समर्चनम् [कृद+स.]

शब्दरूपपरिचय :

अन्यदेवम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	तीर्थदेवानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

प्रसक्तौ - अ.इ.स्त्री.स.ए.	भूदेवानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

तीर्थेषु - अ.अ.नपुं.स.ब.	समर्चनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

व्रजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	अपमानयेत् - चुरादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : अन्यदेवं न व्रजेत्, प्रसक्तौ हि नैव अपमानयेत्. तीर्थेषु तीर्थदेवानां भूदेवानां समर्चनम् (कुर्यात्) ॥६८॥

(कलौ संन्यासाग्निहोत्रादयः अशक्याः इति स्मार्ताग्निधारणविधानम्)

सन्न्यासश्चाग्निहोत्रं च कलौ नैव यथाविधि॥
सन्दिग्धधर्मसेवापि क्लेशायैवाल्पमेधसाम्॥६९॥
समर्थस्तु तयोः कुर्याद् विद्वान् स्मार्ताग्निधारणम्॥
न्यासाश्रमात् पतन् मर्त्य आरुढपतितोऽगतिः॥६९॥
यद्यप्येवं हि गार्हस्थ्यं वर्णधर्मेण दुष्करम्॥
तथाप्यायातपतितं तद्वचभ(!?) देह-यात्रया॥७१॥
न गार्हस्थ्यं विना देह-यात्रा-धर्मोऽपि सिध्यति॥
अतस्तस्मिन् स्थितस्यैव यत्किञ्चित्सिद्धिसम्भवः॥-
७२॥आश्रमो द्विविधः कौर्मे तत्रोदासीनको गृही॥
आद्येऽपि नैष्ठिकश्चान्त्ये वैष्णवोऽधिकृतस्ततः॥७३॥

सन्धिविच्छेद :

सम् + न्यासः = सन्न्यासः [प.स.]	न + एव = नैव [वृद्धि]

संन्यासः + च = संन्यासश्च [स.श्चु.]	सेवा + अपि = सेवापि [दीर्घ.]

च + अग्नि = चाग्नि [दीर्घ.]	क्लेशाय + एव = क्लेशायैव [वृद्धि.]

एव + अल्प = एवाल्प [दीर्घ.]	
समर्थः + तु = समर्थस्तु [स.]	अतः + तस्मिन् = अतस्तस्मिन् [स.]
कुर्यात् + विद्वान् = कुर्याद् विद्वान् [जश्त्व.]	स्थितस्य + एव = स्थितस्यैव [वृद्धि.]
स्मार्त + अग्नि = स्मार्ताग्नि [दीर्घ]	आश्रमः + द्विविधः = आश्रमो द्विविधः [उ.गुण.]
न्यास + आश्रमात् = न्यासाश्रमात् [दीर्घ.]	तत्र + उदासीन = तत्रोदासीन [गुण]
मर्त्यः + आरूढ = मर्त्य आरूढ [वि.लो.]	उदासीनकः + गृही = उदासीनको गृही [उ.गुण.]
पतितः + अगतिः = पतितोऽगतिः [उत्व.पू.रू.]	आद्ये + अपि = आद्येऽपि [पू.रू.]
यदि + अपि = यद्यपि [यण्.]	नैष्ठिकः + च = नैष्ठिकश्च [स.श्चु.]
यद्यपि + एवम् = यद्यप्येवम् [यण्.]	च + अन्त्ये = चान्त्ये [दीर्घ.]
तथा + अपि = तथापि [दीर्घ.]	वैष्णवः + अधिकृतः = वैष्णवोऽधिकृतः [उत्व.पू.रू.]
तथापि + आयात = तथाप्यायात [यण्.]	
धर्मः + अपि = धर्मोऽपि [उत्व.पू.रू.]	कृतः + ततः = कृतस्ततः [स.]

समासविग्रह :

- विधिम् अनतिक्रम्य इति यथाविधि [अव्य.]
- सन्दिग्धश्च असौ धर्मश्च इति सन्दिग्धधर्मः [कर्म]
  सन्दिग्धधर्मस्य सेवा इति सन्दिग्धधर्मसेवा [ष.तत्पु.]
- अल्पा मेधा यस्य सः अल्पमेधा [बहु.] तेषां अल्पमेधसाम्
- स्मार्तश्च असौ अग्निः च स्मार्ताग्निः [कर्म.]
  तस्य धारणम् इति स्मार्ताग्निधारणम् [ष.तत्पु.]
- न्यास एव आश्रमः इति न्यासाश्रमः [कर्म.] तस्मात् न्यासाश्रमात्
- आरूढश्च असौ पतितश्च आरूढपतितः [कर्म]
- न विद्यते गतिः यस्य सः अगतिः [बहु.]
- वर्णस्य धर्मः इति वर्णधर्मः [ष.तत्पु.] तेन
- आयातं चासौ पतितं च आयातपतितम् [कर्म.]

- देहस्य यात्रा इति देहयात्रा [प.तत्पु.] तया देहयात्रया
- देहयात्रा च धर्म श्च देहयात्राधर्मः [कर्म.]
- सिद्धयाः सम्भवः इति सिद्धि-सम्भवः [प.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

सम्[उ.]न्यासः[ना.]	न्यास-आ[उ.]श्रमात्[ना.]	सिध्यति[आ.]
च[नि.]	पतन्[ना.] मर्त्यः[ना.]	अतः[नि.] तस्मिन्[ना.]
अग्निहोत्रम्[ना.]	आ[उ.]रुढपतितः[ना.]	स्थितस्य[ना.]
कलौ[ना.] न[नि.]	अगतिः[ना.] यद्यपि[नि.]	यत्किञ्चित्सिद्धि-
एव[नि.]	एवम्[नि.] हि[नि.]	सम्[उ.]-भवः[ना.]
यथाविधि[नि.]	गार्हस्थ्यम्[ना.]	आ[उ.]श्रमः[ना.]
सम्[उ.]-दिग्धधर्मसेवा[ना.]	वर्णधर्मेण[ना.]	द्विविधः[ना.]
अपि[नि.]	दुस्[उ.]करम्[ना.]	कौर्मे[ना.] तत्र[नि.]
क्लेशाय[ना.]	तथापि[नि.]	उद्[उ.]-आसीनकः[ना.]
अल्पमेधसाम्[ना.]	आ[उ.]यातपतितम्[ना.]	गृही[ना.] आद्ये[ना.]
सम्[उ.]-अर्थः[ना.]	तद्वचभ(?)	नैष्ठिकः[ना.]
तु[नि.] तयोः[ना.]	देहयात्रया[ना.]	अन्त्ये[ना.]
कुर्याद्[आ.]	गार्हस्थ्यम्[ना.]	वैष्णवः[ना.]
विद्वान्[ना.]	विना[नि.]	अधि[उ.]कृतः[ना.]
स्मार्ताग्निधारणम्[ना.]	देहयात्राधर्मः[ना.]	ततः[नि.]

वृत्तिपरिचय :

सन्न्यासः[स.]	विद्वान्[तद्धि.]	अगतिः[स.]
यथाविधि[स.]	स्मार्ताग्निधारणम्[स.]	गार्हस्थ्यम्[तद्धि.]
सन्दिग्धधर्मसेवा[स.]	न्यासाश्रमात्[स.]	वर्णधर्मेण[स.]
अल्पमेधसाम्[स.]	पतन्[कृद.]	दुष्करम्[स.]
समर्थः[स.]	आरुढपतितः[स.]	आयातपतितम्[स.]

तद्वच्भ(?)	सिद्धि-सम्भवः [स.]	गृही [तद्धि.]
देहयात्रया [स.]	आश्रमः [स.]	आद्ये [तद्धि.]
गार्हस्थ्यम् [तद्धि.]	द्विविधः [स.]	नैष्ठिकः [तद्धि.]
देहयात्राधर्मः [स.]	कौर्मे [तद्धि.]	अन्त्ये [तद्धि.]
अतः [तद्धि.]	तत्र [तद्धि.]	वैष्णवः [तद्धि.]
स्थितस्य [कृद्.]	उदासीनकः [तद्धि.]	अधिकृतः [कृद्+स.] ततः [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

सन्न्यासः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अग्निहोत्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कलौ - अ.इ.पुं.स.ए.
सन्दिग्धधर्मसेवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
क्लेशाय - अ.अ.पुं.च.ए.
अल्पमेधसाम् - ह.स्.पुं.ष.ब.
समर्थः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तयोः - ह.द.पुं.स.द्वि.
विद्वान् - ह.स्.पुं.प्र.ए.
स्मार्ताग्निधारणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
न्यासाश्रमात् - अ.अ.पुं.पं.ए.
पतन् - ह.न.पुं.प्र.ए.
मर्त्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
आरुढपतितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अगतिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
गार्हस्थ्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
वर्णधर्मेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.
दुष्करम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
आयातपतितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
तद्वच्भ(?)
देहयात्रया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
देहयात्राधर्मः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
तस्मिन् - ह.द्.नपुं.स.ए.
स्थितस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
सिद्धि-सम्भवः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
आश्रमः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
द्विविधः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कौर्मे - अ.अ.नपुं.स.ए.
उदासीनकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
गृही - ह.न्.पुं.प्र.ए.
आद्ये - अ.अ.पुं.स.ए.
नैष्ठिकः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अन्त्ये - अ.अ.पुं.स.ए.
वैष्णवः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
अधिकृतः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : कुर्यात् - तनादि.वि.लिङ्.प्र.ए. सिध्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : कलौ सन्यासः च अग्निहोत्रं च यथाविधि नैव(भवतः). अल्पमेधसाम् सन्दिग्धधर्मसेवापि क्लेशायैव (भवति) (६९). समर्थस्तु विद्वान् तयोः स्मार्ताग्निधारणम् कुर्यात्, मर्त्यः न्यासाश्रमात् पतन् आरूढपतितः अगतिः (भवति) (७०). एवं हि यद्यपि गार्हस्थ्यं वर्णधर्मेण दुष्करम् (अस्ति) तथापि आयातपतितं तद् विभृयात् (७१). (यतः) गार्हस्थ्यं विना देह-यात्रा-धर्मोऽपि न सिध्यति, अतः तस्मिन् स्थितस्यैव यत्किञ्चित् सिद्धि-सम्भवः (भवति) (७२). (यतः) कौर्मे (पुराणे प्रोक्तः अस्ति) आश्रमो द्विविधः, तत्र एकः उदासीनकः (अपरः) गृही, ततः आद्ये अपि नैष्ठिकः अधिकृतः च अन्त्ये वैष्णवः अधिकृतः (इत्यपि उक्तं अस्ति) ॥७३॥

(द्विजेतराणां कर्तव्यनिर्देशः)

शूद्रस्तु हिंस्रकार्येण निषिद्धस्याशनेन च ॥
निवृत्तोऽसौ * भजेत् कृष्णं महद्भिरनुकम्पितः ॥७४॥
स * हितं हरिभक्तानां ब्राह्मणानां चरेद् गवाम् ॥
पादसेवा च महतां यद्वृत्त्या तुष्यते हरिः ॥७५॥
दानं व्रतं पैतृकं च शौचं शान्तिमथाश्रयेत् ॥
हरिमेव भजेत् प्रेम्णा तेन सिध्यति सत्वरम् ॥७६॥
न वेदश्रवणं कार्यं स्पर्धासूयादिनान्यतः ॥
न्यग्भावेन प्रपन्नोऽसौ भवेद् दासो हरेर्गुरोः ॥७७॥

सन्धिविच्छेद :

शूद्र + तु = शूद्रस्तु [स.]
निषिद्धस्य + अशनेन = निषिद्धस्याशनेन [दीर्घ.]
निवृत्तः + असौ = निवृत्तोऽसौ [उ.पू.रू.]
महद्भिः + अनु = महद्भिरनु [रेफ.]
सः + हितं = सहितम् [वि.लो.]
चरेत् + गवाम् = चरेद् गवाम् [स.]
अथ + आश्रयेत् = अथाश्रयेत् [दीर्घ.]
स्पर्धा + असूया + आदिना + अन्यतः = स्पर्धासूयादिनान्यतः [दीर्घ.]

प्रपन्नः + असौ = प्रपन्नोसौ [उत्व पू.रू.] दासः + हरेः = दासो हरेः [उत्व गुण.]
भवेत् + दासः = भवेद् दासः [जश्त्व.] हरेः + गुरोः = हरेर्गुरोः [रेफ.]

समासविग्रह :

- हिंस्रं च अदः कार्यं तत् हिंस्रकार्यम् [कर्म] तेन हिंस्रकार्येण
- हरेः भक्ताः इति हरिभक्ताः [ष.तत्पु.] तेषां हरिभक्तानाम्
- पादानां सेवा इति पादसेवा [ष.तत्पु.]
- या च असौ वृत्तिः इति यद्वृत्तिः [कर्म] तया यद्वृत्त्या
- वेदस्य श्रवणम् इति वेदश्रवणम् [ष.तत्पु.] तत्
- स्पर्धा च असूया च इति स्पर्धासूये [द्वन्द्व.] स्पर्धासूये आदि यस्य सः स्पर्धासूयादिः [बहु.] तेन स्पर्धासूयादिना
- न्यग् च असौ भावः च न्यग्भावः [कर्म] तेन न्यग्भावेन

शब्दपरिचय :

शूद्रः [ना.] तु [नि.]	चरेद् [आ.]	आ [उ.] श्रयेत् [आ.]
हिंस्रकार्येण [ना.]	गवाम् [ना.]	हरिम् [ना.]
नि [उ.] षिद्धस्य [ना.]	पादसेवा [ना.]	एव [नि.] भजेत् [आ.]
अशनेन [ना.] च [नि.]	महताम् [ना.]	प्रेम्णा [ना.] तेन [ना.]
नि [उ.] वृत्तः [ना.]	यद्वृत्त्या [ना.]	सिध्यति [आ]
असौ [ना.]	तुष्यते [आ.]	सत्वरम् [नि.] न [नि.]
भजेत् [आ.]	हरिः [ना.]	वेदश्रवणम् [ना.]
कृष्णम् [ना.]	दानम् [ना.]	कार्यम् [ना.]
महद्भिः [ना.]	व्रतम् [ना.]	स्पर्धासूयादिना [ना.]
अनु [उ.] कम्पितः [ना.]	पैतृकम् [ना.]	अन्यतः [नि] न्यग्भावेन [ना]
सः [ना.] हितम् [ना.]	शौचम् [ना.]	प्र [उ.] पन्नः [ना.] असौ [ना.]
हरिभक्तानाम् [ना.]	शान्तिम् [ना.]	भवेद् [आ.] दासः [ना.]
ब्राह्मणानाम् [ना.]	अथ [नि.]	हरेः [ना] गुरोः [ना]

वृत्तिपरिचय :

हिंस्रकार्येण [स.]	पादसेवा [स.]	वेदश्रवणम् [स.]
निषिद्धस्य [स.]	यद्वृत्त्या [स.]	कार्यम् [कृद्.]
अशनेन [कृद्.]	दानम् [कृद्.]	स्पर्धासूयादिना [स.]
निवृत्तः [कृद्+स.]	पैतृकम् [तद्धि.]	अन्यतः [तद्धि.]
अनुकम्पितः [कृद्+स.]	शौचम् [तद्धि.]	न्यग्भावेन [स.]
हरिभक्तानाम् [स.]	शान्तिम् [कृद्.]	प्रपन्नः [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(हितम्, दानम्, व्रतम्, पैतृकम्, शौचम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

(शूद्रः, निवृत्तः, अनुकम्पितः, प्रपन्नः, दासः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

हिंस्रकार्येण - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

निषिद्धस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.

अशनेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.

असौ - ह.स्.पुं.प्र.ए.

कृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

महद्भिः - ह.त.पुं.तृ.ब.

सः - ह.द्.पुं.प्र.ए.

हरिभक्तानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

ब्राह्मणानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

गवाम् - अ.ओ.स्त्री.ष.ब.

पादसेवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

महताम् - ह.त.पुं.ष.ब.

यद्वृत्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.

हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

शान्तिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.

हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.

प्रेम्णा - ह.न.नपुं.तृ.ए.

तेन - ह.द.नपुं.तृ.ए.

वेदश्रवणम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

स्पर्धासूयादिना - अ.इ.पुं.तृ.ए.

न्यग्भावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

गुरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

चरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

तुष्यते - दिवा.लट्.प्र.ए.

आश्रयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

सिध्यति - दिवा.लट्.प्र.ए. भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : शुद्रस्तु हिम्रकार्येण निषिद्धस्य अशनेन च निवृत्तः महद्भिः अनुकम्पितः असौ कृष्णं भजेत् (७४). स हरिभक्तानां ब्राह्मणानां गवाम् हितं चरेत्, महतां पादसेवा च (तेन करणीया) यद्वृत्त्या हरिः तुष्यते (७५). दानं व्रतं पैतृकं शौचं च अथ शान्तिम् (स) आश्रयेत्, प्रेम्णा हरिम् एव भजेत् तेन सत्वरम् (उद्धारः) सिध्यति (७६). (तेन) अन्यतः स्पर्धासूयादिना वेदश्रवणं न कार्यम्, न्यग्भावेन प्रपन्नः असौ हरेर्गुरोः दासः भवेत् ॥७७॥

(स्त्रीणां भगवद्भजनप्रकारस्य निरूपणम्)

सधवा भर्तृभावेन विधवा पुत्रभावतः ॥
श्रीकृष्णं संश्रयेत् साध्वी जितचित्तेन्द्रिया शुचिः ॥७८॥
पति-पुत्रादि-बन्धूनाम् आनुकूल्येऽस्य सेवनम् ॥
तदभावे भजेद् भक्त्या कीर्तनैः श्रवणैः स्मृतैः ॥७९॥
तेषामेव तथात्वे तु परिचर्या समन्दिरात् ॥
हरेर्गुरोः सम्भवति ह्यस्वतन्त्राः स्त्रियो यतः ॥८०॥
स्वतन्त्रतायां दोषो हि स्त्रीणां सर्वत्र जायते ॥
अतस्तया तथा भूत्वा हरिः सेव्यस्तदिच्छया ॥८१॥
चित्रमात्रेऽपि सेवा स्यात् प्रतिबन्धे गुरोर्गिरा ॥
छलेनापि भजन् कृष्णं मुच्यते गोपिकादि-वत् ॥८२॥
पुरुषापेक्षया स्त्रीणां हृदयं मृदु दृश्यते ॥
अतस्तदनुरागोत्र सद्य एवाभिषज्यते ॥८३॥
कामदोषो हि नारीणां कनकानां यथा रजः ॥
तज्जये विजितः कृष्णः कृष्णः स्त्रीणां प्रियो यतः ॥८४॥
उदकी च प्रसूता स्त्री अशुचिश्च तथा पुमान् ॥
दर्शनस्पर्शनादीनि सेव्यमूर्तेर्विवर्जयेत् ॥८५॥

सन्धिविच्छेद :

चित्त + इन्द्रिया = चित्तेन्द्रिया [गुण.]
पुत्र + आदि = पुत्रादि [दीर्घ.]
आनुकूल्ये + अस्य = आनुकूल्येऽस्य [पू.रू.]
भजेत् + भक्त्या = भजेद् भक्त्या [जश्त्व.]
हरेः + गुरोः = हरेर्गुरोः [रेफ.]
हि + अस्वतन्त्राः = ह्यस्वतन्त्राः [यण्.]
स्त्रियः + यतः = स्त्रियो यतः [उत्व.गुण.]
दोषः + हि = दोषो हि [उत्व.गुण.]
अतः + तया = अतस्तया [स.]
सेव्यः + तद् = सेव्यस्तद् [स.]
मात्रे + अपि = मात्रेऽपि [पू.रू.]
गुरोः + गिरा = गुरोर्गिरा [रेफ.]

छलेन + अपि = छलेनापि [दीर्घ.]
गोपिका + आदि = गोपिकादि [दीर्घ.]
पुरुष + अपेक्षया = पुरुषापेक्षया [दीर्घ.]
अतः + तद् = अतस्तद् [स.]
अनुरागः + अत्र = अनुरागोऽत्र [उत्व.पू.रू.]
सद्यः + एव = सद्य एव [वि.लो.]
एव + अभि = एवाभि [दीर्घ.]
दोषः + हि = दोषो हि [उत्व.गुण.]
तद् + जये = तज्जये [श्चु.]
प्रियः + यतः = प्रियो यतः [उ.गुण.]
अशुचिः + च = अशुचिश्च [स.श्चु.]
स्पर्शन + आदीनि = स्पर्शनादीनि [दीर्घ.]
मूर्तेः + विवर्जयेत् = मूर्तेर्विवर्जयेत् [रेफ.]

समासविग्रह :

- सह धवेन इति सधवा [बहु.]
- भर्तुः भावः इति भर्तुभावः [ष.तत्पु.] तेन भर्तृभावेन
- विगतः धवो यस्याः सा विधवा [बहु.]
- पुत्रस्य भावः इति पुत्रभावः [ष.तत्पु.] तस्मात् पुत्रभावतः [पं.तसि.]
- चित्तं च इन्द्रियाणि च इति चित्तेन्द्रियाणि [द्वन्द्व.]
  जितानि चित्तेन्द्रियाणि यया सा जितचित्तेन्द्रिया [बहु.]
- पतिश्च पुत्रश्च इति पतिपुत्रौ [द्वन्द्व.]
  पतिपुत्रौ आदिः येषां ते पति-पुत्रादयः [बहु.]
  पतिपुत्रादयश्च बन्धवश्च इति पतिपुत्रादिबन्धवः [द्वन्द्व.]
  तेषां पतिपुत्रादिबन्धूनाम्
- न भावः इति अभावः तस्य अभावः इति तदभावः [ष.तत्पु.] तस्मिन्

- समन्दिरात् (?) (?)
- स्वस्य तन्त्रम् इति स्वतन्त्रम्[प.तत्पु.] तस्य भावः स्वतन्त्रता तस्याम्
- न स्वतन्त्रम् इति अस्वतन्त्रम्[न.तत्पु.]
- तस्य इच्छा इति तदिच्छा[प.तत्पु.] तया तदिच्छया
- गोपिका आदि येषां ते गोपिकादयः[बहु.] तद्वत् गोपिकादि-वत्
- पुरुषस्य अपेक्षा इति पुरुषापेक्षा[प.तत्पु.] तया
- तासाम् अनुरागः इति तदनुरागः[प.तत्पु.]
- काम एव दोषः इति कामदोषः[कर्म]
- तस्य जयः इति तज्जयः[प.तत्पु.] तस्मिन्- न शुचिः इति अशुचिः[न.तत्पु.]
- दर्शनं च स्पर्शनं च इति दर्शनस्पर्शने[द्वन्द्व.]
  दर्शनस्पर्शने आदि येषां तानि दर्शनर्स्पशनादीनि[बहु.]
- सेव्या च असौ मूर्तिः इति सेव्यमूर्तिः[कर्म] तस्याः सेव्यमूर्तेः

शब्दपरिचय :

सधवा[ना.]
भर्तृभावेन[ना.]
वि[उ.]धवा[ना.]
पुत्रभावतः[नि.]
श्रीकृष्णम्[ना.]
सं[उ.]श्रयेत्[आ.]
साध्वी[ना.]
जितचित्तेन्द्रिया[ना.]
शुचिः[ना.]
पतिपुत्रादिबन्धूनाम्[ना.]
आनुकूल्ये[ना.]
अस्य[ना.]
सेवनम्[ना.]

तदभावे[ना.]
भजेद्[आ.]
भक्त्या[ना.]
कीर्तनैः[ना.]
श्रवणैः[ना.] स्मृतैः[ना.]
तेषाम्[ना.] एव[नि.]
तथात्वे[ना.] तु[नि.]
परि[उ.]चर्या[ना.]
समन्दिरात्[ना.]
हरेः[ना.] गुरोः[ना.]
सम्[उ.]भवति[आ.]
हि[नि.] अस्वतन्त्राः[ना.]
स्त्रियः[ना.] यतः[नि.]

स्वतन्त्रतायाम्[ना.]
दोषः[ना.] हि[नि.]
स्त्रीणाम्[ना.]
सर्वत्र[नि.]
जायते[आ.]
अतः[नि.]
तया[ना.] तथा[नि.]
भूत्वा[स.आ.]
हरिः[ना.] सेव्यः[ना.]
तदिच्छया[ना.]
चित्रमात्रे[ना.]
अपि[नि.] सेवा[ना.]
स्यात्[आ.]

प्रति[उ.] बन्धे[ना.]	दृश्यते[आ.]	वि[उ.] जितः[ना.]
गुरोः[ना.] गिरा[ना.]	अतः[नि.]	स्त्रीणाम्[ना.]
छलेन[ना.]	तद्-अनु[नि.] रागः[ना.]	प्रियः[ना.] यतः[नि.]
भजन्[ना.]	अत्र[नि.] सद्यः[उ.]	उदकी[ना.] च[नि.]
मुच्यते[आ.]	अभि[नि.] षज्यते[आ.]	प्रसूता[ना.] स्त्री[ना.]
गोपिकादि-वत्[नि.]	कामदोषः[ना.] हि[नि.]	अशुचिः[ना.]
पुरुषापेक्षया[ना.]	नारीणाम्[ना.]	पुमान्[ना.]
स्त्रीणाम्[ना.]	कनकानाम्[ना.]	दर्शनस्पर्शनादीनि[ना.]
हृदयम्[ना.]	यथा[नि.] रजः[ना.]	सेव्यमूर्तेः[ना.]
मृदु[ना.]	तज्जये[ना.]	वि[उ.] वर्जयेत्[आ.]

वृत्तिपरिचय :

(पुत्रभावतः, आनुकूल्ये, तथात्वे, यतः, स्वतन्त्रतायाम्, सर्वत्र, अतः, तथा, चित्रमात्रे, गोपिकादि-वत्, अतः, यतः, अत्र, यथा, तथा)[तद्धि.]
(सेवनम्, भक्त्या, कीर्तनैः, श्रवणैः, स्मृतैः, भूत्वा, सेव्य, भजन्)[कृद.]

सधवा[स.]	समन्दिरात्[स.]	
भर्तृभावेन[स.]	अस्वतन्त्राः[स.]	कामदोषः[स.]
विधवा[स.]	तदिच्छया[स.]	तज्जये[स.]
श्रीकृष्णम्[स.]	प्रतिबन्धे[स.]	विजितः[स.]
जितचित्तेन्द्रिया[स.]	मुच्यते[सनादि.]	प्रसूता[कृद.+स.]
पतिपुत्रादिबन्धूनाम्[स.]	पुरुषापेक्षया[स.]	अशुचिः[स.]
तदभावे[स.]	दृश्यते[सनादि.]	दर्शनस्पर्शनादीनि[स.]
परिचर्या[स.]	तदनुरागः[स.]	सेव्यमूर्तेः[स.]

शब्दरूपपरिचय :

सधवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	विधवा - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.
भर्तृभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	श्रीकृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

(परिचर्या, सेवा, प्रसूता, जितचित्तेन्द्रिया) - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

(दोषः, सेव्यः, तदनुरागः, कामदोषः, विजितः, कृष्णः, प्रियः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

साध्वी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.

शुचिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

पतिपुत्रादिबन्धूनाम् - अ.उ.पुं.ष.ब.

आनुकूल्ये - अ.अ.नपुं.स.ए.

अस्य - ह.म्.पुं.प्र.ए.

सेवनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

तदभावे - अ.अ.पुं.स.ए.

भक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.

(कीर्तनैः, श्रवणैः, स्मृतैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

तेषाम् - ह.द्.पुं.ष.ब.

समन्दिरात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.

हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

गुरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.

अस्वतन्त्राः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब.

स्त्रियः - अ.ई.स्त्री.प्र.ब.

स्वतन्त्रतायाम् - अ.आ.स्त्री.स.ए.

स्त्रीणाम् - अ.ई.स्त्री.ष.ब.

तया - ह.द्.स्त्री.तृ.ए.

हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

तदिच्छया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.

चित्रमात्रे - अ.अ.नपुं.स.ए.

प्रतिबन्धे - अ.अ.पुं.स.ए.

गिरा - ह.र्.स्त्री.तृ.ए.

छलेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

कृष्णम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

पुरुषापेक्षया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.

स्त्रीणाम् - अ.ई.स्त्री.ष.ब.

हृदयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

मृदु - अ.उ.नपुं.प्र.ए.

नारीणाम् - अ.ई.स्त्री.ष.ब.

कनकानाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब.

रजः - ह.स.नपुं.प्र.ए.

तज्जये - अ.अ.पुं.स.ए.

उदकी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.

स्त्री - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.

अशुचिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

पुमान् - ह.स्.पुं.प्र.ए.

दर्शनस्पर्शनादीनि - अ.इ.नपुं.द्वि.ब.

सेव्यमूर्तेः - अ.इ.स्त्री.ष.ए.

धातुरूपपरिचय :

संश्रयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

सम्भवति - भ्वा.लट्.प्र.ए.

जायते - दिवादि.लट्.प्र.ए.

स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

मुच्यते - तुदादि.लट्.प्र.ए.(यक्.प्र)

दृश्यते - भ्वादि.लट्.प्र.ए. (यक्.प्र) अभिषज्यते - आत्मने.लट्.प्र.ए.
विवर्जयेत् - चुरादि.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : जितचित्तेन्द्रिया शुचिः साध्वी सधवा भर्तृभावेन, विधवा पुत्रभावतः श्रीकृष्णं संश्रयेत् (७८). पतिपुत्रादि-बन्धूनाम् आनुकुल्ये अस्य (श्रीकृष्णस्य) सेवनम् (कार्यम्), तदभावे कीर्तनैः श्रवणैः स्मृतैः भक्त्या भजेद् (७९). (ततः) तेषाम् एव तथात्वे (आनुकूल्याभावे) तु समन्दिरात् हरेः गुरोः परिचर्या सम्भवति यतः स्त्रियो हि अस्वतन्त्राः (भवन्ति) (८०). स्त्रीणां स्वतन्त्रतायां हि सर्वत्र दोषो जायते. अतः तया तथा (अस्वतन्त्रैव) भूत्वा तदिच्छया (हरिच्छया) हरिः सेव्यः (८१). प्रतिवन्धे गुरोः गिरा चित्रमात्रेऽपि सेवा स्यात्. छलेनापि कृष्णं भजन् गोपिकादि-वत् मुच्यते (८२). पुरुषापेक्षया स्त्रीणां हृदयं मृदु दृश्यते अतः तदनुरागो अत्र सद्य एव अभिषज्यते (८३). कनकानां यथा रजः (दोषः तथा) नारीणां हि कामदोषः (भवति). तज्जये कृष्णः विजितः (भवति) यतः कृष्णः स्त्रीणां प्रियः (अस्ति) (८४). उदकी प्रसूता च स्त्री तथा अशुचिः पुमान् च सेव्यमूर्तेः दर्शनस्पर्शनादीनि विवर्जयेत् ॥८५॥

(सेव्यस्य भगवत्स्वरूपस्य प्रकारः [१] सेवायाः च प्रकारः [२] स्वरूपप्रतिष्ठाप्रकारः [३] तच्छुद्धिः [४] तत्प्राप्तिः [५] इत्यादिविषयकोपदेशः)

चित्रमूर्तिरविज्ञानां पराधीनात्मनामपि ।
शुचिश्लक्ष्णामपीच्यां च गुरुदत्तां भजेद् वरैः [१]॥८६॥
तीर्थतोयैर्निजैर्मन्त्रैः संस्कृतां सुमनोहराम् ।
लघ्वीमेव भजेद् मूर्तिं यथालब्धोपचारकैः [२]॥८७॥
नात्र प्राणप्रतिष्ठादि व्यापकत्वादजीवतः ।
स्थान-शुद्ध्यर्थमेवैतत् शब्दार्थमपि सद्गुरोः [३]॥८८॥
अशुचिस्पर्शने तस्याः तथा पञ्चामृतैरपि ।
होमैर्दानेन संशोध्या वैदिकेन निजात्मवत् [४]॥८९॥

गुरुदत्तां स्वयंलब्धां भक्तैरपि सुपूजिताम्।।
व्यङ्गाङ्गीमपि सेवेत यदि भावो न बाध्यते।।९०।।

सन्धिविच्छेद :

मूर्तिः + अविज्ञा = मूर्तिरविज्ञा [रेफ.]
पर + अधीन + आत्मनाम् =
पराधीनात्मनाम् [दीर्घ.]
भजेत् + वैरैः = भजेद् वैरैः [जश्त्व.]
तीर्थतोयैः + नीजैः + मन्त्रैः =
तीर्थतोयेर्निजैर्मन्त्रैः [रेफ.]
सम् + कृताम् = संस्कृताम् [रु.अनु.]
भजेत् + मूर्तिं = भजेद् मूर्तिं [जश्त्व.]
लब्ध + उपचार = लब्धोपचार [गुण.]
न + अत्र = नात्र [दीर्घ.]
प्र + आन = प्राण [दीर्घ.]
प्रतिष्ठा + आदि = प्रतिष्ठादि [दीर्घ.]
वि + आपक = व्यापक [यण्.]
व्यापकत्वात् + अजीवतः =
व्यापकत्वादजीवतः [जश्त्व.]
शुद्धि + अर्थम् = शुद्ध्यर्थम् [यण्.]
एव + एतत् = एवैतत् [वृद्धि.]
शब्द + अर्थम् = शब्दार्थम् [दीर्घ.]
पञ्च + अमृतैः = पञ्चामृतैः [दीर्घ.]
अमृतैः + अपि = अमृतैरपि [रेफ.]
होमैः + दानेन = होमैर्दानेन [रेफ.]
निज + आत्म = निजात्म [दीर्घ.]
भक्तैः + अपि = भक्तैरपि [रेफ.]
वि + अङ्ग = व्यङ्ग [यण्.]
व्यङ्ग + अङ्गी = व्यङ्गाङ्गी [दीर्घ.]
भावः + न = भावो न [उत्व.गुण.]

समास विग्रह :

- चित्राख्या मूर्ति इति चित्रमूर्तिः [म.प.लो.]
- न विज्ञः इति अविज्ञः [न.तत्पु.] तेषाम् अविज्ञानाम्
- परस्य अधीन इति पराधीन [ष.तत्पु.]
  पराधीनः आत्मा यस्य सः पराधीनात्मा [बहु.] तेषाम् पराधीनात्मनाम्
- शुचिश्चासौ श्लक्षणा च शुचिश्लक्ष्णा [कर्म.] तां शुचिश्लक्ष्णाम्
- गुरुणा दत्ता इति गुरुदत्ता [तृ.तत्पु.] तां गुरुदत्ताम्
- तीर्थानां तोयम् इति तीर्थतोयम् [ष.तत्पु.] तैः तीर्थतोयैः
- मनः हरति इति मनोहरः [उप.स.]

- लब्धं अनतिक्रम्य इति यथालब्धम्[अव्य] यथालब्धं यः उपचारकः इति यथालब्धोपचारकः[कर्म] तैः यथालब्धोपचारकैः
- प्राणस्य प्रतिष्ठा इति प्राणप्रतिष्ठा[ष.तत्पु] प्राणप्रतिष्ठा आदि यस्य तत् प्राणप्रतिष्ठादिः[बहु.]
- न जीवः इति अजीवः[न.तत्पु.] तस्मात् अजीवतः[पं.तमि.]
- स्थानस्य शुद्धिः इति स्थानशुद्धिः[ष.तत्पु.] स्थानशुद्ध्यै इदम् इति स्थानशुद्ध्यर्थं[च.तत्पु.]
- शब्दाय इदम् इति शब्दार्थं[च.तत्पु.]- सत् च असौ गुरुश्च सद्गुरुः[कर्म]
- न शुचिः इति अशुचिः[न.तत्पु.] अशुचेः स्पर्शनं इति अशुचिस्पर्शनम्[ष.तत्पु.] तस्मिन् अशुचिस्पर्शने
- पञ्चानाम् अमृतानां समाहारः पञ्चामृतम्[द्विगु.] तैः पञ्चामृतैः
- निजश्च असौ आत्मा च इति निजात्मा[कर्म] तद्वत् निजात्मवत्
- स्वयं या लब्धा सा स्वयंलब्धा[कर्म.] ताम् स्वयंलब्धाम्
- व्यङ्गम् अङ्गम् यस्याः सा व्यङ्गाङ्गी[बहु.] ताम् व्यङ्गाङ्गीम्

शब्दपरिचय :

चित्रमूर्तिः[ना.]	सु[उ.]मनोहराम्[ना]	सद्गुरोः[ना.]
अ-वि[उ.]ज्ञानाम्[ना.]	लब्ध्वीम्[ना.]	अशुचिस्पर्शने[ना.]
पराधीनात्मनाम्[ना.]	एव[नि.] मूर्तिम्[ना.]	तस्याः[ना.] तथा[नि.]
अपि[नि.]	यथालब्ध-उप[उ.]चारकैः[ना.]	पञ्चामृतैः[ना.]
शुचिश्लक्ष्णाम्[ना]	न[नि.] अत्र[नि.]	होमैः[ना.] दानेन[ना.]
अपीच्याम्[ना]	प्र[उ]-अण-प्र[उ.]तिष्ठादि[ना.]	सं[उ.]शोध्या[ना.]
च[नि.] गुरुदत्ताम्[ना.]	वि[उ]-आपकत्वाद्[ना.]	वैदिकेन[ना.]
भजेद्[आ.] वरैः[ना.]	अजीवतः[नि.]	निजात्मवत्[नि.]
तीर्थतोयैः[ना.]	स्थान-शुद्ध्यर्थम्[ना]	गुरुदत्ताम्[ना.]
निजैः[ना] मन्त्रैः[ना.]	एतत्[ना.]	स्वयंलब्धाम्[ना.]
सम्[उ]-स्कृताम्[ना]	शब्दार्थम्[ना.]	भक्तैः[ना.] सु[उ.]पूजिता[ना.]

वि [उ]-अङ्गाङ्गीम् [ना.] सेवेत [आ.] यदि [नि.] भावः [ना.] बाध्यते [आ.]

वृत्तिपरिचय :

चित्रमूर्तिः [स.]	अत्र [तद्धि.]	
अविज्ञानाम् [स.]	प्राणप्रतिष्ठादि [स.]	दानेन [कृद.]
पराधीनात्मनाम् [स.]	व्यापकत्वाद् [तद्धि.]	संशोध्या [कृद+स.]
शुचिश्लक्ष्णाम् [स]	अजीवतः [तद्धि.]	वैदिकेन [तद्धि.]
गुरुदत्ताम् [स.]	स्थान-शुद्ध्यर्थम् [स.]	निजात्मवत् [तद्धि.]
तीर्थतोयैः [स.]	शब्दार्थम् [स.]	गुरुदत्ताम् [स.]
संस्कृताम् [स.]	सद्गुरोः [स.]	स्वयंलब्धाम् [स.]
सुमनोहराम् [स.]	अशुचिस्पर्शने [स.]	भक्तैः [कृद.]
मूर्तिम् [कृद.]	तथा [तद्धि.]	सुपूजिताम् [कृद+स.]
यथालब्धोपचारकैः [स.]	पञ्चामृतैः [स.]	व्यङ्गाङ्गीम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(शुचिश्लक्ष्णाम्, अपीच्याम्, गुरुदत्ताम्, संस्कृताम्, सुमनोहराम्, गुरुदत्ताम्, स्वयंलब्धाम्, सुपूजिताम्) - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

(वरैः, तीर्थतोयैः, निजैः, मन्त्रैः, पञ्चामृतैः, होमैः, भक्तैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

	स्थान-शुद्ध्यर्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
चित्रमूर्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	एतत् - ह.द.नपुं.ष.ए.
अविज्ञानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.	शब्दार्थम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
पराधीनात्मनाम् - ह.न.पुं.ष.ब.	सद्गुरोः - अ.उ.पुं.ष.ए.
लघ्वीम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.	अशुचिस्पर्शने - अ.अ.नपुं.स.ए.
मूर्तिम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.	तस्याः - ह.द.स्त्री.ष.ए.
यथालब्धोपचारकैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	दानेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
प्राणप्रतिष्ठादि - अ.इ.नपुं.प्र.ए.	संशोध्या - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
व्यापकत्वात् - अ.अ.नपुं.पं.ए.	वैदिकेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

व्यङ्गाङ्गीम् - अ.ई.स्त्री.द्वि.ए.   भावः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

भजेद् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.   सेवेत - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.   बाध्यते - भ्वा.लट्.प्र.ए.(यक्.प्र)

अन्वय : अविज्ञानां पराधीनात्मनामपि चित्रमूर्तिः (सेव्या भवति). शुचिश्लक्ष्णाम् अपीच्यां च गुरुदत्तां (मूर्तिं) भजेद्. वरैः तीर्थतोयैः निजैर्मन्त्रैः संस्कृतां सुमनोहराम् लब्धीमेव मूर्तिं यथालब्धोपचारकैः भजेद्(८७). व्यापकत्वात् अजीवतः अत्र (मूर्तौः) प्राणप्रतिष्ठादि न (कर्तव्यम्). एतत् (संस्कारः) स्थानशुद्धयर्थमेव सद्गुरोः शब्दार्थमपि(८८). तथा तस्याः अशुचिस्पर्शने निजात्मवत् पञ्चामृतैः होमैः दानेन तथा वैदिकेन (कर्मणा) अपि संशोध्या(८९). गुरुदत्तां, स्वयंलब्धां, भक्तैरपि सुपूजितां व्यङ्गाङ्गीम् अपि (मूर्तिं) सेवेत यदि भावो न बाधते॥९०॥

(प्रात्याह्निक-भगवत्सेवा-स्वरूपोपदेशः)

(१.उपक्रम)

प्रातरारभ्य मध्याह्नावधिः चैवापराह्णके॥
तत्तल्लीलानुभावेन भजेत् स्व-गुरु-सम्मताम्॥९१॥
वस्त्रैश्च भूषणैर्गन्धैः नैवेद्यैर्व्यञ्जनैः शुभैः॥
देश-काल-विभूतीनाम् अनुसारेण सेवनम्॥९२॥
प्रेम्णा परिचरेत् साधुः यावज्जीवं समाहितः॥
तेनास्य भावनासिद्धिः यया स्यात् कृतकृत्यता॥९३॥

सन्धिविच्छेद :

प्रातः + आरभ्य = प्रातरारभ्य [रेफ.]   च + एव = चेव [वृद्धि.]

मध्य + अह्न + अवधिः= मध्याह्नावधिः [दीर्घ.]   चैव + अपराह्ण = चैवापराह्ण [दीर्घ.]

तत्तत् + लीला = तत्तल्लीला [प.स.]	नैवेद्यैः + व्यञ्जनैः = नैवेद्यैर्व्यञ्जनैः [रेफ.]
लीला + अनु = लीलानु [दीर्घ]	वि + अञ्जनैः = व्यञ्जनैः [यण्.]
वस्त्रैः + च = वस्त्रैश्च [स.श्चु]	यावत् + जीवम् = यावज्जीवम् [श्चु.]
भूषणैः + गन्धैः = भूषणैर्गन्धैः [रेफ.]	तेन + अस्य = तेनास्य [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- अह्नः मध्यः इति मध्याह्नः [ष.तत्पु.]
  मध्याह्नस्य अवधिः इति मध्यानावधिः [ष.तत्पु.]
- अपर च असौ अह्लकः इति अपराह्लकः [कर्म.] तस्मिन् अपराह्लके
- सा सा लीला (वीप्सया द्वित्वम्) इति तत्तल्लीला [ष.तत्पु.]
  तत्तल्लीलायाः अनुभावः तत्तल्लीलानुभावः [ष.तत्पु.] तेन
- स्वस्य गुरुः इति स्वगुरुः [ष.तत्पु.]
  तेन सम्मताः इति स्वगुरुसम्मताः [तृ.तत्पु.] ताम्
- देशः च कालः च विभूतिः च इति देश-काल-विभूतयः [द्वन्द्व.]
  तासां देश-काल-विभूतीनाम्
- (जीवनमेव जीवः) यावान् जीवः इति यावज्जीवम् [अव्ययी.]
- भावनायाः सिद्धिः इति भावना-सिद्धिः [ष.तत्पु.]
- कृतः कृत्य येन सः कृत-कृत्यः [बहु.] तस्य भावः कृत-कृत्यता

शब्दपरिचय :

प्रातः [ना.]	स्वगुरु-सम्[उ.]मताम् [ना.]	देशकाल-
आ[उ.]रभ्य [स.आ.]	वस्त्रैः [ना.]	वि[उ.]भूतीनाम् [ना.]
मध्याह्नावधिः [ना.]	भूषणैः [ना.]	अनु[उ.]सारेण [ना.]
च [नि.] एव [नि.]	गन्धैः [ना.]	सेवनम् [ना.]
अपराह्लके [ना.]	नैवेद्यैः [ना.]	प्रेम्णा [ना.]
तत्तल्लीला-अनु[उ.]भावेन [ना.]	वि[उ.]अञ्जनैः [ना.]	परि[उ] चरेत् [आ.]
भजेत् [आ.]	शुभैः [ना.]	साधुः [ना.]

यावज्जीवम् [नि.]	तेन [ना] अस्य [ना]	यया [ना] स्यात् [आ]
सम् [उ.]आ [उ.]हितः [ना.]	भावना-सिद्धिः [ना]	कृत-कृत्यता [ना]

वृत्तिपरिचय :

आरभ्य [कृद.]	भूषणैः [कृद.]	सेवनम् [कृद.]
मध्याह्नावधिः [स.]	नैवेद्यैः [तद्धि.]	यावज्जीवम् [स.]
अपराह्नके [स.]	व्यञ्जनैः [स.]	समाहितः [स.]
तत्तल्लीलानुभावेन [स.]	देशकालविभूतीनाम् [स.]	भावनासिद्धिः [स.]
स्वगुरुसम्मताम् [स.]	अनुसारेण [स.]	कृतकृत्यता [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय :

(वस्त्रैः, भूषणैः, गन्धैः, नैवेद्यैः, व्यञ्जनैः शुभैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

मध्याह्नावधिः - अ.इ.पुं.प्र.ए

अपराह्नके - अ.अ.पुं.स.ए.	साधुः - अ.उ.पुं.प्र.ए.
तत्तल्लीलानुभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.	समाहितः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
स्वगुरुसम्मताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	तेन - ह.द्.पुं.तृ.ए.
देशकालविभूतीनाम् - अ.इ.स्त्री.ष.ब.	अस्य - ह.म्.पुं.ष.ए.
अनुसारेण - अ.अ.पुं.तृ.ए.	भावना-सिद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.
सेवनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	यया - ह.द्.स्त्री.प्र.ए.
प्रेम्णा - ह.न्.नपुं.तृ.ए.	कृत-कृत्यता - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	परिचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
स्यात् - अदादि.वि.लिङ्.प्र.ए.	

अन्वय : प्रातः आरभ्य मध्याह्नावधिः चैव अपराह्नके तत्तल्लीलानुभावेन स्वगुरुसम्मताम् (मूर्तिं) भजेत्(९१). शुभैः वस्त्रैः भूषणैः गन्धैः नैवेद्यैः

व्यञ्जनैः च देश-काल-विभूतीनाम् अनुसारेण सेवनम् (कुर्यात्) (९२). साधुः यावज्जीवं समाहितः प्रेम्णा परिचरेत्, तेन अस्य भावना-सिद्धिः (भवति) यया कृत-कृत्यता स्यात्॥९३॥

(२.जागरोत्तरभगवत्स्मरणस्नानशौचादिनियमाः)

प्रातः पाश्चात्ययामेऽसौ समुत्थाय शुचिर्धिया॥
स्मरेद् भगवतो लीलां गायेत् तस्य गुणान् गिरा॥९४॥
प्रातः कृत्यं ततः कार्यं बहिर्गत्वा यथोदितम्॥
मुखशुद्धिस्ततो नित्यं सौगन्धाभ्यञ्जनं भवेत्॥९५॥
मलस्नानं गृहे कार्यं तप्तोदकपरोदकैः॥
तस्योपरि श्रीयमुनाजलैः स्नानं स्तवैश्च वा।९६॥
तीर्थस्थाने मलस्नानं कृत्वा तीरेऽभिमज्जनम्॥

सन्धिविच्छेद :

यामे + असौ = यामेऽसौ पू.रू.	ततः + नित्यम् = ततो नित्यम् उत्व.गुण.
समुत् + स्थाय = समुत्थाय प.स.	अभि + अञ्जनं = अभ्यञ्जनम् यण्.
शुचिः + धिया = शुचिर्धिया रेफ.	गन्ध + अभ्यञ्जनं = गन्धाभ्यञ्जनं दीर्घ.
भगवतः + लीलाम् = भगवतो लीलाम् उ.गुण.	तप्त + उदक = तप्तोदक गुण.
बहिः + गत्वा = बहिर्गत्वा रेफ.	पर + उदकैः = परोदकैः गुण
यथा + उदितम् = यथोदितम् गुण.	तस्य + उपरि = तस्योपरि गुण
शुद्धिः + ततः = शुद्धिस्ततः स.	स्तवैः + च = स्तवैश्च स.श्चु
	तीरे + अभि = तीरेऽभि पू.रू.

समास विग्रह :

- पाश्चात्यश्च असौ यामश्च पाश्चात्ययामः कर्म. तस्मिन् पाश्चात्ययामे
- उदितम् अनतिक्रम्य इति यथोदितम् अव्य.
- मुखस्य शुद्धिः इति मुखशुद्धिः प.तत्पु.

- सौगन्धेन अभ्यञ्जनम् इति सौगन्धाभ्यञ्जनम् [तृ.तत्पु.]
- मलस्य स्नानम् इति मलस्नानम् [ष.तत्पु.]
- तप्तं च असौ उदकं च इति तप्तोदकम् [कर्म.]
  तप्तोदकं च परोदकं च तप्तोदकपरोदके [द्वन्द्व] तैः
- श्रीयमुनायाः जलम् इति श्रीयमुनाजलम् [ष.तत्पु.] तैः श्रीयमुनाजलैः
- तीर्थं च तद् स्थानं च तीर्थस्थानम् [कर्म.] तस्मिन् तीर्थस्थाने

शब्दपरिचय :

प्रातः [नि.]	गिरा [ना.]	मलस्नानम् [ना.]
पाश्चात्ययामे [ना.]	प्रातःकृत्यम् [ना.]	गृहे [ना.]
असौ [ना.]	ततः [नि.]	तप्तोदकपरोदकैः [ना.]
सम् [उ.] उत् [उ.] -थाय [स.आ.]	कार्यम् [ना.]	तस्य [ना.]
शुचिः [ना.]	बहिः [नि.]	उपरि [नि.]
धिया [ना.]	गत्वा [स.आ.]	श्रीयमुनाजलैः [ना.]
स्मरेद् [आ.]	यथोदितम् [नि.]	स्नानम् [ना.]
भगवतः [ना.]	मुखशुद्धिः [ना.]	स्तवैः [ना.]
लीलाम् [ना.]	नित्यम् [नि.]	च [नि.] वा [नि.]
गायेत् [आ.]	सौगन्ध-अभि [उ.]-	तीर्थस्थाने [ना.]
तस्य [ना.]	अञ्जनम् [ना.]	कृत्वा [स.आ.] तीरे [ना.]
गुणान् [ना.]	भवेत् [आ.]	अभि [उ.] मज्जनम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

पाश्चात्ययामे [स.]	मुखशुद्धिः [स.]	श्रीयमुनाजलैः [स.]
समुत्थाय [कृद्+स.]	ततः [तद्धि.] कार्यम् [कृद्.]	स्नानम् [कृद्.]
भगवतः [तद्धि.]	सौगन्धाभ्यञ्जनम् [स.]	तीर्थस्थाने [स.]
गत्वा [कृद्.]	मलस्नानम् [स.]	कृत्वा [कृद्.]
यथोदितम् [स.]	तप्तोदकपरोदकैः [स.]	अभिमज्जनम् [कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

पाश्चात्ययामे - अ.अ.पुं.स.ए.	
असौ - ह.स्.पुं.प्र.ए.	सौगन्धाभ्यञ्जनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
शुचिः - अ.इ.पु.प्र.ए.	मलस्नानम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
धिया - अ.ई.स्त्री.तृ.ए.	गृहे - अ.अ.नपुं.स.ए.
भगवतः - ह.त्.पुं.ष.ए.	तप्तोदकपरोदकैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
लीलाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	तस्य - ह.द्.पुं.ष.ए.
तस्य - ह.द्.पुं.ष.ए.	श्रीयमुनाजलैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
गुणान् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.	स्नानम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
गिरा - ह.र्.स्त्री.तृ.ए.	स्तवैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.
प्रातः कृत्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	तीर्थस्थाने - अ.अ.नपुं.स.ए.
कार्यम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	तीरे - अ.अ.नपुं.स.ए.
मुखशुद्धिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.	अभिमज्जनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

स्मरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. गायेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. भवेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : प्रातः पाश्चात्ययामे असौ समुत्थाय शुचिःधिया भगवतो लीलां स्मरेत्, गिरा तस्य गुणान् गायेत् (९४). ततः बहिर्गत्वा यथोदितम् प्रातःकृत्यं कार्यम् ततः मुखशुद्धिः नित्यं सौगन्धाभ्यञ्जनं भवेत् (९५). तप्तोदकपरोदकैः गृहे मलस्नानं कार्यम्, तस्य उपरि श्रीयमुनाजलैः वा स्तवैश्च स्नानं (कार्यं) (९६). मलस्नानं कृत्वा (एव) तीर्थस्थाने तीरे अभिमज्जनम् (कर्तव्यम्) ॥

(३.स्नानोत्तरं वस्त्रधारणं[१] गृहागमनं[२] तिलकमुद्राधारणं[३] भगवच्चरणामृत-गृहणं[४] तुलसीमालाधारणं[५] प्रातःसन्ध्याजपः[६] च)

ततस्तु धारणं शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयोः[१] ॥९७॥

पादुकाभिर्गृहे यानं स्पर्शनं नैव कस्यचित्[२] ।।
कुङ्कुमस्योर्ध्वपुण्ड्राणि द्वादशाङ्गेषु नामभिः ।।९८।।
शंख-चक्रादि-मुद्राश्च गोपी-चन्दन-मृत्स्नया[३] ।।
चरणामृतपानं च लेपश्चापि विशुद्धये[४] ।।९९।।
ततस्तु तुलसीमालां धृत्वा[५] सन्ध्यां समाचरेत्[६] ।।

सन्धिविच्छेद :

ततः + तु = ततस्तु [स.]

कौशेय + अम्बर = कौशेयाम्बर [दीर्घ.]

पादुकाभिः + गृहे = पादुकाभिर्गृहे [रेफ.]

न + एव=नैव [वृद्धि.]

कुङ्कुमस्य + ऊर्ध्व = कुङ्कुमस्योर्ध्व [गुण]

द्वादश + अङ्गेषु = द्वादशाङ्गेषु [दीर्घ.]

चक्र + आदि = चक्रादि [दीर्घ.]

मुद्राः + च = मुद्राश्च [स.श्चु.]

चरण + अमृत = चरणामृत [दीर्घ.]

लेपः + च = लेपश्च [स.श्चु]

च + अपि = चापि [दीर्घ.]

ततः + तु = ततस्तु [स.]

सम् + ध्याम् = सन्ध्याम् [प.स.]

समासविग्रह :

- कौशेयस्य अम्बरम् इति कौशेयाम्बरम् [ष.तत्पु.]
- शुद्धञ्च च इदं कौशेयाम्बरं च शुद्धकौशेयाम्बरम् [कर्म.]
  शुद्धकौशेयाम्बरस्य युग्मम् इति शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मम् [ष.तत्पु.]
  तयोः शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयोः
- उर्ध्वं च तद् पुण्ड्रं च इति उर्ध्वपुण्ड्रम् [कर्म.] तानि उर्ध्वपुण्ड्राणि
- द्वौ च दश च इति द्वादश [द्वन्द्व]
  द्वादश अङ्गानि इति द्वादशाङ्गानि [कर्म.] तेषु
- शंखम् च चक्रं च शंखचक्रे [द्वन्द्व]
  शंखचक्रे आदिः येषां ते शंखचक्रादयः [बहु.]
  शंखचक्रादयः च ताः मुद्राः च शंखचक्रादिमुद्राः [कर्म]
- गोपीनां चन्दनम् इति गोपीचन्दनम् [ष.तत्पु.]

गोपीचन्दनञ्च असौ मृत्स्ना च गोपीचन्दनमृत्स्ना [कर्म.] तया
- चरणस्य अमृतम् इति चरणामृतम् [ष.तत्पु.]
  तस्य पानम् इति चरणामृतपानम् [ष.तत्पु.] तं चरणामृतपानम्
- तुलस्याः माला इति तुलसीमाला [ष.तत्पु.] ताम्

शब्दपरिचय :

ततः [नि.] तु [नि.]	कस्यचित् [नि.]	चरणामृतपानम् [ना.]
धारणम् [ना.]	कुङ्कुमस्य [ना.]	लेपः [ना.] अपि [नि.]
शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयोः [ना.]	उर्ध्वपुण्ड्राणि [ना.]	वि [उ.] शुद्धये [ना.]
पादुकाभिः [ना.]	द्वादशाङ्गेषु [ना.]	तुलसीमालाम् [ना.]
गृहे [ना.] यानम् [ना.]	नामभिः [ना.]	धृत्वा [स.आ.]
स्पर्शनम् [ना.]	शंखचक्रादिमुद्राः [ना.] च [नि.]	सम् [उ.]-ध्याम् [ना.]
न [नि.] एव [नि.]	गोपीचन्दनमृत्स्नया [ना.]	सम् [उ.] आ [उ.] चरेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

ततः [तद्धि.]	उर्ध्वपुण्ड्राणि [स.]	
धारणम् [कृद.]	द्वादशाङ्गेषु [स.]	विशुद्धये [स.]
शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयोः [स.]	शंखचक्रादिमुद्राः [स.]	तुलसीमालाम् [स.]
यानम् [कृद.]	गोपीचन्दनमृत्स्नया [स.]	धृत्वा [कृद.]
स्पर्शनम् [कृद.]	चरणामृतपानम् [स.]	सन्ध्याम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

धारणम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	स्पर्शनम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
शुद्धकौशेयाम्बरयुग्मयोः - अ.अ.नपुं.ष.द्वि.	कुङ्कुमस्य - अ.अ.नपुं.ष.ए.
पादुकाभिः - अ.आ.स्त्री.तृ.ब.	उर्ध्वपुण्ड्राणि - अ.अ.नपुं.प्र.ब.
गृहे - अ.अ.नपुं.स.ए.	द्वादशाङ्गेषु - अ.अ.नपुं.स.ब.
यानम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	नामभिः - ह.न्.नपुं.तृ.ब.

शंखचक्रादिमुद्राः - अ.आ.स्त्री.प्र.ब.
गोपीचन्दनमृत्स्नया - अ.आ.स्त्री.तृ.ए.
चरणामृतपानम् - अ.अ.पुं.प्र.ए.
लेपः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
विशुद्धये - अ.इ.स्त्री.च.ए.
तुलसीमालाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.
सन्ध्याम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : समाचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : ततः तु शुद्धकौशेयाम्बरयुगमयोः धारणं (कृत्वा) पादुकाभिः गृहे यानं (कर्तव्यम्), कस्यचित् स्पर्शनं (च) नैव (कर्तव्यम्). द्वादशाङ्गेषु नामभिः कुङ्कुमस्य उर्ध्वपुण्ड्राणि (कर्तव्यानि) (९८). गोपीचनन्दन-मृत्स्नया शंखचक्रादिमुद्राः च (अंकनीया) विशुद्धये चरणामृतपानं च लेपश्चापि (कर्तव्यौ) (९९). ततः तु तुलसीमालां धृत्वा सन्ध्यां समाचरेत्॥

(४.भगवत्सेवारम्भविधिः)

परिचर्या हरेः कार्या परिवारजनैः सह॥१००॥
गत्वा हरिपदं पद्भ्यां स्तुत्वा द्वारं प्रणम्य च॥
प्रविश्य मार्जनैर्लेपैः पात्राणां शोधनं चरेत्॥१०१॥

सन्धिविच्छेद : मार्जनैः + लेपैः = मार्जनैर्लेपैः [रेफ.]

समासविग्रह :
- परिवारस्य जनः इति परिवारजनः [ष.तत्पु.] तैः
- हरेः पदम् इति हरिपदम् [ष.तत्पु.] तत्

शब्दपरिचय :
परि [उ.]चर्या [ना.] हरेः [ना.] कार्या [ना.] परि [उ.]वारजनैः [ना.] सह [नि.]

गत्वा [स.आ.]	द्वारम् [ना.]	लेपैः [ना.]
हरिपदम् [ना.]	प्र [उ.] -णम्य [स.आ.]	पात्राणाम् [ना.]
पद्भ्याम् [ना.]	च [नि.] प्र [उ.] विश्य [स.आ.]	शोधनम् [ना.]
स्तुत्वा [म.आ.]	मार्जनैः [ना.]	चरेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

परिचर्या [कृद्+स.]	गत्वा [कृद्.]	प्रविश्य [कृद्+स.]
कार्या [कृद्.]	हरिपदम् [स.]	मार्जनैः [स.]
परिवारजनैः [स.]	स्तुत्वा [कृद्.] प्रणम्य [कृद्+स.]	शोधनम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

परिचर्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	पद्भ्याम् - ह.द्.नपुं.तृ.द्वि.
हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.	द्वारम् - ह.र्.स्त्री.द्वि.ए.
कार्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	(मार्जनैः, लेपैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.
परिवारजनैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	पात्राणाम् - अ.अ.नपुं.ष.ब.
हरिपदम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	शोधनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : चरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : परिवारजनैः सह हरेः परिचर्या कार्या (१००). हरिपदं पद्भ्यां गत्वा द्वारं स्तुत्वा प्रणम्य प्रविश्य च मार्जनैः लेपैः पात्राणां शोधनं चरेत्॥१०१॥

(५.भगवत्प्रबोधनस्नापनालंकरणानि)

सम्भृत्य सर्वसम्भारं प्रातराशादिपूर्वकम्॥
प्रबोध्य श्रीहरिं प्रेम्णा मुखशुद्ध्यंशुकादिभिः॥१०२॥
अलंकृत्य ततः सिंहासने समुपवेशयेत्॥

हैयङ्गवीनपक्वान्नैः ताम्बूलैः सुजलैर्यजेत् ॥१०३॥
ततो नीराजनं कार्यं मङ्गलं गीतवाद्यकैः ॥
अभ्यङ्गोन्मर्दनैः स्नानं गृहस्नानविधानतः ॥१०४॥
स्तुत्वा कालिन्दिनीस्नानं कुर्यात् सम्प्रोञ्छनांशुकम् ॥
शृङ्गारं रञ्जितैर्वस्त्रैः चित्रैराभरणैरपि ॥१०५॥
मायूरमुकुटै रम्यैः वेणुवेत्रैः सुमाल्यकैः ॥
वितानैः प्रसरैः शुभ्रैः प्रतिसारैर्नवैर्नवैः ॥१०६॥
जल-क्रीडोपस्करैश्च ताम्बुलामोद-दर्पणैः ॥
व्यजनैर्जल-भृङ्गारैः देशकालानुसारिभिः ॥१०७॥
अलंकृत्यैव सप्रेम स्वीयान् भक्तान् प्रदर्शयेत् ॥
तौर्यत्रिकेन तत्रापि धूप-दीपादिनार्तिकम् ॥१०८॥

सन्धिविच्छेद :

प्रातः + आशा = प्रातराशा [रेफ.]
मुखशुद्धि + अंशु = मुखशुद्ध्यंशुः [यण्.]
सिंह + आसने = सिंहासने [दीर्घ.]
पक्व + अन्नैः = पक्वान्नैः [दीर्घ.]
सुजलैः + यजेत् = सुजलैर्यजेत् [रेफ.]
नीर + अजनम् = नीराजनम् [दीर्घ.]
अभि + अङ्ग = अभ्यङ्ग [यण्.]
उद् + मर्दन = उन्मर्दन [अनु.]
अभ्यङ्ग + उन्मर्दनैः = अभ्यङ्गोनमर्दनैः [गुण]
प्र + उञ्छन = प्रोञ्छन [गुण.]
प्रोञ्छन + अंशुकं = प्रोञ्छनांशुकं [दीर्घ.]
रञ्जितैः + वस्त्रैः + चित्रैः +
आभरणैः + अपि =
रञ्जितैर्वस्त्रैर्चित्रैराभरणैरपि [रेफ.]
मुकुटैः + रम्यैः = मुकुटै रम्यैः [वि.लो.]
प्रतिसारैः + नवैः + नवैः =
प्रतिसारैर्नवैर्नवैः [रेफ]
क्रीडा + उपस्करैः = क्रीडोपस्करैः [गुण.]
उपस्करैः + च = उपस्करैश्च [स.श्चु.]
ताम्बूल + आमोद = ताम्बूलामोद [दीर्घ.]
वि + अजनैः = व्यजनैः [यण्.]
व्यजनैः + जल = व्यजनैर्जल [रेफ.]
काल + अनु = कालानु [दीर्घ.]
अलंकृत्य + एव = अलंकृत्यैव [वृद्धि.]
तत्र + अपि = तत्रापि [दीर्घ.]
दीप + आदिना + आर्तिकम् =
दीपादिनार्तिकम् [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- सर्वश्च असौ सम्भारश्च सर्वसम्भारः [कर्म] तम्
- प्रातराशः आदि यस्य तत् प्रातराशादि [बहु.]
  प्रातराशादि पूर्वं यस्य तत् प्रातराशादिपूर्वकम् [बहु.]
- मुखस्य शुद्धिः इति मुखशुद्धिः [ष.तत्पु.] तस्यै
  अंशुकम् इति मुखशुद्ध्यंशुकम् [च.तत्पु.]
  तत् आदि येषाम् तानि मुखशुद्ध्यंशुकादीनि [बहु.] तैः
- सिहं इव आसनं इति सिंहासनं [कर्म] तस्मिन् सिंहासने
- पक्वं च तद् अन्नं तत् पक्वान्नम् [कर्म]
  हैयङ्गवीनं च पक्वान्नं च हैयङ्गवीनपक्वान्ने [द्वन्द्व.] तैः हैयङ्गवीनपक्वानैः
- गीतं च वाद्यं च तयोः समाहारः गीतवाद्यम् [द्वन्द्व.]
  (स्वार्थे कः गीतवाद्यकम्) तैः गीतवाद्यकैः
- अभ्यङ्गस्य उन्मर्दनम् इति अभ्यङ्गोनमर्दनम् [ष.तत्पु.] तैः अभ्यङ्गोनमर्दनैः
- गृहे स्नानम् इति गृहस्नानम् [स.तत्पु.]
  तस्य विधानम् इति गृहस्नानविधानम् [ष.तत्पु.] तस्मात् गृहस्नानविधानतः [पं.तसि.]
- कालिन्दिन्यां स्नानम् कालिन्दिनीस्नानम् [स.तत्पु.] तत्
- सम्प्रोञ्छनाय अंशुकम् इति सम्प्रोञ्छनांशुकम् [च.तत्पु.] तत्
- मायूरं च तद् मुकुटं च इति मायूरमुकुटम् [कर्म.] तैः मायूरमुकुटैः
- वेणुं च वेत्रं च इति वेणुवेत्रे [द्वन्द्व.] तैः वेणुवेत्रैः
- जले क्रीडा इति जलक्रीडा [स.तत्पु.] जलक्रीडायाः उपस्करः इति जलक्रीडोपस्करः [ष.तत्पु.] तैः जलक्रीडोपस्करैः
- ताम्बूलम् च आमोदश्च (सुगन्धिः) दर्पणञ्च इति ताम्बूलामोद-दर्पणानि [द्वन्द्व.] तैः ताम्बूलामोददर्पणैः
- जलस्य भृङ्गारम् इति जलभृङ्गारम् [ष.तत्पु.] तैः जलभृङ्गारैः
- देशश्च कालश्च इति देशकालौ [द्वन्द्व.]
  तेषां अनुसारी इति देशकालानुसारी [ष.तत्पु.] तैः देशकालानुसारिभिः
- प्रेम्णा सह इति सप्रेम [बहु]

- धूपश्च दीपश्च इति धूपदीपौ[द्वन्द्व]

धूपदीपौ आदिः यस्य तत् धूपदीपादि[बहु.] तेन धूपदीपादिना

शब्दपरिचय :

सम्भृत्य[स.आ.]	मङ्गलम्[ना.]	वि[उ.]तानैः[ना.]
सर्व-सम्[उ.]भारम्[ना.]	गीतवाद्यकैः[ना.]	प्र[उ.]सरैः[ना.] शुभ्रैः[ना.]
प्रातराशादिपूर्वकम्[ना.]	अभि[उ.]-अङ्ग-	प्रति[उ.] सारैः[ना.]
प्र[उ.]बोध्य[स.आ.]	उद्[उ.]मर्दनैः[ना.]	नवैः[ना.]
श्रीहरिम्[ना.]	स्नानम्[ना.]	जलक्रीडाउप[उ.]स्करैः[ना.]
प्रेम्णा[ना.]	गृहस्नानविधानतः[नि.]	ताम्बूल-आ[उ.]मोददर्पणैः[ना.]
मुखशुध्यंशुकादिभिः[ना.]	स्तुत्वा[स.आ.]	वि[उ.]-अजनैः[ना.]
अलंकृत्य[स.आ.]	कालिन्दिनीस्नानम्[ना.]	जलभृङ्गारैः[ना.]
ततः[नि.]	कुर्यात्[आ.]	देशकाल-अनु[उ.]-
सिंहासने[ना.]	सम्[उ.]प्र[उ.] उञ्छनांशुकं[ना.]	सारिभिः[ना.]
सम्[उ.]उप[उ.]वेशयेत्[आ.]	शृङ्गारम्[ना.]	अलंकृत्य[स.आ.]
हैयङ्गवीनपक्वान्नैः[ना.]	रञ्जितैः[ना.]	एव[नि.] सप्रेम[ना.]
ताम्बूलैः[ना.]	वस्त्रैः[ना.] चित्रैः[ना.]	स्वीयान्[ना.]
सु[उ.]जलैः[ना.]	आ[उ.]भरणैः[ना.]	भक्तान्[ना.]
यजेत्[आ.]	अपि[नि.]	प्र[उ.]दर्शयेत्[आ.]
ततः[नि.]	मायूरमुकुटै[ना.]	तौर्यत्रिकेन[ना.] तत्र[नि.]
नीराजनम्[ना.]	रम्यैः[ना.] वेणुवेत्रैः[ना.]	धूपदीपादिना[ना.]
कार्यम्[ना.]	सु[उ.] माल्यकैः[ना.]	आर्तिकम्[ना.]

वृत्तिपरिचय :

सम्भृत्य[कृद्+स.]	प्रबोध्य[कृद्+स.]	अलंकृत्य[कृद्+स.]
सर्वसम्भारम्[स.]	श्रीहरिम्[स.]	ततः[तद्धि.]
प्रातराशादिपूर्वकम्[स.]	मुखशुध्यंशुकादिभिः[स]	सिंहासने[स.]

समुपवेशयेत् [सना.]	सम्प्रोञ्छनांशुकम् [स]	
हैयङ्गवीनपक्वान्नैः [स.]	रञ्जितैः [कृद्]	व्यजनैः [स.]
सुजलैः [स.]	आभरणैः [स]	जल-भृङ्गारैः [स.]
नीराजनम् [स.]	मायूरमुकुटैः [स]	देशकालानुसारिभिः [स.]
कार्यम् [कृद्]	वेणुवेत्रैः [स.]	अलंकृत्य [कृद्+स.]
गीतवाद्यकैः [स.]	सुमाल्यकैः [स.]	सप्रेम [स.]
अभ्यङ्गोन्मर्दनैः [स.]	वितानैः [कृद्+स.]	स्वीयान् [तद्धि.]
स्नानम् [कृद्]	प्रसरैः [स.]	भक्तान् [कृद्]
गृहस्नानविधानतः [तद्धि.]	प्रतिसारैः [स.]	प्रदर्शयेत् [सना.]
स्तुत्वा [कृद्]	जल-क्रीडोपस्करैः [स.]	तत्र [तद्धि.]
कालिन्दिनीस्नानम् [स.]	ताम्बूलामोददर्पणैः [स.]	धूपदीपादिना [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(रञ्जितैः, वस्त्रैः, चित्रैः, आभरणैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

(मायुरमुकुटैः, रम्यैः, वेणुवेत्रैः, सुमाल्यकैः, वितानैः, प्रसरैः, शुभ्रैः, प्रतिसारैः, नवैः, हैयङ्गवीनपक्वान्नैः, ताम्बूलैः, सुजलैः, अभ्यङ्गोन्मर्दनैः ताम्बुलामोद-दर्पणैः, व्यजनैः, जल-भृङ्गारैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

(नीराजनम्, कार्यम्, मङ्गलम्, स्नानम्) - अ.अ.नपुं.प्र.एं.

(प्रातराशादिपूर्वकं, कालिन्दिनीस्नानं, सम्प्रोञ्छनांशुकं) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

सर्वसम्भारं, शृङ्गारं - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

श्रीहरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.

प्रेम्णा - ह.न्.नपुं.तृ.ए.

मुखशुध्यंशुकादिभिः - अ.इ.नपुं.तृ.ब.

सिंहासने - अ.अ.नपुं.स.ए.

गीतवाद्यकैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

जलक्रीडोपस्करैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

देशकालानुसारिभिः - अ.इ.नपुं.तृ.ब.

सप्रेम - ह.न्.नपुं.द्वि.ए.

स्वीयान्, भक्तान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.

धातुरूपपरिचय :

समुपवेशयेत् - तुदा.वि.लिङ्.प्र.ए.(ण्यन्त प्र.)

यजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

प्रदर्शयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.(यक् प्र.)

अन्वय : प्रातराशादिपूर्वकम् सर्वसम्भारं सम्भृत्य श्रीहरिं मुखशुध्यंशुकादिभिः प्रेम्णा प्रबोध्य अलंकृत्य ततः सिंहासने समुपवेशयेत्, हैयङ्गवीनपक्वान्नैः सुजलैः ताम्बूलैः यजेत् (१०३). ततः गीतवाद्यकैः मङ्गलं नीराजनं कार्यम्, अभ्यङ्गोन्मर्दनैः गृहस्नानविधानतः कालिन्दिनीस्नानं स्तुत्वा स्नानं (कारणीयम्). (ततः) रञ्जितैः वस्त्रैः चित्रैराभरणैः रम्यैः मायुरमुकुटैः वेणुवेत्रैः सुमाल्यकैः नवैः नवैः शृङ्गारं (कृत्वा) शुभ्रैः वितानैः प्रसरैः प्रतिसारैः जल-क्रीडोपस्करैश्च देशकालानुसारिभिः सप्रेम अलंकृत्यैव स्वीयान् भक्तान् प्रदर्शयेत्. तत्रापि तौर्यत्रिकेन धूपदीपादिना आर्तिकम् (कुर्यात्).

(६.नैवेद्यसमर्पणोत्तरमवशिष्टसन्ध्याजपादिविधिः)

ततो नानाविधैः शुद्धैश्चतुर्विध-सुभोजनैः ।।
सम्भृतं स्वर्णपात्रन्तु हरेरग्रे निवेदयेत् ।।१०९।।
तुलसीं शंख-तोयेन गायत्र्यास्मिन् निधाय च ।।
''एतत् समर्पितं देव भक्त्या मे प्रतिगृह्यताम्'' ।।११०।।
राजभोगं समर्प्यैवं, बहिर्गोग्रासम् आचरेत् ।।
ततोऽवशिष्टं जाप्यादि माध्याह्निकम् इहाचरेत् ।।१११।।

सन्धिविच्छेद :

ततः + नाना = ततो नाना [उ.गुण.]	समर्प्य + एव = समर्प्यैव [वृद्धि.]
शुद्धैः + चतुर्विध = शुद्धैश्चतुर्विध [स.श्चु.]	बहिः + गोग्रास = बहिर्गोग्रास [रेफ.]
पात्रम् + तु = पात्रन्तु [प.स.]	ततः + अव = ततोऽव [उत्व.पू.रू.]
हरेः + अग्रे = हरेरग्रे [रेफ.]	जाप्य + आदि = जाप्यादि [दीर्घ.]
गायत्र्या + अस्मिन् = गायत्र्यास्मिन् [दीर्घ.]	इह + आचरेत् = इहाचरेत् [दीर्घ.]

समास विग्रह :

- नाना विधा यस्य तत् नानाविधम् [कर्म] तैः

- चत्वारि विधाः यस्य तत् चतुर्विधम्[बहु.]
  चतुर्विधं अदः सुभोजनम् इति चतुर्विध-सुभोजनम्[कर्म] तैः चतुर्विध-सुभोजनैः
- स्वर्णस्य पात्रम् इति स्वर्णपात्रम्[ष.तत्पु.]
- शंखस्य तोयम् इति शंखतोयम्[ष.तत्पु.] तेन शंखतोयेन
- राज्ञां भोगः इति राजभोगः[ष.तत्पु.] तम्
- गवां ग्रासम् इति गोग्रासम्[ष.तत्पु.]
- जाप्यम् आदि यस्य तत् जाप्यादि[बहु.]
- अह्नः मध्यः इति मध्याह्नः[ष.तत्पु.]
  मध्याह्ने भवं माध्याह्निकम् तम् माध्याह्निकम्

शब्दपरिचय :

ततः[नि.]	शंखतोयेन[ना.]	सम्[उ.]अर्घ्य[स.आ.]
नानाविधैः[ना.]	गायत्र्या[ना.]	एवम्[नि.] बहिः[नि.]
शुद्धैः[ना.]	अस्मिन्[ना.]	गोग्रासम्[ना.]
चतुर्विधसुभोजनैः[ना.]	नि[उ.]धाय[स.आ.]	आ[उ.]चरेत्[आ.]
सम्[उ.]भृतम्[ना.]	च[नि.] एतत्[ना.]	ततः[नि.]
स्वर्णपात्रम्[ना.]	सम्[उ.]अर्पितम्[ना.]	अव[उ.]शिष्टम्[ना.]
तु[नि.] हरेः[ना.]	देव[ना.] भक्त्या[ना.]	जाप्यादि[ना.]
अग्रे[ना.]	मे[ना.]	माध्याह्निकम्[ना.]
नि[उ.]वेदयेत्[आ.]	प्रति[उ.]गृह्यताम्[आ.]	इह[नि.]
तुलसीम्[ना.]	राजभोगम्[ना.]	आ[उ.]चरेत्[आ.]

वृत्तिपरिचय :

ततः[तद्धि.]	सम्भृतम्[कृद्+स.]	शंखतोयेन[स.]
नानाविधैः[स.]	स्वर्णपात्रम्[स.]	निधाय[कृद्+स.]
चतुर्विधसुभोजनैः[स.]	निवेदयेत्[सना.]	समर्पितम्[कृद्+स.]

भक्त्या [कृद्]	समर्प्य [कृद्+स.]	अवशिष्टम् [कृद्+स.]
प्रतिगृह्यताम् [सना.]	गोग्रासम् [स.]	जाप्यादि [स.]
राजभोगम् [स]	ततः, इह [तद्धि.]	माध्याह्निकम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(नानाविधैः, शुद्धैः, चतुर्विध-सुभोजनैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

(सम्भृतम्, स्वर्णपात्रम्, राजभोगम्, गोग्रासम्, अवशिष्टम्, माध्याह्निकम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

एतत् - ह.द्.नपुं.द्वि.ए.

हरेः - अ.इ.पुं.ष.ए.

समर्पितम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

तुलसीम् - अ.इ.स्त्री.द्वि.ए.

देव - अ.अ.पुं.सम्बो.ए.

शंख-तोयेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.

भक्त्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.

गायत्र्या - अ.इ.स्त्री.तृ.ए.

मे - ह.द्.पुं.ष.ए.

अस्मिन् - ह.म्.नपुं.स.ए.

जाप्यादि - अ.इ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

निवेदयेत् - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.(ण्यन्त प्र)

प्रतिगृह्यताम् - क्र्यादि.वि.लिङ्.प्र.ए.(यक् प्र)

आचरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : ततो नानाविधैः शुद्धैः चतुर्विध-सुभोजनैः सम्भृतं स्वर्णपात्रं तु हरेः अग्रे निवेदयेत् (१०९). अस्मिन् (पात्रे) शंख-तोयेन गायत्र्या तुलसीं निधाय च "हे देव मे भक्त्या समर्पितं एतत् प्रतिगृह्यताम्" (इति निवेदनं कुर्यात्) (११०). एवं राजभोगं समर्प्य बहिः गोग्रासम् आचरेत्. ततः अवशिष्टं जाप्यादि माध्याह्निकम् इह आचरेत्॥१११॥

(७.राजभोगदर्शननीराजनादयः सेवानवसरकृत्यानि च)

ततस्त्वाचमनं दत्वा ताम्बूलं माल्यजां स्रजम्।।
अपसार्य विशोध्यात्र नैवेद्यं जलमानयेत्।।११२।।

ततो राजविभूतीनाम् . आदर्शैश्चामरैर्भजेत्।।
गीताद्युत्सवतो ह्येनं नीराज्य च प्रणम्य च।।११३।।
हृदि कृत्वा पिधायास्य मन्दिरं बहिराव्रजेत्।।
स्रग्-गन्धादि शिरो धृत्वा प्रणम्यैव गृहं व्रजेत्।।११४।।
माध्याह्निकं समाप्यैव श्रीमद्भागवतं पठेत्।।

सन्धिविच्छेद :

ततः + तु = ततस्तु [स.]
ततस्तु + आचमनम् = ततस्वाचमनम् [यण्.]
विशोध्य + अत्र = विशोध्यात्र [दीर्घ.]
ततः + राज = ततो राज [उ.गुण.]
आदर्शैः + चामरैः = आदर्शैश्चामरैः [स.श्चु.]
चामरैः + भजेत् = चामरैर्भजेत् [रेफ.]
गीत + आदिं = गीतादि [दीर्घ.]
गीतादि + उत्सवतः = गीताद्युत्सवतः [यण्.]
उत्सवतः + हि = उत्सवतो हि [उ.गुण.]

हि + एनम् = ह्येनम् [यण्.]
नीर् + राज्य = नीराज्य [रलोप.दीर्घ.]
पिधाय + अस्य = पिधायास्य [दीर्घ.]
बहिः + आव्रजेत् = बहिराव्रजेत् [रेफ.]
गन्ध + आदि = गन्धादि [दीर्घ.]
शिरः + धृत्वा = शिरो धृत्वा [उ.गुण.]
प्रणम्य + एव = प्रणम्यैव [वृद्धि.]
समाप्य + एव = समाप्यैव [वृद्धि.]
श्रीमत् + भागवतम् = श्रीमद्
भागवतम् [जश्त्व.]

समासविग्रह :

- माल्यात् जाता इति माल्यजा [उप.स.] ताम्
- राज्ञः विभूतिः इति राजविभूतिः [ष.तत्पु.] तेषां राजविभूतीनाम्
- गीत आदिः यस्य सः गीतादिः [बहु.]
  गीतादिः च असौ उत्सवः च गीताद्युत्सवः [कर्म] तस्मात् गीताद्युत्सवतः [पं.तसि.]
- स्रक् च गन्धश्च इति स्रग्-गन्धौ [द्वन्द्व.]
  स्रग्-गन्धौ आदि यस्य तत् स्रग्-गन्धादि [बहु.]
- शीरो-धृत्वा (?)
- अह्नः मध्यः इति मध्याह्नः [ष.तत्पु.]
  मध्याह्ने भवम् इति माध्याह्निकम्

- श्रीमत् च अदः भागवतम् च इति श्रीमद् भागवतम् [कर्म.]

शब्दपरिचय :

ततः [नि.] तु [नि.]	राज-वि [उ.] भूतीनाम् [ना.]	बहिः [नि.]
आचमनम् [ना.]	आ [उ.] दर्शैः [ना.]	आ [उ.] व्रजेत् [आ.]
दत्वा [स.आ.]	चामरैः [ना.]	स्रग-गन्धादि [ना.]
ताम्बूलम् [ना.]	भजेत् [आ.]	शिरः [ना.] धृत्वा [स.आ.]
माल्यजाम् [ना.]	गीतादि-उत् [उ.]-सवतः [नि.]	प्र [उ.] णम्य [स.आ.]
स्रजम् [ना.]	हि [नि.] एनम् [ना.]	एव [नि.]
अप [उ.] सार्य [स.आ.]	नी [उ.] राज्य [स.आ.]	गृहम् [ना.]
वि [उ.] शोध्य [स.आ.]	च [नि.] प्र [उ.] णम्य [स.आ.]	व्रजेत् [आ.]
अत्र [नि.]	हृदि [ना.] कृत्वा [स.आ.]	माध्याह्निकम् [ना.]
नैवेद्यम् [ना.]	पिधाय [स.आ.]	सम् [उ.]-आप्य [स.आ.]
जलम् [ना.]	अस्य [ना.]	श्रीमद्भागवतम् [ना.]
आ [उ.] नयेत् [आ.]	मन्दिरम् [ना.]	पठेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

ततः [तद्धि.]	नैवेद्यम् [तद्धि.]	पिधाय [कृद.]
आचमनम् [कृद+स.]	राजविभूतीनाम् [स.]	आव्रजेत् [स.]
दत्वा [कृद.]	आदर्शैः [स.]	स्रग-गन्धादि [स.]
माल्यजाम् [स.]	गीताद्युत्सवतः [तद्धि.]	धृत्वा [कृद.] प्रणम्य [कृद+स.]
अपसार्य [कृद+स.]	नीराज्य [कृद+स.]	माध्याह्निकम् [तद्धि.]
विशोध्य [कृद+स.]	प्रणम्य [कृद+स.]	समाप्य [कृद+स.]
अत्र [तद्धि.]	कृत्वा [कृद.]	श्रीमद्भागवतम् [स.]

शब्दरूपपरिचय :

(आचमनम्, ताम्बूलम्, जलम्, नैवेद्यम्, मन्दिरम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

(गृहम्, माध्याह्निकम्, श्रीमद्भागवतम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
माल्यजाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

स्रजम् - ह.ज.स्त्री.द्वि.ए.	हृदि - ह.द.नपुं.स.ए.
राजविभूतीनाम् - अ.ई.स्त्री.ष.ब.	अस्य - ह.म्.पुं.ष.ए.
आदर्शैः, चामरैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.	स्रगृगन्धादि - अ.इ.नपुं.द्वि.ए.
एनम् - ह.द.पुं.द्वि.ए.	शिरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय : (आनयेत्, भजेत्, पठेत्) - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय :

ततः तु आचमनं (कारयित्वा) ताम्बूलं दत्वा माल्यजां स्रजं (धारयित्वा), नैवेद्यम् अपसार्य अत्र विशोध्य जलम् आनयेत्.(११२). ततो राजविभूतीनां आदर्शैः चामरैः भजेत्. गीताद्युत्सवतो हि नीराज्य च प्रणम्य च एनं हृदि कृत्वा अस्य मन्दिरं पिधाय बहिः आव्रजेत्, स्रग्-गन्धादि शिरो-धृत्वा प्रणम्यैव गृहं व्रजेत्.(११४). माध्याह्निकं समाप्यैव श्रीमद्भागवतं पठेत्॥

(८.भगवत्प्रसादग्रहणोत्तरलौकिककृत्यादयः)

ततो भक्तजनेभ्योऽस्य प्रसादं शक्तितो भजेत्॥११५॥
समागतेभ्यो विप्रेभ्यो दीनेभ्यश्च यथायथम्॥
दत्वा स्वीय-जनैर्भुक्तिः वैश्वदेवोऽपि तत्र वै॥११६॥
ततो वार्ता स्वकीयानां बहु-पापैरनाकुलाम्॥
यात्रार्थमेव सेवेत नाभिवेशोऽत्र सञ्चरेत्॥११७॥
सम्पन्न-वृत्तिर्भक्तानां शास्त्राणि परिभावयेत्॥
सर्वथा वृत्यभावेतु याममात्रं भजेद् हरिम्॥११८॥
दरिद्रश्च कुटुम्बार्तः विद्वान् भागवतं पठेत्॥
अविद्वानस्य सेवायां साहाय्यं श्रवणं च वा॥११९॥

सन्धिविच्छेद :

ततः + भक्त = ततो भक्त [उ.गुण.]
जनेभ्यः + अस्य = जनेभ्योऽस्य [उ.पू.रू.]
शक्तितः + भजेत् = शक्तितो भजेत् [उ.गुण.]
समागतेभ्यः + विप्रेभ्यः + दीनेभ्यः =
समागतेभ्यो विप्रेभ्यो दीनेभ्यः [उ.गुण.]
दीनेभ्यः + च = दीनेभ्यश्च [स.श्चु.]
जनैः + भुक्तिः = जनैर्भुक्तिः [रेफ.]
देवः + अपि = देवोऽपि [उ.पू.रू.]
ततः + वार्ताम् = ततो वार्ताम् [उ.गुण.]
पापैः + अनाकु.. = पापैरनाकु.. [रेफ.]

यात्रा + अर्थम् = यात्रार्थम् [दीर्घ.]
न + अभिवेशः = नाभिवेशः [दीर्घ.]
वेशः + अत्र = वेशोऽत्र [प.रू.]
सम् + चरेत् = सञ्चरेत् [प.स.]
सम्पन्नवृत्तिः + भक्तानाम् =
सम्पन्नवृत्तिर्भक्तानाम् [रेफ.]
वृत्ति + अभावे = वृत्त्यभावे [यण्.]
भजेत् + हरिम् = भजेद् हरिम् [जश्त्व.]
दरिद्रः + च = दरिद्रश्च [स.श्चु.]
कुटुम्ब + आर्तः = कुटुम्बार्तः [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- भक्तश्च असौ जनः च भक्तजनः [कर्म.] तेभ्यः भक्तजनेभ्यः
- स्वीयो यो जनः स्वीयजनः [कर्म.] तैः स्वीयजनैः
- बहूनि च तानि पापानि इति बहुपापानि [कर्म.] तैः बहुपापैः
- न आकुला इति अनाकुला [न.तत्पु.] ताम्
- यात्रायै इदं इति यात्रार्थं [च.तत्पु.]
- सम्पन्ना वृत्तिः यस्य सः सम्पन्नवृत्तिः [बहु.] स
- वृत्तेः अभावः इति वृत्त्यभावः [ष.तत्पु.] तस्मिन् वृत्त्यभावे
- कुटुम्बात् आर्तः इति कुटुम्बार्तः [प.तत्पु.]
- न विद्वान् इति अविद्वान् [न.तत्पु.] स

शब्दपरिचय :

ततः [नि.]	शक्तितः [नि.]	वि [उ] प्रेभ्यः [ना.]
भक्तजनेभ्यः [ना.]	भजेत् [आ.]	दीनेभ्यः [ना]
अस्य [ना.] प्र [उ.] सादम् [ना.]	सम् [उ.] आ [उ.] गतेभ्यः [ना.]	च [नि.] यथायथम् [नि.]

दत्वा [स.आ.]	सेवेत [आ.] न [नि.]	हरिम् [ना.]
स्वीयजनैः [ना.]	अभि [उ.] वेशः [ना.]	दरिद्रः [ना.]
भुक्तिः [ना.]	अत्र [नि.]	कुटुम्बार्तः [ना.]
वैश्वदेवः [ना.]	सम् [उ.] चरेत् [आ.]	विद्वान् [ना.]
अपि [नि.]	सम् [उ.] -पन्न-वृत्तिः [ना.]	भागवतम् [ना.]
तत्र [नि.] वै [नि.]	भक्तानाम् [ना.]	पठेत् [आ.]
वार्ताम् [ना.]	शास्त्राणि [ना.]	अविद्वान् [ना.]
स्वकीयानाम् [ना.]	परि [उ.] भावयेत् [आ.]	अस्य [ना.]
बहुपापैः [ना.]	सर्वथा [नि.]	सेवायाम् [ना.]
अन्-आ [उ.] कुलाम् [ना.]	वृत्यभावे [ना.] तु [नि.]	साहाय्यम् [ना.]
यात्रार्थम् [ना.]	याममात्रम् [ना.]	श्रवणम् [ना.]
एव [नि.]	भजेत् [आ.]	च [नि.] वा [नि.]

वृत्तिपरिचय :

ततः [तद्धि.]	तत्र [तद्धि.]	
भक्तजनेभ्यः [स.]	वार्ताम् (?)	सर्वथा [तद्धि.]
प्रसादम् [स.]	स्वकीयानाम् [तद्धि.]	वृत्यभावे [स.]
शक्तितः [तद्धि.]	बहुपापैः [स.]	याममात्र [तद्धि.]
समागतेभ्यः [स.]	अनाकुलाम् [स.]	कुटुम्बार्तः [स.]
विप्रेभ्यः [स.]	अभिवेशः [स.]	विद्वान् [तद्धि.]
दत्वा [कृद.]	अत्र [तद्धि.]	भागवतम् [तद्धि.]
स्वीयजनैः [स.]	सम्पन्न-वृत्तिः [स.]	अविद्वान् [स.]
भुक्तिः [कृद.]	भक्तानाम् [कृद.]	साहाय्यम् [तद्धि.]
वैश्वदेवः [तद्धि.]	परिभावयेत् [सना.]	श्रवणम् [कृद.]

शब्दरूपपरिचय :

(भक्तजनेभ्यः, समागतेभ्यः, विप्रेभ्यः, दीनेभ्यः) - अ.अ.पुं.च.ब.

(भागवतम्, साहाय्यम्, श्रवणम्) - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

अस्य - ह.म्.पुं.ष.ए

प्रसादम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

स्वीयजनैः - अ.अ.पुं.तृ.ब.

भुक्तिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

वैश्वदेवः, अभिवेशः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

वार्ताम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

स्वकीयानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

बहुपापैः - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

अनाकुलाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.

यात्रार्थम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

सम्पन्नवृत्तिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.

भक्तानाम् - अ.अ.पुं.ष.ब.

शास्त्राणि - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.

वृत्यभावे - अ.अ.पुं.स.ए.

याममात्रम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.

हरिम् - अ.इ.पुं.द्वि.ए.

दरिद्रः, कुटुम्बार्तः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

विद्वान् - ह.स्.पुं.प्र.ए.

अविद्वान् - ह.स.पुं.प्र.ए.

सेवायाम् - अ.आ.स्त्री.स.ए.

धातुरूपपरिचय :

भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

सञ्चरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

परिभावयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच्.प्र)

पठेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.

अन्वय : ततः भक्तजनेभ्यः अस्य प्रसादं शक्तितः भजेत्.(११५). समागतेभ्यः विप्रेभ्यः दीनेभ्यः च यथायथम् दत्वा वैश्वदेवः अपि तत्र वै (कृत्वा) स्वीयजनैः (सह) भुक्तिः (कार्याः).(११६). ततः बहुपापैः अनाकुलाम् स्वकीयानां वार्तां (जीवन)यात्रार्थमेव सेवेत्, अत्र अभिवेशः न सञ्चरेत्.(११७). भक्तानां सम्पन्न-वृत्तिः (तदा) शास्त्राणि परिभावयेत्, सर्वथा वृत्यभावे तु याममात्रं हरिं भजेत्.(११८). दरिद्रश्च कुटुम्बार्तः च विद्वान् भागवतं पठेत्, अविद्वान् अस्य सेवायां साहाय्यं श्रवणं च वा (कुर्यात्).

(९.सायंकृत्योत्तरं प्रभोरुत्थापनम्)

सायंसन्ध्याथ पुण्ड्राणि धृत्वा ताम्बूलतो मुखम्॥

संशोध्याचम्य शुद्धोऽसौ प्रभोरुत्थापनं चरेत्।।१२०।।
कन्दमूलैः फलैर्गव्यैः सुमाल्यैः सुजलैरपि।।
सन्तोष्य मुरजादीनां सङ्गीतेनापि तोषयेत्।।१२१।।
गायेद् भक्तकृतैः पद्यैः हृद्यैर्लीलारहस्यकैः।।
ततो नीराजयेन्नाथम् आयान्तं व्रजमण्डले।।१२२।।

सन्धिविच्छेद :

सम् + ध्या = सन्ध्या - [प.स.]
सन्ध्या + अथ = सन्ध्याथ [दीर्घ.]
ताम्बूलतः + मुखम् =
ताम्बूलतो मुखम् [उ.गुण.]
संशोध्य + आचम्य = संशोध्याचम्य [दीर्घ.]
शुद्धः + असौ = शुद्धोऽसौ [उत्व.पू.रू.]
उद् + स्थापनम् =
उत्थापनम् [पू.स,थलोप,चर्त्व.]
प्रभोः + उत्थापनम् = प्रभोरुत्थापनम् [रेफ.]
फलैः + गव्यैः = फलैर्गव्यैः [रेफ.]
सुजलैः + अपि = सुजलैरपि [रेफ.]
सम् + तोष्य = सन्तोष्य [प.स.]

मुरज + आदीनां = मुरजादीनाम् [दीर्घ.]
सम् + गीतेन = सङ्गीतेन [प.स.]
सङ्गीतेन + अपि = सङ्गीतेनापि [दीर्घ.]
गायेत् + भक्तकृतैः =
गायेद् भक्तकृतैः [जश्त्व.]
हृद्यैः + लीला = हृद्यैर्लीला [रेफ]
ततः + नीराजयेत् =
ततो नीराजयेत् [उ.गुण.]
नीर् + राजयेत् = नीराजयेत् [रलोप.दीर्घ.]
नीराजयेत् + नाथम् =
नीराजयेन्नाथम् [प.स.]

समास विग्रह :

- सायं (कालिना) सन्ध्या इति सायंसन्ध्या [तत्पु.] (?)
- कन्दञ्च मूलं च कन्दमूले [द्वन्द्व.] तैः कन्दमूलैः
- मुरजः आदिः येषां तानि मुरजादीनि [बहु.] तेषां मुरजादीनाम्
- भक्तैः कृतम् इति भक्तकृतम् [प.तत्पु.] तैः भक्तकृतैः
- लीलायाः रहस्यं येषु तानि लीलारहस्यकानि [बहु.] तैः लीलारहस्यकैः
- व्रजस्य मण्डलम् इति व्रजमण्डलम् [ष.तत्पु.] तस्मिन्

शब्दपरिचय :

सायं-सम्[उ.]-ध्या[ना]	उद्[उ.]-स्थापनम्[ना.]	तोषयेत्[आ.]
अथ[नि.]	चरेत्[आ.]	गायेद्[आ.]
पुण्ड्राणि[ना.]	कन्दमूलैः[ना.]	भक्तकृतैः[ना.]
धृत्वा[स.आ.]	फलैः[ना.] गव्यैः[ना.]	पद्यैः[ना.] हृद्यैः[ना.]
ताम्बूलतः[नि.]	सु[उ.]माल्यैः[ना.]	लीलारहस्यकैः[ना.]
मुखम्[ना.]	सु[उ.]जलैः[ना.]	ततः[नि.]
सम्[उ.]शोध्य[कृद्.]	अपि[नि.]	नीराजयेत्[आ.]
आ[उ.]चम्य[स.आ.]	सम्[उ.]-तोष्य[स.आ.]	नाथम्[ना.]
शुद्धः[ना.] असौ[ना.].	मुरजादीनाम्[ना.]	आ[उ.]यान्तम्[ना.]
प्र[उ.]भोः[ना.]	सम्[उ.]-गीतेन[ना.]	व्रजमण्डले[ना.]

वृत्तिपरिचय :

सायंसन्ध्या[स.]	कन्दमूलैः[स.]	
धृत्वा[कृद्.]	सुमाल्यैः[स.]	भक्तकृतैः[स.]
ताम्बूलतः[तद्धि.]	सुजलैः[स.]	लीलारहस्यकैः[स.]
संशोध्य[कृद्+स.]	सन्तोष्य[कृद्+स.]	ततः[तद्धि.]
आचम्य[कृद्+स.]	मुरजादीनाम्[स.]	निराजयेत्[सना.]
प्रभोः[स.]	सङ्गीतेन[स.]	आयान्तम्[कृद्+स.]
उत्थापनम्[स.]	तोषयेत्[सना.]	व्रजमण्डले[स.]

शब्दरूपपरिचय :

(कन्दमूलैः, फलैः, गव्यैः, सुमाल्यैः, सुजलैः, भक्तकृतैः, पद्यैः, हृद्यैः, लीलारहस्यकैः) - अ.अ.नपुं.तृ.ब.

सायंसन्ध्या - अ.आ.स्त्री.प्र.ए.	शुद्धः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
पुण्ड्राणि - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.	असौ - ह.स्.पुं.प्र.ए.
मुखम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ब.	प्रभोः - अ.उ.पुं.ष.ए.

उत्थापनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	नाथम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.
मुरजादीनाम् - अ.इ.नपुं.ष.ब.	आयान्तम् - ह.त.पुं.द्वि.ए.
सङ्गीतेन - अ.अ.नपुं.तृ.ए.	व्रजमण्डले - अ.अ.नपुं.स.ए.

धातुरूपपरिचय :

चरेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	गायेद् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
तोषयेत् - दिवा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच् प्र)	नीराजयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.(णिच् प्र)

अन्वय : अथ सायंसन्ध्या (कार्या) पुण्ड्राणि धृत्वा, ताम्बूलतः मुखं संशोध्य, आचम्य शुद्धः असौ प्रभोः उत्थापनं चरेत्.(१२०). कन्दमूलैः फलैः गव्यैः सुमाल्यैः सुजलैरपि सन्तोष्य, मुरजादीनां सङ्गीतेनापि तोषयेत्.(१२१). हृद्यैः लीलारहस्यकैः भक्तकृतैः पद्यैः गायेत्. ततः व्रजमण्डले आयान्तं नाथं नीराजयेत्॥१२२॥

(१०.शयनभोगनिवेदनं नीराजनादिकृत्यानि च)

सायंकालेऽपि नैवेद्यं यथाविभवविस्तरः (विस्तरम्)(?)॥
नीराजनं च शयनं यथायोग्यं विभावयेत्॥१२३॥

सन्धिविच्छेद :

काले + अपि = कालेऽपि पू.रू.

कथयेत् + शृणुयात् + वापि = कथयेद् शृणुयाद् वापि जश्त्व.

समासविग्रह :

- सायं यः कालः स सायं-कालः कर्म. तस्मिन्
- विभवस्य विस्तरः विभवविस्तरः ष.तत्पु.
  विभवविस्तरम् अनतिक्रम्य इति यथाविभवविस्तरम् अव्य.
- योग्यम् अनतिक्रम्य इति यथायोग्यम् अव्य.

शब्दपरिचय :

सायंकाले [ना.]	यथा-वि [उ.] भव-विस्तरः [नि.]	शयनम् [ना.]
अपि [नि.]	नी [उ.] राजनम् [ना.]	यथायोग्यम् [नि.]
नैवेद्यम् [ना.]	च [नि.]	वि [उ.] भावयेत् [आ.]

वृत्तिपरिचय :

सायंकाले [स.]	यथाविभवविस्तरः [स.]	शयनम् [कृद्.]
नैवेद्यम् [तद्धि.]	निराजनम् [स.]	यथायोग्यम् [स.] विभावयेत् [कृद्+स.]

शब्दरूपपरिचय :

सायंकाले - अ.अ.पुं.स.ए.

नैवेद्यम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	नीराजनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
यथाविभवविस्तरः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	शयनम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : विभावयेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. (णिच् प्र)

अन्वय :

सायंकाले अपि यथा-विभव-विस्तरः नैवेद्यं, नीराजनं शयनं च यथायोग्यं विभावयेत्॥१२३॥

(११.शयनपूर्वकृत्यानि)

सायंसन्ध्या-ऽऽहुतीश्चापि कृत्वा भुक्त्वा निवेदितम्॥
कथयेद् शृणुयाद् वापि लीलां भगवतोऽन्वहम्॥१२४॥
ततः शयीत शुद्धोऽसौ भावयन् भगवत्पदम्॥
सुतार्थिनी स्वपत्नी चेत् व्रजेत् तां जेतुम् इन्द्रियम्॥१२५॥
इत्येवं यस्य दिवसा यान्ति भक्तस्य भूतले॥
सएव कृतकृत्योऽस्ति हरिस्तमनुश्लिष्यति॥१२६॥

सन्धिविच्छेद :

सम् + ध्या = सन्ध्या [प स.]
सन्ध्या + आहुतीः = सन्ध्याऽऽहुतीः [दीर्घ.]
आहुतीः + च = आहुतीश्च [स.श्चु.]
च + अपि = चापि [दीर्घ.]
कथयेत् + शृणुयात् + वापि =
कथयेद् शृणुयाद् वापि [जश्त्व.]
वा + अपि = वापि [दीर्घ.]
अनु + अहम् = अन्वहम् [यण्.]

भगवतः + अनु = भगवतोऽनु [प.रू.]
शुद्धः + असौ = शुद्धोऽसौ [प.रू.]
सुत + अर्थिनी = सुतार्थिनी [दीर्घ.]
इति + एवं = इत्येवम् [यण्.]
दिवसाः + यान्ति = दिवसा यान्ति [वि.लो.]
सः + एव = स एव [वि.लो.]
कृत्यः + अस्ति = कृत्योऽस्ति [प.रू.]
हरिः + तम् = हरिस्तम् [स.]

समास विग्रह :

- सायं सन्ध्या इति सायंसन्ध्या [तत्पु.] (?)
- सायंसन्ध्या च आहुतयश्च सायंसन्ध्या-आहुतयः [द्वन्द्व.] ताः
- भगवतः पदम् इति भगवतपदम् [प.तत्पु.]
- सुतस्य अर्थिनी इति सुतार्थिनी [प.तत्पु.]- स्वस्य पत्नी स्वपत्नी [प.तत्पु.]
- भुवः तलम् इति भूतलम् [प.तत्पु.] तस्मिन् भूतले
- कृतं कृत्यं येन सः कृतकृत्यः [बहु.]

शब्दपरिचय :

सायं-सम्[उ.]ध्या-आ[उ.]हुतीः [ना.]	शयीत [आ.]	इन्द्रियम् [ना.]
च [नि.] अपि [नि.]	शुद्धः [ना.] असौ [ना.]	इति [नि.] एवम् [नि.]
कृत्वा [स.आ.] भुक्त्वा [स.आ.]	भावयन् [स.आ.]	यस्य [ना.] दिवसाः [ना.]
नि [उ.]वेदितम् [ना.]	भगवत्पदम् [ना.]	यान्ति [आ.] भक्तस्य [ना.]
कथयेद् [आ.] शृणुयाद् [आ.]	सुतार्थिनी [ना.]	भूतले [ना.] सः [ना.] एव [नि.]
वा [नि.] लीलाम् [ना.]	स्वपत्नी [ना.]	कृतकृत्यः [ना.]
भगवतः [ना.]	चेत् [नि.] व्रजेत् [आ.]	अस्ति [आ.] हरिः [ना.]
अनु [उ.]-अहम् [ना.] ततः [नि.]	ताम् [ना.] जेतुम् [स.आ.]	तम् [ना.] अनु [उ.]श्लिष्यति [आ.]

वृत्तिपरिचय :

सायंसन्ध्या-ऽऽहुतीः [स.]	अन्वहम् [स.]	स्वपत्नी [स.]
कृत्वा [कृद्]	ततः [तद्धि.]	जेतुम् [कृद.]
भुक्त्वा [कृद.]	भावयन् [मना]	भक्तस्य [कृद.]
निवेदितम् [कृद+स.]	भगवत्पदम् [स.]	भूतले [स.]
भगवतः [तद्धि.]	सुतार्थिनी [स.]	कृतकृत्यः [स.]

शब्दरूपपरिंचय :

सायंसन्ध्याहुतीः - अ.ई.स्त्री.द्वि.ब.	ताम् - ह.द.स्त्री.द्वि.ए.
निवेदितम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	इन्द्रियम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
लीलाम् - अ.आ.स्त्री.द्वि.ए.	यस्य - ह.द.पुं.ष.ए.
भगवतः - ह.त्.पुं.ष.ए.	दिवसाः - अ.अ.पुं.प्र.ब.
शुद्धः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	भक्तस्य - अ.अ.पुं.ष.ए.
असौ - ह.स.पुं.प्र.ए.	भूतले - अ.अ.नपुं.स.ए.
भावयन् - ह.त.पुं.प्र.ए.	सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
भगवत्पदम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.	कृतकृत्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
सुतार्थिनी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.	हरिः - अ.इ.पुं.प्र.ए.
स्वपत्नी - अ.ई.स्त्री.प्र.ए.	तम् - ह.द्.पुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय :

कथयेद् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	व्रजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.
शृणुयाद् - स्वा.वि.लिङ्.प्र.ए.	यान्ति - अदा.लट्.प्र.ब.
शयीत - अदा.वि.लिङ्.प्र.ए.	अनुश्लिष्यति - दिवा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : सायंसन्ध्या-आहुतीः चापि कृत्वा, निवेदितं भुक्त्वा, अन्वहं भगवतः लीलां कथयेद् वा शृणुयादपि (१२४). ततः शुद्धः असौ भगवत्पदं भावयन् शयीत, स्वपत्नी सुतार्थिनी चेत् इन्द्रियं जेतुं तां

व्रजेत् (१२५). इत्येवं भूतले यस्य भक्तस्य दिवसाः यान्ति सएव कृतकृत्यः अस्ति. हरिः तम् अनुश्लिष्यति॥१२६॥

(ग्रन्थोपसंहारः)

इत्येवं भक्तिशास्त्रेषु यदाचारो निरूपितः ॥
तदाचारं भजेदत्र नान्यथा गतिरिष्यते ॥१२७॥

॥ इति श्रीमद्भगवद्-वदनावतार-श्रीवल्लभदीक्षित-तनुज-श्रीगोपीनाथ- दीक्षित-विरचिता साधनदीपिका समाप्ता॥

सन्धिविच्छेद :

इति + एवं = इत्येवम् [यण्.]	आचारः+ निरूपितः= आचारो निरूपितः [उत्व.गुण.]
भजेत् + अत्र = भजेदत्र [जश्त्व.]	न + अन्यथा = नान्यथा [दीर्घ.]
	गतिः + इष्यते = गतिरिष्यते [रेफ.]

समास विग्रह :

- भक्तेः शास्त्रं इति भक्तिशास्त्रम् [ष.तत्पु.] तेषु भक्तिशास्त्रेषु
- यः च असौ आचारश्च इति यदाचारः [कर्म.]
- स च असौ आचारश्च इति तदाचारः [कर्म.]

शब्दपरिचय :

इति [नि.]	यद्-आ [उ.]चारः [ना.]	भजेद् [आ.]	अन्यथा [नि.]
एवम् [नि.]	नि [उ.]रूपितः [ना.]	अत्र [नि.]	गतिः [ना.]
भक्तिशास्त्रेषु [ना.]	तद्-आ [उ.]चारम् [ना.]	न [नि.]	इष्यते [आ.]

वृत्तिपरिचय :

भक्तिशास्त्रेषु [स.]	निरूपितः [कृद+स.]	अन्यथा [तद्धि.]
यदाचारः [स.]	तदाचारम् [स.]	गतिः [कृद] इष्यते [सना]

शब्दरूपपरिचय :

भक्तिशास्त्रेषु - अ.अ.नपुं.स.व.

यदाचारः - अ.अ.पुं.प्र.ए. तदाचारम् - अ.अ.पुं.द्वि.ए.

निरूपितः - अ.अ.पुं.प्र.ए. गतिः - अ.इ.स्त्री.प्र.ए.

धातुरूपपरिचय :

भजेत् - भ्वा.वि.लिङ्.प्र.ए. इष्यते - तुदा.लट्.प्र.ए.(यक् प्रत्ययान्त)

अन्वय : इत्येवं भक्तिशास्त्रेषु यदाचारो निरूपितः तदाचारं अत्र भजेद् अन्यथा गतिः न इष्यते॥१२७॥

॥ चतुःश्लोकी ॥

(२६)

(पुष्टिमार्गीयजीवानां ऐहिकपारलौकिकयोः सर्वविधहितस्यैव विधाता व्रजाधिपः सर्वात्मभावेन सेवनीयः)

सदा सर्वात्मभावेन भजनीयो व्रजेश्वरः ।।
करिष्यति सएवास्मदैहिकं पारलौकिकम् ।।१।।

सन्धिविच्छेद :

सर्व + आत्मभावेन = सर्वात्मभावेन [दीर्घ.]

भजनीयः + व्रजेश्वरः = भजनीयो व्रजेश्वरः [उ.गुण.] **सः + एव = स एव** [वि.लो.]

व्रज + ईश्वरः = व्रजेश्वरः [गुण.] **एव + अस्मद् = एवास्मद्** [दीर्घ.]

समासविग्रह :

- सर्वो यः आत्मा स सर्वात्मा [कर्म]
- सर्वात्मनः भावः स सर्वात्मभावः [ष.तत्पु.] तेन सर्वात्मभावेन
- व्रजस्य ईश्वरः इति व्रजेश्वरः [ष.तत्पु.]
- अस्माकम् ऐहिकम् इति अस्मदैहिकम् [ष.तत्पु.] तत्

शब्दपरिचय :

सदा [नि.]	भजनीयः [ना.]	करिष्यति [आ.]	अस्मदैहिकम् [ना.]
सर्वात्मभावेन [ना.]	व्रजेश्वरः [ना.]	सः [ना.] एव [नि.]	पारलौकिकम् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वात्मभावेन [स.] भजनीयः [कृद.] व्रजेश्वरः [स] अस्मदैहिकं [स.] पारलौकिकं [तद्धि.]

शब्दरूपपरिचय. :

सर्वात्मभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए. सः - ह.द.पुं.प्र.ए.
भजनीयः - अ.अ.पुं.प्र.ए. अस्मदैहिकम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.
व्रजेश्वरः - अ.अ.पुं.प्र.ए. पारलौकिकम् - अ.अ.नपुं.द्वि.ए.

धातुरूपपरिचय : करिष्यति - तना.लृट्.प्र.ए.

अन्वय : व्रजेश्वरः सदा सर्वात्मभावेन भजनीयः (अस्ति). स एव अस्मदैहिकं पारलौकिकं (च) करिष्यति॥१॥

(पुष्टिमार्गे अन्याश्रयः पुष्टिमार्गीयेषु अनात्मभावश्च सर्वथा अकरणीयौ)

अन्याश्रयो न कर्तव्यः सर्वथा बाधकस्तु सः॥
स्वकीयेष्वात्मभावश्च कर्तव्यः सर्वथा सदा॥२॥

सन्धिविच्छेद :

अन्य + आश्रयः = अन्याश्रयः [दीर्घ.]
अन्याश्रयः + न = अन्याश्रयो न [उ.गुण.] **स्वकीयेषु + आत्म = स्वकीयेष्वात्म** [यण्.]
बाधकः + तु = बाधकस्तु [स.] **भावः + च = भावश्च** [स.श्चु.]

समासविग्रह :

- अन्यस्य आश्रयः इति अन्याश्रयः [ष.तत्पु.]
- आत्मनः भावः इति आत्मभावः [ष.तत्पु.]

शब्दपरिचय :

अन्याश्रयः [ना.]	बाधकः [ना.]	आत्मभावः [ना.]	सर्वथा [नि.]
न [नि.] सर्वथा [नि]	तु [नि.] सः [ना.]	च [नि.]	सदा [नि.]
कर्तव्यः [ना.]	स्वकीयेषु [ना.]	कर्तव्यः [ना]	

वृत्तिपरिचय :

अन्याश्रयः स.	कर्तव्यः कृद्	स्वकीयेषु तद्धि.
सर्वथा तद्धि.	बाधकः कृद्	आत्मभावः स.

शब्दरूपपरिचय. :

(अन्याश्रयः, कर्तव्यः, बाधकः) - अ.अ.पुं.प्र.ए.

सः - ह.द.पुं.प्र.ए. स्वकीयेषु - अ.अ.पुं.स.ब. आत्मभावः - अ.अ.पुं.प्र.ए.

अन्वय : अन्याश्रयो न कर्तव्यः स तु सर्वथा बाधकः (अस्ति). स्वकीयेषु आत्मभावः च सर्वथा सदा कर्तव्यः ॥२॥

(काल-कर्म-स्वभावादिदोषापहारकः श्रीकृष्णः सदा सर्वात्मना सेव्यः श्रीकृष्णभक्तेषु च दोषबुद्धिः वर्जनीया)

सदा सर्वात्मना कृष्णः सेव्यः कालादिदोषनुत्॥
तद्भक्तेषु च निर्दोषभावेन स्थेयम् आदरात्॥३॥

सन्धिविच्छेद :

सर्व + आत्मना = सर्वात्मना दीर्घ. काल + आदि = कालादि दीर्घ.

समास विग्रह :

- सर्वो यः आत्मा स सर्वात्मा कर्म. तेन सर्वात्मना
- कालः आदिः येषां ते कालादयः बहु.
- कालादयः ये दोषाः ते कालादिदोषाः कर्म.
- कालादिदोषान् नुदति इति कालादिदोषनुत् उप.स.
- तस्य भक्तः इति तद्भक्तः ष.तत्पु. तेषु तद्भक्तेषु
- निर्गतो दोषो यस्मात् इति निर्दोषः बहु.
- निर्दोषो यो भावः स निर्दोषभावः कर्म तेन निर्दोषभावेन.

शब्दपरिचय :

सदा [नि.]	सेव्यः [ना.]	निर् [उ.] दोषभावेन [ना.]
सर्वात्मना [ना.]	कालादिदोषनुत् [ना.]	स्थेयम् [ना.]
कृष्णः [ना.]	तद्भक्तेषु [ना.] च [नि.]	आ [उ.] दरात् [ना.]

वृत्तिपरिचय :

सर्वात्मना [स.]	कालादिदोषनुत् [स.]	निर्दोषभावेन [स.]
सेव्यः [कृद्.]	तद्भक्तेषु [स.]	स्थेयम् [कृद्.] आदरात् [स.]

शब्दरूपपरिचय. :

सर्वात्मना - ह.न.पुं.तृ.ए.	तद्भक्तेषु - अ.अ.पुं.स.ब.
कृष्णः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	निर्दोषभावेन - अ.अ.पुं.तृ.ए.
सेव्यः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	स्थेयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.
कालादिदोषनुत् - ह.त.पुं.प्र.ए.	आदरात् - अ.अ.पुं.पं.ए.

अन्वय : सदा सर्वात्मना कालादिदोषनुत् कृष्णः सेव्यः तद् भक्तेषु च निर्दोषभावेन आदरात् (च) स्थेयम्॥३॥

(भगवति श्रीकृष्णएव मनःस्थापनीयः येन कठिनोऽपि कालो बाधको न भवेत्)

भगवत्येव सततं स्थापनीयं मनः स्वयम्॥
कालोऽयं कठिनोऽपि श्रीकृष्णभक्तान् न बाधते॥४॥

॥ इति श्रीविठ्ठलेश्वरप्रभुचरणविरचिता चतुःश्लोकी समाप्ता॥

सन्धिविच्छेद :

भगवति + एव = भगवत्येव [यण्.]	कालः + अयम् = कालोऽयम् [उ.पू.रू.]
	कठिनः + अपि = कठिनोऽपि [उ.पू.रू.]

समासविग्रह :

- श्रीकृष्णस्य भक्तः इति श्रीकृष्णभक्तः [प.तत्पु.] तान् श्रीकृष्णभक्तान्.

शब्दपरिचय :

भगवति [ना.]	स्थापनीयम् [ना.]	कालः [ना.]	अपि [नि.]
एव [नि.]	मनः [ना.]	अयम् [ना.]	श्रीकृष्णभक्तान् [ना.]
सततम् [नि.]	स्वयम् [नि.]	कठिनः [ना.]	न [नि.] बाधते [आ.]

वृत्तिपरिचय :

भगवति [तद्धि.] स्थापनीयम् [कृद.] श्रीकृष्णभक्तान् [स.]

शब्दरूपपरिचय. :

भगवति - ह.त.पुं.स.ए.

स्थापनीयम् - अ.अ.नपुं.प्र.ए.	अयम् - ह.म.पुं.प्र.ए.
मनः - ह.स.नपुं.प्र.ए.	कठिनः - अ.अ.पुं.प्र.ए.
कालः - अ.अ.पुं.प्र.ए.	श्रीकृष्णभक्तान् - अ.अ.पुं.द्वि.ब.

धातुरूपपरिचय : बाधते - भ्वा.लट्.प्र.ए.

अन्वय : भगवत्येव सततं स्वयं मनः स्थापनीयम्, कठिनोऽपि अयं कालः श्रीकृष्णभक्तान् न बाधते ॥४॥